गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ

[७१वें जन्म-दिवस की भेंट]

सपादक

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

वाइस-चासलर

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

[दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर]

संस्करण

अक्तूबर (गाधी-जयती) १९३९ १०००

मार्च (काग्रेस अधिवेशन) १९४० १५००

जनवरी (स्वतत्रता-दिवस) १९४१ १५००

मूल्य

जिल्द बँधी : दो रुपया

सादी : सवा रुपया

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली।



मुद्रक,
देवीप्रसाद शर्मा,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली।

पहले संस्करण का वक्तव्य

यह अभिनदन-ग्रथ विश्ववद्य महात्मा गाधी के जन्म-दिवस (आश्विन कृष्ण १२) पर हिन्दी मे प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए हम सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अत्यन्त आभारी है। अनुमति देने मे श्री राधाकृष्णन् ने एक शर्त रखी थी जो उन्हीके शब्दो मे इस प्रकार है—

" You will not make any profit out of it and that the resulting profit will be handed over to me for the relief of distressed Indian students in Great Britain"

(" आप इस पुस्तक से कोई मुनाफा नही उठावेगे और जो मुनाफा होगा उसे विलायत मे पढनेवाले दीन-दुखी भारतीय विद्यार्थियो के सहायतार्थ मेरे पास भेज देगे।")

इस शर्त को हमने सहर्ष स्वीकार किया, क्योकि 'मण्डल' तो एक सार्वजनिक सस्था है। और उसका ध्येय सत्साहित्य का प्रसार करना है, पैसा कमाना नही।

अनुमति तो मिली, पर काम भारी था—साढे तीन सौ पृष्ठो का अनुवाद, छपाई आदि, और इधर समय की कमी। अनुमति २४ सितम्बर को मिली और पुस्तक १० अक्तूबर (चर्खा द्वादशी) को गाधीजी को भेट करनी थी।

इस गुरुतर भार को उठाने मे हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के प्रबन्धक और कार्यकर्ताओ का सहयोग हमे पूर्ण रूप से मिला। जल्दी-से-जल्दी यथासाध्य पुस्तक छाप देने का जिम्मा उन्होने लिया। अनुवाद के विषय मे भी यही रहा। मण्डल के स्नेहियो, मित्रो और कार्यकर्ताओ ने उत्साहपूर्वक अपनी सुविधा-असुविधा का किंचित् विचार किये बिना अपना हार्दिक सहयोग दिया, अथक परिश्रम किया और अपना अनमोल समय दिया। अगर ये सब अपना काम समझकर सहायता को न दौड पडते तो इस ग्रथ का समय पर निकलना असम्भव ही था। अत हम 'मण्डल' की मित्र-मण्डली और हिदुस्तान टाइम्स प्रेस के सचालक तथा कार्यकर्ताओ के अत्यन्त आभारी है।

देश की महत्त्वपूर्ण समस्याओ मे अत्यधिक व्यस्त होने पर भी हमारी प्रार्थना पर प० जवाहरलाल नेहरू ने वर्धा जाते समय रेल मे से, इस हिन्दी पुस्तक के लिए कुछ शब्द खास तौर से हिन्दी मे लिख भेजे। इसके लिए हम उनके बहुत आभारी है। इसी

प्रकार श्री राधाकृष्णन् का भी हमपर बहुत अहसान है जो उन्होने इस हिन्दी-सस्करण के लिए विशेष रूप से 'भूमिका' लिख भेजी। इसके लिए हम उनके उपकृत है।

अनुवाद के विषय मे भी दो शब्द कहना आवश्यक है। मूल पुस्तक भाषा, विचार और भावो की दृष्टि से बहुत गम्भीर और क्लिष्ट है। पश्चिमी विद्वानो ने महात्माजी को हृदय से न जान कर बुद्धि द्वारा जाना है। और बौद्धिक ज्ञान प्राय जटिल होता है। दूसरे, उन विद्वानो ने अपने पाश्चात्य वातावरण को सम्मुख रख कर महात्माजी का विवेचन किया है। फलस्वरूप उनके लेखो मे ऐसे विदेशी मुहावरे, पारिभाषिक और शास्त्रीय शब्द आये कि जिनका हिन्दी मे उल्था करना सुगम काम न था। समय तो कम था ही। सम्भव है, अनुवादको और अनुवाद-सम्पादक के सतत प्रयत्नशील और सचेत रहने पर भी इस ग्रथ मे कही-कही शका और मतभेद के लिए गुजाइश रह गई हो। विज्ञ पाठको के ध्यान मे यदि कोई ऐसी बात आये तो वे उससे हमे अवश्य सूचित करने की कृपा करे।

यह वक्तव्य हम श्री जैनेन्द्रकुमार को धन्यवाद दिये बिना समाप्त नही कर सकते। सारी पुस्तक का अनुवाद करा लेना तो आसान था, पर सारे अनुवाद को देखना, सम्पादन करना और उसमे सशोधन करना कही अधिक कठिन काम साबित हुआ। यदि श्री जैनेन्द्रकुमार इस समय हमारी सहायता को न आते तो यह चीज इतनी सुन्दर और सम्पूर्ण नही निकल पाती। सारे अनुवाद को उन्होने परिश्रम से रात-दिन एक करके देखा और सशोधन तथा सपादन आदि का कार्य किया। इसके लिए हम श्री जैनेन्द्रकुमार के अत्यन्त कृतज्ञ है।

अन्त मे कृपालु पाठको से पुन अनुरोध है कि पुस्तक मे यदि छापे-सम्बन्धी या अन्य त्रुटियाँ रह गई हो, तो हमारी समयाभाव की परिस्थिति को ध्यान मे रखकर उनके लिए हमे क्षमा करे और उनकी सूचना हमे देने की कृपा करे, जिससे उन्हे अगले सस्करण मे सुधारा जा सके।

—मंत्री

मेरी झिझक !

[हिन्दी-संस्करण के लिए हिन्दी में लखा]

कुछ महीने हुए, श्री राधाकृष्णन् ने मुझे लिखा था कि वह गाधी-जयन्ती के लिए एक किताव तैयार कर रहे है, जिसमे दुनिया के वहुत सारे वडे आदमी गाधीजी के वारे में लिखेगे। मुझसे भी उन्होने इस किताव के लिए एक लेख लिखने को कहा था। मै कुछ राज़ी हुआ, लेकिन फिर भी एक झिझक-सी थी। गाधीजी पर कुछ भी लिखना मेरे लिए आसान वात नही थी। फिर मै ऐसी परेशानियो मे फँसा कि लिखना और भी कठिन होगया और आखिर मे मैने कोई ऐसा मज़मून नही लिखा।

मै यो अक्सर कुछ-न-कुछ लिखा करता हूँ और लिखने मे दिलचस्पी भी है। फिर यह झिझक कैसी ? कभी-कभी गाधीजी पर भी लिखा है। लेकिन जितना मैने सोचा यह मज़मून मेरे कावू के वाहर निकला। हाँ, यह आसान था कि मै कुछ ऊपरी वाते जो दुनिया जानती है उनको दोहराऊँ। लेकिन उससे फायदा क्या ? अक्सर उनकी वाते मेरी समझ मे नही आई, कुछ वातो मे उनसे मतभेद भी हुआ। एक ज़माने से उनका साथ रहा, उनकी निगरानी मे काम किया, उनका छापा मेरे ऊपर पडा, मेरे खयाल वदले, और रहने का ढग भी वदला। जिन्दगी ने एक करवट ली, दिल वढा, कुछ-कुछ ऊँचा हुआ, आँखो मे रोशनी आई, नये रास्ते देखे और उन रास्तो पर लाखो और करोडो के साथ हमक़दम होकर चला। क्या मै ऐसे शख्स के निस्वत लिखूँ जोकि हिन्दुस्तान का और मेरा एक जुज़ होगया और जिसने कि ज़माने को अपना वनाया।

हम जो इस ज़माने मे वढे और उसके असर मे पले, हम कैसे उसका अन्दाज़ा करे ? हमारे रग और रेशे मे उसकी मोहर पडी और हम सव उसके टुकडे है।

जहाँ-जहाँ मै हिन्दुस्तान के वाहर गया, चाहे यूरोप का कोई देश हो या चीन या कोई और मुल्क, पहला सवाल मुझसे यही हुआ—"गाधी कैसे है ? अव क्या करते है ?" हर जगह गाधीजी का नाम पहुँचा था, गाधीजी की शोहरत पहुँची थी। गैरो के लिए गाधी हिन्दुस्तान था और हिन्दुस्तान गाधी। हमारे देश की इज्ज़त वढी, हैसियत वढी। दुनिया ने तसलीम किया कि एक अजीव ऊँचे दर्जे का आदमी हिन्दुस्तान मे पैदा हुआ, फिर से अँधेरे मे रोशनी आई। जो सवाल लाखो के दिल मे थे और उनको

परेशान करते थे, उनके जवाबो की कुछ झलक नज़र आई। आज उस जवाब पर अमल न हो, तो कल होगा, परसो होगा। उस जवाब में और भी जवाब मिलेगे, और भी अँधेरे में रोशनी पडेगी, लेकिन वह बुनियाद पक्की है और उसीपर इमारत खडी होगी।

आजकल की दुनिया मे लडाई का तूफान फैल रहा है और हरएक के लिए मुसीबत का सामना और इम्तिहान का वक्त है। हम क्या करे, यह हर हिन्दुस्तानी के सामने सवाल है। वक्त इसका जवाब देगा। लेकिन जो भी कुछ हम करे उसकी बुनियाद उन उसूलो पर हो जिनको हमने इस जमाने मे सीखा। बडे कामो मे हम पडे, पहाडो की ऊँची चोटियो की तरफ निगाह डाली और लम्बे कदम उठाकर हम बढे, लेकिन सफर दूर का है। इसके लिए हमको भी ऊँचा होना है और छोटी बातो मे पडकर अपने देश को छोटा नही करना है।

वर्धा जाते हुए (रेल से)
६ अक्तूबर १९३९

जवाहरलाल नेहरू

लेख-सूची



गांधी-अभिनंदन-ग्रंथ

प्रास्ताविक

गांधीजी का धर्म और राजनीति

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

[वाइसचांसलर, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी]

भूतल पर मनुष्य-जीवन की कथा मे सबसे बडी घटना उसकी आधिभौतिक सफलतायें अथवा उस द्वारा बनाये और बिगाडे हुए साम्राज्य नही, बल्कि सचाई तथा भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा की हुई युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्नो मे भाग लेते है, उनको मानवी सभ्यता के इतिहास मे स्थायी स्थान प्राप्त होजाता है। समय महान् वीरो को, अन्य अनेक वस्तुओ की भाँति, बडी सुगमता से भुला चुका है, परन्तु सन्तो की स्मृति कायम है। गाधीजी की महत्ता का कारण उनके वीरतापूर्ण सघर्ष इतने नही, जितना कि उनका पवित्र जीवन है, और यह भी कि ऐसे समय मे जबकि विनाश की शक्तियाँ प्रबल होती दीख रही है, वह आत्मा की सृजन करने तथा जीवन देने की शक्ति पर ज़ोर देते है।

राजनीति का धार्मिक आधार

ससार मे गाधीजी की यह ख्याति है कि भारतीय राष्ट्र के प्रचण्ड उत्थान का और उसकी दासता की शृखलाओ को हिला डालने तथा शिथिल कर देने का काम एक उन्हीने अन्य किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक किया है। राजनीतिज्ञ लोग आमतौर पर धर्म की गहराई मे नही जाते। क्योकि एक जाति का दूसरी जाति पर राजनैतिक आधिपत्य और निर्धन तथा निर्बल मनुष्यो का आर्थिक शोषण आदि जो लक्ष्य राज-नीतिज्ञो के सामने रहते है, वे धार्मिक लक्ष्यो से स्पष्ट ही इतने भिन्न तथा असम्बद्ध है कि वे लोग इनपर गम्भीरता से और ठीक-ठीक चिन्तन कर ही नही सकते। परन्तु गाधीजी के लिए तो सारा जीवन यहा से वहाँ तक एक ही अभग वस्तु है। "जिसे सत्य की सर्वव्यापक विश्व-भावना को अपनी आँख से प्रत्यक्ष देखना हो उसे निम्नतम प्राणी को आत्मवत् प्रेम कर सकना चाहिए। और जिस व्यक्ति की यह महत्वाकाक्षा होगी वह जीवन के किसी भी क्षेत्र मे अपनेको पृथक् नही रख सकेगा। यही कारण है कि मेरी सत्य-भक्ति मुझे राजनीति के क्षेत्र मे खीच लाई है, और मै बिना तनिक भी

सकोच के तथा पूर्ण नम्रता से कह सकता हूँ कि जो लोग यह कहते है कि धर्म का राजनीति से कुछ सम्बन्ध नही, वे नही जानते कि धर्म का अर्थ क्या है।" और, "मुझे ससार के नश्वर साम्राज्य की इच्छा नही है, मै तो स्वर्ग के साम्राज्य की अर्थात् आध्यात्मिक मुक्ति की प्राप्ति का यत्न कर रहा हूँ। मेरे लिए मुक्ति का मार्ग तो अपने देश और मनुष्य-मात्र की निरन्तर सेवा करते रहना ही है। मै तो जीवमात्र से अपनी एकता कर देना चाहता हूँ। गीता के शब्दो मे, मै **'सम शत्रौ च मित्रे च'** (मित्र और शत्रु मे समदृष्टि) होना चाहता हूँ। अत मेरी देशभक्ति भी अनन्त शान्ति तथा मुक्ति की ओर मेरी यात्रा का एक पडाव-मात्र है। इससे प्रकट है कि मेरे लिए धर्म से रहित राजनीति की कोई सत्ता नही। राजनीति धर्म की सेविका है। धर्म-रहित राजनीति मृत्यु का जाल है, क्योकि उससे आत्मा का हनन होता है।"[१] राजनैतिक जीव के रूप मे यदि मनुष्य बहुत सफल नही हुआ, तो उसका कारण यही है कि उसने धर्म को राजनीति से पृथक् रक्खा, और इस प्रकार उसने दोनो को ही गलत समझा। गाधीजी के लिए धर्म मानवी प्रवृत्तियो से पृथक नही है। भारत की वर्तमान परिस्थितियो मे यद्यपि गाधीजी की स्थिति एक ऐसे राजनैतिक क्रान्तिकारी की है जो अत्याचार अथवा दासता के सामने झुकने से इन्कार करता है, तथापि वह उस हठीले क्रान्तिकारी से बहुत दूर है जिसके भाव-प्रधान काल्पनिक विचार मनुष्य को अप्राकृतिक तथा अमानुषिक कार्यो मे फँसा देते है। अनुभव की अग्नि-परीक्षा मे, वह न राजनीतिज्ञ है न सुधारक, न दार्शनिक है न आचारशास्त्री, प्रत्युत इन सबका सम्मिश्रण है। उनके व्यक्तित्व की रचना ही धार्मिक है। उनमे उच्चतम मानवीय गुण भी है। फिर मर्यादाओ से परिचित होने तथा अपने स्वभाव की नित्य-प्रासादिकता (हास-परिहास-प्रियता) के कारण वह सबके प्रेमपात्र भी बन गये है।

धर्म का अर्थ है ईश्वरमय जीवन

ईश्वर के विषय मे हमारी जो भी सम्मति हो, इस बात मे इन्कार नही किया जा सकता कि गाधीजी के लिए वह एक परममहत्त्व और विशुद्ध वास्तविकता की वस्तु है। उनके ईश्वर-विश्वास ने ही उनको वह मनुष्य बना दिया है जिसकी शक्ति, भावना और प्रीति का हम बार-बार अनुभव करते है। वह एक ऐसी सत्ता का अनुभव करते है जो उनके निकट ही है। एक आध्यात्मिक सत्ता है जो उनके मन को मथती है, क्षुब्ध करती है, और हावी हो जाती है, जिससे उसकी वास्तविकता का निश्चय होता है। बार-बार, जब सन्देह तथा सशय मे उनका मन अस्थिर होता है, तब वह उसे ईश्वर के भरोसे छोड देते है। रहा यह कि ईश्वर से उनको उत्तर मिलता है या नही?

१ सी० एफ० एण्डरूज-कृत 'महात्मा गाधी—हिज ओन स्टोरी'। पृष्ठ ३५३–४, ३५७

इसका जवाब हाँ भी होगा और नही भी। नही, इसलिए कि गाधीजी को गुप्ततम अथवा दूरतम कोई भी वाणी कुछ कहती सुनाई नही देती। हाँ, इसलिए कि उनको उत्तर मिला जान पडता है, वह अपने आपको ऐसा सन्तुष्ट अनुभव करते है कि उनको उत्तर मिल गया हो। वह मिला हुआ उत्तर इतना तर्क-शुद्ध भी होता है कि जिसमे वह परख लेते है कि मै अपने ही स्वप्नो या कल्पनाओ का शिकार तो नही हुआ। "एक अलक्षणीय रहस्यमय शक्ति है जो वस्तु-मात्र मे व्याप्त है। मै इसे देखता नही, परन्तु इसे अनुभव करता हूँ। यह अदृष्ट शक्ति अनुभव द्वारा ही गम्य है। प्रमाणो से इसकी सत्ता सिद्ध नही हो सकती, क्योकि मेरी इन्द्रियो से गम्य जो कुछ भी है उस सबसे यह शक्ति सर्वथा भिन्न है। इसकी सत्ता बाह्य साक्षी मे नही, प्रत्युत उन व्यक्तियो के कायापलट मे—उनके जीवन व व्यवहार मे—सिद्ध होती है, जिन्होने अपने अन्त करण मे ईश्वर का अनुभव कर लिया है। यह साक्षी पैगम्बरो और ऋषियो की अविच्छिन्न शृखला के अनुभवो से, सब देशो और सब कालो में, निरन्तर मिलती रही है। इस साक्षी को अस्वीकार करना अपने आपको ही अस्वीकार करना है।"[१]

"यह युक्ति या तर्क का विषय कभी नही बन सकता। यदि आप मुझे औरो को युक्ति द्वारा विश्वास करा देने को कहे तो मै हार मानता हूँ, परन्तु मै आपसे इतना कहे देता हूँ—आप और मै इस कमरे में बैठे है, इस सचाई से भी अधिक—मुझे उसकी सत्ता का निश्चय है। मै यह भी कहता हूँ कि मै बिना हवा और पानी के जी सकता हूँ, परन्तु उसके बिना नही। आप मेरी आँखे निकाल ले, मै मरूँगा नही। आप मेरी नाक काट ले, मै मरूँगा नही। परन्तु ईश्वर मे मेरे विश्वास को उडा दें तो मै मरा ही पडा हूँ।"[२]

हिन्दू-धर्म की महती आध्यात्मिक परम्परा के अनुसार, गाधीजी दृढतापूर्वक कहते है कि जब हम एक बार अपनी पाशविक वासनाओ द्वारा होनेवाले पतन की गहराई से ऊपर उठकर आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की ऊँचाई पर पहुँच जाते है तब जीव-मात्र में सम-दृष्टि होजाती है। यह ठीक है कि पर्वत-शिखर पर चढने के मार्ग विभिन्न है, हम जहाँ-कही हो वहीसे ऊपरको चढना पडता है। परन्तु हम सबका लक्ष्य एक ही है। "इस्लाम का अल्लाह वही है जो ईसाइयो का गॉड और हिन्दुओ का ईश्वर है। जिस प्रकार हिन्दू-धर्म मे ईश्वर के नाम अनेक है, उसी प्रकार इस्लाम में भी अल्लाह के बहुत-से नाम है। इन नामो मे व्यक्तियो की अनेकता नही, बल्कि उनके गुण प्रकट होते है। मनुष्य तो अल्प है, मगर उसने अपनी अल्पता मे ही उस महान् शक्तिशाली परमेश्वर को उसके नाना गुणो द्वारा बखानने का यत्न किया है, यद्यपि वह सर्वथा गुणातीत, वर्णनातीत और मानातीत है। ईश्वर मे सजीव विश्वास का परिणाम सब

१ 'यग इण्डिया', ११ अक्तूबर १९२८

२ 'हरिजन', १६ मई १९३८

धर्मो के प्रति समान सम्मान-बुद्धि होता है। ऐसा मानना असहिष्णुता की पराकाष्ठा होगी—और असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है—कि आपका धर्म अन्य धर्मो से श्रेष्ठ है और अन्य व्यक्तियो से अपना धर्म वदलकर आपका धर्म स्वीकार करने के लिए आपका कहना उचित है।"[१] अन्य धर्मो के प्रति गाधीजी की भावना निष्क्रिय सहिष्णुता की नही, प्रत्युत सक्रिय कद्रदानी की है। वह ईसामसीह के जीवन तथा कार्य को अहिंसा का एक श्रेष्ठतम उदाहरण बतलाते है। "मैंने अपने हृदय मे ईसामसीह को उन महान् गुरुओ की पक्ति मे स्थान दिया है जिनका मेरे जीवन पर विशेष प्रभाव पडा है।" पैगम्बर मुहम्मद के चरित्र की, उसके हार्दिक विश्वास और व्यवहार-कुशलता की, और अली की कोमल दयालुता तथा सहनशीलता की वह प्रशसा करते है। इस्लाम द्वारा उपदिष्ट महान् सत्यो को, ईश्वर की सर्वोपरि प्रभुता मे आस्था-विश्वास को, जीवन की सरलता तथा पवित्रता को, भाईचारे की तीव्र भावना को, और गरीबो की तत्परतापूर्वक सहायता को, वह सब धर्मों के मौलिक तत्त्व के रूप मे मानते है। परन्तु उनके जीवन पर प्रमुख प्रभाव, उसकी सत्य की कल्पना और आत्मा तथा उदारता की भावनाओ के कारण, हिन्दू-धर्म का पडा है।

फिर भी सब धर्म-सम्प्रदाय मुख्य धर्म के साधन-मात्र है। "मै यहाँ स्पष्ट करदूं कि धर्म से मेरा अभिप्राय क्या है। वह हिन्दू-धर्म नही है, जिसे मै सब धर्मो से निश्चय ही श्रेष्ठ मानता हूँ, वल्कि वह धर्म है, जो हिन्दू-धर्म से भी परे चला जाता है, जो मनुष्य की सारी प्रकृति को ही बदल देता है, जो अन्त करण के सत्य से आत्मा का अविच्छेद्य सम्बन्ध कर देता है और जो सदा जीवन को शुद्ध करता रहता है। मनुष्य-प्रकृति का यह स्थायी अग है। यह अपनेको प्रकट करने के लिए किसी भी बाधा को कुछ नही गिनता। इसके कारण आत्मा तवतक बेचैन रहती है जवतक कि उसे अपना, अपने स्रष्टा का और स्रष्टा तथा सृष्टि के सच्चे सम्बन्ध का ज्ञान नही हो जाता।"

सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नही है, और सत्य की उपलब्धि तथा अनुभव का एकमात्र उपाय प्रेम अथवा अहिंसा है। सत्य का ज्ञान और प्रेम का आचरण आत्मशुद्धि विना असम्भव है। शुद्ध अन्त करण वाले को ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। अन्त करण की शुद्धि, राग तथा द्वेप से मुक्ति, मनसा-वाचा-कर्मणा पक्षपात से रहितता, और मिथ्या भय तथा अभिमान से ऊपर उठने के लिए ऐन्द्रियिक प्रवृत्तियो के सघर्प और मन के तर्क-वितर्को पर विजय पाना आवश्यक है। और इसका मार्ग है यम-नियमो का साधन और तपस्या। तप मे आत्मा धुलकर शुद्ध होजाता है। हिन्दू पुराणो मे लिखा है कि देवताओ द्वारा समुद्र का मथन किये जाने पर जो विप ऊपर आया उसे शिवजी निगल गये। ईसाइयो के गॉड ने मनुष्यमात्र की रक्षा के लिए

१. 'हरिजन', १४ मई १९३८

अपने ख़ास बेटे को निछावर कर दिया। ये सब यदि कोरी कपोल-कल्पित कथायें हों, तो भी प्रश्न यह है कि इनसे यदि मनुष्यों की किन्हीं दृढमूल अन्त प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति नहीं होती तो उनकी सृष्टि ही क्यों की गई ? जितना आप प्रेम करेंगे, उतने ही आप कष्ट-सहिष्णु बनते जायँगे। अनन्त प्रेम का अर्थ है अनन्त कष्ट सहिष्णुता। "जो कोई अपना जीवन बचावेगा वह उसे खो बैठेगा।" हम यहाँ ईश्वर का काम कर रहे हैं। हमें अपने जीवन का उपयोग उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए करना है। यदि हम ऐसा नहीं करते और अपना जीवन खर्चने की बजाय उसे बचाने का प्रयत्न करते हैं तो हम अपनी प्रकृति के विपरीत आचरण करते और अपने जीवन को खो देते हैं। यदि हमें जहाँतक हमारी दृष्टि जा सकती है वहाँतक पहुँचने के योग्य बनना हो, यदि हमें दूरतक की पुकार पर अमल करना हो, तो हमें सासारिक अभिलाषा, यश, सम्पत्ति और ऐन्द्रियिक विषयों का परित्याग करना ही पड़ेगा। निर्धनों और जाति-बहिष्कृतों से एकता प्राप्त करने के लिए हमें भी वैसा ही निर्धन तथा बहिष्कृत बनना पड़ेगा। निन्दा-स्तुति की परवा न करके, बेधड़क सत्य कहने तथा करने में और निःशंक होकर सबके प्रति प्रेम तथा क्षमा का बर्ताव करने के लिए, वैराग्य की परम आवश्यकता है। ऐसी स्वतंत्रता (मुक्ति) उन बन्धन-रहितों के लिए है जो तृण-मात्र का भी स्वामी हुए बिना निखिल जगत का उपभोग करते हैं। इस सम्बन्ध में गांधीजी सन्यासी के उस उच्च आदर्श का पालन कर रहे हैं जो उसे कहीं भी टिककर रहने और जीवन की कोई भी एक प्रणाली स्वीकार करने की इजाजत नहीं देता।

परन्तु जब कभी तपश्चर्या के इस मार्ग पर पूर्णतया अमल करने का उपदेश, केवल सन्यासियों को ही नहीं मनुष्यमात्र को किया जाता है, तब कुछ अतिशयोक्ति से काम लिया जाता है। उदाहरणार्थ, जननेन्द्रिय का सयम सबके लिए आवश्यक है, परन्तु आजन्म ब्रह्मचारी कुछ ही रह सकते हैं। स्त्री-पुरुष के सयोग का प्रयोजन केवल शारीरिक अथवा ऐन्द्रियिक सुख ही नहीं है, प्रत्युत प्रेम प्रकट करने और जीवन-शृखला को जारी रखने का भी एक साधन है। यदि इसमें दूसरों को हानि पहुँचे अथवा किसी-की आध्यात्मिक उन्नति में बाधा हो तो यह काम बुरा हो जाता है, वरना स्वय काम में इन दोनों बुराइयों में से कोई भी वर्तमान नहीं है। जिस काम द्वारा हम जीते हैं, प्रेम प्रकट किया जाता है और जीवन-शृखला बढती है, वह लज्जा अथवा पाप का काम नहीं होसकता। परन्तु जब अध्यात्म के उपदेशक ब्रह्मचर्य पर जोर देते हैं, तब उनका अभिप्राय यह होता है कि मन की एकता को ऐन्द्रियिक वासनाओं द्वारा नष्ट होने से बचाया जाय।

गांधीजी ने अपना जीवन यथासम्भव सीमातक सयत बनाने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा, और जो उनको जानते हैं वे उनके इस दावे को मान जायँगे कि वह "सगे सम्बन्धियों और अजनबियों, स्वदेशियों और विदेशियों, गोरों और कालों, हिन्दुओं

और अन्य धर्मावलम्वी मुस्लिम, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि भारतीयो मे कोई भेद नही करते ।" वह कहते है, "मै यह दावा नही करता कि यह मेरा विशेष गुण है, क्योकि यह तो मेरे किसी प्रयत्न का परिणाम होने की अपेक्षा मेरे स्वभाव का ही अग रहा है, जबकि अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि अन्य परम धर्मो के विषय मे मैं खूब जानता हूँ कि मुझे उनकी प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना पडा है ।"[१]

केवल शुद्ध हृदयवाला ही ईश्वर से और मनुष्य से प्रेम कर सकता है । सहनशीलता-युक्त प्रेम आध्यात्मिकता का एक चमत्कार है । इसमे यद्यपि दूसरो के अन्याय हमे अपने कन्धो पर झेलने पडते है, तथापि उससे एक ऐसे आनन्द का अनुभव होता है जो शुद्ध स्वार्थमय सुख की अपेक्षा भी अधिक वास्तविक तथा गहरा होता है । ऐसे अवसरो पर ही ज्ञात होता है कि ससार मे इस ज्ञान से वढकर मधुर अन्य कुछ नही कि हम किसी दूसरे को क्षणभर सुख दे सके, इस भावना से वढकर मूल्यवान अन्य कुछ नही कि हमने किसी दूसरे के दु ख में भाग वँटाया । अहकार-रहित, गर्व-शून्य, भलाई करने के गर्व से भी शून्य, पूर्ण दयालुता ही धर्म का सर्वोच्च रूप है ।

मानवता की भावना

यह स्पष्ट होगया कि आध्यात्मिकता की कसौटी प्राकृतिक ससार से पृथक् हो .ना नही, प्रत्युत यही रहकर सवसे प्रेम रखते हुए कर्म करना है । **यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानत ।"** अपने पडोसी से अपने समान ही (आत्मैव) प्रेम करो । यह शर्त निरपवाद है । जीव-मात्र को स्वतन्त्रता और स्थिति की समानता प्राप्त होनी चाहिए । इस शर्त की पूर्ति के लिए विश्वभर में स्वतन्त्र मनुष्य-जाति की स्थापना तो परम आवश्यक है ही, जो इसे स्वीकार करेगे उनके लिए जाति और धर्म, धन और शक्ति, और वर्ग और राष्ट्र के कृत्रिम वन्धनो को छिन्न-भिन्नकर देना भी आवश्यक होगा । यदि एक गिरोह या राष्ट्र दूसरे को वरवाद करके आप सुरक्षित होने का, जर्मन चैको को वरवाद करके, जमीदार काश्तकारो को वरवाद करके और पूजीपति मजदूरो को वरवाद करके आप सुखी होने का यत्न करे तो वह उपाय प्रजातन्त्र-विरोधी होगा । इस प्रकार के अन्याय की हिमायत केवल शस्त्र-वल मे ही की जा सकती है । अधिकारारूढ वर्ग को सदा अधिकार छिन जाने का भय रहता है और पीडित वर्ग स्वभावत हृदय में क्रोध का सग्रह करता रहता है । इस अप्राकृतिक अवस्था का अन्त न्याय द्वारा ही हो सकता है—न्याय भी ऐसा जो मनुष्य-मात्र के समानाधिकार को स्वीकार करता हो । गत कुछ शताब्दियो में मानव-जाति का प्रयत्न मानवी वन्धुता की स्थापना करने की दिशा मे हो रहा है । ससार के विविध भागो मे आगे वढने के जो प्रयत्न होते देखे गये है वे न्याय, समानता तथा शोषण मे छुटकारा पाने के

१ 'महात्मा गाधी—हिज ओन स्टोरी'; पृष्ठ २०९

आदर्श, जिनका कि मनुष्यो को अधिकाधिक बोध होता जा रहा है और उनका तकाज़ा या मतालबा, ये सब उन विघ्न-बाधाओ के विरुद्ध सर्वसाधारण मनुष्य के विद्रोह के चिन्ह है, जो उसे रोक रखने और पीछे खीचने के लिए अर्से मे जमा हो रही थी। स्वतन्त्रता के लिए अधिकाधिक जागरूक होते जाना मानवीय इतिहास का सार है।

हम बहुधा अपवाद-स्वरूप घटनाओ को, उनके बिगडे हुए रूप मे देखकर, आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे देते है। हम भलीभाति यह नही समझते कि कभी-कभी व्यतिक्रम हो जाने की घटनाये, अन्धेरी गलियाँ और घोर आपत्तियाँ सदियो से चली आ रही साधारण प्रवृत्ति का एक अग-मात्र है, और इनको उक्त प्रवृत्ति के पृष्ठ-भाग पर रखकर ही देखना चाहिए। यदि हम मानव-जाति के सतत प्रयत्न का कही एकान्त अवलोकन कर पाते तो हम अत्यन्त चकित और प्रभावित रह जाते। गुलाम आजाद हो रहे है, काफिरो को अब जिन्दा जलाया नही जाता, जागीरदार अपने परम्परागत अधिकारो को छोडते जा रहे है, गुलामो को लज्जापूर्ण जीवन से मुक्ति मिल रही है, सम्पत्तिशाली अपनी सम्पन्नता के लिए क्षमा-याचना कर रहे है, सैनिक साम्राज्य शान्ति की आवश्यकता बतला रहे है, और मानव-जाति की एकता तक के स्वप्न देखे जा रहे है। हाँ, आज भी हम शक्तिशालियो का ऐश्वर्य-भोग, धूर्तो की ईर्ष्या, मक्कारो की दगाबाज़ी, और दर्पपूर्ण जातीयता तथा राष्ट्रीयता का उदय देख रहे है। परन्तु जिस किसी को प्रजातन्त्र की महती परम्परा आज सर्वत्र व्याप्त होती दृष्टिगोचर न हो, वह अन्धा ही होगा। उन लोगो के प्रयत्न और परिश्रम अथक है जो एक ऐसा नया ससार निर्माण करने मे लगे हुए है जिसमे गरीब-से-गरीब आदमी भी अपने घर मे पर्याप्त भोजन, प्रकाश, वायु और धूप का तथा जीवन में आशा, प्रतिष्ठा व सुन्दरता का उपभोग कर सकेगा। गाधीजी मानव-जाति के प्रमुख सेवियो मे से है। बिल्कुल सामने ही खडी आपत्तियो को देखते हुए वह सुदूरवर्ती भविष्य की कल्पना मे सन्तुष्ट नही हो सकते। वह तो बुराइयो के सुधार और आपत्तियो के निवारण के लिए दृढ विश्वासवाले व्यक्तियो के साथ मिलकर, यथासम्भव प्रत्यक्ष तथा सीधे उपायो द्वारा काम करना पसन्द करते है। प्रजातन्त्र उनके लिए वाद-विवाद की वस्तु नही, एक सामाजिक वास्तविकता है। दक्षिण अफ्रीका और भारत की तमाम सार्वजनिक कार्रवाइयाँ तभी समझ मे आ सकती है जब हम उनके मानव-प्रेम को जान ले।

यहूदियो के साथ नाजियो के व्यवहार से समस्त सभ्य ससार बिलकुल हिल गया है, और उदार राजनीतिज्ञो ने जाति-पक्षपात के पुन फूट पडने पर गम्भीरतापूर्वक अपना खेद तथा विमति प्रकट की है। किन्तु यह एक विचित्र परन्तु आश्चर्यजनक सचाई है कि ब्रिटिश साम्राज्य और अमेरिका के सयुक्त-राज्यो-जैसे प्रजातन्त्री देशो मे भी अनेक जातियो को केवल जातीय कारणो से राजनैतिक तथा सामाजिक रुकावटो का सामना करना पड रहा है। गाधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में थे

तव उन्होने देखा कि नाम को तो भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतन्त्र नागरिक थे, परन्तु उनको भारी रुकावटो का सामना करना पडता था। धर्माधिकारी और राज्याधिकारी दोनो ही गैर-यूरोपियन जातियो को समानाधिकार देने को राज़ी नही थे, तव गाधीजी ने इन अत्याचारपूर्ण पावन्दियो का प्रतिवाद करने के लिए सामूहिक-रूप से अपना निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उनका मूलभूत सिद्धान्त यह था कि मनुष्य मनुष्य समान है और जाति तथा रग की बिना पर कृत्रिम भेदभाव करना तर्क तथा नीति के विरुद्ध है। उन्होने भारतीय समाज को वतलाया कि उसका सचमुच कितना पतन हो चुका है और उसमे आत्म-प्रतिष्ठा तथा आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत की। उनका प्रयत्न भारतीयो के सुख तक ही सीमित नही रहा। उन्होने अफ्रीका के मूल-निवासियो के शोषण को और भारतीयो के साथ, उनकी ऐतिहासिक सस्कृति के आधार पर, कुछ अच्छे व्यवहार को भी उचित नही माना। भारतीयो के विरुद्ध अधिक आपत्तिजनक भेदभावपूर्ण कानून तो उठा दिये गये, परन्तु आज भी भारतीयो पर ऐसी अनेक अपमानकारक पावन्दियाँ लगी हुई है, जो न तो उनके सामने झुक जानेवालो के लिए प्रशसा की वस्तु है और न उन्हे लागू करनेवाली सरकार की शान को ही वढाती है।

भारत मे उनकी महत्वाकाक्षा यह थी कि देश के आन्तरिक भेदभावो और फूट को मिटाकर जनता को स्वाश्रय के लिए एक नियम मे लाया जाय, स्त्रियो को उठाकर पुरुषो के वरावर राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक धरातल पर विठाया जाय, राष्ट्र को विभक्त करनेवाले धार्मिक घृणा-द्वेषो का अन्त किया जाय, और हिन्दू-धर्म को अस्पृश्यता के सामाजिक कलक से मुक्त किया जाय। हिन्दुत्व पर से यह धव्वा धोने मे उनको जो सफलता प्राप्त हुई है, वह मानव-जाति की उन्नति को उनकी एक महत्तम देन के रूप मे स्मरण की जायगी। जवतक अछूतो की पृथक् श्रेणी रहेगी, गाधीजी उसीमे रहेगे। "यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मै अछूत के घर जन्मना चाहूँगा, ताकि मै उनके दु ख-दर्द मे, उनके अपमान मे भाग ले सकूँ, और अपने आपको तथा उनको उस दयनीय अवस्था से छुडाने का यत्न कर सकू।" यह कहना कि हम अदृश्य ईश्वर को प्रेम करते है और साथ ही उसके जीवन द्वारा अथवा उससे प्राप्त जीवन द्वारा जीनेवाले मनुष्यो मे क्रूरता का वर्ताव करना, अपनी वात को आप ही काटना है। यद्यपि गाधीजी कट्टर हिन्दू होने का अभिमान करते है, तथापि जात-पाँत की कठोरताओ व कठिनताओ की, अस्पृश्यता के अभिशाप की, मन्दिरो के अनाचार की, और पशुओ तथा प्राणि-जगत् पर होनेवाली क्रूरता की तीव्र आलोचना करनेवाला भी उनसे वढकर कोई नही हुआ। "मै सुधारक तो पूरा-पूरा हूँ परन्तु मैने जोश में आकर हिन्दुत्व के एक भी मूल तत्त्व का निषेध नही किया।"

आज वह भारतीय राजाओ की स्वेच्छाचारिता का विरोध कर रहे है। और

इसका कारण इन राजाओ की करोडो प्रजा के प्रति उनका प्रेम है उदारतम निरीक्षक भी यह नही कह सकता कि रियासतो मे सब कुछ ठीक है। मै यहाँ कलकत्ता के एक ब्रिटिश स्वार्थो के प्रतिनिधि पत्र "स्टेट्समैन" से कुछ वाक्य उद्धृत कर दूं—"कई रियासतो की दशा भयकर है, यह कहकर हम व्यक्तियो की निन्दा नही कर रहे, केवल मनुष्य की प्रकृति को प्रकट कर रहे है। अच्छे और बुरे, दोनो ही प्रकार के जागीरदार किसी कानून के पावन्द नही है। जिन्दगी और मौत की ताकत उनके हाथ मे है। यदि वे लालची, ज़ालिम और पापी हो तो उनके लालच, पाप और ज़ुल्म के रास्ते मे कोई भी रुकावट नही। यदि छुटभैये अत्याचारियो की रक्षक सन्धियाँ नही वदली जायँगी, यदि अरक्षणीय की रक्षा करने की सर्वोच्च सत्ता की ज़िम्मेदारी केवल एक सम्मान की वस्तु रहेगी, तो एक न एक दिन एक अनिरोध्य शक्ति की टक्कर एक अचल वस्तु से होकर रहेगी और इस समस्या के शास्त्रोक्त उत्तर के अनुसार कोई वस्तु धूल में मिले विना न रहेगी।" विकास की मन्दगति सव क्रान्तियो का कारण होती है। गाधीजी राजाओ के परममित्र है। इसी कारण वह उनको जागने और अपना घर ठीक कर लेने के लिए कह रहे है। मुझे आशा है कि वे समय वीतने से पहले ही समझ लेगे कि उनकी सुरक्षितता तथा स्थिरता, उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-पद्धति का शीघ्र सूत्रपात कर देने में ही है। सर्वोच्च सत्ता (ब्रिटिश सरकार) तक को, अपनी सव शक्ति के रहते, ब्रिटिश भारत के प्रान्तो मे इसे जारी कर देना पडा है।

भारत मे ब्रिटिश शासन पर गाधीजी का सबसे वडा आक्षेप यह है कि इसमे गरीवो का उत्पीडन होने लगा है। इतिहास के आरम्भ मे ही भारत अपने धन और सम्पत्ति के लिए सर्वविदित रहा है। हमारे पास अत्यन्त उपजाऊ भूमि के विस्तृत क्षेत्र है, प्राकृतिक साधनो की अक्षय्य प्रचुरता है, और यदि उचित सावधानता तथा ध्यान से काम लिया जाय तो हमारे पास एक-एक स्त्री, पुरुष और वालक के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त सामग्री है। तो भी हमारे देश में लाखो आदमी निर्धनता के शिकार हो रहे है, उनके पास भरपेट खाने को अन्न नही और रहने को ठीक-ठीक मकान नहीं, वचपन से बुढापे तक निरन्तर सघर्ष ही उनका जीवन है और अन्त को मृत्यु ही आकर उनके दुखी हृदय को शात करके उनकी रक्षा करती है। इन अवस्थाओ का कारण प्रकृति की क्रूरता नही, परन्तु वह अमानुषिक पद्धति है, जो न केवल भारत के वल्कि समस्त मानव-जाति के लाभ के लिए स्वय अपने मिट जाने की पुकार कर रही है।

सन् १९३१ मे गाधीजी ने लन्दन से अमरीका को जो भाषण ब्रॉडकास्ट किया था, उसमे उन्होने "उन्नीस-सौ मील लम्बे और पन्द्रह-सौ मील चौडे भूताल पर छाये हुए सात लाख गाँवो में जगह-जगह विखरे पडे करोडो अध-भूखो" का भी ज़िक्र किया था। उन्होने कहा था—

"यह एक दुखमयी समस्या है कि ये सीधे-सादे ग्रामीण, विना किसी

अपने कमूर के, वरस मे लगभग छ माह निकम्मे वैठे रहते है। वहुत समय नही वीता, जव हरेक ग्राम भोजन और वस्त्र की दो प्रारम्भिक आवश्यताओ के मामले में आत्म-निर्भर था। हमारे दुर्भाग्य से जव ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उस ग्रामीण दस्तकारी का नाग कर दिया—जिन साधनो से उसने ऐसा किया उनका वर्णन न ही करूँ तो अच्छा—तव करोडो कतैयो ने—जो अपनी अँगुलियो की कुशलता मे ऐसा सूक्ष्मतम सूत निकालने के कारण प्रसिद्ध हो चुके थे, जैसाकि आजतक किसी वर्तमान मशीन ने नही काता—ग्रामो के इन दस्तकार कतैयो ने एक रोज़ सुवह देखा कि उनका शानदार पेशा खतम हो चुका है। वस उसी दिन से भारत निरन्तर निर्धन होता जा रहा है। इसके विपरीत चाहे कोई कुछ कहले, यह एक सचाई है।"

भारत ग्रामो मे वसता है। उसकी सभ्यता कृषि-प्रधान थी, जो अव अधिकाधिक यान्त्रिक होती जा रही है। गाधीजी किसानो के प्रतिनिधि है, जो कि ससार का भोजन उत्पन्न करते है और जो समाज के आधार है। उन्हे भारतीय सभ्यता के इस मूल आधार को सुरक्षित रखने और स्थायी वनाने की चिन्ता है। वह देखते है कि व्रिटिश राज मे लोग अपने पुराने आदर्शो को छोडते जा रहे है और यान्त्रिक वुद्धि, आविष्कार की योग्यता, साहस और वीरता आदि अनेक प्रशसनीय गुणो को पाकर भी वे आदिभौतिक सफलता के पुजारी प्रत्यक्ष लाभो के लोभी और सासारिक आदर्शो के उपासक वनते जा रहे हैं। हमारे औद्योगिक शहर जिस भूमि मे वसे हुए है, उसके अनुपात से विलकुल वाहर जा चुके है, उनका निरर्थक फैलाव होता जा रहा है, और उनके निवासी नागरिक धन तथा यन्त्रो की उलझन मे फँसकर हिंसक, चचल, अविचारी अनियन्त्रित, और नीति-अनीति के विवेक से शून्य वन गये है। कारखाने मे काम करने वाले लोगो का नमूना गाधीजी की दृष्टि मे वे स्त्रियाँ है, जो थोडी-सी मज़दूरी के लिए अपना जीवन निष्फल विताने को मजवूर की जाती है, वे वच्चे है, जिनको अफीम देकर चुप करा दिया जाता है, ताकि वे रोकर काम मे लगी अपनी माताओ को तग न करे, वे वालक हैं, जिनका वचपन छीनकर उनको छोटी आयु मे ही कारखानो में काम पर भेज दिया जाता है, और वे लाखो वेकार है, जिनकी वढती रुक गई है, और जो वीमार हो चुके है। उनका विचार है कि हम जाल मे फँसकर गुलाम वनाये जा रहे है और हमारी आत्माये अत्यन्त तुच्छ मूल्य पर ख़रीदी जा रही है। जो सभ्यता और भावना, उपनिषदो के ऋषियो, वौद्ध भिक्षुओ हिन्दू सन्यासियो और मुस्लिम फकीरो का आश्रय पाकर उच्च आकाश मे उडी थी, वह मोटरकारो, रेडियो और धन-दौलत के दूसरे दिखावो से सन्तुष्ट नही हो सकती। हमारी दृष्टि धुन्धली हो गई है और हम रास्ता भूल गये है। हम गलत दिशा में मुड गये है जिससे हमारी काश्तकार जनता निरधिकृत, निर्धन और दुखी हो गई है, हमारे मज़दूर चरित्र-भ्रष्ट, अशिष्ट और अधे वन गये है, और जिसके कारण हमारे लाखो वालक, भावहीन चेहरा, मुरदा आँखे तथा

झुकी हुई गर्दन लेकर ससार मे आये है। हमारी वर्तमान निष्फलता, निराशा और परेशानी के नीचे जनता का वडा भाग आज भी वास्तविक स्वतन्त्रता व सच्चे आत्म-सम्मान के पुराने स्वप्न की पूर्ति का तथा ऐसे जीवन का भूखा हो रहा है जिसमे न कोई अमीर होगा न गरीव, जिसमे सुख व फुरसत की अतिशयता की समाप्ति करदी जायगी और जिसमे उद्योग तथा व्यापार सीवे-सादे रूप मे रहेगे।

गाधीजी का लक्ष्य ऐसा किसान-समाज नही है, जो मशीन के लाभो का सर्वथा परित्याग कर देगा। वह वडे पैमाने पर उत्पादन के भी विरोवी नही है। उनसे जव यह प्रश्न किया गया कि क्या घरेलू उद्योग-वधो और वडे कल-कारखानो मे समन्वय हो सकता है, तव उन्होने कहा, "हा, यदि उनका सगठन ग्रामो की सहायता के लिए किया जाय। वुनियादी-व्यवसाय, ऐसे व्यवसाय जिनकी राष्ट्र को आवश्यकता है, एक जगह केन्द्रित किये जा सकते है। मेरी योजना के अनुसार तो जा वस्तु ग्रामो मे भली-भाँति उत्पन्न हो सकती है, वह शहरो मे पैदा नही करने दी जायगी। शहरो को तो गाँव की पैदावार की विक्री का केन्द्र रहना चाहिए।" खादी पर वार-वार जोर देने मे और शिक्षण की अपनी योजना का आधार दस्तकारी को वनाने मे भी उनका प्रयोजन ग्रामो का पुनरुद्धार ही है। वह वार-वार चेतावनी देते है कि भारत उसके कुछ शहरो मे नही, उसके अनगिनत गावो मे ही मिलेगा। भारत की भारी जनता को पुन लौटकर भूमि का ही सहारा लेना चाहिए, भूमि पर ही रहना और भूमि की ही पैदावार से अपना निर्वाह करना चाहिए, ताकि उसके परिवार स्वावलम्वी वन जायँ। जिन औजारो मे वे काम करते है, जिस खेत को वे जोतते है और जिस घर मे वे रहते है उन सबके वे स्वय मालिक हो। देश के सास्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राज-नैतिक जीवन पर घर-वार से विछुडे एक जगह पडे रहनेवाले कारखानो के मज़दूर-वर्ग का नही, अवकचरे तथा लालची महाजन या व्यापारी समाज का नहीं, वल्कि जिम्मेदार ग्रामीण जनता का और छोटी-छोटी देहाती मण्डियो के स्थायी व दुरुस्त-दिमाग लोगो का प्रभुत्व होना चाहिए जिससे उनके द्वारा उसमे नीति-वल का सदाचार का और उच्च ध्येयो का प्रवेश हो। इस सव का अर्थ पुरातन युग मे लौट जाना नही, इसका अभिप्राय केवल यह है कि भारत जीवन की ऐसी प्रणाली को ग्रहण करले जो उसके लिए स्वाभाविक है, और जो किसी समय उसको एक उद्देश्य, विश्वास तथा अर्थ प्रदान करती थी। हमारी जाति को सभ्य रखने का एकमात्र यही उपाय है। जव भारत के जीवन की विशेपताये उसके काश्तकार और गाँव, ग्राम-पचायते, अरण्यो के ऋषि-आश्रम और अध्यात्म-चिन्तन के एकान्त-निवास थे, तव उसने ससार को अनेक महान् पाठ पढाये थे, परन्तु किसी इन्सान का वुरा नही किया था, किसी देश को हानि नहीं पहुँचाई थी और न किसी पर शासन करने की कोशिश की थी। आज तो जीवन का वास्तविक उद्देश्य ही भ्रष्ट हो गया है। निराशा के इस गर्त मे भारत का छुटकारा

किस प्रकार हो ? जनता सदियो की पराधीनता के पश्चात् अपने आपको उससे मुक्त करने का सकल्प या इच्छा ही खो बैठी जान पडती है। उन्हे अपनी विरोधी शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल दीखती है। उनमे पुन आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और स्वाभिमान उत्पन्न करना और फिर उठाकर खडा करना सुगम कार्य नही है। तो भी गाधीजी ने एक सुप्त पीढी को अपने अन्त करण मे सुलगती हुई अग्नि और स्वतन्त्रता की अपनी कामना से पुन जाग्रत तथा चेतन करने का यत्न किया है। स्वतन्त्र अवस्था मे स्त्री और पुरुष अपनी उत्कृष्टता को प्रकट करते है, परतन्त्रता मे वे निकृष्ट हो जाते है। स्वतन्त्रता का उद्देश्य ही, साधारण मनुष्य को, उन आन्तरिक तथा बाह्य बन्धनो से मुक्त करना है जो उसकी वास्तविक प्रकृति को सकुचित किये रहते है। गाधीजी मानवीय स्वतन्त्रता के महान् रक्षक है, इसीलिए वह अपने देश को विदेशी बन्धन से मुक्त करने का यत्न कर रहे है। देशभक्ति, जब इतनी शुद्ध हो तब वह, न अपराध रहती है न अशिष्टता। वर्तमान अस्वाभाविक अवस्थाओ के विपरीत लडना प्रत्येक भारतीय का पवित्र कर्तव्य है। गाधीजी आध्यात्मिक शस्त्रो का प्रयोग करते है, वह तलवार खीचने से इन्कार करते है, और ऐसा करते हुए वह लोगो को स्वतन्त्रता के लिए तैयार कर रहे है, उन्हे उसे पाने और कायम रख सकने के योग्य बना रहे है। सर जार्ज लॉयड (अब लार्ड लॉयड) ने, जो तब बम्बई प्रान्त के गवर्नर थे, गाधीजी के आन्दोलन के विषय मे कहा था—"गाधीजी का प्रयोग ससार के इतिहास मे सबसे विशाल था और इसकी सफलता मे केवल इच-भर का अन्तर रह गया था।"

ब्रिटिश सरकार को हिला देने के अपने प्रयत्न मे चाहे वह सफल न हो पाये हो, फिर भी उन्होने देश मे ऐसी शक्तियाँ उन्मुक्त कर दी है जो अपना काम सदा करती रहेगी। उन्होने लोगो को जडता से जगा दिया है, उन्हे नया आत्म-विश्वास और उत्तरदायित्व देकर स्वतन्त्र होने के अपने सकल्प मे एक कर दिया है। जहाँतक आज देश मे एक नई भावना की जाग्रति का, एक नये प्रकार के राष्ट्रीय सम्मिलित जीवन की तैयारी का और दलित जातियो के साथ व्यवहार मे एक नई सामाजिक भावना का सम्बन्ध है, वहाँतक इस सबका अधिकतर श्रेय गाधीजी के आन्दोलन की आध्यात्मिक प्रेरक शक्ति और गति को है।

गाधीजी के दृष्टिकोण मे साम्प्रदायिकता अथवा प्रान्तीयता तनिक भी नही है। उनका विश्वास है कि भारत की प्राचीन सस्कृति से ससार की सस्कृति के विकास मे सहायता मिल सकती है। नीचे पडा छटपटाता हुआ भारत मानव-जाति को आशा का सन्देश नही दे सकता, जाग्रत और स्वतन्त्र भारत ही पीडित ससार की सहायता कर सकता है। गाधीजी कहते है कि यदि ब्रिटिश लोग न्याय शान्ति और व्यवस्था के अपने आदर्श के प्रति सच्चे हो तो उनके लिए आक्रामक शक्तियो को दबा देना और वर्तमान परिस्थिति को ही कायम रखना पर्याप्त नही है। यदि स्वतत्रता और न्याय के प्रति

हमारा प्रेम सच्चा है तो उसमे हमारे घोषित आदर्शो के विपरीत जो परिस्थिति हो उसे सुधारने मे इन्कार करने की इस निष्क्रिय हिंसा को कोई स्थान न होना चाहिए। यदि साम्राज्यो का निर्माण मनुष्य की तृष्णा, क्रूरता और घृणा ने किया है तो, ससार को न्याय तथा स्वतन्त्रता की शक्तियो का साथ देने के लिए कहने से पहले, हमे उनको बदलना होगा। हिंसा या तो सक्रिय होगी या निष्क्रिय। आक्रामक शक्तियाँ इस समय सक्रिय हिंसा कर रही है, वे साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी हिंसा की उतनी ही अपराधिनी और स्वातन्त्र्य तथा प्रजातन्त्र की विरोधिनी है, जो भूतकाल की हिंसा द्वारा प्राप्त अन्यायपूर्ण लाभो का उपभोग करने मे आज भी सलग्न है। जबतक हम इस मामले मे ईमानदारी से काम न लेगे तबतक हम अब से अच्छी ससार-व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकेगे, और ससार मे युद्ध तथा युद्धो का भय जारी रहकर, यहाँ अनिश्चितता की अवस्था बनी रहेगी। भारत को स्वतन्त्र कर देना ब्रिटिश ईमानदारी की अग्नि-परीक्षा है। गाधीजी अब भी प्रति सोमवार को चौबीस घण्टे का उपवास करते है, ताकि सब सम्बद्ध लोगो को मालूम रहे कि स्वराज अभी नही मिला। और फिर भी यह गाधीजी का ही प्रभाव है, जो एक ओर जनता की उचित आकाक्षाओ और दूसरी ओर ब्रिटिश शासको के हठ के विरोध मे छिन्न-विच्छिन्न तथा अधीर भारत को नियन्त्रण मे रख रहा है। भारत मे सबसे बडी शान्ति-रक्षिणी शक्ति वही है।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की समाप्ति के पश्चात्, जब वह इग्लैण्ड पहुँचे तब उन्होने देखा कि जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की जा चुकी थी। उन्होने लडाई के मैदान मे 'एम्बुलेन्स' (घायलो की सहायता) काम करने के लिए, जबतक युद्ध चले तबतक, अपनी सेवाये बिना शर्त पेश की। उनकी सेवा स्वीकार कर ली गई और उन्हे एक भारतीय टुकडी के साथ एक जिम्मेदारी के पद पर नियुक्त किया गया। परन्तु अपना काम करते हुए ठण्ड लग जाने के कारण, उनको प्लुरसी का रोग हो गया और उनका जीवन जोखिम मे होने का सन्देह किया जाने लगा। अच्छा होने पर उनको डाक्टरो ने भारत की गरम आब-हवा मे लौट जाने की आज्ञा दी। उन्होने युद्ध के लिए रगरूटो की भरती मे असली मदद पहुँचाई—उनका यह काम उनके अनेक मित्रो तक के लिए पहेली बन गया था। युद्ध के पश्चात्, भारतीयो का सर्वसम्मत विरोध होते हुए भी, रौलट-एक्ट पास होगया। पजाब मे फौजी शासन के मातहत ऐसी कार्रवाइया की गई जिनको देख-सुनकर देश स्तब्ध होगया। पजाब के दगो पर काग्रेस की जाँच-कमेटी ने जो रिपोर्ट तैयार की, उसके लेखको मे गाधीजी भी एक थे। यह सब होते हुए भी, दिसम्बर १९१९ मे, उन्होने अमृतसर की काग्रेस को सलाह दी कि शासनसुधारो को स्वीकार करके उनपर वैध उपायो द्वारा अमल करना चाहिए। सन् १९२० मे जब हण्टर-कमीशन की रिपोर्ट मे सरकारी कार्रवाई की आलोचना हिचकते-हिचकते की गई, और जब ब्रिटिश पार्लमेण्ट की लार्ड-सभा ने जनरल डायर की निन्दा

करने से इन्कार कर दिया, तब उन्होने ब्रिटिश सरकार से सहयोग न करने का अपने जीवन का महान् निश्चय प्रकट किया। और सितम्बर सन् १९२० मे काग्रेस के कलकत्ता विशेषाधिवेशन ने उनका अहिंसात्मक असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया।

यहाँ उनके अपने ही शब्दो को उद्धृत करना उचित होगा। १ अगस्त १९२० को उन्होने वाइसराय को एक पत्र मे लिखा

"अफसरो के अपराधो के प्रति आपकी अवहेलना, आपका सर माइकेल ओडवायर को निरपराध कहकर छोड देना, मि० माण्टेगु का खरीता और सबसे बढकर ब्रिटिश लार्ड-सभा की पजाब की घटनाओ से निर्लज्जतापूर्ण अनभिज्ञता तथा भारतीय भावनाओ की हृदयहीन उपेक्षा, इन घटनाओ ने साम्राज्य के भविष्य के विषय मे मेरे हृदय को गम्भीर सशयो से भर दिया है तथा मुझे वर्तमान शासन का कट्टर विरोधी और जैसा मै अबतक पूर्ण हृदय से सरकार को सच्चा सहयोग देता आया हूँ उसे निभाने मे असमर्थ बना दिया है।

"मेरी विनम्र सम्मति मे, जो सरकार अपनी प्रजा के सुख की तरफ से ऐसी सख्त लापरवाह हो जैसी कि भारत-सरकार साबित हुई है, उसे पश्चात्ताप करने के लिए दरख़्वास्तो, डेपूटेशनो और इसी किस्म के आन्दोलन करने के दूसरे मामूली तरीको से प्रेरित नही किया जा सकता। यूरोपियन देशो मे, ख़िलाफत और पजाब सरीखे भारी अन्यायो की निन्दा तथा प्रतिवाद के परिणाम मे जनता रक्त-मय क्रान्ति कर उठती। उसने सब उपायो से, राष्ट्रीय मान-मर्दन का विरोध किया होता। आधा भारत हिंसामय विरोध करने मे असमर्थ है, और शेष आधा वैसा करना नही चाहता। इसलिए मैने असहयोग का उपाय सुझाने का साहस किया है। इसके द्वारा, जो चाहे वे, अपने आपको सरकार से अलहदा कर सकते है। यदि इस उपाय पर बिना हिंसा के और व्यवस्थित रूप मे अमल किया गया, तो यह सरकार को अपना कदम वापस लेने को और किया हुआ अन्याय धोने को ज़रूर मजबूर कर देगा। परन्तु असहयोग की नीति पर चलते हुए, और जहाँतक मै जनता को अपने साथ ले जा सकता हूँ वहाँतक जाते हुए भी, मै यह आशा नही छोडूँगा कि आप अब भी न्याय के मार्ग पर चल पडेगे।"

यद्यपि उनकी राय है कि वर्तमान ब्रिटिश शासन ने भारत को "धन, पौरुष तथा धर्म मे और उसके पुत्रो को आत्मरक्षा के सामर्थ्य मे पहले से निर्बल" बना दिया है, तो भी उनको आशा है कि यह सब परिवर्तित हो सकता है। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन करते हुए भी, वह ब्रिटिश सम्बन्ध के विरोधी नही है। असहयोग-आन्दोलन की पराकाष्ठा के दिनो मे भी, उन्होने ब्रिटेन से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर देने के आन्दोलन का दृढता से विरोध किया था।

ब्रिटिशो के साथ मित्रो और साथियो की तरह काम करने के लिए तैयार होते

हुए भी, उनकी दृढ राय थी कि जबतक सरक्षकता और प्रभुता का ब्रिटिशो का अस्वाभाविक रुख कायम रहेगा, तबतक भारत की अवस्था मे कोई सुधार सम्भव नही होगा। याद रखना चाहिए कि तीव्रतम उत्तेजना के समय भी उन्होने ब्रिटिशो का बुरा कभी नही चाहा। "मै भारत की सेवा करने के लिए इग्लैण्ड या जर्मनी को हानि नही पहुँचाऊँगा।"

जब कभी, अमृतसर का हत्याकाण्ड अथवा साइमन-कमीशन की नियुक्ति सरीखे मूर्खता या नासमझी के किसी काम के कारण, भारत अपना धीरज और आत्म-सयम गवाकर क्रोध से उबल उठा, तब गाँधीजी सदा असन्तोष और क्षोभ को प्रेम और सुलह के शान्त प्रवाह मे परिवर्तित करते देखे गये है। गोलमेज परिषद् मे उन्होने ब्रिटिशो के प्रति अपने अमिट प्रेम, शक्ति के बजाय युक्ति पर आश्रित 'कामनवेल्थ' मे विश्वास और मनुष्य-मात्र की भलाई करने की अभिलाषा का परिचय दिया था। गोलमेज परिषदो के फलस्वरूप प्रान्तो को स्व-शासन की एक अपूर्ण मात्रा दी गई थी, और जब जनता के बहुमत ने शासन-विधान को स्वीकार करने का और उसपर अमल करने का विरोध किया, तब भी गाधीजी ही थे कि जिन्होने अन्य किसीसे भी बढकर, काँग्रेस को शासन-सुधारो का यथाशक्य लाभ उठाने की प्रेरणा की। उनका एकमात्र आग्रह ब्रिटेन के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखने पर है, परन्तु इस शान्ति का आधार होना चाहिए स्वतन्त्रता और मित्रता। आज भारत का प्रतिनिधित्व एक ऐसा नेता कर रहा है, जिसमे जाति-द्वेष अथवा वैयक्तिक ईर्ष्या का लेश भी नही है, जिसका बल-प्रयोग मे विश्वास नही है, और जो अपने देशवासियो को भी बल-प्रयोग का आश्रय लेने से रोकता है। वह भारत को 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' से पृथक् नही करना चाहता, बशर्ते कि यह स्वतत्र राष्ट्रो का सहयोग और सबध हो। सम्राट् ने २० मई को कनेडियन पार्लमेण्ट के अपने भाषण मे कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य की एकता "आज ऐसे राष्ट्रो के स्वतन्त्र सहयोग द्वारा प्रकट हो रही है जो शासन के समान सिद्धान्तो का उपभोग कर रहे है और जिनको शान्ति तथा स्वतन्त्रता के आदर्शो से समान प्रेम है और जो समान राज-भक्ति द्वारा परस्पर सम्बद्ध है।" गाधीजी इन "शासन के सर्वनिष्ठ सिद्धान्तो" को भारत पर भी लागू कराना चाहते है। उनका दावा है कि भारतीयो को अपने घर का मालिक आप होना चाहिए। यह बात न तर्क-विरुद्ध है, न नीति-विरुद्ध। वह दोनो कैम्पो मे, सदाभिलाषी पुरुषो के-से सहयोग द्वारा, सुन्दरतर सम्बन्ध स्थापित करके के तीव्र अभिलाषी है।

यह खेद की बात है कि उनकी अपील का असर हवा की साँय-साँय से ज्यादा नही हो रहा। बरसो के अथक श्रम और वीरता-पूर्ण सघर्ष के पश्चात् भी उनका महान् उद्देश अपूर्ण ही पडा है, परन्तु उनका विश्वास और विचार अब भी जीवित है। स्वय मै तो यही आशा करूँगा कि ब्रिटिश लोकमत अपनी बात मनवायेगा और ब्रिटिश

सरकार को मजबूर करेगा कि वह, बिना किसी सोदे या टालमटोल के, बिना हिचक या देरी किये, विश्वास भरे स्पष्ट उत्तम सकेत के साथ, कुछ जोखिम उठाकर भी एक अबाध स्व-शासित भारत की स्थापना करे, क्योकि मेरा खयाल है कि यदि वह काम गाधीजी की न्याय तथा ईमानदारी की अपील के जवाब मे न किया गया तो हम दोनो देशो के पारस्परिक सम्बन्ध और भी कटु हो जायँगे, खाई चौडी हो जायगी और यह पारस्परिक कटुता बढकर दोनो के लिए ही खतरा व रुकावट पैदा कर देगी।

गाधीजी की आलोचना और आरोप का लक्ष्य चाहे दक्षिण अफ्रीका की सरकार हो चाहे ब्रिटिश सरकार, चाहे भारतीय मिल-मालिक हो चाहे हिन्दू पुरोहित, और चाहे भारतीय राजा हो, इन सब विभिन्न कार्रवाइयो मे उनकी आधार-भूत भावना एक ही रहती है। "इन लाखो-करोडो गूंगो के हृदयो मे जो ईश्वर विराजमान है, मै उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नही मानता। वे उसकी सत्ता को नही जानते, मै जानता हूँ। और मै इन लाखो-करोडो की सेवा-द्वारा उस ईश्वर की पूजा करता हूँ जो सत्य है अथवा उस सत्य की जो ईश्वर है।"[१]

सत्याग्रह

"अहिंसा परमो धर्मः" यह महाभारत का वाक्य सर्व-विदित है। ज़िन्दगी मे इसका अमली इस्तेमाल ही सत्याग्रह या आत्मशक्ति है। इसका आधार यह कल्पना है कि "ससार सत्य की सुदृढ नींव पर ठहरा हुआ है। असत्य का अर्थ असत् अर्थात् अभाव (न रहना) भी है, और सत्य का अर्थ है सत्, भाव, जो है। जब असत्य का भाव यानी हस्ती ही नही तब उसकी विजय का तो प्रश्न ही नही उठ सकता। और सत्य, का तो अर्थ ही है वह 'जो है' (जिसकी हस्ती है) इसलिए उसका नाश नही हो सकता"[२]—**"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत।"** ईश्वर एक सचाई है। स्वातन्त्र्य और प्रेम की इच्छा सचाई अर्थात् वास्तविकता के अनुकूल है। जब मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए इस इच्छा का निषेध कर देता है तब वह अपने 'स्व' का ही निषेध करता है। इस निष्फल कार्य द्वारा वह स्वय वास्तविकता के विरोध मे अपनेको खडा करता है, उससे पृथक् होकर अपने आपको अकेला कर लेता है। इस निषेध का अभिप्राय है मनुष्य का अपने से ही विरुद्ध हो जाना, अपने विषय मे ही सत्य से इन्कार कर देना। परन्तु यह काम निर्णयात्मक या अन्तिम नही हो सकता। इससे वास्तविक इच्छा-शक्ति का विनाश नही हो सकता। वास्तविकता अपना खडन आप नही कर सकती। "नरक का द्वार सदा खुला नही रहेगा।" ईश्वर का पराजय नही हो सकता। विनम्र लोग इस भूमि के स्वामी बनेगे, वे बलवान नही जो अपने बचाव करने के प्रयत्न मे

१ 'हरिजन', ११ मार्च १९३९

२ 'महात्मा गाधी—हिज ओन स्टोरी', पृष्ठ २२५.

अपना ही विनाश करने लगते है, क्योकि उन लोगो का विश्वास धन-दौलत और घातक शस्त्रास्त्रो जैसी अनात्मिक अथवा अवास्तविक वस्तुओ मे है। अन्ततोगत्वा, मानव-जाति पर वे शासन नही करते जिनका विश्वास निषेध, घृणा और हिंसा मे होता है, प्रत्युत वे करते है जिनका विश्वास समझदारी, प्रेम और आन्तरिक तथा बाह्य शान्ति मे होता है।

सत्याग्रह की जड वास्तविकता की शक्ति मे, आत्मा के आन्तरिक बल मे, जमी हुई है। सत्याग्रह मे हिंसा से केवल बचते रहने का निष्क्रिय धर्म ही नही, बल्कि भलाई करने का सक्रिय धर्म भी है। "यदि मैं अपने विरोधी को मारूँ तो वह तो हिंसा है ही, परन्तु सच्चा अहिंसक बनने के लिए मुझे उससे प्रेम करना चाहिए और वह मुझे मारे तो भी उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए।" प्रेम एकता है। इसकी बुराई से टक्कर होती रहती है, जिसके विभिन्न रूप पृथकता, लिप्सा, घृणा, मार-पीट और हत्या है। प्रेम बुराई से, अन्याय से, अत्याचार से अथवा शोषण से मेल नही कर सकता। यह बुराई के प्रश्न को टालता नही, बल्कि निडरता से बुराई करनेवाले का सामना करता और उसकी बुराई को प्रेम तथा सहनशीलता की प्रबल शक्ति से रोकता है। क्योकि शक्ति द्वारा लडना मानवीय प्रकृति के विरुद्ध है। हमारे झगडे तो समझदारी, नेकनीयती, प्रेम और सेवा के मानवोचित उपायो द्वारा हल होने चाहिएँ। इस गोलमाल दुनिया मे बचाव की एकमात्र वस्तु है मनुष्य बनने का महान् प्रयास। नित्य के विनाश या मृत्यु मे से जीवन सदैव प्रस्फुटित होता ही रहता है। इस समस्त भय तथा शोक के होते हुए भी, मानवता का व्यवहार, किसान और जुलाहा, कलाकार और दार्शनिक, कुज में बैठा फकीर और रसायनशाला मे बैठा वैज्ञानिक युवक और वृद्ध सब करते है, जबकि वे प्रेम करते और कष्ट उठाते है। जीवन विशाल है—**'प्राणो विराट्'**

शक्ति-प्रयोग के समर्थक डारविन साहब की जीवन-सघर्ष-सम्बन्धी कल्पना का हवाला एक भद्दे तरीके पर देते है। वे पशु-जगत् के मौलिक भेद की उपेक्षा करके पशु-जीवन के सामान्य सिद्धान्तो को मानव-जीवन के अन्तिम सिद्धान्तो की महत्ता तक पहुँचाते है। यदि हिंसा द्वारा निरोध का व्यवहार उस जगत् मे भी ठीक माना जाने लगेगा जिससे इसका सम्बन्ध नही तो मानव-जीवन के भी नीचे उतर कर पशु-जगत् की सतह पर पहुँचने की आशका हो जायगी। महाभारत मे परस्पर लडते हुए मनुष्य की तुलना कुत्तो से की गई है। "पहले वे पूँछ हिलाते है, फिर भौकते है, जवाब मे विरोधी कुत्ते भौकते है, फिर एक-दूसरे के चारो तरफ घूमते है, फिर दाँत दिखाते है, फिर गुर्राते है, और फिर लडाई शुरू हो जाती है। मनुष्यो की अवस्था भी यही है, भेद कुछ नही।"[1] गाधीजी कहते है कि लडना-झगडना कुत्तो और बन्दरो के लिए छोडकर, परस्पर मनुष्यो की भाति वर्ताव करो और चुपचाप कष्ट सहकर सत्य व

१ एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन।

न्याय की प्रतिष्ठा करो। प्रेम और सहनशीलता शत्रु को जीत लेते हैं,—परन्तु उसका विनाश करके नहीं, उसको बदल कर,—क्योकि आखिर उसके हृदय मे भी तो हम सरीखे ही राग-द्वेष आदि के भाव है। गाधीजी के पश्चात्ताप तथा आत्म-ताडन के कार्य नैतिक साहस, प्रायश्चित्त और त्याग से परिपूर्ण है।

प्रेम-प्रणाली का प्रयोग अबतक कही-कही कुछ व्यक्तियो ने निजी जीवन मे ही करके देखा था। परन्तु गाधीजी की परम सफलता यह है कि उन्होने इसे सामाजिक तथा राजनैतिक मुक्ति की योजना बनाकर दिखा दिया है। उनके नेतृत्व मे दक्षिण अफ्रीका और भारत मे सगठित समुदायो ने इसे अपनी शिकायते दूर करने के लिए वडे पैमाने पर प्रयोग मे लाकर देखा है। राजनैतिक उद्देश्यो की सिद्धि के लिए शारीरिक हिसा का सर्वथा परित्याग करके, राजनैतिक क्रान्ति के इतिहास मे उन्होने इस नई योजना का विकास करके दिखाया है। यह योजना या विधि भारत की आध्यात्मिक परम्परा को हानि नही पहुँचाती, बल्कि उसीमे से जन्मी है।

इसने निष्क्रिय प्रतिरोध, अहिसात्मक असहयोग और सविनय आज्ञा-भग के विविध रूप धारण किये है। इन सबका आधार बुराई से घृणा, परन्तु बुराई करनेवाले से प्रेम रहा है। सत्याग्रही अपने विरोधी से सदा वीरोचित वर्ताव करता है। कानून का भग सदा सविनय होता है, और "सविनय का अर्थ केवल उस अवसर पर ऊपर से मीठा बोलना नही, बल्कि आन्तरिक मृदुता और मधुरता और विरोधी का भी भला करने की इच्छा है।" अपने सब आन्दोलनो मे जब कभी गाधीजी ने शत्रु को कष्ट मे देखा, वह उसकी सहायता को दौडे गये। शत्रु की कठिनाई से फायदा उठाने के सब प्रयत्नो की वह निन्दा करते है। यूरोप मे ब्रिटेन को कठिनाई मे फँसा हुआ देखकर हमे उससे सौदा नही करना चाहिए। गत महायुद्ध के समय उन्होने भारत के वाइसराय को लिखा था—"यदि मै अपने देशवासियो से कदम वापस करा सकता तो उनसे काग्रेस के सब प्रस्ताव वापस करवा लेता और महायुद्ध जारी रहने तक किसीको 'होम रूल' या 'उत्तरदायी शासन' का नाम भी न लेने देता।" जनरल स्मट्स तक गाधीजी के उपायो की ओर आकृष्ट हुए थे और उनके एक सेक्रेटरी ने गाधीजी से कहा था—"मै आपके देशवासियो को नही चाहता और मै उन्हे मदद भी बिलकुल नही देना चाहता। परन्तु मै क्या करूँ? आप हमारी ज़रूरत मे हमारी मदद करते है। आप पर हम हाथ कैसे उठावे? मै बहुधा चाहता हूँ कि आपने भी अग्रेज हडतालियो की भाँति हिंसा का सहारा लिया होता और तब हम आपको देख लेते। परन्तु आप तो शत्रु की भी हानि नही पहुँचाते। आप तो स्वय कष्ट सहकर ही जीतना चाहते है और भद्रता तथा शौर्य की लगाई हुई पाबन्दियो से बाहर कभी नहीं जाते और इसीके कारण हम एकदम असहाय हो जाते है।"[१]

१ 'महात्मा गान्धी—हिज़ ओन स्टोरी', पृष्ठ २४०

युद्धो की समाप्ति के लिए लडे गये महायुद्ध के बीस वर्ष पश्चात् आज फिर करोडो आदमी हथियार बाँधे हुए है और शान्ति-काल[1] में भी सैन्य-सग्रह जारी है, जहाज़ी बेडे समुद्र को नाप रहे है और वायुयान आकाश मे एकत्र हो रहे है। हम जानते है कि युद्ध से समस्याओ का हल नही होता, बल्कि उनका हल कठिनतर हो जाता है। युद्ध के पक्ष-विपक्ष के युक्ति-जाल से अनेक ईसाई स्त्री-पुरुष असमजस मे पड रहे है। शान्तिवादी पुकार रहे है कि युद्ध एक ऐसा अपराध है जो मानवता को अपमानित करता है, और बर्बरता के हथियारो मे सभ्यता की रक्षा करने का न्यायत समर्थन नही किया जा सकता। जिन स्त्री-पुरुषो से हमारा कुछ झगडा नही उन्हे कष्ट में डालने का हमें कोई अधिकार नही। युद्ध में पडा हुआ राष्ट्र शत्रु का पराजय तथा विनाश करने के भयकर सकल्प से अनुप्राणित होता है। वह भय और घृणा के प्रवाह में बह जाता है। बसे हुए नगर पर मृत्यु या विनाश की वर्षा हम प्रेम और क्षमा से प्रेरित होकर नही कर सकते। युद्ध का सारा तरीका शैतान को शैतान से सजा दिलाने का है। यह ईसामसीह के हृदय, उसकी नैतिक शिक्षा और आदर्श के विरुद्ध है। हनन और ईसाइयत में हम मेल नही कर सकते।

युद्ध के हिमायती कहते है कि यद्यपि युद्ध एक भयानक बुराई है। परन्तु कभी-कभी यह दो बुराइयो में कम बुरी बुराई हो जाती है। सब वस्तुओ के तुलनात्मक मूल्य को ठीक-ठीक समझ लेना ही व्यवहार-बुद्धि कहलाती है। हमारी जिम्मेदारी समाज और उसके प्रतिनिधि-रूप राष्ट्र दोनो के प्रति है। और फिर राष्ट्र समाज का ही तो अग है। जान-माल की रक्षा, शिक्षा और अन्य लाभ हम समाज का सदस्य होने के नाते ही उठाते है, और इनसे हमारे जीवन का मूल्य तथा सुख बढता है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि जब राष्ट्र पर आक्रमण हो तब हम उसकी रक्षा करे, हमारी विरासत पर जोखिम आवे तो उसे कायम रक्खें।

जिन लोगो से हमारा कोई वैर नही उन्हे काटने, मारने, घायल और नष्ट करने को जब हमसे कहा जाता है तब हमारे सामने इसी प्रकार की दलीले पेश की जाती है। नाज़ी जर्मनी कहता है कि मनुष्य का प्रथम कर्तव्य अपने राष्ट्र की सदस्यता है और राष्ट्रीय लक्ष्यो की पूर्ति मे ही उसकी वास्तविकता, भलाई तथा सच्ची स्वतन्त्रता है। राष्ट्र को अधिकार है कि वह अपने बडप्पन के सामने व्यक्तियो के सुख को गौण समझ ले। युद्ध का गुण यह है कि मनुष्य अपनी निर्बलता के होते हुए वैयक्तिक स्वतन्त्रता की जो इच्छा करने लगता है, उसे वह नष्ट कर देता है। फासिस्ट पार्टी की स्थापना के बीसवे वार्षिकोत्सव पर अपने भाषण में मुसोलिनी ने कहा था—"आज की परम्परा तो यही है कि किसी भी खर्च पर किसी भी उपाय से, जिसे नागरिक जीवन कहा जाता है उसे बिलकुल मिटाकर भी, अधिकाधिक जहाज, अधिकाधिक बन्दूके, और

१. ये पक्तियाँ यूरोप में युद्ध छिडने से पहले लिखी गई थीं।—अनु०

अधिकाधिक वायुयान एकत्र किय जायँ।" "पूर्वेतिहासिक काल से सदियो आज तक यही पुकार चली आ रही है, 'वेहथियारो का वुरा हो'।"

"हम चाहते है कि आगे भाईचारे, वहनचारे, भतीजा-भानजाचारे और उनके नकली माँ-वापचारे की कोई वाते सुनाई न दे, क्योकि राष्ट्रो के आपसी सम्वन्ध वल तथा शक्ति के सम्वन्ध होते है, और वल तथा शक्ति के सम्वन्ध ही हमारी नीति के निर्धारक है।" मुसोलिनी ने और भी कहा था, "यदि समस्या का हल नैतिक दावे के आधार पर किया गया तो पहला वार करने का अधिकार किसी को भी नही रहेगा।" साम्राज्यो का निर्माण ताश के खेल-सा है। कुछ शक्तियो को अच्छे पत्ते मिल जाते है और वे ऐसे ढग से खेलती है कि दूसरो का कही ठिकाना तक नही रहता। सारा नफा अपनी जेव मे भर लेने के वाद वे मुँह फेर कर कहती है कि जुआ खेलना वुरा है और ताज्जुव ज़ाहिर करती है कि दूसरे लोग अव भी वही खेल खेलना चाहते है। ऊपर की पक्तियो से ऐसा नही समझना चाहिए कि जाति, शक्ति और सशस्त्र सेनाओ की पूजा केवल मध्य यूरोप मे ही होती है।

२० मार्च १९३९ को ब्रिटिश लार्ड-सभा मे भाषण करते हुए कैण्टरवरी के आर्च-विशप ने "न्याय की ओर शक्ति का सग्रह" करने की वकालत की। उनकी दलील थी कि "हमे यह इस कारण करना पड रहा है कि हमे निश्चय हो गया है कि कुछ वस्तुएँ शाति से भी अधिक पवित्र है और उनकी रक्षा होनी चाहिए। ."मै नही समझता कि जिन वस्तुओ का मूल्य मानव-सुख तथा सभ्यता के लिए इतना अधिक है उनकी यदि कुछ राष्ट्र रक्षा करेगे तो उनका यह काम ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध होगा।" गाधीजी ऐसे दुर्लभतम धार्मिक पुरुप ह जो जोशीले देशभक्तो की सभा मे खडे होकर भी कह सकते है कि, यदि आवश्यकता हुई तो, मै सत्य पर भारत को भी निछावर कर दूँगा। गाधीजी कहते है, "मै जितने धार्मिक पुरुपो से मिला हूँ, उनमे से अधिकतर को मैने छद्मवेश में राजनीतिज्ञ ही पाया। परन्तु मै राजनीतिज्ञ का वेश धारण करके भी हृदय से धार्मिक व्यक्ति हूँ।"

धार्मिक पुरुप का लक्ष्य अपने आदर्श को व्यावहारिक माँग तक उतार देना नही, वल्कि व्यवहार को आदर्श के नमूने तक चढा देना होता है। हमारी देशभक्ति ने मानव-परिवार की आध्यात्मिक एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया है। अपनी वृहत् मानव-समाज-भक्ति की रक्षा, हम युद्ध मे पडने से इन्कार करके, और अपनी राष्ट्र-भक्ति की रक्षा, हम धार्मिक तथा मानुपिक उपायो से करना चाहते है। कम-से-कम धार्मिक व्यक्तियो को, ईसाई 'अपोज़लो'[1] की भाति, "मनुष्यो के स्थान पर ईश्वर का आज्ञाकारी होना चाहिए।" हमारी दिक्कत यह है कि सव देशो मे समाज का नियत्रण ऐसे व्यक्तियो के हाथ में है जो युद्ध को अपनी नीति का सावन मानते है और उन्नति का

१. ईसाइयत के वारह खास धर्म-प्रचारक जो ईसामसीह के शिष्य थे।

विचार दिग्विजय के ही शब्दो मे करते है।

आदमी यदि मनहूस ही न हो तो वह नम्रता और दया दिखा करके प्रसन्न होता है। निर्माण मे सुख और विनाश में दुःख है। साधारण सिपाहियो को अपने शत्रुओ से घृणा नही होती, परन्तु शासक-वर्ग उनके भय, स्वार्थ और अभिमान के नाम पर अपीले कर-करके उन्हे मनुष्यता के मार्ग मे भ्रष्ट कर देता है। जिन मनुष्यो में वहकाकर घृणा और क्रोध के भाव उत्पन्न कर दिये जाते है, वे एक-दूसरे से लड पडते है, क्योकि वे आज्ञा-पालन करना सीखे हुए है। परन्तु तव भी वे अपने हनन-कार्य में घृणा और द्वेष को नही ला सकते। जिस काम से वे नफरत करते है, वह भी उन्हे अनुशासन के कारण करना पडता है। अन्तिम जिम्मेदारी तो सरकार पर रहती है, जिसमें दया, तरस और संतोष नही होता। वह सीधे-सादे आदमियो को कैद करती है, और उनकी मानवता को तिरस्कृत करती है। जो अन्यथा उत्पादन का कार्य करके प्रसन्न होते उन्ही को विनाशकारी जल, स्थल और वायु-सेनाओ मे संघटित किया जाता है। हम हत्याकाण्ड की प्रशंसा करते है और दया को लज्जा की वस्तु मानते है। हम सत्य की शिक्षा का निषेध करते है और असत्य के प्रसार की आज्ञा देते है। हम अपनो और परायो दोनो के सौंदर्य सुख-समृद्धि और प्राणो का अपहरण करते है और अपने-आपको सामूहिक कत्लो और आध्यात्मिक मृत्यु का जिम्मेदार बना लेते है।

जवतक सब राष्ट्र एक-दूसरे से स्वतन्त्रता और मित्रता का व्यवहार न करेंगे, और जवतक हम संगठित और समन्वित सामाजिक जीवन की नई धारणा को विकसित न करेंगे तवतक हमको शान्ति नही मिलेगी। इस लोक के मानव-समाज और सभ्यता का भविष्य आत्मा, स्वतन्त्रता, न्याय और मनुष्य-प्रेम की उन गहरी विश्व-भावनाओ के साथ बँधा हुआ है जो गाधीजी का जीवन-प्राण बन चुकी है। हिंसा और द्वेष से पूर्ण इस संसार में गाधीजी की अहिंसा इतने मनोहर स्वप्न-सी प्रतीत होती है कि जिसके कार्यान्वित होने का विश्वास नही होता। लेकिन उनके लिए तो ईश्वर सत्य और प्रेम ही है। और ईश्वर चाहता है कि हम नतीजे की परवा न करके सत्य और प्रेम के अनुयायी बने। सच्चा धार्मिक पुरुष सत्य की खोज ऐसी ही तत्परता से करता है जैसे कि चतुर व्यापारी अपने लाभ-हानि की। वह अपने प्यारे-से-प्यारे वैयक्तिक, जातीय और राष्ट्रीय हितो को निछावर करके भी यह खोज करता ही है। जो व्यक्ति अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वार्थो का सर्वथा परित्याग कर चुके है, उन्हींमें यह कहने का बल और साहस हो सकता है कि "मेरे स्वार्थो की हानि भले ही हो, परन्तु ईश्वर की इच्छा पूर्ण हो।" गाधीजी इस सम्भावना को भी स्वीकार नही करते कि ईश्वर, सत्य और न्याय के प्रेम मे कभी किसी की हानि हो सकती है। उनको निश्चय है कि संसार के विजेता और शोषणकर्त्ता अन्ततोगत्वा नैतिक नियमो की चट्टान से टकराकर स्वयं नष्ट हो जायँगे। नीति-हीन होने मे भी रक्षा नही, क्योकि बल की

इच्छा ही आत्म-पराजयकारिणी है। जब हम "राष्ट्रीय हित" की बात करते है तब हम यह कल्पना कर लेते है कि कुछ भू-भाग अपने कब्जे मे रखने का हमारा अखण्डनीय और स्थायी अधिकार है। और "सभ्यता"! ससार कई सभ्यताओ को युगो की धूल के नीचे दबती देख चुका है और उनके द्वारा निर्मित हुए नगरो की जगह जगल खडे हो चुके है और वहाँ चाँदनी रात मे सियार हूकते है।

धार्मिक पुरुष के लिए सभ्यता और राष्ट्र-हित के विचार अप्रासगिक है। प्रेम कोई नीति या हिसाब का विषय नही है। जो लोग निराश हो चुके है कि वर्तमान ससार की हिंसा को रोकने का बचकर भाग निकलने या नष्ट हो जाने के सिवाय कोई उपाय नही, उनसे गाधीजी कहते है कि एक उपाय है, और वह हम सबकी पहुँच मे है। वह है प्रेम का सिद्धान्त, जो कि अनेक अत्याचारो मे भी मनुष्य की आत्मा की रक्षा करता आया है, और अब भी कर रहा है। उनका सत्याग्रह चाहे पशु-शक्ति के विशाल प्रदर्शनो की तुलना मे प्रभावहीन जँचे, परन्तु शक्ति से भी अधिक विशाल एक वस्तु है, वह है मनुष्य की अमर आत्मा, जो कि विशाल सख्याओ या ऊँची आवाजो से नही दबती। यह उन सब बेडियो को टूक टूक कर देगी जिनमे अत्याचारी इसे जकडना चाहेगे। गत मार्च के सकट-काल मे 'न्यूयार्क टाइम्स' के एक सवाददाता ने जब गाधीजी से ससार के लिए सन्देश मागा, तब उन्होने सब प्रजातन्त्र शक्तियो को एकदम नि शस्त्र हो जाने की सलाह दी थी और उसे ही एकमात्र हल बतलाया था। उन्होने कहा था, "मुझे यहाँ बैठे-बैठे ही निश्चय है कि इससे हिटलर की आखे खुल जायँगी और वह आप नि शस्त्र हो जायगा।" सवाददाता ने पूछा, "क्या यह चमत्कार नही होगा ?" गाधीजी ने जवाब दिया, "शायद! परन्तु इससे ससार की उस कत्लेआम से रक्षा हो जायगी जो अब सामने दीख रहा है। कठोरतम धातु काफी आँच से नरम हो जाती है, इसी प्रकार कठोरतम हृदय भी अहिंसा की पर्याप्त आँच लगने से पिघल जाना चाहिए। और अहिंसा कितनी आँच पैदा कर सकती है इसकी कोई सीमा नही अपने आधी शताब्दी के अनुभव मे मेरे सामने एक भी परिस्थिति ऐसी नही आई जब मुझे यह कहना पडा हो कि मै असहाय हूँ और मेरी अहिसा निरुपाय हो गई।" प्रेम मनुष्य-जीवन का नियम है, उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है। हम ऐसी अवस्था के नजदीक पहुँच रहे है जब यह आवश्यकता और भी स्पष्ट हो जायगी, क्योकि यदि मनुष्य इस नियम से बचेगे और इसकी अवहेलना और उल्लघन करेगे तो मनुष्य-जीवन ही असम्भव हो जायगा। हमे लडाइयो का सामना इसलिए करना पडता है कि हमारा जीवन इतना निस्वार्थ नही हुआ कि जिसे युद्धो की आवश्यकता ही न हो। शान्ति का युद्ध तो मनुष्य के हृदय मे ही लडा जाना चाहिए। उसकी आत्मा अहकार-बल, स्वार्थ, लालसा और भय को पराजित करने मे समर्थ होनी चाहिए। एक नई प्रकार की जीवन-प्रणाली पर राष्ट्रीय जीवन तथा विश्व-व्यवस्था की नीव पडनी चाहिए। यह जीवन

प्रणाली ऐसी हो जो सब वर्गो, जातियो और राष्ट्रो के सच्चे हितो की वृद्धि, उन्नति और रक्षा करे। जिन मनुष्यो ने अपने-आपको अविद्या की अन्धकारपूर्ण और स्वार्थमयी भावना की पराधीनता से स्वतन्त्र कर लिया है, वे ही शान्ति की स्थापना और रक्षा में समर्थ हो सकते है। शान्ति है जीवन में एक सक्रिय प्रदर्शन और कुछ विश्व-व्यापी सिद्धान्तो और आदर्शो का आचरण। हमें इनकी रक्षा के लिए ऐसे हथियारो से लडना चाहिए जिनसे नैतिक गुणो का पतन और मानव-प्राणो का विनाश न हो। इस प्रयत्न मे हमे जो भी कष्ट हमारे मार्ग मे आयें उन सबको सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

मैने ससार के विभिन्न भागो की अपनी यात्राओ में देखा है कि गाधीजी की ख्याति, बडे-से-बडे राजनीतिज्ञो और राष्ट्रो के नेताओ से भी अधिक विश्वव्यापी है और उनके व्यक्तित्व को किसी भी एक अथवा अन्य सबकी अपेक्षा, अधिक प्रेम और आदर की दृष्टि से देखा जाता है। उनका नाम इतना सर्व-परिचित है कि शायद ही कोई किसान या मजदूर ऐसा होगा, जो उनको मनुष्यमात्र का मित्र न समझता हो। लोग ऐसा समझते प्रतीत होते है कि गाधीजी सुवर्ण युग का पुनरुद्धार करेगे, परन्तु हम उसको (युग को) इस प्रकार बुला नही सकते, जिस प्रकार रास्ते चलती किराये गाडी को बुला लेते है, क्योकि हम किसी राष्ट्र की अपेक्षा भी अधिक बलवान और किसी पराजय की अपेक्षा भी अधिक अपमानकारक एक वस्तु के अधीन है,—और वह है अज्ञान। यद्यपि हमको सब शक्तियाँ जीवन के लिए दी गई है, परन्तु हमने भ्रष्ट बनकर उनको मृत्यु के लिए प्रयुक्त हो जाने दिया है। यद्यपि मनुष्य-जाति की उत्पत्ति से ही यह स्पष्ट है कि वह सुख की अधिकारिणी है, परन्तु हमने उस अधिकार की उपेक्षा की है, और अपनी शक्ति का प्रयोग ऐसे धन और बल के सग्रह के लिए होने दिया है, जिसके द्वारा बहुतो का सुख कुछेक के सशयात्मक सन्तोष पर निछावर कर दिया जाता है। जिस भूल के आप और मै शिकार है, सारा ससार भी उसीका गुलाम है। हमें धन और बल की प्राप्ति के लिए नही, प्रत्युत प्रेम और मानवता की स्थापना के लिए प्रयत्न करना चाहिए। भूल से मुक्त होना ही एकमात्र सच्ची स्वतन्त्रता है।

गाधीजी बधन-मुक्त जीवन के मन्त्र-दाता है। उनके असाधारण धार्मिक पवित्रता और वीरोचित तेज का कोटि-कोटि मनुष्यो पर गहरा प्रभाव है। ऐसे कुछ लोग सदा मिलेगे जो ऐसे पावन-जीवन के दुर्लभ उदाहरणो मे वह शक्ति पावेगे और उनमें सत्य की वह झाकी देखेंगे जो उन साधारण साधुतामय जीवन, रूढ नैतिकता या अस्पष्ट कला-विचारो और भावो में नही मिलती, जिनको आधुनिक काल के बहुत से उपदेष्टा प्रस्तुत किया करते है। सच्चे रहो और सरल, हृदय में निर्मल और आर्द्र, दुःख मे प्रसन्न और आतक के आगे स्थिर-बुद्धि और चिरतुष्ट, जीवन में प्रीति रक्खो और मृत्यु के प्रति अभय, सनातन आत्मा की सेवा में समर्पित होओ और गतात्माओ के

भार से निरातक रहो—सृष्टि के आदि से दी गई और कौन शिक्षा है जो इस शिक्षा से वढकर है ? अथवा कहाँ दूसरा उदाहरण है जव उस शिक्षा का अधिक तत्परता से पालन हुआ है ?

: २ :

महात्मा गांधी : उनका मूल्य

होरस जी. एलेक्ज़ैण्डर, एम. ए.

[सैली ओक, बर्मिघम]

किसी बडे आदमी के जीवन-काल मे उसका ठीक मूल्याकन करना सुगम नही है। और अगर आपका उससे व्यक्तिगत परिचय है, तव तो वह और भी कठिन है, क्योकि सही-सही दृष्टिकोण से एक आदमी को देखने के लिए आपको उससे थोडा तटस्थ होना चाहिए। गाधीजी से थोडा भी तटस्थ मै नही होना चाहता। जवतक वह जीवित है तवतक मेरे लिए तो यही प्रयत्न करना सर्वोत्तम है कि प्रत्येक सप्ताह उनके पत्र 'हरिजन' से उनके विचार को समझकर उनके इतना समीप रहूँ जितना रह सकता हूँ।

फिर भी समय-समय पर उन प्रश्नो का सामना करने के लिए आवश्यक रूप से तैयार होना चाहिए जिन्हे उनके वारे मे ससार पूछता है और उनके उत्तर देने का प्रयत्न करना चाहिए। मेरा अनुमान है कि इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यही दिखाना है कि अपने समकालीनो मे से कुछ पर गाधीजी का क्या प्रभाव पडा है।

इसलिए थोडे मे अभी यह कठिनाई प्रकट करके मै यह वताने का प्रयत्न करूँगा कि वर्तमान ससार-व्यवस्था मे उन्हे किस प्रकार देखता हूँ।

हमारे युग मे वहुत-से देशो मे और विभिन्न रूपो मे अपने अधिकारो से वचित लोगो के विद्रोह हुए हैं। ट्रेड-यूनियन-आन्दोलन और समाजवाद के विभिन्न तरीको ने समस्त पश्चिम मे औद्योगिक मजदूरो के अधिकारो की घोषणा की है। सम्भवत अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-सगठन इस हलचल की पहली पराकाष्ठा है, लेकिन रूस मे उसने और भी लम्वा कदम रक्खा है। वहाँ औद्योगिक मज़दूर अव मामूली आदमी नही है। आपने यदि उसके साथ कठोर व्यवहार किया तो वह आपको काटने नही दौडेगा। उसे विशेष अधिकार का स्थान दिया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-सगठन या सोवियट, मज़दूरो को, कार्य-भार से लदे दुकानदारो को, दीन किसानो, मछुओ और दूसरो को विलकुल भूलते हो सो नही, लेकिन जो कुछ इनके लिए किया गया है, वह किसी कदर वाद के विचार का परिणाम है।

जर्मनी में कट्टर समाजवादी या औद्योगिक मज़दूर ही नही है जिन्होने वड़ी क्रांति मे

सफलता पाई हो। दूसरे चालाक या शायद नीति-सिद्धान्तो का विचार न करनेवाले दल ने तरकीव निकाली कि हमारे समाज के दूसरे वडे अग मध्यम वर्ग (Petit bourgeoisie) की सहायता कैसे प्राप्त की जा सकती है। वे भी निराश हो चुके थे। वस एक वार सिक्के का पूर आया और वाजार एकदम चढ जाने के सवव उसमे उनकी आय मँहगाई मे उड गई थी और नीचे-ऊपर दोनो तरफ से वडी शक्तियो—आस्मानी और सुल्तानी—के वीच वे पिस गये थे। अगर कोई ऐसा वर्ग था जिसने दूसरो की अपेक्षा अधिक हिटलर की जीत कराई तो वह यही मध्यम वर्ग था जिसे कार्ल मार्क्स के अनुयायी वहुधा भूल जाते है और घृणा करते है।

लेकिन भारत से गाधीजी इन पश्चिमी क्रान्तियो को चुनौती देते है। औद्योगिक मजदूर, मध्यम वर्ग, वुद्धिवादी, सम्पत्तिवान्, ये सव दल जो शक्ति के लिए पश्चिम मे होड लगा रहे है, इस वुनियादी वात को भूल जाते है कि आदमी का पेट तो भरना ही चाहिए। मशीनो को वह नही खा सकता, व्यापार को वह नही खा सकता। स्कूल की कितावो को भी वह नही खा सकता, न डिवीडेडो (मुनाफो) को ही खा सकता है। इन सव चीजो के विना भी आदमी जीवित रह सकता है। लेकिन वह रोजाना रोटी या चावल पाये विना जीवित नही रह सकता। और अपने दैनिक भोजन के लिए जिसे सभ्य और शहरी आदमी साधारण वात समझते है, उसे अन्तिम रूप से हिन्दुस्तान, चीन, पूर्वी यूरोप, कनाडा, अर्जेण्टाइन, ट्रोपीकल अफ्रीका के लाखो मूक और वहुधा अधभूखे किसानो पर निर्भर रहना पडता है। किसान इन तमाम देशो में प्रत्येक वर्ष उस अन्न को पैदा करने के अर्थ, कि जिससे लोग जीवित रहते है, धूप, हवा और मेह का उपयोग करने के लिए (जो कितनी वार वहुधा उमे धोखा देते है) कितना हाथ-पैर पीटता है। हजारो वर्षो से, पुश्त-दर-पुश्त वे इसी तरह रहते आ रहे है। युद्ध और क्रान्तियाँ उनके परिश्रम के फल को थोडे समय के लिए नष्ट करती हुई गुजर गई है, सूखा और वाढ उन्हे नष्ट करते रहे है। अन्त मे अव उन्हे एक सहारा मिला है महात्मा गाधी।

भारतवर्ष के करोडो आदमियो मे ऐसा शायद ही कोई आदमी मिलेगा जो गाधीजी का नाम न जाने। पहाडी जातियाँ और मूल-निवासी तक गरीवो के इस मित्र और रक्षक को जानते है और उससे प्रेम करते है।

यद्यपि उन्होने वकील का शिक्षण प्राप्त किया था, फिर भी वह पुन किसान वन गये है, किसान के मामूली कपडे पहनकर, और एक कोने मे पडे और पिछडे हुए, ऐसे गँवार और रूढि-पसन्द गाँव मे रहकर कि जिसे खुद महात्मा के प्रयत्न करने पर भी स्वय साफ-सुथरा और आधुनिक ढग का वनना पसन्द नही है, अपने वाहरी जीवन में ही नही, वल्कि इसमे भी वढकर अपने हृदय और मस्तिष्क से भी वह किसान वन गये है। वह ससार को एक किसान, चतुर, वेलिहाज, साफ, सरल, कभी-कभी कुछ रूखे, विनोद-प्रिय, दयावान और सतोषी की दृष्टि से देखते है। वह अगाध

धार्मिक है, जीवन को समष्टि रूप से देखते है और जानते है कि अदृश्य शक्तियाँ अगम्य रीति से काम कर रही है, हालाँकि वहुधा हमे उनकी झलक दिखाई पड सकती है, अगर हम मौन रहकर उसे देखना और ग्रहण करना चाहे।

जव भारत मे छ महीने घूमने के वाद पहली वार १९२८ के वसत मे सावरमती मे मै गाधीजी से मिला था तव उन्होने जो शव्द मुझसे कहे थे उन्हे मै कभी नही भूल सकता। मैने उनमे पूछा, "अपने घर इग्लैण्ड पहुँच कर मै क्या कहूँ?" उन्होने उत्तर दिया, "अँग्रेजो से कहिए कि वे हमारी पीठ पर से उतर जायँ।" सोचिए, इसमे कितना गहरा अर्थ है, ध्येय के वारे मे ही नही, वल्कि उन साधनो के वारे मे भी, जिनसे ध्येय सिद्ध किया जा सकता है।

क्योकि एक ध्येय-मात्र मे ही, जोकि उनके सामने है, गाधीजी हमारे युग के दूसरे क्रान्तिकारी नेताओ से भिन्न नही है, शायद उससे भी अधिक महत्वपूर्ण वे साधन है जिन्हे वह उस ध्येय की पूर्ति के लिए काम मे लाते है। भारतीय मामलो मे सक्रिय भाग लेने से पहले १९०८ मे लिखी गई उनकी पुस्तक 'हिन्द-स्वराज'[१] मे उन्होने लिखा है—"वादशाह अपने शाही शस्त्रो को सर्वदा प्रयोग मे लायँगे। वल्कि वल-प्रयोग तो उनके रगरग मे रमा हुआ है। किसान तलवार से वश मे नही हुए है। कभी होगे भी नही। तलवार चलाना वे नही जानते और न दूसरो द्वारा चलाई गई तलवार से ही वे भयभीत होते है।" इसलिए किसान-स्वराज्य, किसान राज्य या किसान-स्वतत्रता जोकि गाधीजी का उद्देश्य है, उन्ही तरीको से मिलनी चाहिए जो उनके सामने के ध्येय के अनुकूल है। वे लोग, जिनका ध्येय मनुष्यो का शासक वनना है, तलवार से काम लेते है। हरेक शासक वर्ग का यह शस्त्र है। और जव समाजवादी या साम्यवादी, या नाजी या फासिस्ट, 'शासक वर्ग' को उसीके शस्त्रो से नष्ट करने को उद्यत होते है तो उनकी सफलता केवल एक शासक वर्ग को हटाकर दूसरा शासक वर्ग ला रखती है। धरती के मालिक, वैको के मालिक या कारखानो के मालिक-वर्ग के हाथो मे रहने की अपेक्षा वह तलवार कम्यूनिस्ट, फासिस्ट या नाजी दल के हाथ मे चली जाती है। मामूली नागरिक तव भी पद-दलित ही किये जाते है और एक नई शासक व्यवस्था लोगो की पीठ पर चढ जाती है सो अलग।

लेकिन गाधीजी शासक-जाति या जमात के वोझ को सर्वदा के लिए किसानो की पीठ से हटा देना चाहते है। वर्तमान शासको को इसलिए नही हटाना चाहते कि उनके वाद उनके भाई सवार हो जायँ। इसलिए उन्होने एक ऐसे शस्त्र के निर्माण मे अपना जीवन लगाया है, जिसको, क्या शरीर से दुर्वल और क्या मज़वूत, सभी चला सकते है। उनसे शिक्षा पाकर वे अपने पैरो पर सीधे खडा होना सीखते है और भारी वोझो के नीचे अव झुके नही रहते।

१ 'सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित। दाम ≡)

गाधीजी कहते है कि किसी को अपनी पीठ से उतारने के लिए उसकी पीठ पर सवार होने की अपेक्षा उसे तबतक सहयोग देने से इन्कार कर देना उचित है जबतक वह वहाँ रहे। अन्त मे उसे नीचे उतरना पडेगा और उसे टेकन या सहारे को कुछ भी नही मिलेगा। मगर आप उसकी बराबर सहायता न करेगे तो वह आपको हर प्रकार के दण्ड की धमकी दे सकता है। अपनी धमकियो को वह कार्य मे भी परिणत कर सकता है, लेकिन अगर दण्ड और मृत्यु पर आपने हँसना सीख लिया है तो उसकी धमकियाँ और तलवार तक भी आपको विचलित नही कर सकेगी। दबाव से वह ऐसा काम आपसे नही करा सकता है जिसे आपकी आत्मा कहती है कि गलत है।

कार्य के इस अहिंसात्मक तरीके को सक्रिय रूप से काम मे लाने के पहले बहुत भारी कठिनाइयो पर विजय पानी होगी। तोप के गोलो के सामने डटे रहने के लिए तो उस दशा मे भी सिपाहियो को तैयार करना कठिन है, जबकि उन्हे जवाब मे गोली चलाने का अधिकार है। निश्चय ही उससे कठिन लोगो को यह सिखाना है कि वे बिना अपनी रक्षा किये हर प्रकार का बलात्कार और ज्यादती अपने पर स्वीकार करले। तीस बरस पहले गाधीजी ने घोषणा की थी कि निष्क्रिय प्रतिरोधक (या जिन्हे अब वह 'सत्याग्रही' कह कर पुकारते है, अर्थात् वे जोकि पशु-बल के प्रयोग की अपेक्षा आत्मिक-बल का प्रयोग करते है) "ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सत्य और अभय का पालन करे।" हर युग मे ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ हुए है जिन्होने इस अजेय अहिंसात्मक जीवन के रहस्य को जान लिया है। जर्मनी के ईवनजैलीकल पादरियो के जेल से हाल ही में आये पत्रो के पढने से प्रमाणित होता है कि पूर्व की भाति पश्चिम में अब भी ऐसे चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। और यदि, या जब, बहुसख्यक लोग ऐसे दृढ-चरित्र हो जायँगे तो मानव की स्वतत्रता, और मानव का आदर्श समाज सामने दिखाई देगे।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि गाधीजी जो अपने शान्ति और स्वतत्रता के सिपाहियो से पूर्ण आत्मानुशासन की आशा करते है, 'जनता' की बात नही करते। जब आप तोप के गोलो की परिभाषा मे सोचते है, चाहे साम्राज्य स्थापित करने के लिए या क्रान्ति के लिए, तब स्वभावत आप मानव-प्राणियो की पशु-समाज मे गणना करते है। लेकिन गाधीजी के लिए 'लाखो करोडो' में से प्रत्येक स्त्री-पुरुष एक-एक व्यक्ति है, जिसका व्यक्तित्व उतना ही पवित्र है, जितना उनका (गाधीजी का) अपना। वह एक बिल्कुल अनजान किसान तक से उतनी ही हार्दिकता के साथ मित्रता करना जानते है जितनी कि वह अपनी-जैसी शिक्षा के सतह के व्यक्ति के साथ करते है। उनके लिए कोई भी पुरुष या स्त्री साधारण या अस्वच्छ नही है। यह केवल एक सुन्दर सिद्धान्त ही नही है कि जिसका वह केवल उपदेश ही देते है, बल्कि वह तो उनकी दैनिक क्रिया है।

ऐसे युग मे जब कि हिंसा को नित्य नया प्रोत्साहन दिया जा रहा है, जबकि पश्चिम की एकमात्र आशा ऐसे वृहत् शस्त्रीकरण की 'सामूहिक सुरक्षितता' है जिसे कि दृढ-से-दृढ आक्रमणकारी भी पैदा नही कर सकता, जबकि एक लाट पादरी (आर्चबिशप) भी यही सलाह देते है कि ध्येयगत शान्ति के लिए प्रथम कार्य यह हो कि "शक्ति का सग्रह न्याय के पक्ष मे किया जाय", तब हमारी आँखो के सामने—अगर हम उन्हे खोले और देखे—एक आदमी है, जिसका शरीर दुबला-पतला है, स्वास्थ्य जिसका आशाप्रद नही है, बडी भारी योग्यताये भी जिसमे नही है, जो अपने ही जीवन मे अपने भारतीय साथियो पर प्रभाव डालनेवाली अपनी जादू की-सी शाति से दिखा रहा है कि आदमी की आत्मा जब स्वर्गीय तेज से प्रज्ज्वलित हो उठती है तो वह अत्यन्त शक्तिशाली शस्त्रीकरण से भी अधिक मजबूत होती है।

विनम्र व्यक्ति अब भी ससार मे अपने अधिकार प्राप्त कर सकते है, यदि वे केवल अपनी विनम्रता मे श्रद्धा रक्खे, यदि वे हिटलर या स्टेलिन के भय को छोड दे, यदि वे हमारे युग के इस सबसे महान् शिक्षक की ओर आशा से देखे।

: ३ :

एक मित्र की श्रद्धाञ्जलि

सी० एफ एण्डरूज़

[शातिनिकेतन बोलपुर, बगाल]

इस लेख मे मेरा उद्देश्य तीन प्रकार का है। पहिले, मै अपने पाठको के सामने महात्माजी के चरित्र के गूढतर धार्मिक पहलू की रूपरेखा खीचने का प्रयत्न करूँगा। दूसरे, उनके व्यक्तित्व के मानव-समाज से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले पहलू पर प्रकाश डालूँगा। और तीसरे, मै सक्षेप मे उन बातो का जिक्र करूँगा जिन्हे मै वर्तमान युग मे मनुष्य-जाति के उत्थान के प्रति महात्माजी की दो मूलभूत देन मानता हूँ।

१

कुछ ऐसे मूल धार्मिक तत्त्व है जिनपर महात्माजी सबसे अधिक जोर देते है। उनकी मान्यता है कि उनके ज़रिये मरणधर्मा मनुष्य भी परमात्मा के भय से ससार मे चिरस्थायी काम कर जा सकता है।

इनमे पहला गुण है, सत्य। वह इसे एक दैवी गुण मानते है। वह न सिर्फ मनुष्यो के शब्दो और कार्यो मे प्रकट होना चाहिए, प्रत्युत अन्तरात्मा मे भी उसका प्रकाश चाहिए। झूठ न बोलना ही सत्यपालन के लिए पर्याप्त नही यद्यपि यह इसका एक आवश्यक अग है। उनके विचार के अनुसार सब सत्यो का आदिस्रोत हृदय है।

सत्य कितना महान् है, यह इसी वात से मालूम पड सकता है कि वह इसे परमात्मा से नाम के लिए प्रयुक्त करते हैं। अहर्निश उनकी जवान पर एक ही सूत्र रहता है—"सत्य परमात्मा है और परमात्मा सत्य है।" उनका दैनिक जीवन इस बात का प्रमाण है कि वह सत्य की कितने उत्साह से आरावना करते हैं। इसलिए किसी भी अश मे सत्य से परे होने का अर्थ है दिव्य स्रोत से दूर जा पडना और परिणाम-स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से हमेशा के लिए मर जाना। यह प्रकाश की जगह अन्धकार मे चलने के समान है। महात्माजी की यह दैनिक प्रार्थना—

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृत गमय ।

इसे तीन रूप मे व्यक्त करती है। प्रकाश और अन्धकार तथा अमरत्व और आध्यात्मिक मृत्यु, ये सत्य और असत्य के इसी मूल भेद के दूसरे पहलू है।

दूसरा तत्त्व जिसका आदिस्रोत परमात्मा है, अहिंसा है। अगर इसका हम अक्षरश अनुवाद करना चाहे तो इसे न-सताना कह सकते है। मगर महात्मा गाधी के लिये इसका उससे कही अधिक अर्थ है। उसमे दूसरो का स्वय हित करना भी आता है। जहाँतक युद्ध और रक्तपात का प्रश्न है, अहिंसा का अर्थ है इनमें भाग लेने से एकदम इन्कार कर देना। लेकिन वह अर्थ यही समाप्त नही हो जाता, वह पूरा तव होता है जब हम अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर उनका हृदय जीतने को तत्पर हो जाते हैं जो हमारे साथ बुराई करते है। सार रूप मे—यह भी सत्य की तरह ही परमात्मा का अपना स्वरूप है। **'अहिंसा परमो धर्म'** एक पुरातन और पवित्र मन्त्र है जिसका अर्थ है 'अहिंसा सबमे वडा धार्मिक कर्तव्य है।' इसीलिए महात्मा गाधी अपना सारा जीवन इस 'परमधर्म' की सम्भावनाओ का पता लगाने और उनका सत्य के साथ समन्वय करने मे विता रहे हैं। अहिंसा का सिर्फ यह अर्थ नही कि असत्य के मुकाविले मे निष्क्रिय प्रतिरोध किया जाय। इसमे उसका सक्रिय प्रतिरोध भी शामिल है। मगर यह क्रोध, ईर्ष्या और हिंसा के वगैर होना चाहिए।

तीसरा महत्वपूर्ण तत्त्व, जिसपर महात्माजी सर्वाधिक ज़ोर देते है, ब्रह्मचर्य है। वह वताते है कि यह सज्ञा ही सस्कृत के 'ब्रह्म' शब्द से बनी है, जिसका अर्थ है परमात्मा। पुरातन काल से चली आती हुई अन्य मान्यताओ के समान वह मानते हैं कि इन्द्रिय अर्थात् भोगक्रिया के दमन और फिर उस शक्ति के ऊर्जसन (Sublimation) से मनुष्य मे एक अद्भुत आत्मशक्ति और दैवी तेज प्रकट होता है। सत्य और अहिंसा के सच्चे अनुयायी को ब्रह्मचर्य का भी सच्चा पालक होना चाहिए और उसे सयम के साथ जीवन विताकर ससार के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। महात्माजी विवाह को भी मानव कमज़ोरी के लिए एक रियायत मानते है। दूसरे शब्दो

मे यह कहा जा सकता है कि सभोग-कर्म से एकदम दूर रहकर इस विषय मे विचार तक भी न करने को महात्माजी आत्मिक जीवन का, जिसे पुरुष और स्त्री दोनो प्राप्त कर सकते है, सबसे ऊँचा स्वरूप मानते हैं। यहाँ मैं यह जिक्र किए बगैर नही रह सकता कि वह ब्रह्मचर्य और तपस्या के सिद्धान्त मे इतनी दृढता से विश्वास करते है कि वह उन्हे अति तक लेगया है। इसी तरह उनका आमरण अनशन, जो तबतक जारी रहता है जबतक कि उन्हे उस अनशन के उद्देश्य मे सफलता नही मिलती, मेरी समझ से बाहर की चीज़ है। यह मेरी रुचि के विरुद्ध पडता है और इस बारे मे उनसे कई मर्तबा मैं अपने विचार प्रकट भी कर चुका हूँ।

महात्माजी मुख्यतया एक धार्मिक मनुष्य है। वह परमात्मा की कृपा के अतिरिक्त और किसी भाँति बुराई से पूर्ण छुटकारा पाने की कल्पना का विचार तक भी अपने हृदय मे नही ला सकते। इसलिए प्रार्थना उनके सब कार्यों का सार है। सत्याग्रही के लिए, जो सत्य के लिए मरना अपना धर्म समझता है, सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि वह परमात्मा मे श्रद्धा रक्खे, जिसका गुण (प्रकृति) है **सत्य और प्रेम**। मैने उनके सारे जीवन को अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार, जो उन्हे मूक प्रार्थना मे सुनाई देती है, क्षणभर मे बदलते पाया है। महान् क्षणो मे वह एक विशेष वाणी सुनते है जो उनसे बात करती है, और दुर्धर्ष आश्वासन के साथ बात करती है, और जब वह इसे सुन लेते है तो कोई भी पार्थिव शक्ति उन्हे इस आवाज़ के, जिसे वह परमात्मा की वाणी समझते है, अनुसार कार्य करने से नही रोक सकती।

गीता उनकी सार्वजनिक प्रार्थना का एक अग है। इसका वह हमेशा पाठ करते है। और जितना ही वह गीता का पाठ करते है उतना ही उसमे आत्मिक जीवन का जो मार्ग कहा गया है, उसपर उन्हे अधिकाधिक विश्वास होता जाता है।

अगर मैं उनके लम्बे और घनिष्ट अनुभव से उनको ठीक तरह समझ सका हूँ तो उनके परमात्मा-सम्बन्धी विचारो मे हमेशा एक सहज श्रद्धालुता रहती है, जैसे सदा किसी मालिक की आख उनपर हो।

२

अब हम उनके मानवीय रूप पर विचार करे। इसमे कुछ ऐसी मृदुल-मधुर बाते मिलती है जो चित्त को प्रेम-मग्न कर देती है। इन्हे सदैव उस कठोर तपस्या के साथ रखकर देखना चाहिए जिसका मैने ऊपर अभी चित्र खीचा है।

कई साल पहले मैं महान् फ्रासीसी लेखक रोमा रोला द्वारा महात्माजी के बारे मे लिखे गये उस लेख से बहुत प्रभावित हुआ जिसमे उन्होने गाधीजी को 'वर्तमान युग का **'सन्त पाल'** बताया था। इसमें मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वास्तव मे ही एक बहुत बडा सत्य निहित हो। क्योकि गाधीजी सत पाल की भाति धार्मिक पुरुषो की उस श्रेणी के है जो द्विजन्मा होते है। उन्होने अपने जीवन मे एक विशेष क्षण मे

मानव आत्मा के उस भयकर कम्पन को अनुभव किया जो मानो कायाकल्प कर देता है। अपने प्रारम्भ के दिनो मे महात्माजी ने लगन के साथ बैरिस्टरी का जीवन विताया था, उनकी मुख्य महत्वाकाक्षा थी सफलता। अपने पेशे की सफलता, लौकिक और सामाजिक सफलता, और गहरे जावे तो, राष्ट्र का नेता बनने की सफलता।

वह दक्षिण अफ्रीका अपने काम पर वकील के रूप मे, एक महत्वपूर्ण मुकदमे मे जिसमें दो वडे भारतीय व्यापारी फँसे हुए थे, पैरवी करने के लिए गये थे। इस समय तक उन्हे काले और गोरे रग के भेद का बहुत दूर से ही ज्ञान था, लेकिन उन्होने इस पर यह कभी नही सोचा था कि अगर काले भारतीय होने के कारण किसीने उनके जिस्म पर हमला किया तो उसका क्या अर्थ होगा ? मगर जब यह पहली दफा डरबन से मैरित्सवर्ग गये तो उन्हे रास्ते मे यह दुखद अनुभव अपने पूरे नग्न-रूप मे हुआ। एक रेलवे के अधिकारी ने उन्हे रेल के डिब्बे में से उठाकर बाहर पटक दिया, और यह सब तब हुआ जबकि उनके पास फर्स्टक्लास का टिकिट था। डाकगाडी उनको विठलाये विना ही आगे चली गई। रात बहुत चली गई थी और महात्माजी ने देखा कि वह एकदम अजनबी स्टेशन पर थे जहाँ कोई भी व्यक्ति उनको नही जानता था। इस अपमान को सहन करने और रातभर ठड मे सिकुडने के पश्चात् उनके हृदय मे दो भावो में जबर्दस्त सघर्ष शुरू हो गया। एक भाव कहता था कि उन्हे इसी समय टिकिट लेकर जहाज से भारत वापस चले जाना चाहिए तथा दूसरा भाव कहता था कि नही, उन्हे भी उन कष्टो और मुसीबतो को अखीर तक सहना चाहिए जिन्हे उनके देशवासी रोज़ाना सहते है। सुबह होने से पूर्व ही उनकी आत्मा मे एक प्रकाश उदित हुआ। उन्होने परमात्मा की दया से मर्द की भाँति बढ चलने की ठानी। अभी तो ऐसे अपमान जाने कितने उन्हे सहने थे। और दक्षिण अफ्रीका में उनके मौको की कमी न थी। पर जब चले तो चल ही पडे, लौटने की बात कैसी ?

मैंने गत नवम्बर मास मे महात्माजी के मुख से स्वय इस रात की कहानी सुनी। वह डाक्टर मॉट को सुना रहे थे। उन्होने साफ कहा कि उनके जीवन मे यह एक परिवर्तनकारी घटना थी जिसके बाद मे उनका एकदम नया ही जीवन प्रारम्भ हुआ।

महात्माजी मे और भी कई ऐसे गुण है जिनकी तुलना तापसी सतपाल के चरित्र मे मिलती है। वे है—परमात्मा मे अगाध निष्ठा, जो उन्हे मनुष्य के सामने झुकने की कभी इजाज़त न देगी, पाप और विशेषकर शारीरिक पापो के विषय में भीषण आतक की भावना, सबसे अधिक प्रिय जनो के साथ सख्ती ताकि वह उनसे की गई आशा से कम न उतरे और इसके साथ ही उनमें मन की एक ऐसी सकरुण कातरता है, जो उन्हे गलत समझे जाने पर, मानो सहानुभूति की याचना कर उठती है।

उनमें इससे भी अधिक कई गुण है, जो उन्हे असीसी के सत फ्रासिस के समीप

ले आते है। दरिद्रता और गरीबी को उन्होने वरण ही कर लिया है। आज हम उन्हे सचमुच "सेगाँव का एक मामूली दीन" कह सकते है, क्योकि वह वहाँ पददलितो और गरीव ग्रामीणो मे उनके भार मे हिस्सा वँटाते हुए रह रहे है। दो अवसरो पर मुझे उनकी सत फ्रासिस के साथ की यह समानता प्रकाश की भाँति स्पष्ट हो गई है।

पहिला अवसर तो डरवन के पास फिनिक्स मे मिला। दिन और रात के मिलने का समय था। अँधेरी सध्या का सर्वत्र राज्य था। हम आश्रम मे थे। महात्माजी तमाम दिन गरीबो मे अथक काम करते रहने के वाद विस्तृत आकाश मे, एक वृक्ष के नीचे थके-माँदे, इतने थके हुए कि आदमी इसकी कल्पना भी मुश्किल से कर सकता है, वैठे हुए थे। इतनी थकान मे भी उनकी गोद मे एक वीमार वच्चा था, जिसकी वह सेवा-परिचर्या कर रहे थे और जो कातर होकर प्यार के मारे उनसे चिपटा जा रहा था। वही पर एक जुलू लडकी भी, जो आश्रम के परे की पहाडी पर एक स्कूल मे पढती थी, वैठी हुई थी। अँधेरा वढता जा रहा था, इसलिए महात्माजी ने इस अवसर पर मुझसे "भगवान प्रकाश दिखाओ" (Lead kindly light)प्रार्थना-भजन गाने को कहा। उस समय यद्यपि महात्माजी इस समय की अपेक्षा पर्याप्त जवान थे, फिर भी उनका दुवला-पतला शरीर दुखो से, जिन्हे वह एक क्षण के लिए भी टाल नही सकते थे, वहुत क्षीण और थका हुआ प्रतीत हो रहा था, लेकिन इस क्षीण और थकित शरीर के भीतर की उनकी आत्मा उस समय एक दिव्य प्रकाश से चमक उठी जवकि प्रार्थना-गीत ने रात्रि की निस्तव्धता को भँग किया।

उस गीत का अन्तिम चरण इस प्रकार था —

तवतक जवतक, रात्रि अधेरी रम्य उषा में आ वदलो।
खोये चिरप्रिय देवदूत वे मुसकाते फिर मुझे मिलो॥[१]

जव गीत समाप्त हुआ तो चारो ओर नीरवता थी। मुझे अव तक याद है कि उस समय हम कितने चुपचाप वैठे हुए थे। यह भी याद है कि इसके वाद महात्माजी उस चरण को मन ही मन मे दोहराते रहे थे।

दूसरा अवसर उडीसा में मिला। वह जगह यहाँ से नज़दीक ही थी, जहाँ मैं इस लेख को वैठा लिख रहा हूँ। महात्माजी मरणासन्न हो चुके थे, क्योकि उनपर यकायक ही हद दर्जे की थकान की पस्ती छा गई थी और खून का दवाव चढ इतना गया था कि खतरे की वात थी। वीमारी का तार मिलते ही मै रातोरात गाडी मे वैठकर उनके पास मौजूद रहने के लिए चल दिया। पास पहुँचा तो मैने उन्हे सारी रात बेचैनी से गुज़ारने के वाद उगते सूर्य की ओर मुंह किये हुए लेटे पाया। हमने अभी

१ मूल अंग्रेजी पद्य इस प्रकार है —

And with the morn those angel faces smile,
Which I have loved long since and lost a while

वातचीत शुरू ही की थी कि दलित जाति की सबसे निचली श्रेणी का एक आदमी अपनी फरियाद लेकर उनके पास आया। क्षणभर मे ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उनकी अपनी बीमारी विलकुल दूर होगई है। आदमी नीचे धरती पर लेटा हुआ था। उस निर्दय अपमान पर जिसने उसे मनुष्य के दर्जे तक नीचे गिराया था, उनका जी वेदना से फटने-सा लगा था।

३

दो वाते है, जिनके कारण महात्मा गाधी का नाम आज से सैकडो साल वाद भी अमर रहेगा। वे है (१) उनका खादी कार्यक्रम और (२) सत्याग्रह का उनका आचरण।

(१) आज के, इस मशीनयुग मे महात्माजी पहले व्यक्ति है जिन्होने ससार के किसानो मे ग्रामीण व्यवसायो और घरेलू उद्योगधन्धो को वडे पैमाने पर पुनर्जीवित किया है उन्होने इसे इसलिए शुरू किया था कि किसानो को साल के उन दिनो मे भी कुछ काम मिल जाय जवकि उनके खेतो पर कोई काम नही होता और वह घर पर खाली वैठे रहते है। भारतवर्ष मे यह समय हर साल मे चार या पाच महीने रहता है। पहले ज़माने मे मशीने नही थी। कातने, वुनने और अन्य ग्रामीण व्यवसायो मे परिवार का प्रत्येक आदमी, यहाँ तक कि छोटे-से-छोटे बच्चे भी, लगे रहते थे और रोज़ाना के काम के लिए घर पर ही खासा मजवूत कपडा कात और वुन लिया जाता था।

यह कहना गलत नही होगा कि मनुष्य-जाति का कम-से-कम आधा भाग ऐसा है जो इस प्रकार की सामयिक वेकारी से पीडित है। इसका एक वडा कारण मशीन के कपडे का वडी तादाद मे पैदा होना है। जिसने अपने सस्तेपन के कारण आहिस्ता-आहिस्ता गृह-व्यवसायो और उद्योग-धन्धो को चौपट कर दिया है।

गाधीजी पहले व्यक्ति है जो इस वात मे जीता-जागता विश्वास रखते है कि घरेलू धधो का पुनरुज्जीवन अव भी सम्भव है और इनसे ग्रामीणो को न सिर्फ शारीरिक प्रत्युत नैतिक भूख की पीड़ा से भी वचाया जा सकता है। उन्हे इस दिशा मे लाखो हृदयो मे आशा का सञ्चार करने मे कामयावी भी मिली है। उनकी प्रतिभा हिंदुस्तान की चहार-दीवारी तक ही सीमित नही रही है। चीन मे युद्ध के दवाव के कारण किसानो ने स्वय ही रुई वोना, उसे कातना और वुनना भी शुरू कर दिया है। यह भी विलकुल सम्भव है कि कनाडा और दूसरे अधिक ठडे उत्तरी ध्रुव-प्रदेशो मे भी सर्दियो के लम्वे और अँधेरे दिनो मे इस प्रकार के घरेलू उद्योग-धन्धे फिर चल पडे।

(२) अहिंसा का प्रतिपादन महात्माजी ने वड मौलिक तौर पर किया है। उसके द्वारा उन्होने ससार को यह दिखा दिया है कि आज महज स्वेच्छापूर्ण कष्ट-सहन के वल पर किये गये सामूहिक नैतिक प्रतिरोध अर्थात् सत्याग्रह, द्वारा युद्ध की हिंसा पर भी विजय हो सकती है। दक्षिण अफ्रीका मे उन्हे इस दिशा मे गौरवपूर्ण विजय मिली। ट्रासवाल मे जव उन्होने ड्रेकन्सवर्ग की पहाडियो को पार करके अपनी

सत्याग्रही फौज का सचालन किया तो जनरल स्मट्स ने उनकी वह सब शर्ते मानली जो उन्होने पेश की थी। इतना ही नही जनरल स्मट्स ने यह भी स्वीकार किया कि नैतिक लडाई का यह तरीका, जिसमे कोई भी हिंसात्मक हथियार प्रयुक्त नही किया जाता, ऐसा है कि उसका सामना नही हो सकता।

यह लेख अब खत्म हो रहा है और इन सब विषयो पर विस्तार से विवेचन करना यहाँ सम्भव नही है। अन्य लेखक शायद इसपर और प्रकाश डाले। मै इस लेख को सन्त फ्रासिस के साथ उनकी समानता का एक और उदाहरण देकर खत्म करूँगा। वह भी अपनी रोज़ाना की पोशाक मे गाववालो का घर का कता और बुना हुआ मोटा खुरदरा कपडा ही पहना करते थे। इस प्रकार अपने युग मे लोगो की दृष्टि मे घर के कते कपडे को सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय उन्हे है। सन्त फ्रासिस भी सार-सीन लोगो की फौज के बीच बिना हथियार लिये बेखटके जा पहुँचने थे कि उन्हे प्रेम का और शाति का सन्देश दे। अहिंसा के ठीक वही विचार सन्त फ्रासिस मे थे जो महात्मा गाधी के हृदय मे आज बस रहे है इस प्रकार दोनो आत्माये एक है। मगर अब महात्मा गाधी उससे भी आग बढ गये है और उनके 'सत्य के प्रयोग' दो महान् खद्दर और सत्याग्रह मनुष्य-जाति के जीवन मे सामूहिक व्यवहार की वस्तु बन गए है। उनका अभी इतने बडे पैमाने पर प्रयोग किया गया है कि मानव इतिहास मे इसकी मिसाल मुश्किल है। इस भाँति वह दूसरे किसी भी महान् जीवित व्यक्ति से बढकर शाति के दूत और मनुष्य-जाति के कल्याण के विधाता है।

: ४ :

गांधीजी का जीवन-सार

जार्ज एस. अरण्डेल

[अध्यक्ष, थियोसोफिकल सोसाइटी, अदियार, मद्रास]

यह मै अपना गौरव मानता हूँ कि गाधीजी के ७१वे जन्म-दिवस पर निकलने वाले अभिनन्दन-ग्रन्थ मे योग देने के लिए मुझे कहा गया है। सच यह है कि कोई ग्रथ भारत के प्रति उनकी महान् और अनुपम सेवाओ का पूरा मान नही कर सकता। भारतवासी भी स्वय आज उन सेवाओ का यथार्थ यशोगान और मान करने योग्य नही है। इसका निर्णय अगली सन्ततियो के पास है जबकि गाधीजी को समय के पक्षपात के अभाव मे देखना सम्भव होगा। पर तो भी ऐसा ग्रन्थ उनके जीवन की अन्य निष्ठा के विभिन्न पहलुओ पर उपयोगी प्रकाश अवश्य डाल सकता है, फिर चाहे वह उनके समकालीन व्यक्तियो ही के द्वारा लिखा गया हो।

जार्ज एस अरण्डेल

जिस रूप में कि मैं उनके जीवन को चीन्हता हूँ उसमे तीन बाते मुझे प्रधान दिखाई देती है। पहली और प्रमुख है उनकी निर्मल सादगी। दूसरी, अपनी मूल मान्यताओ पर प्रेम और तीव्र निष्ठा। और तीसरी, उनकी सहज-सम्पूर्ण निर्भीकता।

जहाँ जिस अवस्था में देखिये, सादा और व्यवस्थित उनका जीवन पाइएगा। और साधारण ऐसा कि हर परिस्थिति में हर को सुलभ। शोहरत की रोशनी सब कही हरदम उनको घेरे रहती है। पर उस सब प्रसिद्धि और व्यस्तता के बीच जैसे अनायास और सहज भाव से वह रहते है, वैसे यदि कही हम भी रह सकते होते तो? आत्मा उनकी ससार के आगे नग्न है। छोटी-से-छोटी आदते उनकी सधी है और वह मौन की शक्ति का उपयोग जानते है, जो कि हममें से बहुत ही कम लोग जानते होगे।

उनका जीवन एक पदार्थ पाठ है। नित्य-प्रति की साधारण-से-साधारण बातो में हम उनसे शिक्षा ले सकते है। दुनिया की कृत्रिमता और विषमता उनके पास आकर सुलझ रहती है और उनका व्यवहार सदासहज, अकृत्रिम और ईशनियमाधीन होता है। मानव-परिवार या समस्त जीव-परिवार को अगर कभी शान्ति और समृद्धि प्राप्त होनी है, तो इसी सहज नीति से प्राप्त हो सकेगी।

यह मैं एक क्षण के लिए भी नही कहता कि उनकी सब बातो की हूबहू नकल करनी चाहिए। लेकिन यह तो साग्रह कहता ही हूँ कि उनके जीवन की स्फूर्ति और भावना को हम अपनायें तो हमारा कल्याण होगा।

अपने एक निजी और विलक्षण रूप में अन्धकार से प्रकाश में आने का मार्ग उन्होने दिखाया है। वह दूरात प्रकाश देखते है और उधर सकेत करते है। हममे से कुछ उस आदि प्रकाश-स्रोत को देख न भी सके, पर स्वय उनके व्यक्तित्व का प्रकाश तो देखते ही है। और दूसरे के पास का भी प्रकाश, फिर वह हमसे चाहे कितना भी भिन्न हो, पथ-प्रदर्शन में हमारी सहायता ही करता है। आखिर तो प्रकाश सब एक ही है। हम ही उसे नाना रूप और आकार देते है।

उनके फैलाये कुछ प्रकाश का मैं उपयोग नही कर पाता हूँ। जिन बातो पर मैं जोर देना चाहता हूँ उनके लिए शायद मुझे और कही से प्रकाश पाना पडे। लेकिन जिन बातो पर वे जोर देते है वे भी मेरी चुनी बातो को परखने मे मुझे मदद देती है। इसलिए अपने मूल विश्वासो का इतना प्रत्यक्ष और सूक्ष्म ज्ञान रखने के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। क्योकि जो भी अपने सिद्धान्तो पर निष्ठा से चलता है, जैसे कि गाधीजी चलते है, वह दूसरो में भी अपने सिद्धान्तो पर—चाहे वे कितने ही विभिन्न क्यो न हो—निष्ठा से चलने की प्रेरणा करता है। असल में, यह प्रश्न नही है कि किस की मान्यता क्या है और कितना उसमें बल है। सारा प्रश्न असल में साधक की निर्मल सत्य-निष्ठा का है।

अन्त मे उनकी निर्भीकता, वह तो जैसे उनका सहज स्वभाव हो गया है, ऐसा मैं

कहूँगा। सहज है, इससे वह और भी स्पृहणीय है। उसके लिए कोई भारी तैयारी नही की जाती, कमर कसकर स्पर्धा नही ठानी जाती। और वहाँ तो कसने को हुई क्या ? कोई आठो याम चौकी-पहरा नही, न किसी किस्म का तमाशा या प्रदर्शन ही नज़र आता है। कोई निर्भीकता का मौका आता है और तत्क्षण अभय का प्रकाश उनके कृत्य में फूटकर चमक उठता है।

और जिसका मेरे मन मे सबसे अधिक आदर है, वह तो यह बात है कि वह कभी ज़ोर की आवाज देकर, नारा उठाकर, भीड को अनुगमन के लिए उभाडते और बुलाते नही है। वह तो जैसे ज़ाहिर भर कर देते है कि उनकी निर्भीकता का क्रियात्मक रूप अबके यह होनेवाला है। मानो उनके द्वारा जो होनेवाला है, उसीका भान उन्हे हो। होनहार के सिवा जैसे कुछ और उनसे हो नही सकता। ठीक यही बात मार्टिन लूथर के जीवन मे मिलती है। वह भी कहा करता था कि जो मैने किया उसके अतिरिक्त कुछ और मै नही कर सकता था, और जो होना था वही मैने किया। और फिर गाँधीजी तो बस आगे चल पडते है। कोई पीछे आता है तो अच्छा, नही आता है तो भी अच्छा! और क्या हम अक्सर ही यही सच होता नही देखते कि जो अकेला चलना जानता है, यानी जो बिना सगी-साथी या अनुयायी की राह देखे अकेला चल पडता है, क्योकि चले बिना वह रह नही सकता, उसी पुरुष को विजयश्री मिलती है ? भला उसे सफलता कब मिली है, जो किसी सकल्प के पीछे चल पडने से पहले सार्वजनिक आन्दोलन पैदा होगया देखना चाहता है।

गाधीजी की प्रकृति मे ही अभय है। निर्भयता उनका सहज भाव है। सहज है, और यही उसका सौन्दर्य है। तभी तो जो राह मे बाधक बनकर आते है उनका भी वह सत्कार और अभिनन्दन करते है। यह निर्भीकता ही है, जो शत्रु को मित्र बना देती है और युद्ध की नही शाति की सृष्टि करती है।

गाधीजी की राजनैतिक मान्यताओ और प्रवृत्तियो पर अपना अभिप्राय देने की कोशिश मैने की है। सच कहूँ तो मुझे चिन्ता भी नही कि वे क्या है। आखिर तो वे साध्य से अधिक साधन ही है। और सम्भव है कि इसे अपना—कौन कह सकता है कि सही या गलत ?—कर्तव्य मानकर उनकी इस या उस राजनैतिक प्रवृत्ति का सचाई और ईमानदारी के नाते मै विरोध भी कर जाऊँ। क्योकि असल मे जिसकी मेरे निकट कीमत है वह स्थूल कर्म नही है, वह तो है उनकी सचाई, उनकी निष्ठा, उनका साहस, उनकी निस्वार्थता, लोकमत की स्तुति-निन्दा के प्रति उनकी उदासीनता, उनकी किसी को नुकसान न पहुँचाने की प्रकृति और उनकी बन्धुत्व-भावना। जो जगत् को इन वस्तुओ का दान करता है, वह उन दाताओ से असख्य गुना दानी है, जो दुनिया को कानून देते है, योजनायें देते है, सिद्धान्त, नीति या वाद देते है।

हमें आज जगत् में ज़रूरत है ऐसे पुरुषो की और ऐसी स्त्रियो की जो

विश्व-बन्धुत्व की भावना से ज्वलन्त हो, सरल स्वभाव की महत्ता में जागरूक हो, जिनमें आदर्श की ऐसी अदम्य प्रेरणा हो कि वह आदर्श स्वयं जीवन से भी अधिक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण उनके लिए हो जावे, फिर वे सही माने जावे, या गलत माने जावे,—सही-गलत का भेद किसने पाया है ?—लेकिन हृदय जिनका जगद्गर्भ मे व्याप्त विराट् करुणा के सुर के साथ बजना जानता हो।

ऐसा पुरुष है गांधी ! और क्या कहूँ ?

: ५ :

भारत का सेवक

रेवरेण्ड वी. एस. अजारिया, एम. ए., डी. सी. एल.

[बिशप डोर्णाकल, भारत]

मुझे हर्ष है कि गांधीजी के ७१वें जन्म-दिवस के अवसर पर औरो के साथ मुझे भी उन्हे बधाई देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

वर्तमान युग मे किसी व्यक्ति का भारतीय जनता के निर्माण में ऐसा महत्त्वपूर्ण भाग नही है जैसा कि महात्माजी का है। यूरोप मे तो सर्वसाधारण भारत को 'गांधीजी का देश' ही कहकर पुकारते हैं। रोम के पोप के महल के एक इटैलियन दरबान से हुई अपनी छोटी-सी बातचीत को मैं कभी नही भूल सकता। जब मैंने उसे अपना नाम और पता लिखकर दिया तो उसने मुझसे कहा—"भारत ?"

मैंने कहा, "हाँ।"

उसने फिर कहा, "गांधी ?"

जब उसके मुँह से एक हल्की मुस्कान के साथ 'गांधीजी' का नाम निकला तो मैं फौरन समझ गया कि इसका अभिप्राय गांधीजी के देश से है और इसीलिए मैंने इसके जवाब मे 'हाँ' कह दिया। यह नौ साल पहले की बात है। मै इटली में जहाँ भी कही गया, वहाँ-वहाँ मुझे लोगो के मुँह से गांधीजी का नाम सुनने को मिला।

दो साल पहले की एक और घटना मुझे इस प्रसग मे याद आ रही है। मैं उस समय सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे था और वहाँ एक हब्शियो के प्राइमरी स्कूल को देखने गया था। स्कूल के हेडमास्टर ने आग्रह किया कि मैं बच्चो को भारत के बारे मे कुछ बताऊँ। मैंने उन्हे बताया कि मैं कहाँसे आरहा हूँ और इसी तरह की बच्चो को जानने लायक कुछ और बाते कही। मगर उसके बाद मैं खुद पशोपेश में पड गया कि इन बच्चो को और मैं क्या कहूँ। मुझे जो कुछ कहना था वह पाँच मिनट के भीतर समाप्त होगया। इसके बाद हेडमास्टर ने कहा कि अब बच्चे आपसे भारत के बारे मे कुछ

प्रश्न पूछना चाहेगे। एक ऊँची जमात की लडकी इसपर उठकर वोली कि गाधीजी के वारे मे हमे कुछ वताइए। आप कल्पना कर सकते है कि भारत से इतने दूर स्थान पर और वच्चो की तरफ से इस प्रकार का प्रश्न पूछे जाने पर मुझे कितना आश्चर्य हुआ होगा! महात्माजी को तमाम ससार मे भारत का महत्तम व्यक्ति, उसकी स्वाधीनता का दुर्धर्ष पोषक और उसकी प्रतिभा और आत्मा की श्रेष्ठतम प्रतिमूर्त्ति समझा जाता है।

हम लोग जो भारत मे रहते है, जानते है कि यह आत्मा या भावना क्या चीज़ है। यह है लोकोत्तर सत्ता की अनुभूति और जीवन की सव घटनाओ मे मानव की परमात्म-निर्भरता की स्पष्ट स्वीकृति, आधिभौतिक वस्तुओ पर नैतिक एव आध्यात्मिक भावो की प्रधानता, और नैतिक एव आध्यात्मिक उद्देश्यो की खोज और प्राप्ति मे भौतिक और शारीरिक सुख-भोग के प्रति स्पष्ट उपेक्षा। कोई भी आदमी, जो भारत को जानता है, इस वात मे तनिक भी सन्देह नही करेगा कि महात्माजी की महत्ता इन्ही आदर्शो की महत्ता के कारण है।

सारा भारत उनके प्रति इस बात के लिए वहुत अधिक ऋणी और कृतज्ञ है कि उन्होने उसके पुत्रो को फिर से इन आदर्शो को अपनाने लिए प्रेरणा दी है। समालोचना और उपहास के वावजूद दुनिया के सामने उस समय इन्हे रक्खा है, जवकि सव जगह इन आदर्शो के अपमानित किये जाने और रौंदे जाने का खतरा है। इस वढते हुए भौतिकवाद के ज़माने मे भी महात्मा गाधी ने लोगो को अध्यात्मवाद का अनुकरण करने और उसे स्वीकार करने की प्रेरणा दी है।

महात्मा गाधी ने भारत की एक और उल्लेखनीय सेवा की ह, जिसके कारण वह भारत-हितैषियो की कृतज्ञता और श्रद्धाञ्जलि के भाजन है। यह सेवा है पद-दलितो और नीच मानेजानीवाली जातियो का उद्धार। यद्यपि उनसे पहले भी धार्मिक सुधारको ने जात-पात की प्रथा का विरोध किया है मगर उनमे से किसीको भी भारत के विचारशील नर-नारियो के अस्पृश्यता-सम्वन्धी भावो मे, इतनी आश्चर्यजनक क्रान्ति करने मे सफलता नही मिली, जितनी कि महात्माजी को मिली। लेकिन हमे स्वीकार करना चाहिए कि हमारे लिए यह वहुत शर्म की वात है कि भारत का यह वहता हुआ नासूर अवतक उसी तरह वह रहा है। रूढिवादी सनातनियो के सम्पर्क के कारण यह ठीक होने नही पाता। मगर अव हिन्दू-भारत की आत्मा जाग्रत हो चुकी है, जात-पॉत के गढ डाँवाडोल हो चुके है, अव तो यह सिर्फ समय की वात रह गई है कि वह कव ढहते है और कव मिट्टी मे मिलते है। महात्मा गाधी ने वुराई पर आक्रमण करने का जो तरीका ग्रहण किया है उसके वारे में मतभेद होसकते है। सभी, यहाँतक कि उन जातियो के लोग भी जिन्हे इनसे लाभ पहुँचा है, उसके परिणामो से असहमत हो सकते है। तथापि यह तो मानना ही होगा कि पिछले वीस वरस—नही दस वरस—

से अस्पृश्यता की समस्या के बारे में भारत का दृष्टिकोण एकदम बदल गया है और इसका बहुत कुछ श्रेय महात्मा गाधी को ही है।

आज हम उन्हे हार्दिक बधाई देते हैं। हम चाहते हैं कि वह हमारा नेतृत्व और प्यारे भारत की सेवा करते हुए और अनेक साल जिये।

: ६ :

गांधीजी : सेतुरूप और समन्वयकार

अरनेस्ट बारकर, एम. ए., डी. लिट्.

[प्रोफेसर राजनीतिविज्ञान, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय]

गाधीजी की मुझे दो स्मृतियाँ याद है। क स्मृति नवम्बर १९३१ की एक रात *की है जब वह गोलमेज परिषद् मे भाग लेने लन्दन आये हुए थे और मेरे घर पधारे थे।* दूसरी सन् १९३७ के मध्य दिसम्बर के एक मनोहर प्रात काल की है। गाधीजी उस समय बीमारी से उठने के बाद बम्बई मे कुछ उत्तर जुहू मे ताड के पेडो की सरसराहट के बीच स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थ। एक भारतीय मित्र मुझे दर्शन के लिए अपने साथ ले गये थे।

मुझे उनके केम्ब्रिज-दौरे की अबतक बहुत स्पष्ट स्मृति है। प्रार्थना के समय, जो एक कमरे मे हो रही थी, उनके तथा कुमारी मीराबेन (मिस स्लेड) के साथ मै सम्मिलित हुआ था। शाम को भोजन के उपरान्त वह हमारे घर आगये थे। आकर बैठक में चरखा कातते हुए हमसे बाते भी करते जाते थे। हमारी बातो के विषय बहुत ही सामान्य थे (मुझे अबतक खूब अच्छी तरह याद है कि मैने अँग्रेजी जीवन मे फुटबाल के स्थान और रगबी तथा असोसियेशन के खेल के बीच विचित्र सामाजिक विभाजन का जब प्रसग छेडा तो उन्होने उसमे बहुत दिलचस्पी दिखलाई), मगर य तो बाते सामान्य थी। हमारी बातचीत के मुख्य विषय इनसे कही गहरे थे। इनमें से एक विषय था प्लेटो। मेरा खयाल था कि इस बारे मे प्लेटो से गाधीजी के विचार मिलते थे कि शासको और राष्ट्र के प्रबन्धको को थोडे वेतन पर ही सब्र करना चाहिए। उन्हे इसी बात से अपनेको सन्तुष्ट कर लेना चाहिए कि उन्हे जो शासक या अधिकारी के रूप मे सेवा करने का सौभाग्य मिला है वही क्या कम है? इसमे अधिक उपहार या इनाम की इच्छा उन्हे नही करनी चाहिए। मैने उन्हे दलील देकर विश्वास कराने की कोशिश की कि सरकार को अपना रौब और दबदबा रखना होता है और इसे रखने के लिए उसे विशेष परिस्थितियो और शान-शौकत की जरूरत होती है। इसलिए प्लेटो का उक्त सिद्धात इस अर्थ मे ठीक नही उतरता। मुझे याद नही आता

कि हम इस वादविवाद मे किसी भी अन्तिम निर्णय पर पहुँच सके थे। किन्तु मुझे इतना अवतक याद है कि मैने उस समय साफतौर पर यह अनुभव किया था कि मै उनसे कही नीची सतह पर रहकर दलील कर रहा हूँ।

दूसरा विषय, जिसपर हमारी वातचीत हुई और जो मुझे अवतक याद है, भारत की रक्षा का विषय था। मै उनसे दलील कर रहा था कि आखिरकार हिन्दुस्तान मे शाति तो रक्खी ही जानी है, वाहर के आक्रमणो और डाकू-लुटेरो की लूट-खसोट का भी प्रवन्ध करना है, इसलिए भारत मे उसकी रक्षा के लिए एक फौज का रहना अत्यावश्यक है। फिलहाल इस फौज के आवश्यक खर्चो की गारण्टी ही की जानी चाहिए और उन्हे भारतीय असेम्वली के वोटो पर, जो किसी समय उनके एकदम खिलाफ और किसी समय उन्हे वहुत अधिक काट देने के हक मे हो सकते है, नही छोडना चाहिए। गाधीजी ने इसका जवाव एक रूपक से दिया। कहा कि कल्पना करो कि कि एक गाव जगल के जानवरो के उपद्रवो से तग है। एक दयालु अधिकारी गाँववालो को गाँव के चारो ओर उसकी रक्षा के लिए एक वडी दीवार खडी करने को कहता है, ताकि गाववालो का जीवन और उनकी सम्पत्ति सुरक्षित रह सके। मगर गाववाले देखते है कि दीवार के वनाने के खर्च के एवज मे उनपर इतना भारी टैक्स लद जाता है कि उनका जीवन-निर्वाह मुश्किल हो जाता है। इस हालत मे क्या वह यह नही कहेगे कि हम जगल के जानवरो के उपद्रव का खतरा लेने को तैयार है, मगर हम जीवन-यापन को निश्चित करने के इस झमेले मे, जो हमारी ताकत से वाहर है, नही पडना चाहते ?

इन दोनो विषयो पर वातचीत करने से मुझे गाधीजी के उन दो पाठो का ज्ञान हुआ जो उन्होने ससार को दिये है। यह है—एक, प्रेम और प्रेम मे की गई सेवा तथा दूसरा, अहिंसा। मुझे उस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मै एक पैगम्वर के सामने वैठा हूँ, मगर इसीके साथ मैने यह भी अनुभव किया कि मै एक उत्तरी देश के अग्रेज की स्वाभाविक एव आतरिक भावना (और शायद हरएक अँग्रेज की ही यह स्वाभाविक भावना है) को नही छोड सकता, जो कहती है कि अच्छी सेवा का इनाम भी अच्छा दिया जाना चाहिए और उसके लिए जितना पैसा दिया जायगा उतनी ही वह वढेगी, जो सुझाती है कि शाति और व्यवस्था कायम रखने के लिए युद्ध और अव्यवस्था से सघर्ष होना आवश्यक है और जो यह विश्वास करती है कि शाति और व्यवस्था उनकी रक्षा के प्रयत्न से ही कायम की जा सकती है। मगर यदि मै एक अग्रेज की इस आतरिक भावना को नही छोड सका तो भी मुझे उस समय उस भावना से ऊँची एक हस्ती को स्वीकार करना पडा। काश मनुष्य यही स्वीकार करने को तैयार हो रहे—! (और यदि कोई यह मान सकता है कि मनुष्य इस वात के लिए तैयार है तो शायद वह दूसरो मे भी अपनी श्रद्धा से यह विश्वास जगादे और फिर मनुष्य सचमुच ही

तैयार हो जावे । जैसे कि मैंने ही स्वीकार तो किया, मगर मैं ही अपनी स्वीकृति और विश्वास को निष्ठा के विंदु तक नही ला सका ।)

गाधीजी के चले जाने के वाद मैं उन विभिन्न तत्त्वो के मिश्रण पर गौर करने लगा जो उनमे पाये जाते हैं । मैंने उनमे सन्त फ्रासिस को पाया, जिसने समस्त विश्व के साथ सामजस्य और विश्व की सव वस्तुओ के साथ प्रेम अनुभव करते हुए गरीवी की सादी जिन्दगी विताने की प्रतिज्ञा कर रक्खी थी । मैंने उनमे सन्त थॉमस एक्विन्स को भी पाया, जो ससार का एक महान् विचारक और दार्शनिक होगया है और जो वडी-वडी दलीले देने मे समर्थ तथा विचारो के सव तोड-मोडो मे उनकी वारीकियो से भली-भाति परिचित था । इन दोनो के अलावा मैंने उनमे एक व्यावहारिक मनुष्य को भी पाया, जिसके पास अपनी व्यावहारिकता को मजवूत वनाने के लिए कानून की शिक्षा भी मौजूद थी और जो अपनी कुशल सलाह से लोगो को पथ-प्रदर्शन करने के लिए पहाड की चोटी से घाटी मे भी उतर कर आ सकता था । यो तो हम सव मानव जटिल स्वभाववाले होते है, मगर गाधीजी तो मुझे हम सवसे अधिक जटिल प्रकृतिवाले मालूम पडे । उनका एक अत्यत मोहक और रहस्यमय व्यक्तित्व था । अगर वह केवल सन्त फ्रासिस होते तो समझने मे कठिनाई न थी । मगर वैसा एकात सतपन क्या उतना मगलमय और उनके देशवासियो के तथा ससार के लिए इतना लाभकारी और उपयोगी भी हो सकता था ? जव मैंने इस प्रश्न पर विचार किया तो मुझे उत्तर मिला—'नही ।' रहस्य है असल मे समन्वय । विभिन्न तत्त्वो का मिश्रण ही व्यक्तित्व का सार सत्य है । वह ससार के लिए जो कुछ है और ससार के लिए जितना कुछ वह कर सकते है उसका कारण है उनका एक ही साथ एक से अधिक वहुत कुछ होना ।

यही वात मुझे इस लेख की अन्तिम और गाँधीजी की एक और मौलिक विशेषता पर ले आती है जिसका जिक्र किये विना मैं नही रह सकता । मैंने अभी उन्हे वह मनुष्य वताया है जिसमें सन्त फ्रासिस और सन्त थॉमस के साथ कानूनदा और व्यवहार-कुशल मनुष्य भी मिला हुआ है । इसीको मैं अधिक ठीक और दुरुस्त शव्दो में यो कह सकता हूँ कि वह भक्ति-परक और दार्शनिक धर्म की एक महान् भारतीय परम्परा और जाति के जीवन मे नागरिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता की पश्चिमी परम्परा—दोनो का एक अद्भुत सम्मिश्रण है । और क्योकि गाधीजी मे इन भेदो का समन्वय होगया है इसलिए वे एक महासेतु है । उन्हे अपने देश की राजनीति को लौकिक दृष्टि से परे की सतह पर प्रस्तुत और सचालन करने मे भी खासी कामयावी मिली है । धार्मिक परम्पराये इसमे पूर्ववत् कायम रक्खी गई है । वह सफलतापूर्वक ब्रिटिश लोगो को दिखा सके है कि न तो वह राजनैतिक आन्दोलनकारी है, न भारतीय राष्ट्रीय समस्या निरी राजनैतिक है । और उन्होने न सिर्फ भारतीयो और ब्रिटिश लोगो के दर्मियान ही एक सेतु के रूप मे प्रतिष्ठा पाई है प्रत्युत् पश्चिम (यूरोप) के तमाम

लोगो का ध्यान अपनी ओर उन्होने खीच लिया है और सबके लक्ष्य का केन्द्र बन गये है। जो आदमी सासारिक कर्म एव आध्यात्मिक प्रेरणाओ को बिना परस्पर क्षति पहुँचाये मिला सकता है वह आज के विश्व का महामोहक और विराट् पुरुष हो रहे, तो इसमे सन्देह ही क्या हो सकता है।

इसलिए गाधीजी मे तो आज मै उस पुरुष का दर्शन और अभिनन्दन करता हूँ जिसने ऐहिक अध्यात्म के साथ समन्वय साधा, जो दोनो मे एकनिष्ठ रह सका। उनमे मै उस व्यक्ति की स्मृति-प्रतिष्ठा भी करूँगा, जो पूर्व और पश्चिम के बीच ऐक्य का सेतु बना और जिसने इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे सद्भाव के प्रसार मे सर्वाधिक योग दिया। और न ही मै उनमे उस मनुष्य को भूल सकता हूँ जो अपने देश के जीवन की घरेलू और घनिष्ट आवश्यकताओ को समझ सका और उनकी घोषणा कर सका है। उनका चर्खा इसका प्रतीक है। अगर आप किसी भारतीय गाँव को देखे (और भारत तो गाँवो का एक महादेश ही है) तो वहाँ आपको ग्रामीणो की अधिक पूर्ण जीवन विताने और कार्यशक्तियो के अधिक विस्तृत उपयोग होने की आवश्यकता दारुण पुकार करती सुन पडेगी। अगर व्यवसायो को, कुछ थोडी-सी कपडे की मिलो को बम्बई के चारो ओर तथा थोडी सी जूट-मिलो को कलकत्ता के उत्तर मे बसाना-मात्र ही काफी न समझकर इन भारतीय गाँवो मे लाया जाय तो गाँवो का आसानी से उद्धार हो सकता है। और क्योकि भारत का बहुत बडा भाग गाँव है, अत गाँवो के उद्धार मे समूचे भारत का लौकिक और आर्थिक उद्धार आप ही होगा। गाधीजी ने गाँवो के उद्धार के लिए जो भी कुछ किया है, वह उनकी देश के प्रति अन्यान्य महान् सेवाओ मे गणनीय होगा।

ये विचार है जो गाधीजी के बारे मे मेरे मन मे उस सब सपर्क से उदय होने है, जो मैने उनके बारे मे सुन, देख और पढकर पाया है। काश कि मै अधिक जानता होता! अन्त मे मै यह कहकर अपना लेख समाप्त करता हूँ कि मेरे जानकारी के अनुसार गाधीजीने भारत तथा ससार को तीन बाते सिखाने की कोशिश की है। वह है (१) प्रीति और प्रीत्यर्थ कर्म (२) कर्ममात्र मे हिंसा का परिहार (३) और दिमाग से ही नही प्रत्युत हाथ से भी काम करके जीवन मे सपूर्णता लाने के लिए समस्त प्राप्त शक्तियो का सर्वागीण समर्पण।

: ७ :

ज्योतिर्मय स्मृति

लारेन्स बिनयान, सी. एच., डी लिट्.

[लन्दन]

मैं भारत के बारे मे बहुत थोड़ा ज्ञान रखता हूँ। जो किंचित् रखता हूँ, वह उसकी कला के द्वारा। और क्योंकि मै अनुभव करता हूँ कि उस देश की समस्याओ का वहाँ जाकर स्वय अध्ययन किये बगैर कोई उसकी उलझनो के विषय मे ठीक निर्णय नही दे सकता, इसलिए मैंने गाधीजी के राजनैतिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहना ठीक नही समझा। यह भी कहने का मै साहस करूँ कि मै उनकी नीति की छोटी-से-छोटी बारीकियों को भी शायद नही समझ सकूँ। मगर इस समय में, जिसे इतिहास मनुष्य-जाति के लिए लाञ्छन के रूप मे देखेगा, मै दिन-प्रतिदिन अधिक तीव्रता से यह अनुभव करता जा रहा हूँ कि, आत्मा और मन की वस्तुएँ, या कि वे घटनाये ही जिनका इनसे उद्भव होकर क्रियात्मक जीवन में व्यवहार होता है, वास्तव मे इस अस्तव्यस्त और क्षुब्ध ससार मे सबसे कीमती और महत्व की है। वे ही सारभूत और वे ही स्थायी हैं। और जैसा मै समझता हूँ, गाधीजी उन्हीके समर्थन मे जीत हैं। और यही कारण है कि उनकी स्मृति ज्योतिर्मय है।

: ८ :

एक जीवन-नीति

श्रीमती पर्ल एस. बक

[न्यूयार्क]

गाधीजी का नाम उनके जीवन-काल मे ही एक व्यक्ति का पर्यायवाची न रह-कर हमारे वर्तमान दुखी ससार के लिए एक आदर्श जीवन का पर्यायवाची बन गया है। मेरे लिए उनकी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस असयम और बुराई की शक्तियो के बीच भी वह जीवन के उसी मार्ग पर फिर से जोर दे रहे है। गाधीजी ने अपने स्वीकृत मार्ग पर चलने का जो आग्रह रक्खा है उससे, मुझे यहाँ यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि दूसरे लाखो के साथ मुझे भी ससार में बढते हुए अत्याचार

का अजेय और अडिग दृढ निश्चय के साथ पूर्ण प्रतिरोध करने का साहस प्राप्त हुआ है। इसलिए इस अवसर पर मैं उनको धन्यवाद देती हूँ और उनके प्रति अपनी अगाध स्तुति के भाव प्रदर्शित करती हूँ।

: ६ :

गांधीजी के साथ दो भेंट

लायोनल कर्टिस, एम. ए.
[ऑल सोल्स कालिज, ओक्सफोर्ड]

१९०३ मे पहली बार मै गाँधीजी से मिला। उसकी मुझे अबतक अच्छी तरह याद है। तब मै उस विभाग मे काम करता था जिसके जिम्मे भारतीय प्रवासियो का पेचीदा और कठिन प्रश्न भी था। उसके बाद से तो अबतक मुझे बहुत से भारतीयो और चीनियो की मित्रता प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है, लेकिन मुझे विश्वास है कि गाधीजी पहले ही पूर्व-देशीय व्यक्ति थे जिनसे मै मिला था। सिरपर हिन्दुस्तानी पगडी को छोडकर वह विलायती ढँग के कपडे पहने हुए थे और उन्हे देखकर मैने अनुभव किया कि वह एक सुयोग्य युवा वकील है। अपने देशवासियो के चरित्र की खूबियाँ समझाते हुए उन्होने बातचीत प्रारम्भ की। कहा कि हमारे देशवासी अध्यवसायी है, मितव्ययी है और सहिष्णु है। मुझे याद है कि उन्हे सुनने के बाद मैने कहा था, "गाधीजी, आप जो समझाना चाहते है वह तो मै पहले ही से मानता हूँ। यहाँ के यूरोपियन हिन्दुस्तानियो के दोषो से नही डरते। डर की चीज तो उनके गुण है।" बाद के व्यवहार मे उनकी जिस विशेषता ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह उनका दृढ सकल्प था। उसके बाद से ही मै यह समझने लगा हूँ कि इस दुनिया मे ऐसी विशेषताये कम ही है जिनका मूल्य दृढ-सकल्प से अधिक है।

बरसो बाद, १९१६ मे बडे दिन के लगभग मै लखनऊ के काँग्रेस कैंप मे दूसरी बार गाधीजी से मिला। जोहान्सबर्ग के तेज युवक अटर्नी के रूप मे जिन गाधीजी को ट्रान्सवाल मे मै जाना करता था, उनसे इनमे जो परिवर्तन पाया, वह मै कभी नही भूलूँगा। वह हिन्दुस्तान के देहाती के-से कपडे पहने हुए थे और उनके चहरे पर उम्र के साथ तपस्विता के चिन्ह थे। सवेरे का समय था। जोर का जाडा पड रहा था। अँगीठी रक्खी हुई थी जिस पर वह बातचीत करते-करते हाथ ताप रहे थे। अँगीठी के सहारे बैठकर हमने बाते की। उस समय उन्होने भरसक वर्ण-व्यवस्था का मर्म, जैसा कि भारतीय समझते है, मुझे समझाया।

गाधीजी के अतिरिक्त, यदि है तो, थोडे ही ऐसे आदमी हमारी पीढी में होगे

जिनके इतने अनुयायी हैं, जिन्होंने घटना-चक्रों में इतना परिवर्तन किया है और जिन्होंने एक से अधिक महाद्वीपों में लोगों के विचारों पर इतना प्रभाव डाला है' १९०३ में मिले सुयोग्य युवा वकील में जो आध्यात्मिक शक्तियाँ छिपी हुई थीं, उनका मैं उस समय अनुमान न कर सका था। उस अपनी असफलता को मुझे नम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

: १० :

गांधीजी और काँग्रेस

डा० भगवान्दास, एम ए., डी. लिट्.

[काशी]

बीसवीं शताब्दि के इन अन्तिम चालीस वर्षों का मनुष्य-जाति का तूफानी-इतिहास केवल बीस-बाईस नामों का ही खेल है। इनमें से आधे से कम आज भी जीवित हैं। महात्मा गांधी केवल उनमें से एक ही नहीं हैं, अपितु उनमें भी अद्वितीय हैं। कारण कि वह स्वयं राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसात्मक आध्यात्मिकता के एकमात्र देवदूत हैं। बुद्ध के पश्चात् भारतीय इतिहास में गांधीजी से अधिक महान् या उनके समान भी कोई नैतिक कल्पना में भी नहीं आ सकते। जब कभी 'वर्तमान' 'भूत' हो जायगा और 'वर्तमान' का निस्सीम महत्त्व कटछँटकर ठीक हो जायगा तब भले ही भावी ऐतिहासिक उनकी बराबरी के नाम गिनाने लगें। निश्चय ही तुलना अत्यन्त भिन्न-व्यवस्था तथा विभिन्न समयों के प्रयोजनों के आधार पर ही होगी। आज तो महात्मा गांधी का व्यक्तित्व अद्वितीय है।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि मैं उनका भारी प्रशंसक हूँ। मुझे आदर है उनके तपश्चरण, अन्त स्फूर्ति और उत्साह, उच्चाकांक्षा, संकल्प की एकाग्रता और एकनिष्ठता तथा "वासनाक्षय और इन्द्रियदमन" में भी (जो कि तप के ही अन्तर्गत हैं)। इस सात्विक और विशुद्ध वासनाक्षय तथा इन्द्रियदमन रूपी तप का स्वरूप प्राचीन भारत में तो प्रचलित था ही, अनंतर प्रारम्भिक और मध्यकालीन खरीस्तीय और बाद में मुस्लिम धार्मिक परम्पराओं में भी निरंतर सजीव रहा है। मेरा यह आदर इस कारण है कि उनका तप प्राप्त आत्मबल, एकाग्र मन से भारत की उन्नति में सतत प्रयुक्त होते रहने से, उदात्त, बुद्धियुक्त और पवित्र हो गया है।

इसलिए महात्मा गांधी के अद्भुत राजनैतिक नेतृत्व का मैं भारी प्रशंसक हूँ, उनकी तपोगत पवित्रता और 'सर्वभूतहित' के लिए मेरे हृदय में गहरा आदर और उनके अद्भुत आत्म-संयम पर आदर और प्रशंसा दोनों के भाव हैं। उनकी स्थिर

सकल्पयुक्त सतत आत्मपरिचालन की शक्ति 'धीरता' (धियम्+इरयति) ऐसी विलक्षण है कि गम्भीर परिस्थितियो मे या परीक्षा के कठिन अवसरो और कष्टो मे, जिससे वह घिरे ही रहते है, उनका सार्वजनिक वर्तन देखकर कहना होता है कि जब कभी परीक्षा हुई वह ओछे, हलके कृत्य या विचार से मुक्त मिले। उनका अचूक गौरव और सौजन्य, उनकी आत्मा की धीरता, भारत की सेवा मे उनकी अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार मन और शरीर की अथक क्रियाशीलता, इन सबके कारण उनके घोर उग्रतम विरोधी भी उनकी प्रशसा करते रहे है और प्राय उनकी इच्छा के अनुसार काम करने के लिए तैयार हो गये है।

यह अनुभव करते हुए, यह उचित है कि इस अवसर पर मै श्रद्धाञ्जलि के रूप मे कुछ फूल भेट करके ही सतुष्ट न हो जाऊँ। ऐसे सत्कार से तो महात्मा गाधी अब तक ऊब चुके होगे। इसलिए मै उनके महान् कार्य के सम्बन्ध मे कुछ ऐसे आलोचनात्मक विचार उपस्थित करने का साहस करता हूँ, जैसे मै पन्द्रह या अधिक वर्षों से कुछ सुझावो के साथ-साथ उनके और भारतीय जनता के सम्मुख रखता आया हूँ। महात्मा गाधी ने भारत मे जिस नवजीवन का सचार किया है उसके सम्बन्ध मे मै जो विचार प्रकट करूँगा, वे सब अपनी उत्कृष्ट बुद्धि की धृष्ठता से नही उपजे है, बल्कि उनका आधार परम्परागत प्राचीनज्ञान ही है।

सामान्यतः विश्वपरिस्थिति : विशेषतः भारतीय परिस्थिति

मानव-जगत् चार वर्ष के पश्चात् सन् १९१८ मे भयानक अग्निकुण्ड से बाहर निकल पाया। पर उसकी आँख नही खुली। अब भी वह फिर रौरव के तट पर खडा है और गिरना ही चाहता है। स्पेन इस युद्ध से नष्ट हो गया और इस युद्ध मे फ्रान्को और फासिज्म की विजय हुई। चीन जापान से जीवन-मरण के सघर्ष मे फँसा है। भारत—गुलाम, दरिद्र, आत्मिकता से च्युत भारत—एक अहिंसामय राजनैतिक आर्थिक सघर्ष मे लगा हुआ है। इसपर बीच-बीच मे साम्प्रदायिक दगो का भी इसे शिकार होना पडता है, जो कि अहिसा के विपरीत स्थिति के द्योतक है। भारत के दुष्ट-बुद्धि, धार्मिक, राजनैतिक 'नेताओ' की कुमत्रणाओ और ब्रिटेन की कूटलराजनीति का यह परिणाम है। धर्म को अपने नफे का पेशा बनाकर रखनेवाले मजहब के ठेकेदारो ने दोनो मजहबो को उनकी यथार्थता से दूरकर, विरूप, विकृत और कलुषित कर दिया है। इस मूल कारण से ब्रिटिश 'कूटनीतिज्ञ' फायदा उठा रहे है। यह कहना कि दोनो जातियो के कोई समान मानवोचित हित नही है, एक की हानि मे ही दूसरे का लाभ है, इस पश्चिमी धारणा की ही हूबहू पर भौडी नकल है कि कोई देश, राष्ट्र या वश दूसरे देश, वश या राष्ट्र पर आतक जमाकर या उसे दास बनाकर ही फलफूल सकता है। यह धारणा उस जीवन-सघर्ष के निर्णय का, जिसकी कि बडी डीग हाँकी

जाती है, और 'जीवन के लिए सहयोग' के उत्तम और महत्वपूर्ण नियम को भुला देने का स्वाभाविक परिणाम है। इसका नतीजा यह है कि भारत का सारा वातावरण पारस्परिक द्वेष और अविश्वास की विषैली गन्ध से ओतप्रोत है और प्रत्येक शाति-प्रिय, ईमानदार और भले हिन्दू और मुसलमान के लिए जीना चिन्तामय हो गया है। बहुत पहले, स्वर्गीय श्री गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था—"हिन्दू, मुसलमान और ब्रिटिश शक्ति त्रिभुज की कोई-सी दो भुजाये मिलकर स्पष्टतया तीसरी से बडी है।" इसीलिए, लन्दन मे सन् १९३० मे १९३३ तक हुई तीन गोलमेज परिषदो का परिणाम यही हुआ कि पृथक् चुनाव-पद्धति पर स्वीकृति की मोहर लगाकर और उसे भविष्य मे जारी रखकर दोनो जातियो के पृथक्करण की कलुषित पद्धति की व्यवस्था की गई है। फिर यह तो होना ही था कि नौकरियो मे साम्प्रदायिक अनुपात और समानुपात को बढावा देकर ऊपर से नीचे तक की राष्ट्र की सब नौकरियो मे साम्प्रदायिक भावना ला दी गई। इन नौकरियो पर रहनेवाले स्वभावत औसत नागरिक से अधिक चतुर और विज्ञ होते है, और इनके हाथ मे सरकारी अधिकार की भारी शक्ति रहती है, और, आजकल, प्राय हर जगह शक्ति का अर्थ होता है, निर्बल, भले और ईमानदार को सहायता देने की अपेक्षा उसे हानि पहुँचाना और उसके मार्ग मे रोडे अटकाना।

ब्रिटिश कूटनीति ने जब से पृथक् चुनाव-क्षेत्रो की स्थापना की है, तबसे भारत मे साम्प्रदायिक समस्या सब समस्याओ से अधिक तीव्र बन गई है। पहले तो यह पृथक् निर्वाचन नियम इस शताब्दि के दूसरे दशाब्द मे म्युनिसिपल और ज़िला बोर्डो मे दाखिल हुए, और फिर इस तीसरे दशाब्द में धारासभाओ मे प्रवेश पा गये।

२३ मार्च १९३९ को एक अमेरिकन सम्वाददाता ने महात्मा गाधी से प्रश्न किया—"क्या भारत आपकी पसन्द के माफिक ही उन्नति कर रहा है?" महात्माजी विचारमग्न होगये और फिर उत्तर दिया—"हाँ, कर रहा है। कभी मुझे इसमे आशका तो होती है, लेकिन मूल मे उन्नति है और वह उन्नति पक्की है। **सबसे बडी बाधा** हिन्दू-मुस्लिम मतभेद है। यह एक भारी रुकावट है। इसमे मुझे कोई प्रत्यक्ष उन्नति नही दिखाई देती। लेकिन इस कठिनाई को भी हल होना ही है। हाँ, जनता का दिमाग मुकाम पर है, यदि और नही तो इसी कारण कि उसे कोई स्वार्थ नही साधना है। दोनो जातियो की राजनैतिक शिकायते एक ही है और आर्थिक शिकायते भी भिन्न नही है।"

यह सर्वथा सत्य है कि ये शिकायते एक ही है। परन्तु प्रश्न यह है कि फिर वह दोनो जातियो को यह बात क्यो नही मनवा सके और क्यो उनको एक नही कर सके? 'कठिनाई को एक दिन हल होना है'—निस्सन्देह यह हल होगी, परन्तु जैसे स्पेन में हुई वैसे ही, शाति से? क्या यह सम्भव है कि कुछ ऐसा किया जा सके जिससे यह शाति के साथ हल होजाय? "जनता का दिमाग मुकाम पर है, यदि और नही तो

इसी कारण कि उसे कोई स्वार्थ नही साधना है"—क्या यह कथन ज़रा गोल-मोल नही है ?

चीन, जापान और शेष एशिया की तरह भारत मे भी 'जनता' का अधिकाश किसान है। ये किसान सब जगह अत्यन्त 'व्यक्तिगत परिधि मे रहनेवाले' और 'स्वार्थी' होते है। परन्तु यह मान भी ले कि ये अपेक्षाकृत ठीक-ठीक और 'निस्स्वार्थ' है, तो भी क्या इन्हे धर्म के यथार्थ तत्त्वो और उचित सामाजिक सस्थान के कुछ मुख्य-मुख्य मूलभूत सिद्धान्तो की विधिवत् शिक्षा मिली है ? कठिनाइयो का शाति से हल स्वत होजानेवाला नही है। हममे से कुछ तो यह अनुभव करते है कि सब धर्मों के समान मुख्य तत्वो और उचित समाज-व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तो के ज्ञान का अनवरत प्रचार करने से ही साम्प्रदायिक समस्या का हल सम्भव होगा।

कांग्रेस की स्थिति

काग्रेस का राजनैतिक और आर्थिक सघर्ष भी शरीर से तो बहुत-कुछ अहिंसक है, परन्तु मन से वैसा नही है। काग्रेस के भीतर अनेक पकार की बुराइयाँ फैली हुई है। चुनावो मे काग्रेस के पदो के लिए मत-पेटियाँ लूटी गई, जलाई गई, उडाली गई, लाठिया चली और कई बार गहरी चोटे भी आई—एक-दो ऐसी घटनाओ मे हत्या भी होगई, जैसा कि ब्रिटेन मे भी कुछ दिन पहले तक ही होता था। साप्ताहिक 'हरिजन' मे महात्मा गाधी के लेख इसके साक्षी है। दूसरे प्रमाण की आवश्यकता ही नही है, यदि पडे ही तो मार्च १९३९ के त्रिपुरी काग्रेस के खुले अधिवेशन मे निर्विरोध पास हुए "अनीति-विरोधी" प्रस्ताव पर दिये गये भाषणो को पढ लेना काफी होगा। लेकिन इस चित्र का सुनहला पहलू भी है। निर्वाचको की अमित सख्या और निर्वाचन-क्षेत्रो के विस्तार को देखते हुए, तथा यह ध्यान मे रखकर कि यह चुनाव का "पहला अनुभव" था, ऐसी-ऐसी दु खद घटनाओ की सख्या कोई अधिक नही कही जा सकती।

रोग का निदान

कुल मिलाकर इस परिस्थिति मे जनता के प्रेम मे जाग्रति उत्पन्न करने के लिए जो सर्वोत्तम सुदर साधन उपलब्ध थे, वे जाग्रति उत्पन्न करने तक तो आश्चर्यजनक रूप से सफल हुए, परन्तु महात्मा गाधी के ये उपाय जितने सफल होने चाहिए थे, उतने सफल क्यो नही हुए ? स्पष्ट ही नेतृत्व मे कोई **बडी गहरी कमी** रह गई है। मै यहाँ यह दुहरा दूँ कि भारत की वर्तमान परिस्थिति मे अहिंसात्मक असहयोग या भद्रअवज्ञा—कुछ भी कहिए—निस्सशय यही एक सर्वोत्तम साधन है। इस तरीके से महात्मा गाधी ने भारतीयो मे सकल्प की शक्ति भरने मे एक जादू-सा किया है। उन्हे एक शान्तिशाली शस्त्र दे दिया है। यह तरीका लोगो की प्राचीन भावना और

परम्परा के अनुकूल है। 'धरना' या धारणा (अत्याचारी के द्वार पर बुराई दूर न होने तक मरण का निश्चय करके बैठे रहना) प्रायोपवेशन (आमरण अनशन) उपवास, आज्ञाभग (भद्रअवज्ञा) देश-त्याग, राज-त्याग, राजा को छोड देना 'राजा तत्र विगर्ह्यते' (खुलेआम राजा की निन्दा) आदि ये कुछ प्राचीन पुस्तको में वर्णित अहिंसामय उपाय है जो अधिकार के दुरुपयोग को रोकने के लिए काम मे लाये जासकते है। हाँ, खास परिस्थितियो मे जब शातिमय उपाय असफल हो जाय तब सशस्त्र युद्ध की न केवल आज्ञा ही है, अपितु इसका विधान भी है।

ये सब उदात्त प्रयत्न यदि फल नही दे पाते है तो इसका कारण "कोई और कमी" है। किसी अनिवार्य वस्तु के अभाव मे ही नुस्खा रोग-निवारण मे असफल रहा है। वह अबतक रोग को शान्त भी नही कर सका। न महात्मा गाधी ने, न 'हाई कमाण्ड' ने कभी कोई ऐसी योजना बनाई जिसके अनुसार मत्रिगण मिलकर, एक ढग से सर्व-साधारण के हितार्थ कानून-रचना का काम करे। वे भविष्य के गर्भ में निहित 'वैधानिक असेम्बली' की प्रतीक्षा में है कि वह यह काम करेगी। निस्सन्देह कुछ प्रान्तो में यह असतोष, अन्य प्रान्तो की अपेक्षा, 'अपने ही प्रात के' मन्त्रियो से अधिक है। है यह सब प्रान्तो में, कही एक बात को लेकर तो कही दूसरी बात को लेकर। यह कारण प्रान्त-प्रान्त मे अलग-अलग है। हम कुछ लोग पिछले वर्षो से कॉंग्रेस के 'हाई कमाड' और 'लो कमाड' का तथा सामान्य जनता का ध्यान इस भारी कमी की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते आरहे है और उसकी पूर्ति के लिए कुछ मार्ग-निर्देश भी करते रहे है। परन्तु अबतक यह सब व्यर्थ रहा है। अब तो कॉंग्रेस मे जो मतभेद पैदा होगया है, वह शायद 'नेताओ' और जनता का ध्यान हठात् इस ओर आकर्षित करेगा। इस मतभेद का परिणाम अत्यन्त दूरगामी होगा। यदि यह दूर न हुआ तो काग्रेस ने पिछले बीस वर्ष के आत्म-त्याग और बलिदान मे जो कुछ प्राप्त किया है वह सब जाता रहेगा। उसमें यदि सुधार होगा और कलह की जगह एकता लेगी तो यह कार्यक्रम में उस भारी त्रुटि को दूर करने पर ही सम्भव होगा और जो सकल्प-शक्ति देश ने हाल में प्राप्त की है, वह इसी भाति बाल-रोगो, आतरिक ज्वरो, और आत्मघात मे बचाई जा सकती है। इसी उपाय से इस राष्ट्र-सकल्प को वह ऐक्य प्राप्त होगा, जिसका अभाव उसे अकाल-मृत्यु के मुंह मे लिये जा रहा है।

परन्तु ऊपर की आवश्यक बात कहते हुए भी हमे यह नही भूलना चाहिए कि काग्रेसी-मत्री बडी मिहनत से काम कर रहे है और मद्यपान की बुराई मिटाने, साक्षरता फैलाने, किसानो का ऋणभार कम करने, स्थानीय उद्योगो को प्रोत्साहित करने, स्वास्थ्य का सुधार करने और रोगो को रोकने में बडी कोशिशे कर रहे है। उन्हे जैसी चाहिए वैसी सफलता इसलिए नही मिल रही है कि कांग्रेस के अनुयायियो की निर्बलता के कारण उन्हे स्थायी सरकारी सर्विसो से पर्याप्त सहयोग नही मिल रहा है,

और सबसे बढकर इसलिए कि जनता को **स्वराज्य, 'स्वशासन' शब्द की उचित व्याख्या नहीं बताई गई।**

न महात्मा गाधी ने, न प० जवाहरलाल नेहरू ने, न श्री सुभाषचन्द्र बोस ने, न हाई कमाड के किसी सदस्य ने, और न काग्रेस के किसी दूसरे गण्य-मान्य 'नेता' ने ही जनता के सम्मुख कभी 'स्वराज्य' शब्द की व्याख्या करने का प्रयत्न किया (स्व० चित्तरजनदास ने एक बार किया था)। सन् १९३६ या १९३७ तक महात्मा गाधी तो समय पडने पर यही कहते थे कि मेरे लिए तो 'औपनिवेशिक राज्य' ही स्वराज्य है। अपनी एक हाल की भेट मे, जिसका पीछे जिक्र है, उन्होने कहा था—"मै स्वय ठीक नही कह सकता कि मै इस विषय मे कहाँ हूँ।" कुछ भी हो, औपनिवेशिक राज्य तो उसी ब्रिटिश शासन-पद्धति की नकल है जिसे माना प्रजातत्र जाता है, पर मूल मे है 'गुट्टतत्र'। महात्मा गाधी ने भारत के लिए आवश्यक सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध मे भी, जो निरी शासन-पद्धति से भी कुछ अधिक जरूरी चीज है—कोई निश्चित विचार प्रकट नही किये है। एक बार पूना मे, यदि मै भूलता नही तो, सन् १९३४ मे उन्होने समाज-व्यवस्था के विषय को लेने से ही स्पष्ट इन्कार कर दिया था। कह दिया था यह तो 'बडी बात' है। महात्मा गाधी ने बडी स्पष्टवादिता से बार-बार ऐसी बाते दुहराई है कि "मुझमे पहले जैसा आत्म-विश्वास अब नही रह गया है।" "यदि मेरे पास स्वराज्य की योजना हो तो जनता के सामने लाने मे देर न करूँ।" "जनता के द्वारा चुनी जानेवाली भावी वैधानिक असेम्बली ही इसका निर्णय करेगी।" भारत को स्वराज्य मिलेगा या नही इसका निर्णय भी यही वैधानिक असेम्बली क्यो न करे! इस सम्बन्ध मे महात्मा गाधी के सम्पूर्ण विचारो का सग्रह उनकी 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक मे है। इस पुस्तक का साराश यह है कि अर्वाचीन सभ्यता की जो विशेषताये या खास-खास चीजे है—जैसे यत्र, रेलवे, जहाज, वायुयान, बिजली का प्रकाश, मोटर-गाडी, डाक, तार, छापेखाने, घडियाँ, अस्पताल, शिक्षापद्धति, शिक्षणालय, चिकित्सा-पद्धति आदि—ये सब बुरे है और इनको केवल सुधार लेना, सही कर लेना, और व्यवस्थित कर लेना ही पर्याप्त नही है, अपितु ये सर्वथा त्याज्य है। जाहिरा तौर पर इसी भाति यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता के बहुत से अश भी—जैसे विशाल मदिर, नक्काशी के घाट और महल, ललित कलाये, शाल और कमखाब, ज्ञान-विज्ञान और साहित्य आदि जीवन की शोभा' बढानेवाली सब चीजे भी हेय है और मिट जानी चाहिएँ, तथा आद्य कृषि-जीवन ही फिर हो रहना चाहिए, क्योकि परमेश्वर और प्रकृति मनुष्य-जाति से यही चाहते है। लेकिन 'सभ्यता' और इसकी कलाये तथा विज्ञान भी तो प्रकृति की उपज है।

पर दुर्भाग्य यह है, और महात्मा गाधी निर्मल हृदय से स्वय खुलकर स्वीकार भी

करते है कि वह "केवल सत्य का मार्ग दिखा सकते है परन्तु स्वय सत्य को नही।" और उन्होने उस पूर्ण सत्य को स्वय देखा भी नहीं है, जिसको भारत के प्राचीन ऋषियो ने देखा, दिखाया और जिसका मार्ग भी बताया था। व्यक्ति+समष्टि-तत्र के सत्य का जो सम्पूर्ण दर्शन ऋषियो ने पाया था, वह महात्मा गाधी को प्राप्त नही हुआ है। उनके 'हिन्द-स्वराज' मे जो सत्य है वह उसी तथ्य का अस्पष्ट आभास-मात्र है जिसका उपनिषदो, गीता और मनुस्मृति ने प्रतिपादन किया है। उपनिषदादि प्रतिपादित तथ्य यह है कि इस सारी पृथक्-पृथक् चेतन सत्ता और सारी जीवन क्रिया का मूलाधार और आदि कारण अविद्या या माया है जिसमे हम यह मान लेते है कि अनादि-अनन्त आत्मा और हाड-मास का पिण्ड, यह सान्त शरीर दोनो एक ही है। इसीमे 'अहकार,' 'स्वार्थ-भावना,' 'राग-विराग,' 'प्रेम और घृणा' का जन्म है, और इसी कारण 'परमार्थ,' 'आत्म-त्याग,' 'दान-दया,' आदि भावनायें सम्भाव्य और यथार्थ बनती है, अन्त में सब मानवीय दु ख-सुख भी त्यागकर पूर्ण समाधि अर्थात् चित्शक्ति के सर्वोच्च तत्व में फिर से लीन हो जाना चाहिए। लौटकर केवल किसानी जीवन पर पहुँच जाना ही काफी नही होगा। इस सचाई पर चलने के लिए हमे और भी पीछे जाना पडेगा। राष्ट्रो और व्यक्तियो को इसी प्रकार लौटना पडेगा, लेकिन उचित अवसर देखकर, अर्थात् सब पदार्थो का भोग तथा अनुभव करने और अपेक्षाकृत कल्याण-मार्ग पर चलते रहने के और 'स्वार्थ' तथा 'परमार्थ' की अपनी सब तृष्णा-वासनाओ को तृप्त करने के पश्चात्। महात्मा गाधी ने प्राय 'स्वराज' का अर्थ 'रामराज' किया है, परन्तु यहाँ भी रामराज का निश्चित लक्षण नही बताया। लेकिन अगर वाल्मीकि का विश्वास करे तो रामराज तो निरे कृषि-जीवन से बहुत भिन्न था। इसमें कृषि-जीवन को प्रधानता अवश्य थी, लेकिन इसमें केवल गाँव ही नही थे, अच्छे शहर भी थे। राम की अयोध्या का वाल्मीकि-कृत वर्णन अधिक रमणीय होते हुए भी रावण की सुनहरी लका की भाति ही महिमामय है। और लका तो 'यान्त्रिक' ही अधिक थी।

भारत की वर्तमान अवस्था और इसके अन्दरूनी मतभेदो को देखकर हमारी युवक शिक्षित पीढी की आँखें रूस और उसके बोल्शेविज्म, समाजवाद या साम्यवाद पर जा टिकती है—यद्यपि रक्तपात द्वारा जब-तब कीजानेवाली पार्टी-शुद्धि (Purges) की खबरो से वे भयभीत भी है। दूसरी ओर कांग्रेस के (और उसके बाहर के) पुरानी पीढी के लोगो की आँख, दास-मनोवृत्ति की निन्दा करके भी, ब्रिटेन और उसके उपनिवेशो के, अमेरिका के, और शायद फ्रान्स के भी, प्रजातन्त्रवाद—या उसे कुछ भी कहिए—पर जमी हुई है। भारत मे कोई भी नाजीवाद या फासिज्म के 'आदर्श' का सुप्रत्यक्ष समर्थन नही करता दीख पडता। तो भी हममें से कम-से-कम कुछ तो यह अनुभव करते है कि यदि सब 'वाद' अपनी 'अनियतता' छोड़ दें और

इसके स्थान पर सच्चे आध्यात्मिक धर्म की थोडी-सी मात्रा और कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त ग्रहण कर ले तो वे तत्काल एक-दूसरे से हिलमिल ही नही जायगे, परस्पर आलिगन भी करने लग जायगे। इन सब 'विचारधाराओ' और 'वादो' ने भलाई की है और पाप भी कमाया है। वे केवल अपने-अपने पक्ष के गर्म मिजाजियो के कारण ही एक-दूसरे को घूर रहे है, और यही इनकी गर्मदिली अपने-अपने आदमियो की शक्ति 'युद्ध का सगठन' करने मे खर्च कर देती है, 'शान्ति की व्यवस्था' करने मे नही।

दुर्बल जातियो के साथ पश्चिमी सभ्यता ने जो पाप किये है वे अब प्रकट हो रहे है। भाग्य उसका सूत के धागे से लटकता दीखता है। उस सभ्यता की ऐसे सकट और मरणासन्न हालत देखकर हमारे 'प्रजातत्री' और 'समाजवादी' नेताओ का अनेक पश्चिमी वादो का मोह और जोश दूर नही तो कम तो पडना ही चाहिए। क्योकि इन वादो की स्वय पश्चिम के ही बहुत से प्रमुख वैज्ञानिक और विचारक प्रबल निन्दा कर रहे है। इससे चाहिए कि वे और हम अपने पुराने काल-परीक्षित समाज-व्यवस्था के सिद्धान्तो की ओर जायँ और उन पर गम्भीरता से विचार करे। प्रश्न हो सकता है कि यदि वे सिद्धान्त इतने अच्छे थे तो भारत का पतन क्यो हो गया ? उत्तर यह है कि उनके सरक्षको मे शील-चारित्र्य नही रहा, उनकी 'स्पिरिट', 'आत्मा' बदल गई, 'दिमाग' बिगड गया, भले सिद्धान्तो का **व्यवहार छोड़ दिया गया,** उनकी **उपेक्षा की गई,** यही नही उनके स्थान पर **बुरे सिद्धान्त अपना** लिये गए। भारत के विधि-विधान के सरक्षक 'तप' और सद्ज्ञान दोनो खो बैठे। कोई राष्ट्र, कोई जाति, कोई सभ्यता तब तक पनप नही सकती जबतक उसके अतरग मे ठोस सत्य न हो और दुर्दमनीय हृदय और मस्तिष्क न हो। राष्ट्र का बल होते है ऐसे व्यक्ति जो स्वभाव से परमार्थी, त्यागी और ज्ञानी है। जो राष्ट्र या जाति 'हृदय और मस्तिष्क' की इस शक्ति को नही बना या पाल सकते, वे या तो भ्रष्ट होकर, या किसी प्रचण्ड आकस्मिक घटना से, युद्ध के ध्वस से अकाल ही काल के ग्रास हुए बिना या गुलाम बने बिना और दूसरो की दया पर जिये बिना नही रह सकते। भारत के भाग्य मे यह दूसरी बात लिखी थी उनके बुद्धिबल की। परन्तु भारत में अभी तक बहुत कुछ जीवन बच रहा है, और नया जीवन मिलने की भी पूरी सम्भावना है, यदि, महात्मा गाधी के 'तप' मे आवश्यक 'विद्या' का मेल हो जाय।

महात्मा गाधी आज हमारी महत्तम नैतिक और तप शक्ति है। बस, आवश्यकता है कि समाज-व्यवस्था-सम्बन्धी पुरातन विद्या और ज्ञान का सयोग प्राप्त हो जाय। गाधीजी तब भारत की रक्षा कर सकेंगे और इसको एक ऐसा ज्वलत आदर्श बना सकेंगे कि पश्चिम भी अनुकरण करेगा। यह देश तब पश्चिम के आकार-प्रकार की ही एक निस्तेज और विकृति छायामात्र नही रहेगा।

यह काम तभी होगा जब कि महात्मा गाधी और काग्रेस के दूसरे नेता इस

सम्बन्ध में अपने-अपने मस्तिष्क निर्भ्रान्त कर लेंगे और भारतीय जनता के अनुकूल सर्वोत्तम सामाजिक रचना या व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने निश्चित विचार बना लेंगे। तब उन्हें हिन्दू, मुसलमान, और ईसाई स्वयंसेवकों का एक मजबूत दल संगठित करना होगा। ये स्वयंसेवक त्यागी, घूमने-फिरने और कड़ा परिश्रम करने के आदी, **बौद्धिक क्षमताओं से** सम्पन्न हो, यदि वह सम्पन्नता न हो तो उसे प्राप्त करने की तत्परता होनी चाहिए। ये स्वयंसेवक ऐसे हो कि जो, मिलकर, भारत के कोने-कोने में निम्न सन्देश सुनाने में अपना जीवन अर्पित कर दें। यह सन्देश दो प्रकार का होगा। प्रथम, केवल भारतीयों के लिए ही नहीं, अपितु जाति, धर्म, रंग, वंश या लिंग-भेद के बिना समग्र मानव-जाति के हित के लिए प्राचीन बुजुर्गों द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवादी योजना और संगठन का ज्ञान-प्रसार। दूसरा, एक ही विश्व-धर्म की यह घोषणा कि **मूलतः सब धर्म एक और अभिन्न ही हैं**। कांग्रेस कमेटियाँ प्रत्येक नगर और जिले में हैं, और रियासतों में भी हैं। वे स्वयंसेवकों को इस काम में सहूलियत पहुँचा सकती हैं। वे स्वयंसेवक लोकमत को शिक्षण देंगे और लोगों को बतायेंगे कि 'स्वतंत्रता' का अर्थ अपने अधिकारों का प्रयोग करने की आजादी तो है ही, पर उससे भी अधिक अर्थ है उन कर्तव्यों का पालन जो कि उक्त समाज-रचना की योजना में भिन्न-भिन्न व्यवसाय के लोगों के लिए निश्चित किये गये हों।

: ११ :

गांधीजी का राजनेतृत्व

अलबर्ट आइन्स्टाइन, डी. एस-सी.

[दि इन्स्टीट्यूट ऑव एडवान्स्ड स्टडीज, स्कूल ऑव मैथेमेटिक्स, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी, अमेरिका]

गांधीजी राजनैतिक इतिहास में अद्वितीय व्यक्ति हैं। उन्होंने पीड़ित लोगों के स्वातन्त्र्य-संघर्ष के लिए एक बिलकुल नयी और मानवोचित प्रणाली का आविष्कार किया है और उसपर भारी यत्न और तत्परता से अमल भी किया है। उन्होंने सभ्य संसार में विचारवान् लोगों पर जो नैतिक प्रभाव डाला है उसके पाशविक बल की अतिशयोक्ति से पूर्ण वर्तमान युग में बहुत अधिक स्थायी रहने की संभावना है, क्योंकि किसी भी देश के राजनीतिज्ञ अपने व्यावहारिक जीवन और अपनी शिक्षा के प्रभाव से जिस हद तक अपने देशवासियों के नैतिक बल को जाग्रत और संगठित कर सकेंगे, उसी हद तक उनका काम चिरस्थायी रह सकेगा।

हम बड़े भाग्यशाली हैं और हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि ईश्वर ने हमें ऐसा प्रकाशमान समकालीन पुरुष दिया है—वह भावी पीढ़ियों के लिए भी प्रकाश-स्तम्भ का काम देगा।

: १२ :

गांधीजी : समाज-विज्ञान-वेत्ता और आविष्कर्ता

रिचर्ड बी. ग्रेग

[सॉउथ नाटिक, मैसाच्युसेट् अमेरिका]

यन्त्र सम्बन्धी गाधीजी के विचारो के सम्बन्ध मे भारी भ्रम फैला हुआ है जिससे पश्चिम मे उनको वैज्ञानिक से ठीक विपरीति समझा जाता है। परन्तु यह भूल है।

वह एक समाज-वैज्ञानिक है, क्योकि वह सामाजिक सत्य का, निरीक्षण-परीक्षण और मानसिक व बौद्धिक कल्पित आधार, इन वैज्ञानिक उपायो द्वारा अनुकरण करते है। उन्होने मुझे एकबार बतलाया था कि मै पश्चिमी वैज्ञानिको को बहुत पूर्ण नही मानता, क्योकि उनमे से अधिकतर अपने कल्पित आधारो या स्थापनाओ को अपने ऊपर नही परखना चाहते। परन्तु वह और किसीको अपनी कल्पित धारणाओ पर अमल करने के लिए कहने से पहले, उनको अपने ऊपर परखकर देख लेते है। वह ऐसा अपनी सभी कल्पनाओ के बारे मे करते है—चाहे वे भोजन, स्वास्थ्य, चरखा, जात-पात अथवा सत्याग्रह, किसी भी विषय मे क्यो न हो। उन्होने अपनी आत्म-कथा का नाम ही 'मेरे सत्य के प्रयोग' रक्खा था।

गाधीजी केवल वैज्ञानिक नही है, वरन् वह सामाजिक सत्य के क्षेत्र मे एक महान् वैज्ञानिक है। वह, समस्यायो के अपने चुनाव, उन्हे हल करने के अपने उपाय, अपनी खोज मे परिपूर्णता और निरन्तर लगन, और मानव-हृदय के ज्ञान की गहराई, इन सब दृष्टियो से महान् है। सामाजिक जगत् के एक आविष्कर्ता के रूप मे उनकी महत्ता इस बात से भी प्रकट होती है कि उन्होने अपने उपायो को जनता की सस्कृति, विचार-दिशा और आर्थिक तथा यान्त्रिक सामर्थ्य के अधिक-से-अधिक अनुकूल बनाकर दिखाया है। मेरी राय मे उनकी महत्ता का एक प्रमाण यह भी है कि क्या वस्तु रखनी चाहिए और क्या छोड देनी चाहिए, इसके चुनाव मे उन्होने कितनी समझदारी से काम लिया है। किसी सुधार पर कब और कितनी शीघ्रता से अमल करना चाहिए, यह परख लेने की उनकी योग्यता भी उनकी महत्ता की साक्षी है। वह जानते है कि प्रत्येक समाज किसी भी अवसर पर एक विशेष सीमा तक ही परिवर्तन के लिए तैयार होता है। वह जानते है कि कुछ परिवर्तन तो गर्भावस्था में देर तक रहने पर भी एकदम जन्म ग्रहण कर लेते है, और दूसरे कई परिवर्तन पूर्ण होने के लिए कम-से-कम तीन

पीढी तक समय ले लेते है। वह जानते है कि कई मामलो में लोग पुराने जन्म-परम्परागत अभ्यासो और विचारो को त्यागकर, नयो को उनके मुख्य फलितार्थो-सहित शीघ्र ग्रहण नही कर लेते है। सामाजिक बातो के नूतन आविष्कारो के मामले में उनकी महत्ता का एक और प्रमाण यह है कि वह जब कभी कोई नया सामाजिक सुधार आगे रखते है तब उसे पूरा करने के लिए आवश्यक प्रभावशाली सगठन पहले ही कर लेते है। सगठन और शासन की सब बारीकियो के वह पूर्ण ज्ञाता है। न जाने कितने क्षेत्रो मे उनके कामो मे परिणाम-स्वरूप उनकी असाधारण महत्ता पहले ही सिद्ध हो चुकी है, और मेरा विश्वास है कि इतिहास उन क्षेत्रो मे भी उनकी महत्ता सिद्ध कर दिखलायेगा, जिनमें उनका कार्य प्रारम्भ ही हुआ है।

उन्होने जिन व्यापक और कठिन सामाजिक समस्याओ को हल करने के लिए विशेष रूप से काम किया है वे है, (१) गरीबी, (२) बेकारी, (३) हिंसा—व्यक्ति-व्यक्ति, जाति-जाति और राष्ट्र-राष्ट्र के बीच की, (४) समाज के स्थानापन्न वर्गो का पारस्परिक अनैक्य और सघर्ष (५) शिक्षा, (६) और कुछ कम हद तक सफाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य, भोजन और कृषि-सम्बन्धी सुधार। ये सब समस्याये बडी है, इसे सब मानेंगे। मै इन पर उलटे क्रम मे विचार करता हूँ।

सफाई और सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र मे गाधीजी अनुभव करते है कि कई समस्याये तबतक हल नही हो सकती जबतक कि लोगो की गरीबी कम न होजाय। तो भी उन्होने अपने आश्रमो मे स्वास्थ्य के कई ऐसे सरल उपायो को आजमाया और उनपर अमल किया है जो किसानो को—जोकि आबादी का बहुत बडा भाग है—सुलभ हो सकते है। उन्होने कई कार्यकर्ताओ को इन उपायो का प्रयोग सिखलाया है और धीरे-धीरे कई जगहो में उनपर अमल किया जा रहा है।

गाधीजी ने समाज के एक-दूसरे से पृथक् सामाजिक वर्गो का पारस्परिक भेद मिटाने में—विशेषत हरिजनो के उद्धार मे—बडी प्रगति की है। मै और कोई ऐसा देश नही जानता जिसमे सामाजिक एकता का स्वेच्छापूर्वक, और इसलिए वास्तविक आन्दोलन आतरिक और बाह्य दोनो दृष्टियो से इतना अधिक सफल हुआ हो। हिन्दू-मुस्लिम-सघर्ष की समस्या का बहुत बडा कारण राजनैतिक परिस्थितियां है जिनपर गाधीजी या अन्य कोई भारतीय काबू नही पा सकता, तो भी जब भारत स्वतन्त्र हो जायगा तब यह समस्या सुलझ जायगी, और इसे सुलझाने में गाधीजी का उपाय बहुत काम देगा।

सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में गाधीजी ने हाल में एक ऐसी योजना आरम्भ की है, जिसमे विद्यार्थियो को सबकुछ किसी-न-किसी दस्तकारी द्वारा सिखलाया जायगा—जो कुछ सिखलाना होगा उसका उस खास दस्तकारी की क्रियाओ से ही प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सबध कर दिया जायगा। हम सबको जिन आर्थिक कठिनाइयो का सामना

करना पड रहा है, उनमे यह योजना विशेष आशाजनक है। इससे न केवल विद्यार्थी पढते-पढते अपनी पढाई का खर्च कमाने के लायक हो सकेगे, वल्कि यह शिक्षा मे से वहुत-से कूडे-कचरे को साफ करके उसे जीवन के लिए उपयोगी वना देगी। एक और वडा लाभ यह होगा कि शिक्षा कम-से-कम राष्ट्रीय व्यय मे जनता के लिए सुलभ हो जायगी। इसके अतिरिक्त मानव-जाति के विकास मे मनुष्य का मन सदा हाथ और आँख का सहारा लेता रहा है—यह योजना इस विचार के भी अनुकूल है।

हिंसा की समस्या और उसे हल करने के गाधीजी के उपाय पर मैंने अपनी पुस्तक 'दि पावर ऑव नॉन-वायलेन्स'[१] मे विचार किया है और यहाँ मैं उसपर ज्यादा विवेचन नही करूँगा। यद्यपि उनके उपाय से भारतवर्ष को अभी स्वतन्त्रता नही मिल सकी, तथापि इसने वडी उन्नति करके दिखलाई है, और प्राय सारी-की-सारी जनता के राजनैतिक और सामाजिक विचारो को परिवर्तित कर दिया है। अधिकाँश लोगो ने पहले की भाँति अपनी हीनता को छोड दिया है और उनमे आशा, आत्म-विश्वास, राजनैतिक उत्साह आगया है और एक नये प्रकार के नवीन वल का परिचय दिया है। मुझे विश्वास है कि गाधीजी के उपाय से भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा। इतना ही नही, वल्कि यह तमाम दुनिया का काया-पलट कर देगा।

गरीवी और वेकारी की समस्याओ को गाधीजी धुनने, कातने, कपडा वुनने और दूसरी दस्तकारियो के पुनरुद्धार द्वारा हल करना चाहते हैं। उनकी इस योजना के औचित्य का पश्चिम मे—और पश्चिमी शिक्षा तथा रहन-सहन मे दीक्षित भारतीयो द्वारा भारत में भी—इतना अधिक विरोध किया है कि मै इसकी पुष्टि में पश्चिमी विचार-प्रणाली से ही विस्तार के साथ विवेचन करना पसन्द करूँगा।

भारत मे यह अनुभव किया जाता है, परन्तु अन्यत्र प्राय नही, कि भारत की विशेष ऋतु के कारण, वर्षा-ऋतु का समय छोटा और गर्मी तथा सूखे का समय वहुत वडा होने के कारण, वहुधा सारे भारत मे किसान तीन से छ महीने तक विलकुल निकम्मा रहता है। वहुत सख्त गर्मी मे वह कठोर जमीन को जोत नही सकता, और न फसल वो या काट सकता है। भारत के विशाल भूभाग मे खेतो और जगलो मे सचमुच काम करनेवाले मजदूरो की सख्या लगभग वारह करोड है और इस कारण, देश की सारी आवादी के साथ अपने आपेक्षाकृत और एकान्त रूप से भी खेतिहर ग्रामीणो की इस सामयिक वेकारी का अनुपात और सख्या प्रतिवर्ष वहुत वडी रहती है। माली नुकसान वहुत ज्यादा होता है। इसके कारण होनेवाले नैतिक और मानसिक पतन और ह्रास भी भयकर है। जवतक पश्चिम से मिल का वना कपडा भारत में नही आया था तवतक किसान इस फालतू समय को कातने, और कपडा वुनने और अन्य दस्तकारियो मे खर्च करते थे। आज भी हिन्दुस्तान के लिए आवश्यक कपडे का एक-

१ इसका हिंदी रूपातर मडल से 'अहिंसा की शक्ति' के नाम से निकल रहा है।

तिहाई हाथ-कर्घो से बुना जाता है। रुई हिन्दुस्तान के प्राय सब प्रान्तो मे पैदा होती है। इस काम मे आनेवाले हाथ-औज़ारो का खर्च छोटी माली हैसियत का किसान भी उठा सकता है, हस्त-कौशल की परम्परा अभी बिलकुल मिट नही गई है। हाथ-बने कपडे की बाज़ारू कीमत मिल के कपडे से बहुत ऊँची नही बैठती, और जो अपना सूत आप काते उनको तो और भी कम पडती है। आबादी के ज्यादातर हिस्सो मे कपडे का खर्च रहन-सहन के तमाम खर्च के पाँचवे से छठे हिस्से तक बैठता है। जो लोग अपना गुजारा बहुत कठिनाई से कर पाते है, वे यदि बिना किसी खास मेहनत के अपने तमाम खर्च का दसवाँ हिस्सा भी बचा सके तो उनके लिए यह बडी चीज़ है। हाथ का यह काम न केवल आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान् है, बल्कि यह आशा सूझ-बूझ, आत्म-सम्मान और स्वावलम्बन का भी प्रबलता से सचार करनेवाला है। कहने की आवश्यकता नही कि बहुत अर्से की बेकारी और गरीबी से इन गुणो का नाश हो चुका है। दस्तकारी की इस स्वास्थ्यदायिनी शान्ति को मानसिक रोगो के वर्तमान चिकित्सको ने भी भलीभाँति स्वीकार किया है। और आजकल 'औक्यूपेशनल थैरापी' (इलाज-ए-पेशा) के नाम से दस्तकारी को अनेक मानसिक रोगो के, खासकर निराशा और पागलपन के, इलाज मे प्रयुक्त किया जाता है। इन कारणो से भारतीय बेकारी को दूर करने के लिए इस धन्धे को पुनरुज्जीवित करने का प्रस्ताव इतना बेहूदा नही है, जैसा कि ऊपर से मालूम पडता है।

लेकिन इतने पर भी बहुत-से लोग इस विचार का मज़ाक उडाते और यह कह-कर इसस नाक-भौं सिकोडते है कि यह तो पीछे को लौटना हुआ, यह असामयिक है, यह घडी की सुई को पीछे हटाने का यत्न है, यह श्रम-विभाग के अत्यन्त सफल सिद्धान्त का परित्याग और यत्रो और विज्ञान की अवहेलना करना है।

किसी भी उद्योग-व्यवसाय-पद्धति का मुख्य प्रयोजन उन सब लोगो को लाभ पहुँचाना होता है जो उसके अधीन हो। यदि वह पद्धति जनता की बहुत बडी अल्प-सख्या को लाभ न पहुँचाती हो, और वह अल्प-सख्या किसी और ऐसी पद्धति को अपनाले जिससे उसकी माली हालत मे सचमुच सुधार हो जाय, तो इसे मूर्खता नही कहेगे। अगर कोई पद्धति करोडो लोगो की माली जरूरतो को पूरा न करे, तो वह उनके लिए अँधेरी गली के समान होगी, और वे अपना कदम पीछे हटाकर वहाँ से निकल न जायँ तो वे मूर्ख होगे। उन्हे कोई ऐसा रास्ता तलाश करना पडेगा जिसपर खुद उनका नियत्रण रहे। उनके लिए तो अपनी आर्थिक घडी ठहरी हुई ही मानी जायगी। किसी भी ऐसी पद्धति को, जो किसी भी गति से उनकी एक भी माली जरूरत को पूरा करती हो, अपना लेना घडी की सुई को पीछे हटाना नही, बल्कि फिर से चलाना ही कहा जायगा। दस्ती औज़ारो के उपयोग की बनिस्बत वर्तमान महायुद्ध घड़ी को अधिक कारगर तौर पर पीछे कर देने वाले है, तो भी आज के

राजनीतिज्ञ, अधिकाधिक वडे-वडे इजिनियरो और 'सुरक्षित' व्यक्तियो की अनुमति से, युद्ध की तैयारियो मे खर्च कर रहे हैं।

आधुनिक उद्योगवाद ने काम करके सामाजिक कार्य को उस ज़माने से भी पीछे धकेल दिया है, जवकि दस्तकारी का रिवाज जारी था। हमारी नैतिक एकता की प्रत्यक्ष साधना दस्तकारी के ज़माने मे जिस मज़िल पर थी, उससे जरा भी आगे नही वढी। 'पीछे कदम' तो तव हटा जव हमने और हमारे पुरखो ने मूर्खतावश इतनाभी नही समझा और उसके अनुसार आचरण नही किया कि मनुष्य-समाज एक इकाई है, और हमे ऐसे तरीको और औज़ारो तथा विनिमय के माध्यमो को अपनाना चाहिए जिससे वह एकता हमारे रोज़मर्रा के विनिमय और काम मे व्यक्त हो।

दस्तकारी को अपनाने से श्रम-विभाग के सिद्धान्त का परित्याग नही होगा, वल्कि कुछ अशो मे आप-से-आप चलनेवाली या आधी आप-से-आप और आधी हाथ से चलने वाली मशीनो ने ही इस सिद्धान्त को विगाडा है। दूसरी वातो मे, इस सिद्धान्त पर अभी हाल तक जो जोर का अमल होता आया था वह अव दो मूलभूत आवश्यक वातो में परिवर्तन हो जाने से नही हो सकता, क्योकि एक तो अव पहले के जितने वडे-वडे वाजार नही रहे, और दूसरे मज़दूर, मैनेजर और मालिक में अव पहले का-सा सहयोग, अन्योन्याश्रय और सामजस्य का भाव नही रहा। श्रम-विभाग मे भी लाभ की एक सीमा है और वह सीमा हाल मे समाप्त-सी हो गई है।

गाधीजी की तजवीज मशीनो या विज्ञान का परित्याग नही करती, वल्कि वह सरल मशीनो को अवतक अप्रयुक्त मानवशक्ति के एक ऐसे विशाल भडार के सामने पेश करती है, जोकि वेकारो की भारी सेना के रूप मे उपस्थित है। वह कुछ खास मशीनो को पसन्द करते हैं, क्योकि वे जनता की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो के अनुकूल है और क्योकि उन खास मशीनो के प्रयोग से पहले ही से वडे परिमाण मे मौजूद सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयाँ तथा समस्याये और ज्यादा नही वढेंगी।

आजकल सव देशो मे सैनिक तैयारियो और कार्रवाइयो के लिए राष्ट्रीय निधियो का अनुपात और परिमाण निरन्तर वढता जा रहा है, और इस कारण लोगो के रहन-सहन का, और शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि सार्वजनिक सेवाओ का दर्जा गिरता जा रहा है। आर्थिक व्यवस्था आज उतार के युग मे है। कम-से-कम पश्चिम मे सामाजिक अवनति और सगठन निरन्तर वढ रहे है, जो पागलपन, आत्मघात और अन्य अपराधो की वढती हुई सख्या से प्रकट है। यदि कोई दूसरा विश्व-युद्ध छिड गया तो मानव-जाति को वहुत वडे पैमाने पर 'औक्युपेशनल थैरापी' (इलाज-ए-पेशा या व्यावसायिक चिकित्सा) की आवश्यकता पडेगी। खद्दर और सव किस्म की दस्तकारियाँ लोगो के लिए सव जगह ज्यादा महत्वपूर्ण होजायेंगी—आर्थिक दृष्टि से भी और चिकित्सा की दृष्टि से भी।

तब भी, हम इस सचाई की भी उपेक्षा नही कर सकते कि कल-कारखानो के सब देशो में आबादी जल्दी-जल्दी घट रही है। इस सचाई को कार-सॉण्डर्स, कुकज़िन्स्की टी० एच० मारशल, एनिड चार्ल्स, एच० डी० हेण्डरसन, आरनॉल्ड प्लाण्ट और होगबेन सरीखे अधिकारियो ने प्रमाणित कर दिया है। आबादी की इस घटती का भारी आर्थिक और सामाजिक प्रभाव सारे ससार पर, खासकर पश्चिम पर बहुत करारा और भयकर पडेगा। इस कारण भी, दस्तकारियो और विशेषकर खद्दर का प्रसार अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

अन्य विचारो के अतिरिक्त इन कारणो से भी मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि गाधीजी एक महान् समाज-वैज्ञानिक और सामाजिक तथ्यो के आविष्कर्ता है। उनकी सफलतायें देखकर मुझे एक पुरानी सस्कृत लोकोक्ति याद आती है कि "मनुष्य को चमत्कारिक शक्तियाँ कठिक काम करने मे प्राप्त नही होती, बल्कि इस कारण प्राप्त होती है कि वह उन्हे शुद्ध हृदय से करता है।" इसका अभिप्राय यह है कि उच्च, सरल उद्देश्य और उत्कट लगन ही चमत्कार दिखला सकती है। आइए, हम गाधीजी के लिए ईश्वर का धन्यवाद करे।

: १३ :

काल-पुरुष

जेराल्ड हेयर्ड

[हॉलीवुड, युनाइटेड स्टेट्स अमरीका]

पश्चिमी दुनिया ने जब यह कल्पना करनी शुरु की कि धनवान होना ही सभ्य होना है, तो यह खयाल रहा होगा कि जरूरी तौर पर ज्यो-ज्यो यन्त्र-कौशल उन्नत होगा, त्यो-त्यो कल्याण भी उतना ही बढता जायगा और सुख-समृद्धि भी स्थायी हो जायगी, लोग सब समान माने जाने लगेगे, क्योकि बेहद सामान उन्हे समान भाव से मिल सकेगा, और इस तरह उन्नति की सीमा न रहेगी।

अब जब वह थोडे दिनो की कल्पना उड रही है और वह पश्चिम का वहम साबित हुई है तब यह कहना सम्भव है कि आदमी सब बराबर नही है। प्रकृति की सबको भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक देन है और उनमें छोटे-बडे भी हो सकते है। यह भी जाहिर है कि सभ्यता अनिवार्य रूप से प्रगति ही नही करती जाती है, बल्कि उसमें उतार-चढाव दोनो आते है। कभी तीव्र ह्रास का युग भी आजाता है, तो कभी किसी विशिष्ट सृजन-शक्तिशाली अकेले व्यक्तित्व की स्फूर्ति-प्रेरणा से आकस्मिक उभार और परिवर्तन भी हो चलता है।

सत्य का यह उद्घाटन समय से एक क्षण भी पहले नही हुआ। उसका अव ऐन अवसर था। पश्चिमी दुनिया समझे बैठी थी कि एक भविष्य उसकी प्रतीक्षा मे है। वहाँ आराम, ऐश और इफरात होगी। सो वह उसीकी खमारी मे थी और मूलभूत समस्याओ के न सिर्फ हल करने मे नाकामयाव हो रही थी, वल्कि वह समस्या दिनो-दिन धीरगति से विषम होती जाती थी। वह समस्या यह है कि पृथिवी पर न्याय का और व्यवस्था का सच्चा समर्थन किस मूल नियम मे खोजा जाय और अगर हिंसा ही एकमात्र तरीका है, जिससे न्याय और अमन को कायम रक्खा जा सकता है, तो उस न्याय और अमन की सुरक्षा खुद हिंसा-विश्वासी शासक के हाथो कैसे हो? इस प्रश्न का सामना सभी वडे-वडे सुधारको को करना पडा। ईसामसीह ने शस्त्र को नही छुआ, लेकिन उनके अनुयायियो के हाथ जैसे ही लोकसत्ता आई, वैसे ही उनमे तलवार भी दीखने लगी। मुहम्मद साहव ने भी प्रीति और सेवा के धर्म का उपदेश देना आरम्भ किया था, पर वहाँ भी अत्याचार को सुगम प्रचार का साधन वना लिया गया। तो भी सिद्ध है कि खूरेजी कभी सफल नही होती, फिर उसके उचित होने का प्रश्न ही जुदा है। हर नये यान्त्रिक आविष्कार के साथ शस्त्रास्त्र अपनी हिंस्रता मे भीषण किन्तु निशाने मे अनिश्चित होते जाते है। यही वात नही है कि 'मानो या न मानो तो भी मानना ही होगा।' वात तो इससे भी आगे पहुँची है। अव लडाई का निशान तो अधाधुन्ध और गलत होता है जिसमे ऐसे लोग भी मारे जाते है, जिनका वुनियादी झगडे से कोई वास्ता नही होता। और वे भी आक्रान्ता के खिलाफ खिंच आते हैं। युद्ध कोई 'सामाजिक समस्याओ का निर्णायक' नही है। वह तो समाज मे पैठा हुआ रोग है।

अत अनेक प्रतिभाशील व्यक्तियो ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक शक्ति निर्माण करना चाहा। पहले तो वे मुश्किल से यह जानते थे कि हमे क्या करना है, परन्तु समय वीतने पर उसकी आवश्यकता अधिकाधिक अनुभव करने लगे। एक ऐसा शासन निर्माण करना था और ऐसी 'सेना' वनानी थी जो उचित, मौजूँ, अचूक और रामवाण हो। श्री इग्नेशस लोयला की मसीही सोसाइटी (Society of Jesus) ऐसे ही प्रयत्न का गणनीय उदाहरण है। इस सस्था मे ऐसे चुने हुए लोग थे, जिन्हे वुद्धि-योग की ही शिक्षा नही मिलती थी, वल्कि हृदय को भी सस्कार दिया जाता था और तरह-तरह के मनोवैज्ञानिक अभ्यासो मे गम्भीर सकल्प-शक्ति-सग्रह की शिक्षा भी दीजाती थी। अनुशासन और वडो की आज्ञा-पालन की जहाँतक वात है, सोसाइटी का सगठन फौजी तरीके का था। घर वसाने या जाने की छूट न होती थी, न पुत्र-कलत्र होसकते थे, न धन दौलत, न मान-सभ्रम। इस तरह की शिक्षा और साधना मे से तैयार करके फिर शिष्यो को एक गुरु-सेनानी के मातहत भेज दिया गया रोमन चर्च की सुधार-प्रवाह मे खोई हुई विभुता की पुन प्रतिष्ठा के लिए।

इस नई नि शस्त्र सत्ता के विकास मे अगली मंजिल पहले से भिन्न हुई । इस बार वह किसी निश्चित धर्म-मत की पुन प्रतिष्ठा का प्रयत्न करनेवाली किसी व्यवस्था रूप मे नही, बल्कि जीवन की कुछ खास समस्याओ का निराकरण करने की सफलता के रूप मे आई, जोकि अबतक हिंसात्मक उपायो से हल न हो सकी थी। पागलपन की नवीन मानसिक चिकित्सा पद्धति के उदय के साथ हम कह सकते है कि एकागी ही सही, पर अहिंसा की निश्चित विजय के लिए एक नवीन क्षेत्र खुल गया । उन्माद और मस्तिष्क-विकारो का इलाज दमन मे नही, बल्कि प्रीति मे देखा जाने लगा । अहिंसा की इस खुली शक्ति मे पागलपन का मिटाना और पागल होने के अवसरो का कम करना शक्य हुआ । पहले के रूढ और गलत हिंसक साधनो मे यह शक्ति कभी नही पाई जा सकती थी । ज़बर्दस्ती के विरोध मे युक्ति और दमन के विरोध मे प्रीति के सिद्धान्त के इस वैज्ञानिक प्रयोग से हमने बहुत-कुछ सीखा है । असभ्य और पिछडी जातियो के साथ सम्पर्क की आवश्कता सीखी, मानवता का विस्तार करना सीखा, जगली जानवरो को साधना सीखा और अपराधी को फिर समाज-योग्य बनाने की शिक्षा ली।

तो भी हिंसक-साधनो से बस मे न आनेवाले विशेष श्रेणी के मनुष्यो और पशुओ को सुधारने मे उस अहिंसक पद्धति के अपूर्व फल तो दीख पडे, पर ये फल अधिकतर व्यक्तिगत रूप में घटित और प्राप्त किये गये । जैसे कि अतिशय धर्मशील जीवन बितानेवाले क्वेकर लोगो ने जगह-जगह इसकी सफलता प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा दिखलाई थी । पर ये इक्के-दुक्के प्रयोग थे । इनमे कोई वैज्ञानिक एकसूत्रता की प्रतिष्ठा नही हुई थी । उन्हे उपयोग मे लानेवाले लोग भी युद्ध और शान्ति, या समाज-व्यवस्था अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के सामान्य प्रश्नो की अपने इस अन्वेषण, पद्धति या सफलता से कैसी सगति बैठती है, यह उस समय तक समझ नही पाये थे ।

पर इस बीच लडाई-झगडे अधिकाधिक भीषण रूप पकडते गये । उनकी सहार-शक्ति की नौबत यहाँतक पहुँची कि जिसकी सभावना भी नही थी । यहाँतक कि कल्पना भी उसपर थर्रा जाय । और जैसा कि मनुष्य-जाति के विषय मे अक्सर होता है, जैसे-जैसे उस युद्ध की विभीषिका और व्यर्थता बढी चली गई, और लोग उनके उन्माद से बच नही पाने लगे,वैसे-ही-वैसे वह युद्ध के साधन के बजाय स्वय साध्य समझा जाने लगा । जिसको पहले कारगर ज़रूरत के तौर पर अनिवार्य कहकर समर्थन करने की कोशिश की जाती थी, वह अपनेआप मे ही बडी महत्वपूर्ण और सद् वस्तु समझी जाने लगी ।

इस प्रकार की दो अतियो और दो उन्मादो के बीच सधि और समन्वय साधने-वाले एक व्यक्ति की आवश्यकता थी ही । लोग थे जो सहारक शस्त्रो की अतुल शक्ति के आगे अधे होकर झुक पडे और फिर स्वय हत्याकारी यत्रो की तरह अन्धी और उस से भी अधिक विनाशकारिणी विवेकहीन समूह-शक्ति की सत्ता के ताबे आ रहे । ठीक

ऐसे समय आवश्यकता थी उस पुरुष की जो सहार के राक्षसी यत्रो के आविष्कारको की वुद्धि से भी पैनी आविष्कारिणी वैज्ञानिक वुद्धि रखता हो, उनमे वढकर जो कुशल हो, और पारस्परिक नर-सहार के घमासान मे मरने-कटने के लिए अपनी प्रजा को भेज देनेवाले वल-वेगशाली नेताओ से भी वढी-चढी क्रिया-शक्ति का जो स्वामी हो।

इसमे सन्देह की गुजाइश नही कि इतिहासकारो को ऐसा व्यक्ति मोहनदास करमचन्द गाधी के रूप मे मिलेगा। यूरोप, एशिया और अफ्रीका के तीन महाद्वीप आपस के सम्पर्क मे आकर तीनो विक्षिप्त और विलुब्ध हो रहे थे। उस समय भारत ने इस पुरुष का दान अफ्रीका को दिया। अफ्रीका की उस भूमि पर यूरोप के विरोध मे (यूरोप के पक्ष मे कहना शायद ज्यादा सही हो) इस व्यक्ति ने अपनी प्रतिभा और सिद्धान्त का पहला व्यापक परीक्षण किया। 'पक्ष में' इसलिए कहा कि गाधी की अहिसा एक ऐसी नीति है जो स्वभाव से ही पक्ष की भाँति विपक्ष का भी हित-साधन करती और उसे सुसस्कार देती है। भारत मे जन्म लेकर यह योग्य ही था कि गाधी की अहिसा-नीति का प्रयोग-क्षेत्र अफ्रीका हो। क्योकि अहिसा की नीति की शिक्षा एक देश या जाति के लिए नही है, वरन् वह समूची मानवजाति का हक है। मानव-समाज की भिन्न-भिन्न जातियो के वीच ही नही, वल्कि सव सजीव प्राणियो के वीच निस्सन्देह एक यही (अहिसा का) सम्वन्ध या जोडनेवाली कडी सही और उचित है। अफ्रीका के वाद, जिस भारत ने अपने इस पुत्र को वाहर भेजा था, वही उसके आन्दोलन और इतिहास की रगभूमि वना। उसी भारत देश के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन मे उसका व्यक्तित्व तप और साधना से तपता हुआ अव अपनी परिपूर्णता पर आता जा रहा है। भारत वह देश है, जिसे विश्व का प्रतीक कहना चाहिए। महाद्वीप ही उसे कहे। तमाम जातियो के लोगो ओर समस्याओ की विषमता का तनाव उस देश की परिस्थिति मे प्रतिविवित और शरीर मे अनुभूत होता है। उसी देश को वह पुरुष अपना जीवन होमकर सिखा रहा है कि युग-युग से अपने प्राचीन ऋषियो की शिक्षा के सार का सामूहिक रूप से प्रयोग करके किस प्रकार स्वतन्त्रता को पाना होगा।

भविष्य मे क्या है, हम नही देख सकते। लेकिन काल अथवा देश के भी हिसाव से यह निश्शक होकर कहा जा सकता है कि अगली ही पीढी मे और हिन्दुस्तान मे ही मृत्यु और जीवन की शक्तियो का अन्तिम युद्ध होनेवाला है। एक ओर तो विनाश की शक्तियाँ होगी जो सुझायेगी कि भीरु और सम्पन्न लोगो की सुरक्षा केवल उन्हीके हाथ मे है। दूसरी ओर विधायक, निर्माणकारी शक्तियाँ होगी, जिनके कारण ऐसे नये प्रेम-मन्त्र से दीक्षित, व्यवस्थित, जागरूक और अनुशासन-वद्ध सैनिक जाकर मैदान लेगे जो मानवजाति के त्राता होगे। वे मनुष्यजाति के हित मे ऐसी एक अपूर्व विजय पाने का प्रयत्न करेगे, जिसमे वरवादी किसीकी भी नही होगी। न वन की वरवादी होगी, न समस्त मानवजाति की। हम नहीं कह सकते कि यह परिणाम

कैसे घटित होगा। फल हमारे हाथ नहीं। लेकिन इतना कह सकते हैं कि सफलता हो या असफलता हो, जो अपने दूसरे भाइयों का हित चाहते हैं और उनकी हत्या नहीं चाहते, उनके लिए राह यही और एकमात्र यही है, दूसरी नहीं, और वह राह यदि प्रशस्त होकर आज हमारे आगे खुली हुई है, तो उसका श्रेय सबसे ज्यादा उस व्यक्ति को है जो आज दिन अपने जीवन के और मानवजाति की सेवाओं के शिखर पर खड़ा है।

: १४ :

गांधी : आत्मशक्ति की प्रकाश-किरण

कार्ल हीथ

[अध्यक्ष, इण्डिया कन्सिलिएशन ग्रुप, लन्दन]

मानवता के इतिहास में अवतारी पुरुष को सदा दुर्धर्ष संघर्ष का सामना करना होता है। किसी की उक्ति है, "प्रकाश की भाँति मैं जग में आया हूँ।" किन्तु प्रकाश-पुत्रों को यह जगत् स्वागत नहीं देता, क्योंकि लोगों को प्रकाश से अधिक अन्धकार प्रिय होता है। अज्ञान, दुराग्रह और उपेक्षा ही जैसे रक्षक बनकर उन्हें बचाये रखते हों। अवतारी पुरुष इसी सुरक्षा के खोल को भंग करते और आत्मा की जय साधते हैं।

जीवनभर इस अन्धकार को छिन्न-भिन्न करके बढ़ते रहना और अज्ञान और दुराग्रह से कभी न हारना, बल्कि सदा उसे परास्त करते रहना—गांधी के चरित्र की विशेषता रही है। यही वजह है कि आज दिन हिन्दुस्तान की सर्वश्रेष्ठ आत्मा और प्रतिभा के रूप में ही उनकी दीप्ति फैली हुई नहीं है, बल्कि तमाम सहृदय मानवता के स्फूर्तिदाता ही आज वह हैं। जीवन उनका सतत साधना, तपस्या, आर्त-कातर प्रार्थना और अनेक उपवासों का लम्बा इतिहास है। ऐसा न होता तो वह इतने महान् नहीं हो सकते थे।

बहुत पहले ही मोहनदास करमचन्द गांधी ने वीरता के परम रहस्य को पा लिया था। थॉमस ए० कैम्पिस ने कहा है, "अपार धैर्य से तू शान्ति प्राप्त कर।" गांधी ने सचमुच ही उस कथन की सचाई को अपने भीतर अनुभूत किया है। जो गांधी के जीवन का अध्ययन करेंगे, उनके सार्वजनिक कृत्यों और सम्बन्धों को बारीकी से देखेंगे, वे यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकेंगे कि चाहे दूसरों के आवेश या जोश को देखकर उनके खून का दबाव बढ़कर खतरनाक हो जाय, पर उनका सहज धैर्य भंग नहीं हो सकता। धैर्य उनमें अगाध है। विरोधियों के प्रति, विदेशी सरकार के प्रति, अनगिनती दर्शनार्थियों के प्रति और स्वयं अपने अनुयायियों और शिष्यों के प्रति—

सबके प्रति—धीरज उनका अखण्डित रहता है। यह अनन्त धैर्य-धन उनका स्वत्व है, और दारुण-से-दारुण घटना या जघन्य-से-जघन्य अपराध भी उनके धीरभाव को विचलित नही कर सकता। इसका कारण कदाचित् यह हो कि भीतर आत्मा मे उनके अखण्ड निष्ठा है कि प्रभु के राज्य मे अमगल की तो कभी कोई आशका ही नही हो सकती। और मोहनदास करमचन्द गाधी उस प्रभु के राज्य के ही सेवक है।

और फिर वह सत्य के अनन्योपासक है। वह कभी गलतिया न करने का ढोग नही रचते और जब-जब भूल उनसे होगई है, अनुपम साहस के साथ उसे उन्होने स्वीकार किया है और सार्वजनिक आँखो के आगे उसका प्रायश्चित्त किया है। तीन वर्ष हुए, उन्होने लिखा था, "अब तो मेरे ईश्वर का एक ही नाम और बखान है। वह है सत्य! उससे अधिक सम्पूर्णता मै और नही जानता।" ध्यान रहे कि इस ईश-धर्म मे वह काल्पनिक सचाइयो की दुनिया मे नही जा रमते है, बल्कि इस भाँति उनकी कर्मनिष्ठा ही बढती है। "ऐसे धर्म के सच्चे अनुयायी रहने मे व्यक्ति को जीव-मात्र की सतत सेवा मे अपने को खो देना होता है।" और यह सेवा ऊपर से की जानेवाली दया-दान की सेवा नही है। "यह तो अपनी क्षुद्र बूद को जीवन के अपार महासागर मे पूरी तरह डुबोकर एकाकार कर देना है।" 'जीवन के सब विभाग उस सेवा मे समा जाने चाहिएँ।" इस तरह सत्य उनके लिए एक जीवन्त तथ्य है।

और इसलिए गाधी मे जीवन की एक अखण्डता—परिपूर्णता देख पडती है। आत्मिक ऊँचाई मे कही अलग जाकर वह नही खडे होते। यदि वह महात्मा है तो सर्वसाधारण के बीच सर्वाति साधारण भी है। दृष्टि स्पष्ट, ईश्वर के समक्ष मौन-मग्न, सच्चे अर्थ मे विनय-नम्र! ऐसा यह प्रार्थना, अध्यात्म और ईश-लगन का पुरुष एक ही साथ शरीर के काम मे भी अथक और चुस्त है। सबके प्रति सुलभ, अतिशय स्नेही और अत्यत विनोदी। वह व्यक्ति मानव सघर्ष के निकट घमासान मे भी जितना नैतिक और धार्मिक है उतना ही सामाजिक और राजनैतिक भी है।

कभी वह रहस्य की भाँति दुरधिगम्य होते हुए भी अपनी आत्मा की सरलता और विमलता के कारण सबके स्नेह-भाजन भी है। फिर अपने अन्दर का मैल तो उन्होने कोने-कोने मे धो डाला है। मैल नही तो बाहरी परिग्रह भी उनके पास नही ही जितना है। इससे उनके अपने या अन्य देशो के स्त्री-पुरुष बडी सख्या मे दूर-दूर से खिचकर उनके पास पहुँचते है। स्वत्व के नाम सब उन्होने तज दिया है। थोरो की भाँति वह कुछ न रखकर भी सब पा जाने का आनन्द उडाते है। और समूची जीव सृष्टि की सेवा के अर्थ सत्य-शोध मे अपने को गला देनेवाले वह गाधी लाखो स्त्री-पुरुषो के आश्वासन और आकाक्षा के केन्द्र-पुरुष बन गये है।

दक्षिण अफ्रीका मे अपने राष्ट्रवासियो के हक मे उनके युद्ध को याद कीजिए। उनकी अपनी हिन्दू-जाति के अछूतो—हरिजनो—के अर्थ किये उनके आन्दोलन का

स्मरण कीजिए, भारतवासियो और उनकी स्वतन्त्रता के लिए किये गये प्रयत्नो को देखिए, दीन, दरिद्र और अपढ छितरे-छाये हिन्दुस्तान के गाँवों को देखिए, सरहद के पठानो और कबीलेवालो को देखिए, मुस्लिम-हिन्दू ऐक्य या राजबंदियो के छुटकारे की बात लीजिए, सब वर्गो, जातियो, सम्प्रदायो और धर्मो के स्त्री-पुरुषो को देखिए, गोरक्षा की भावना से व्यक्त होनेवाले पशु-जगत् को लीजिए—गाधी का कर्म सब जगह व्याप्त दीखेगा। और बुराई के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध की शिक्षा उनकी जीवित और अमर सूझ है। दुनिया मे जो लोग युद्ध की जिघासा से युद्ध करने मे प्रवृत्त है, उन सबको उनके उदाहरण में आश्वासन और दिशा-दर्शन प्राप्त होगा। अपने समूचे और विविध लौकिक कर्म के बीच उस व्यक्ति ने किसीके प्रति असद्भावना को प्रश्रय नही दिया। सदा विकार पर विजय पाई और इस भाँति "भारत के और 'मानवता' के एक विनम्र सेवक" कहलाने का गौरवपूर्ण अधिकार पाया।

सत्याग्रह के सिद्धान्त को ऐसी अविचल निष्ठा के साथ उन्होने पकडे रक्खा, यह योग्य ही है, क्योकि वह स्वय आत्म-शक्ति के अवतार है। अपनी सब सामाजिक और राजनैतिक प्रवृत्तियो से परे वह प्रकृत भाव मे सदा आध्यात्मिक पुरुष ही रहे है। अत आधुनिक युग के लिए उनकी वाणी चुनौती की वाणी बनगई है, यही उनका सर्वोत्तम गुण है। इसीमे उनकी अवतारता सिद्ध है। जेल मे रहकर, त्रस्त होकर, उपेक्षा, अपमान और उपहास के शिकार बनकर भी वह मानवता की माप मे हर पग पर ऊँचे-ही-ऊँचे चढते गये।

मनुष्यो तथा अन्य जीवधारियो के प्रति उनकी मानवोचित सहृदयता के कारण इस धरती पर हर देश और हर जगह उन्हे अनेक स्नेही बन्धु प्राप्त हुए है। उनके मन मे हिन्दू और मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी, यहूदी धर्मो के लोगो के बीच कोई भेद-भाव नही है। सब उनके मित्र है और सत्य के इस अनन्त परिवार के अग है, और सत्य ही ईश्वर है। मनुष्य अथवा मनुष्येतर, अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा की भावना उनके जीवन मे ओतप्रोत है। इस युग मे सभ्य और परिपूर्ण मानवता का उन्हे नमूना समझिए।

: १५ :

मुक्ति और परिग्रह

विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग

[अध्यापक दर्शनशास्त्र, हारवर्ड-यूनिवर्सिटी]

आदमी पाता है कि आस-पास की अपनी स्थिति और अपने समाज-सबधो के कारण गोया कर्म और विचार की उसकी स्वतत्रता मे बाधा पहुँचती है। यह समस्या

सबकी समस्या है। और गाधीजी के जीवन मे जबकि इस युग के लिए अनेक शिक्षाये है, तब इस समस्या का समाधान भी वहाँ है।

अपनी सस्थाओ पर जब हम विचार करते है, तो उसका सबसे पहला असर शायद यह होता है कि हम उसके दोपो या त्रुटियो से परिचित होले, हमारी पाश्चात्य जातियो मे शिक्षित मनुष्य के लिए यह कठिन हो जाता है कि वह अमुक पथ (चर्च) से अपना सम्बन्ध स्थापित करे, क्योकि वह प्रचलित मत-पथो मे से किसी के स्वरूप को स्वीकार नही कर सकता, अथवा किसी राजनैतिक दल का सदस्य बने, क्योकि सभी दल बेवकूफी और स्वार्थ-भावना से कलकित है। दर्शन-शास्त्र के अध्ययन मे एक दृढ प्रवृत्ति यह होती है कि वह मनुष्य को इन बन्धनो से और साथ ही कुटुम्ब तथा देश के बन्धनो से भी विमुक्त कर देती है। दार्शनिक को किसी खास पक्ष का होना ही नही चाहिए। उसे पक्ष-विपक्ष से परे होना चाहिए। धर्म इस अनासक्ति को एक कदम और आगे ले जाता है। वह परमात्मा से ऐक्य स्थापित करता है, सर्वात्मैक्य की ओर लेजाता है, भेद-बुद्धियाँ नष्ट हो जाती है और सिद्धान्तत मनुष्य विश्वात्मा होजाता है। साथ ही, वह किसी उपयोग और अर्थ का भी नही रहता है।

गाधीजी अपने भगवान् को 'सत्य' के नाम से पुकारते है। यह सिद्धान्त विश्व-व्यापी है और तमाम धार्मिक मत-मतान्तरो से परे है। वह उसे 'राम' भी कहते है। राजनीति मे भी उनका मार्ग उस एकात्मदेव की ओर ही जाता है। ऐसे लोगो के साथ भी चर्चा का धरातल उन्हे सुलभ है, जो नीति और रुचि मे उनसे बहुत अधिक भेद रखते है। यह होते हुए भी उनका एक पक्ष है। लगभग यह कहा जा सकता है कि वह स्वत एक ही है। वह प्रस्तुत प्रश्नो की व्याख्या करते है, निश्चित योजनाये बनाते है और 'हरिजन' तथा दूसरे पत्रो द्वारा उन प्रश्नो के पक्ष में चर्चा चलाते है। उपयोग-हीनता और अर्थहीनता के इस तरह वह बिलकुल उलटे है।

सक्षेप मे, गाधीजी ने यह बतला दिया है कि सन्यासी की अनासक्ति राजनेता की सफलता को किस प्रकार योग दे सकती है, और सासारिक कर्त्तव्य का अगीकार और अनेकविध समारम्भो का ग्रहण किस प्रकार वैयक्तिक स्वाधीनता मे अधिक-से-अधिक योग दे सकता है। क्योकि मै जितने लोगो से मिला हूँ, उनमे से किसी का भी मुझ पर ऐसा प्रभाव नही पडा कि जिसने नित्य के जीवन मे कर्तव्य-कर्म को उतनी परिपूर्ण सहृदयता के साथ करना चाहा हो और उसके करने में अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया हो।

उनके लिए तो यह एक साधारण-सी बात है, पर यही एक वस्तु स्पष्टता के अभाव मे ससार के अधिकाश क्लेशो और मूढताओ की जड बनी हुई है। खुद हमारे अमेरिकन समाज मे ऐसे आदमी भरे हुए है जो अपने परिग्रह और तत्सबधी अपने कर्त्तव्यो से भागकर स्वाधीनता-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे है और जिस कौटुम्बिक बन्धन को

स्वीकार कर चुके, उसे तोडकर स्वाधीनता के लिए आतुर हो रहे है। अधिक क्या कहे राजनैतिक कार्यों के सघर्ष मे, सगठित धर्म मे, और यहाँतक कि अपने खुद के प्रत्यक्ष अस्तित्व से भागकर स्वाधीनता के लिए छटपटा रहे है। लोक-सत्ता लडखडाती है, क्योकि चिन्तन और मनन उसे उन व्यक्तियो की सेवा मे वचित कर देते है जो उसके भार को सबसे अच्छी तरह वहन कर सकते हो। 'अपूर्ण की महिमा' हमे अब भी सीखनी है, और सीखना है कि जो विशिष्ट या व्यक्त और एकदेशीय को छोडकर छूट जाता है, वह स्वय अस्तित्व मे ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है, क्योकि अस्तित्व सविशेष या विशेषतया व्यक्त ही है।

गाधीजी ने हमे यह सिखलाया है कि अपनी जाति के अन्दर मिली अपनी आत्मा की महत्ता के अतिरिक्त दूसरी कोई महत्ता नही है। अपने प्रान्त या क्षेत्र के अन्दर जो हमारी सार्वलौकिकता है, उससे परे कोई सार्वलौकिकता नही है। स्वपरिग्रह मे मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है, अन्य मुक्ति नही।

: १६ :

गांधी की महत्ता का स्वरूप

पादरी जॉन हेन्स होम्स

[दि कम्यूनिटी चर्च, न्यूयार्क, अमरीका]

कोई बीस वर्ष हुए होगे, मैने अमरीका की जनता के आगे यह घोषित किया था कि "गाधीजी ससार मे सबसे महान् पुरुष है।" उन दिनो मेरे देशवासी गाधीजी के बारे में कुछ नही जानते थे। हमारे पाश्चात्य समार मे उनका नाम तब मुश्किल से पहुँच पाया होगा। किन्तु उस समय मे उनका नाम इतना अधिक प्रसिद्ध होगया जितना कि किसी भी महापुरुष का हो सकता है। और अमरीकावासी इस बात को जानते है कि मैने गाधीजी को जो सबसे महान् कहा था, सो ठीक ही कहा था।

गाधीजी की महत्ता इस युग मे साधारणत ऐसी किसी वस्तु के कारण नही है जिसकी कि साधारणतया महान प्रतिभा या महिमा के अन्दर गणना हुआ करती है। न तो उनके पास बडी-बडी सेनाये है और न उन्होने किसी देश को ही जीता है। न वह कोई उच्चपदासीन राजनीतिज्ञ ही है, जो राष्ट्रो के भाग्यविधाता कहे जा सके। वह कोई दार्शनिक अथवा ऋषि भी नहीं है। उन्होने न कोई बृहत् ग्रन्थ लिखे है, न बडे-बडे काव्य। उनमे तो स्पष्ट और विशिष्ट व्यक्तित्व के वे तत्त्व ही नही है जो कि मनुष्य को, कम-से-कम बाह्यत, एक प्रभावशाली नेता बनाते है। उनकी प्रतिभा तो आत्म-शक्ति के क्षेत्र मे सन्निहित है। वही उसका होना उन्हे पसन्द भी होगा। यह उनका

'आत्मवल' ही है जिसने उन्हे अनुपम प्रभाव और नेतृत्व के पद पर विठा दिया है, और ऐसी वस्तुओ को प्राप्त कराया है जो इतिहास के थोडे-से वडे-से-वडे व्यक्तियो को छोडकर सवकी पहुँच और गति से परे है।

भारत को अन्त मे जव स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी तव उसका श्रेय जितना गाधी को दिया जायगा उतना किसी दूसरे भारतीय को नही मिलेगा। यह भी श्रेय गाधीजी को ही मिलेगा कि उस स्वाधीनता के योग्य अपने देशवासियो को उन्होने वना दिया है, और ऐसा उन्होने उनकी अपनी सस्कृति का पुनरुद्धार करके, आत्मगौरव और आत्मसम्मान की भावना को उनके अन्दर जाग्रत करके, उनमे आत्मनियत्रण का अनुशासन विकसित करके, अर्थात् उन्हे आध्यात्मिक तथा राजनैतिक दृष्टि से आज़ाद करके, किया है। इसके अलावा, उनका एक महान् कार्य अस्पृश्यो के उद्धार का है—यह अकेला काम ही उनका इतना महान् है कि जो मानव-जाति के उद्धार के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा। फिर गाधी के जीवन की श्रेष्ठ वस्तु 'अहिसात्मक प्रतिरोध' का सिद्धान्त है, जिसको उन्होने विश्व मे स्वतन्त्रता, न्याय और शान्ति प्राप्त करने के लिए एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक कला मे परिणत कर दिया है। दूसरे मनुष्यो ने जिस वस्तु को एक व्यक्तिगत अनुशासन के रूप मे सिखलाया है, गाधी ने उसे विवश के उद्धार के लिए एक सामाजिक कार्यक्रम के रूप मे परिणत कर दिया है।

गाधीजी अतीत युगो के तमाम महापुरुषो मे भी महान् है। राष्ट्रीय नेता के रूप मे वह अल्फ्रेड, वालेस, वाशिगटन, कोसियस्को, लफाइती की कोटि मे आते है। गुलामो के त्राता के रूप मे वह क्लार्कसन, विल्वरफोर्स, गैरिजन, लिकन आदि की भाँति महान् है। ईसाई धर्मग्रन्थो मे जिसे 'अप्रतिरोध' और इससे भी सुन्दर शब्द 'अमोघ प्रेम' कहा है, उसकी शिक्षा देनेवाले के रूप मे वह सन्त फ्रासिस, थोरो और टाल्स्टाय की श्रेणी मे आते है। युग-युगान्तरो के महान् धार्मिक पैगम्वरो के रूप मे वह लाओजे, वुद्ध, जरथुश्त और ईसा के समकक्ष है। सर्वश्रेष्ठ रूप मे वह मानव है, जिसके विषय मे मैने 'री-थिंकिग रिलीजन' नामक अपनी हाल की पुस्तक मे लिखा है

"वह विनम्र है, मृदुल है और वडे दयालु है। उनकी विनोदशीलता अदम्य है। उनके व्यवहार की सरलता मोहक है, उनकी सकल्प-शक्ति को कोई दवा नही सकता, उनका साहस मानो लोहा है। यद्यपि उनके तौर-तरीके शान्त और मृदुल होते है, फिर भी उनकी सच्चाई स्फटिक मणि के समान पारदर्शक है, सत्य के प्रति उनकी निष्ठा अनुपम है, खोने के लिए कुछ न होने के कारण उनकी स्थिति ऐसी है कि उनपर आक्रमण नही किया जा सकता। हरेक वस्तु का खुद जिसने उत्सर्ग कर दिया है वह दूसरो से किसी भी वस्तु को त्यागने के लिए कह सकता है। उसके जीवन से सासारिक विचार, सासारिक महत्वाकाक्षाये और चिन्ताये कभी की विलुप्त हो चुकी है। उसपर तो आत्मा का ही, जो सत्य और अहिसा के रूप मे व्यक्त है, पूर्ण अधिकार है। गाधीजी

कहते है, "मेरा धर्म-सिद्धान्त ईश्वर की मेवा और इसलिए मानव-जाति की मेवा है और सेवा का अर्थ है शुद्ध प्रेम।"

: १७ :

दक्षिण अफ्रीका से श्रद्धांजलि

आर एफ अल्फ्रेड होर्नले, एम. ए, डी लिट्
[विटवाटरसैंड यूनिवर्सिटी, जोहान्सवर्ग, दक्षिण अफ्रीका]

गाधीजी की भावना और उनके आदर्शो के प्रति जहा ससारभर से श्रद्धाजलि अर्पित हो, वहाँ कम-से-कम एक तो दक्षिण अफ्रीका के श्वेताग की ओर से भी होनी उचित ही है।

कारण कि पहले-पहल सन् १८९३ मे दक्षिण अफ्रीका मे ही गाधीजी ने भारतीय समाज का नेतृत्व किया। यहाँ रोज यूनिवर्सिटी जाते-आते रास्ते मे पडनेवाला जोहान्स-वर्ग का यह 'किला' ही उनके और उनके साथियो का पहला कारागार वना था। ट्रान्सवाल को स्वायत्त शासन के अधिकार मिल जाने पर उपनिवेश-मन्त्री के पद पर नियुक्त जनरल स्मट्स से ही उन्होने दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो के भविष्य के सम्बन्ध मे समझौते की वातचीत चलाई। निष्क्रिय प्रतिरोध की नीति को पहले-पहल वरतने और उसका परीक्षण करने का पहला अवसर भी उनको यही वर्णभेद के आधार पर वनाये कानूनो के खिलाफ उठाये गये भारतीयो के आन्दोलन मे मिला, दक्षिण अफ्रीका के वहुत-से प्रवासी भारतीयो के घरो और प्रवासी भारतीय समाज की समस्त सार्वजनिक इमारतो मे 'महात्मा' का चित्र अपना एक खास आदर का स्थान रखता है। दक्षिण अफ्रीका मे आज भी वे स्त्री-पुरुष—श्वेताग और भारतीय दोनो—जीवित है, जिन्होने उस सघर्ष मे गाधीजी का साथ दिया था और कष्ट सहन किये थे। उनका एक पुत्र वही रहकर 'इडियन ओपीनियन' नामक पत्र का सम्पादन करता है। इस पत्र की स्थापना गाधीजी ने ही की थी, और यह अब भी नेटाल की 'फिनिक्स' वस्ती से प्रकाशित होता है। यह वस्ती गाधीजी के भारतीयो की उन्नति सम्वन्धी सपनो को सच्चा करने के उद्देश्य से वसाई गई थी। आध्यात्मिक और राजनैतिक नेतृत्व के अपने स्वाभाविक गुणो का उपयोग अपनी जन्मभूमि और उसके निवासियो के लिए आरम्भ करने से पहले गाधीजी ने, निश्चय ही, दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में एक चिरस्मरणीय स्थान वना लिया था।

मैंने गाधीजी के एक श्वेताग मित्र और समर्थक जोहान्सवर्ग के ईसाई पादरी रेवरेन्ड जोसेफ़ जे० डोक द्वारा लिखित उनका दक्षिण अफ़्रीका का जीवन-वृत्त

(M K Gandhi An Indian Patriot in South Africa) पढकर यह जानने की कोशिश की कि अपने देशवासियो पर उनके नियत्रण और बहुत-से श्वेताग विरोधियो पर भी उनके गहरे प्रभाव का रहस्य क्या है ? मुझे नीचे लिखी वाते विशेष जान पडी

पहली वस्तु उनकी मानसिक शक्ति है। इस इच्छा-शक्ति द्वारा ही वह ऐसे उत्तेजना के वातावरण मे भी जबकि और आदमी लडने के लिए तैयार हो जाते और हिंसा के मुकाविले मे हिंसा का ही प्रयोग करते, वह अहिंसा के प्रति अपनी श्रद्धा पर अटल रहे। अपनी जाति की उच्चता प्रदर्शित करने और इस 'कुली' को अपनी मर्यादा वनाने के लिए गोरो ने उन्हे कितनी ही वार ठोकरे मारी, घूँसे जमाये, और गालिया भी दी, लेकिन उन्होने कभी वल-प्रयोग से वदला नही लिया। प्रेसिडेन्ट क्रूगर के घर के सामने की पटरी पर ठोकर मारनेवाले सत्री पर मुकदमा चलाने से उन्होने इन्कार कर दिया। और जब उनके अपने देशवासियो मे से उनके विरोधियो ने ही उन पर इतना वर्वर हमला किया कि वह लोहूलुहान और असहाय हो गये; तव भी उन्होने पुलिस से यह अनुरोध किया कि वह उनके हमलावरो को सजा न दे। गाधीजी ने कहा—"उनकी समझ मे वे ठीक कर रहे थे, और उनपर मुकदमा चलाने की मेरी तनिक भी इच्छा नही है।" स्पष्ट ही, दूसरो पर उनके आधिपत्य की पहली कुजी उनका आत्म-नियत्रण ही है।

दूसरी वात यह कि गाधीजी, दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो को, कडे प्रतिवन्ध लगाने पर भी, जो विदेशियो की भाति असह्य लगते थे और सिद्धान्तत नागरिक नही समझे जाते थे, अस्पृश्य वनानेवाले वहा के कानून के विरुद्ध उकसाने और उसके विरोध के लिए उन्हे सगठित करते हुए केवल अधिकार माँगकर ही सन्तुष्ट नही थे। भारतीयो मे आत्म-सम्मान की भावना पैदा करने की ओर उनका अधिक ध्यान था। उन्होने देखा कि ये भारतीय निरुत्साह और उदासीन है, अपने कष्टो का विरोध तक नही करते और चुपचाप सह लेते है। गाधीजी ने उन्हे उनके पुरुषार्थ का स्मरण दिलाया और पुरुषार्थ को ही वहाके गोरो से अपने साथ मनुष्यता का व्यवहार करने की माँग का नैतिक आधार वताया। रेवरेण्ड डोक के शब्दो मे वहांके प्रवासी-भारतीयो के भविष्य के सम्वन्ध मे उनकी कल्पना यह थी "दक्षिण अफ्रीका का भारतीय समाज ऐसा हो जिसके हित और आदर्श एकसमान हो, जो शिक्षित हो, नैतिक हो, विरासत मे मिली अपनी प्राचीन सस्कृति का अधिकारी हो, मूलत भारतीय रहते हुए भी उसका व्यवहार ऐसा हो कि अन्तत दक्षिण अफ्रीका अपने इन पूर्वीय निवासियो पर अभिमान कर सके, और इन्हे उचित और न्याय्य समझकर वे अधिकार दे जो हरेक ब्रिटिश प्रजा-जन को मिलने चाहिएँ।"

तीसरे, गाधीजी यह भली भाति जानते थे कि नेतृत्व के साथ विनय का मेल कैसे होता है। अपेक्षाकृत अधिक धनी भारतीयो के सामने उन्होने लोक-भावना का

आदर्श पेश किया। उन्हे जो कुछ मिलता वह उसे खुशी-खुशी भारतीयो के हित खर्च कर दिया करते थे। गरीबो मे वह गरीब की भाति रहते थे। एक भारतीय रियासत के प्रधानमन्त्री के पुत्र, पद, प्रतिष्ठा, अधिकार, और सुशिक्षा मे पले परिवार के लडके, इग्लैण्ड मे बैरिस्टर बनकर आये। शिक्षित यूरोपियनो के साथ बराबरी का अधिकार रखनेवाले होकर भी उन्होने अपने लिए कोई विशेष रियायतें कभी नही चाही, बल्कि दूसरे भारतीयो के साथ होनेवाले बर्ताव को ही पसन्द किया। कानून के अनुसार हरेक हिन्दुस्तानी को लाज़िमी था कि वह अपनी पहचान के लिए खास रजिस्टर मे अपना अंगूठा लगाये। वह इससे बरी किये जा सकते थे, लेकिन अपने भाइयो के सामने उदाहरण रखने के लिए उन्होने सबसे पहले खुद इसका पालन करना उचित समझा।

और, चौथी बात, हिन्दुस्तानियो को अधिकार मिलने का आन्दोलन करते हुए भी उन्होने इस बात पर हमेशा ज़ोर दिया कि जो नागरिक अधिकारो के पात्र होने का दावा करते है, उन्हे चाहिए कि वे अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए, आवश्यकता पडने पर, सामाजिक कृत्य मे भाग लेने की किसी प्रकार की मांग न होते हुए भी स्वेच्छा से अपना कर्तव्य पूर्ण करे। यही कारण था कि उन्होने बोअर-युद्ध के समय नेटाल की लडाई मे स्ट्रेचर उठाने के लिए हिन्दुस्तानियो का एक सैनिक-दल बनाना चाहा। प्रस्ताव पहले नामजूर हुआ, लेकिन पीछे मान लिया गया और हिन्दुस्तानियो ने अमूल्य सेवाये की। जनरल रॉबर्ट्स का पुत्र सख्त घायल हुआ। उसे हिन्दुस्तानियो ने ही सात मील परे शीवेली के अस्पताल मे पहुँचाया। १९०६ के जुलू-युद्ध मे यही सेवा हिन्दुस्तानियो ने फिर की। और सन् १९०४ मे जोहान्सबर्ग मे प्लेग फैलजाने के अवसर पर अगर गाधीजी फौरन उद्यम न करते तो जितनी प्राणहानि हुई, उससे कही अधिक होती।

जातीय सघर्ष के उस वातावरण मे 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के अस्त्र का सबसे पहले प्रयोग करनेवाले इस पुरुष मे ये गुण और ये भावनाये थी। उनके ही अपने शब्दो मे, उसने भारतीय विवेक-बुद्धि की समझ मे न आनेवाले कानून को मानने से इन्कार कर दिया। लेकिन एक कानून-पाबन्द प्रजाजन की भाँति कानून द्वारा दिये गये दण्ड को भुगता। वह जानते थे और कहते थे कि 'निष्क्रिय प्रतिरोध' से उनका आदर्श आधा ही स्पष्ट होता है। "उससे मेरा सारा उद्देश्य व्यक्त नही होता। पद्धति तो उससे प्रकट होती है, पर जिस 'प्रयोग' का यह केवल एक अशमात्र है, उसकी ओर कोई निर्देश प्राप्त नही होता। मेरा उद्देश्य तो यह है कि बुराई के बदले भलाई की जाय और इसीमे सच्ची सुन्दरता है।" इस भावना के अनुसार ही उनका यह दावा था कि अपने शत्रुओ से प्रेम करना तथा अपने द्वेषी और पीडको की भी भलाई करने की ईसा की आज्ञा भारतीय दूरदर्शी विचारको और धर्मप्रचारको के वचनो के सर्वथा अनुकूल ही है।

मै यहाँ 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के 'अस्त्र' के सम्बन्ध मे कुछ अपने विचार प्रकट कर दूँ। यह तो साफ है कि यह एक स्थायी सिद्धान्त बन गया है। लोगो ने इसे कई प्रकार से प्रयुक्त किया है और करेगे। व्यक्ति (जैसे कि युद्ध के समय इसके नैतिक विरोधी) व्यक्ति के रूप मे इसका प्रयोग कर सकते है। राजनैतिक और सैनिक दृष्टि से असमर्थ जन-समूह इसको एकमात्र सम्भव साधन समझकर इसपर निर्भर रह सकते है। नैतिक शस्त्र के रूप मे (शारीरिक शस्त्र के रूप मे नही), यह राजनैतिक युद्ध के धरातल को ऊँचा उठा देता है। इसके प्रयोग करनेवाले योद्धा स्वेच्छा से दुःख और अपमान सहते है और उन्हे आत्मनिग्रह और इच्छा-शक्ति असाधारण पैमाने तक बढानी पडती है। इसकी सफलता का प्रभाव यही होता है कि जिनके विरुद्ध इसका प्रयोग किया जाता है उनकी विवेक-बुद्धि पर इसका असर पडता है। 'सच्चाई उनमे ही है', यह विश्वास उनका जाता रहता है। शारीरिक शक्ति व्यर्थ हो जाती है तथा दुःख देने मे अपना हाथ रहा है, यह अनुभव करने से उत्पन्न अपने दोषी होने की एक प्रकार की भावना उनके संकल्प को ढीला कर देती है। प्रभावित करने के लिए जिनमे विवेक-बुद्धि ही न हो, ऐसे विरोधियो पर भी इस शस्त्र का कोई सफल प्रभाव हो सकता है, इसमे मुझे सन्देह है। जैसा कि समाचारपत्रो मे प्रकाशित हुआ है, गाधीजी ने जर्मनी के यहूदियो को 'निष्क्रिय प्रतिरोध' से अपनी रक्षा करने की सलाह दी है। यदि सलाह पर अमल किया जाय, तो शायद यही पता लगेगा कि नाजी बवडर-सेनाओ और उनके नेताओ की विवेक-बुद्धि पर ऐसे नैतिक दबाव का कोई असर नही होता।

और भी। चूकि निष्क्रिय प्रतिरोध एक नैतिक अस्त्र है, इस कारण समूहरूप से लोगो के लिए यह प्रायः सम्भव नहीं होगा कि वे निःस्वार्थ लगन के उस क्षेत्र तक पहुँच सके, अथवा वहाँ पहुँचकर स्थिर रह सके, जिस क्षेत्र पर पहुँचने से मनुष्य की स्वभावजन्य कलहेच्छा, क्रोध, प्रतिहिंसा, धैर्य, क्षमा और प्रेम मे बदल जाती है। इस 'रीति' का व्यवहार उसे उस 'प्रयोग' से जुदा करके जिसका कि यह केवल एक अंश-मात्र है, किया ही नही जा सकता। अर्थात् अपने शत्रुओ के प्रति प्रेम और बुराई के बदले मे भलाई करने की भावना के बगैर इसका प्रयोग हो नही सकता।

मिलकर काम करने के लिए नेता चाहिए ही, लेकिन मनुष्य-समूह को इतना ऊँचा उठाने के लिए नेता की और भी अधिक आवश्यकता है। और वह नेता साहस तथा नैतिक दृढता की साक्षात् मूर्ति ही होना चाहिए, ताकि बढे-चढे प्रचार-साधनो या बवडर-नेताओ की बन्दूको की सहायता के बिना भी वह अपने अनुयायियो को अपने आचरण और उपदेश के बल से ही साहसी और दृढनिश्चयी बना सके। ऐसे नेता विरले ही होते है। किसीके जीवनभर मे एक बार भी गाधी पैदा नही हुआ करता।

इस समय इस बात का स्मरण दिलाना रुचिकर होगा कि दक्षिण अफ्रीका के गोरे उन दिनो गाधीजी की आलोचना इसलिए करते थे कि उनको डर था कि

हिन्दुस्तानियो के निष्क्रिय प्रतिरोध की नकल कहीं यहाँके आदि-निवासी भी न करने लगे। दक्षिण अफ्रीका को 'श्वेतागो का देश' बनाने के लिए इन आदि-निवासियो को कानून और चलन दोनो के द्वारा हिन्दुस्तानियो की स्थिति से भी नीचे रक्खा जाता था और रक्खा जाता है। गाधीजी उत्तर देते थे कि बलवा हिंसा और खून-खराबी से तो नैतिक अस्त्र बेहतर ही है, इसका प्रयोग ही न्यायसगत प्रयोजन का सूचक है। इसलिए यदि आदि-निवासियो का ध्येय न्यायसगत है और निष्क्रिय प्रतिरोध के तरीके का प्रयोग करने के लिए सभ्यता की उचित मात्रा तक वे पहुँचे हुए है, तो वे वस्तुत 'मत' देने के अधिकारी है और दक्षिण अफ्रीका के अनेक जातीय तानेबाने मे उन्हे अपना स्थान नियत करने के लिए आवाज उठाने का पूरा अधिकार है।

ये तीन साल पहले की बाते है। दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी आज भी गाधीजी के नेतृत्व को याद करते है, पर जबसे वह हिन्दुस्तान लौटे, आजतक उन लोगो ने निष्क्रिय प्रतिरोध के अस्त्र का प्रयोग नहीं किया। और आदि-निवासी, अनेक बाधाओं की मौजूदगी मे भी पर्याप्त आगे बढ गये है। लेकिन कोई निश्चयपूर्वक यह नही कह सकता कि वे इस अस्त्र का प्रयोग कभी करने के लिए तैयार होगे भी तो कबतक ? क्योकि उसके लिए प्रयोक्ताओं को ऐसी असाधारण विशेषताये प्राप्त करनी पडती है। निरस्त्र वे है, पारस्परिक मतभेद उनमें है, और असहाय वे है। इसलिए अन्त में यही एक अस्त्र उनकी आशा का आधार है। परन्तु आदिनिवासी गाधी का दिन अभी नहीं निकला। इसके निकलने की कभी जरूरत भी न हो, परन्तु दक्षिण अफ्रीका के अल्पसख्यक गोरे सदा इसी कोशिश में रहते है कि यहाँके राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र की उन्नति मे किसी गैर की पहुँच हो ही न सके। इन कोशिशो का सम्भाव्य परिणाम यही होगा कि यहाँ की सारी-की-सारी गैर-यूरोपियन जातियाँ इसके विरुद्ध सगठित हो जायँगी। उस अवस्था में हो सकता है कि हिन्दुस्तानियो में से कोई गाधीजी के पद-चिन्हो पर चलता हुआ, गैर-यूरोपियनो के निष्क्रिय प्रतिरोध के मोर्चे का नेतृत्व करे।

: १८ :

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी

ऑनरेबल जान एच हाफमेयर, एम ए.
[चासलर, विटवाटरस्रैंड यूनिवर्सिटी]

प्रसिद्ध मिशनरी राजनीतिज्ञ डॉ० जॉन आर० मॉट जब पिछली बार ताम्बरम् कान्फ्रेन्स मे उपस्थित होने के लिए हिन्दुस्तान गये तो उन्होने सेगाँव में महात्मा गाधी

से भेट की। वहाँ उन्होंने जो प्रश्न गाधीजी से पूछे उनमेसे एक यह था—"आपके जीवन के वे अनुभव क्या हैं, जिनका सबसे विधायक प्रभाव हुआ ?" इसके उत्तर मे यहाँ महात्माजी के उत्तर को ही उद्धृत कर देना ठीक होगा।

"जीवन मे ऐसे अनेक अनुभव हुए है। लेकिन इस समय आपने पूछा तो मुझे एक घटना खास-तौर पर याद आती है, जिसने कि मेरे जीवन का पवाह ही बदल दिया। दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के सात दिन बाद ही वह घटना घटी। मैं वहाँ निरे जीविकोपार्जन और स्वार्थ-साधन का उद्देश्य लेकर गया था। मैं अभी इग्लैण्ड से लौटकर आया हुआ निरा लडका ही था और कुछ धन कमाना चाहता था। मेरे मवक्किल ने अचानक मुझे प्रिटोरिया से डरबन जाने के लिए कहा। यह यात्रा सुगम नही थी। चार्ल्सटाउन तक रेल का रास्ता था और जोहान्सबर्ग तक बग्घी से जाना पडता था। रेलगाडी का मैंने पहले दर्जे का टिकिट लिया। पर बिस्तर का टिकिट मेरे पास नही था। मेरित्सबर्ग स्टेशन पर जब बिस्तर दिये गये, तो गार्ड ने मुझे बाहर निकाल दिया और माल के डिब्बे मे जा बैठने के लिए कहा। मैं नही गया और गाडी मुझे सर्दी मे काँपता छोडकर चल दी। यहाँ वह विधायक अनुभव आता है। मुझे अपनी जान-माल का डर था। मैं अँधेरे वेटिंगरूम मे घुसा। कमरे मे एक गोरा था। मुझे उससे डर लगा। मैं सोचने लगा कि क्या करूँ? मैं हिन्दुस्तान लौट जाऊँ या परमात्मा के भरोसे आगे बढूँ और जो मेरे भाग्य मे बदा है, उसको सहन करूँ। मैंने फैसला किया कि यही रहूँगा और सहन करूँगा। जीवन मे मेरी सक्रिय अहिंसा का आरम्भ उसी दिन से होता है।"

इस घटना का स्मरण दक्षिण अफ्रीका निवासी को रुचिकर नही है, लेकिन गाधीजी के जीवन मे दक्षिण अफ्रीका के महत्त्व पर इससे प्रकाश पडता है। क्योकि उनमे दक्षिण अफ्रीका मे ही सत्याग्रह के सिद्धान्त की लहर उठी और वही 'हिंसा-रहित प्रतिरोध' का अस्त्र गढा गया। प्राय ऐतिहासिक घटनाये भी प्रतिफल देती है। हिन्दुस्तान ने, यद्यपि स्वेच्छा से नही, दक्षिण अफ्रीका की सबसे अधिक कठिन समस्या पैदा की और दक्षिण अफ्रीका ने, वह भी स्वेच्छा से नही, हिन्दुस्तान को सत्याग्रह का विचार दिया।

दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दुस्तानी इसलिए आये कि गोरो के हित मे उनका आना आवश्यक समझा गया। नेटाल के किनारे की भूमि मे लाभ उठाना गिरमिटिया (प्रतिज्ञाबद्ध) मजदूरो के बिना असम्भव जान पडा। इसलिए हिन्दुस्तानी आये और उन्होंने नेटाल को हरा-भरा बनाया। बहुत से वही बसकर उपनिवेश को खुशहाल बनाने लगे। फिर और भारतीय भी आते रहे। स्वतन्त्र प्रवासी भी आये और गिरमिटिया लोग भी। लेकिन समय आया और यूरोपियनो को खतरा पैदा होगया कि अपने रहन-सहन के निम्नतर मानवाले हिन्दुस्तानी हमारे एकाधिकार के किसी-किसी क्षेत्र

मे हमे मात कर देगे। वर्ण-विद्वेष के लिए इतना ही पर्याप्त था। हिन्दुस्तानियो को लार्ड मिलनर के शब्दो मे, "स्वागत के लिए अनिच्छुक समाज पर अपने आपको बलात् लादनेवाले विदेशी" कहा जाने लगा। इस द्वेष भावना का ही मेरित्सवर्ग स्टेशन पर युवक गाधी को अनुभव हुआ और उसका फल हुआ सत्याग्रह का जन्म।

दक्षिण अफ्रीका मे महात्माजी के जीवन और कार्य का वर्णन करने की आवश्यकता नही है। यह लम्बा सघर्ष था। इसमे उनके प्रतिद्वन्द्वी जनरल जे० सी० स्मट्स भी आज ससार के प्रसिद्ध पुरुषो मे से है। दोनो मे बहुत-सी समानताये थी। कुछ साल पहले मै एक उच्च सरकारी अफसर के साथ जोहान्सबर्ग के बाहर हिन्दुस्तानी और देसी बच्चो के लिए सुधार-जेल (रिफार्मेटरी) देखने गया—यह पहले जेल ही थी। मेरे साथी ने मुझे वह कोठरी बताई जिसमे तीस साल पहले गाधीजी को रक्खा गया था और तब वह एक जूनियर मजिस्ट्रेट की हैसियत मे उन्हे दर्शनशास्त्र की पुस्तके देने आये थे। ये पुस्तके उनके अफसर जनरल स्मट्स ने उपहारस्वरूप भेजी थी। बडी प्रसन्नता की बात है कि अन्त मे सारी विनाशकारिणी शक्तियो के ऊपर इन दोनो महापुरुषो के पारस्परिक सम्मान और मित्रता के भावो की विजय हुई और आज भी वह मेल बना हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी को क्या मिला? वह स्मट्स को उनका मुख्य उद्देश्य पूरा करने मे नही रोक सके—यह उद्देश्य दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दुस्तानियो के प्रवास को रोकना था। लेकिन गाधीजी इस बात में सफल हुए कि प्रवासियो के कानून मे हिन्दुस्तानियो का खासतौर पर जो अपमान होता था, उससे वे बच गये और वहाँ पहले से बसे हुए हिन्दुस्तानियो की छोटी-छोटी शिकायते भी दूर हो गई। दक्षिण अफ्रीका से लौटते समय यदि उन्होने ऐसी आशा की हो, और निस्सन्देह उन्होने की थी, कि स्मट्स के साथ हुए उनके समझौते को परिणामस्वरूप एशिया-निवासियो के विरुद्ध होनेवाले वर्ण-विरोध का नाश होजायगा तो उसमे वह जरूर निराश हुए है। दक्षिण अफ्रीका मे यह पक्षपात आज भी वैसा ही मजबूत है और इसके कई रूप तो दक्षिण अफ्रीका का नाम ही बदनाम करते है।

फिर भी, दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियो पर गाधीजी के नेतृत्व की अमिट छाप है। गाधीजी ने ही उन्हे इस योग्य बनाया कि वे निम्न जाति मे पैदा होने से लगी हुई अयोग्यताये दूर कर सके और उन्हे जातीय स्वाभिमान का ज्ञान हुआ जो अमिट रहा है। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी हिन्दुस्तानी पृथक्करण के कलक का विरोध करने के लिए उसी दृढता से तैयार है जिस दृढता से कि वे गाधीजी के झडे के नीचे अपमानजनक कानूनो के विरुद्ध लडे थे। लेकिन सबसे अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि जिन दिनो गाधीजी ने कानून तोडा, अंगूठा लगाये बिना प्रान्तीय सीमाये पार की, जेल गये और आये, उन दिनो वह वस्तुत आत्मनिग्रह का पाठ पढ रहे थे और

इसकी शक्ति तथा शस्त्र के रूप मे इसकी साधकता की परीक्षा कर रहे थे।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि दक्षिण अफ्रीका ने उस महापुरुष के विकास मे महत्वपूर्ण भाग लिया है जो केवल भारत का महात्मा ही नही, वल्कि ससार के महान् आध्यात्मिक नेताओ मे से एक होनेवाला था।

हाँ, वहाँके श्वेत शासक उस विशिष्ट परिस्थिति को शायद ही सन्तोष के साथ स्मरण करेगे, जो उस महान् आत्मा के परिवर्तन मे कारणीभूत हुई।

: १९ :

गांधी और शांतिवाद का भविष्य

लारेन्स हाउसमैन

[स्ट्रीट, सोमरसेट, इग्लैण्ड]

सफल शान्तिवाद के जीवित प्रतिवादको मे महात्मा गाधी का आसन सवसे ऊँचा है। उन्होने यह दिखला दिया है कि व्यावहारिक शान्तिवाद ससार की राजनीति मे एक शक्ति होसकती है। वल और दमन द्वारा शासन करने के हथियार मे भी यह हथियार अधिक मजवूत सावित हुआ है। दक्षिण अफ्रीका में उनको पूरी सफलता मिली। हिन्दुस्तान मे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली और अगर इसके प्रयोग करनेवालो की सख्या और अधिक होती और वह प्रयोग एकसमान हिसा-रहित होता, तो महात्मा के इस शातिमय अस्त्र की अवश्य विजय होती।

'व्यावहारिक राजनीति' के नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र मे शान्तिवाद की शक्ति के इस सफल प्रयोग की कीमत कूती नही जा सकती और स्वाधीनता मे प्रयत्नशील राष्ट्रो और जातियो के लिए तो वह भविष्य निर्देश करनेवाला प्रकाश-स्तम्भ ही है।

अहिंसा की सफलता इसलिए और भी अधिक महत्वपूर्ण माननी चाहिए कि आजतक मनुष्यजाति प्राय जिन हथियारो का प्रयोग करती आई है, उनमे यह सर्वथा निराला है और अन्याय को दूर करने के लिए हिसा को ही साधन मानने की युग से चली आई मानवीय परिपाटी के सर्वथा विपरीत है। इस प्रचलित परिपाटी के वावजूद ऐसी कठोर अग्नि-परीक्षा मे से गुजरने के लिए महात्मा गाधी को इतने अधिक और कुल मिलाकर इतने विश्वस्त लोगो का सहयोग मिला, यह वात ही इसका प्रमाण है कि महात्मा गाधी की शिक्षा मानवीय प्रकृति मे अतर्भूत मूल सत्य ही है। और न तो यह सत्य उदाहरण प्रस्तुत करने के वाद साधारण स्त्री-पुरुषो की समझ से और न महान् उद्देश्यो की साधना के लिए उसे अपनाने और व्यवहार मे लाने के उनके सामर्थ्य से परे की ही वस्तु है।

ये सब कारण है, जिनसे मेरा विश्वास है कि आज महात्मा गांधी का जीवन अनमोल है। उनकी ७१ वी जन्म-तिथि पर बधाई भेजते हुए भी इच्छा यही है कि वह कई साल छोटे होते ताकि ससार को उनके प्रकाशमान् नेतृत्व का और अधिक काल तक के लिए ठीक-ठीक आश्वासन मिल पाता।

: २० :

गांधीजी का सत्याग्रह और ईसा का आहुति-धर्म

जॉन एस० होयलैण्ड

[वुडब्रुक बस्ती, सेली ओक, बर्मिंघम]

सन् १९३८ की शरद् ऋतु के अन्त मे, मद्रास मे ईसाई राजनेताओ की एक सभा हुई थी। इसमे ससार से सब देशो पर खासकर अफ्रीका और पूर्व के नये गिरजो के प्रतिनिधि इस बात पर विचार करने के लिए कि हजरत ईसा के सन्देश की दृष्टि से दुनिया की वर्तमान समस्याओ का हल क्या है, एकत्र हुए थे। इस मदरास-कान्फ्रेन्स से पहले एक अपूर्व घटना घटी। धनी-मानी ईसाइयो मे प्रतिष्ठित इन प्रमुख ईसाई नेताओ मे से कई, रास्ता तय करके, एक हिन्दू-नेता—गाधीजी—के दर्शन और उनके चरणो में बैठकर शिक्षा लेने पहुँचे। इनका उद्देश्य गाधीजी से यह सीखना था कि हजरत ईसा के उपदेश पर आचरण करने का बेहतर तरीका कौन-सा है। यह तो निर्विवाद है कि पहले की किसी ऐसी ईसाइयो की अन्तर्राष्ट्रीय सभा के समय ईसाई नेताओ ने ऐसी बात नहीं की थी। अब जब उन्होने ऐसा किया तो इससे पहली बात तो यह प्रकट होती है कि ईसाई गलत रास्ते पर चले जा रहे है, (आधुनिक यत्रवाद और साम्राज्य-वाद से समझौता करने का ही यह परिणाम है) यह खयाल कितना व्यापक और गहरा हो चुका है और दूसरी बात यह कि हिन्दुस्तान का यह महान् ऋषि हजरत ईसा के मन की बात हमसे अधिक अच्छी तरह समझता है और उसके निर्दिष्ट मार्ग पर चलने मे भी हमसे आगे बढा हुआ है, यह विश्वास भी कितना दृढ होगया है।

इन ईसाई नेताओ से गाधीजी की जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातचीत हुई उसमें उन्होने पहले धन का प्रश्न लिया। थोडे शब्दो मे उन्होने अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहा—"मेरे विचार मे ईश्वर और लक्ष्मी की सेवा साथ-साथ नही की जा सकती। मुझे शका है कि लक्ष्मी को तो हिन्दुस्तान की सेवा करने भेज दिया गया है, और ईश्वर वही रह गये है। परिणाम इसका यह होगा कि ईश्वर अपना बदला चुका देगा। मैने यह हमेशा अनुभव किया है कि जब किसी धार्मिक सस्था के पास उसकी आवश्यकता से अधिक धन जमा हो जाता है तब यह खतरा भी हो जाता है कि कहीं वह सस्था

ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा न खो बैठे और धन पर निर्भर न रहने लगे। धन पर निर्भर रहना एकदम छोड देना होगा।

"दक्षिण अफ्रीका मे जब मैने सत्याग्रह-यात्रा शुरू की तो मेरी जेब मे एक पैसा भी नही था और मै वैसे ही बिना गहरा विचार किये आगे बढा। मेरे साथ तीन हजार आदमियो का काफिला था। मैने सोचा, "कुछ फिक्र नही, अगर भगवान् की मर्जी हुई तो वही पार लगायेगा।" हिन्दुस्तान से धन की वर्षा होने लगी। मुझे रोक लगानी पडी, क्योकि ज्यो ही धन आया, आफत भी शुरू होगई। जहाँ पहले लोग रोटी के टुकडे और थोडी-सी शक्कर मे सन्तुष्ट थे, अब तरह-तरह की चीजे मागने लगे।

"और इस नये शिक्षा-सम्बधी परीक्षण को लीजिए। मैने कहा कि यह प्रयोग किसी प्रकार की आर्थिक सहायता माँगे बिना ही चलाया जाय। नही तो मेरी मृत्यु के बाद सारी व्यवस्था तीन-तेरह होजायगी। **सच बात तो यह है कि जिस क्षण आर्थिक स्थिरता का निश्चय हो जाता है, उसी समय आध्यात्मिक दिवालियेपन का भी निश्चय हो जाता है।"**

यह अन्तिम वाक्य गाँधीजी के आदर्शवाद का सर्वोत्तम नमूना है। उन्होने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि मुनाफे की इच्छा से नियोजित कोष पर अधिकार जमाना और आर्थिक साधनो को हस्तगत करलेना किसी जीवित आदोलन का आध्यात्मिक विनाश करना है। स्वेच्छा से और स्वार्थत्याग की भावना से बने स्वयसेवक फिर उस आन्दोलन से लाभ उठानेवाले लोलुप बन जाते है और जो इससे मदद पाते और उदात्त बनते है, वे दरिद्र हो जाते है। आन्दोलन और उसका कोष बार-बार अच्छी तरह और चतुराई के साथ एक ही आदमी से दुही जानेवाली गाय बन जाते है। बुराई और पतन तब अनिवार्य हो जाते है और सब प्रकार के दभ और छल चलने लगते है।

लेखक को महामारी, दुर्भिक्ष और युद्ध के पश्चात् सहायता मे धन-वितरण का कुछ अनुभव है। उसके आधार पर उसे निश्चय है कि गाधीजी ठीक कहते है। वस्तुत जीवित आध्यात्मिक आन्दोलन, धन-सचय करने से जितना अधिक-से-अधिक बचेगा उतना ही उसका बल बढेगा। गाधीजी के इन विचारो की उत्पत्ति 'अपरिग्रह' के सिद्धान्त मे विश्वास होने से हुई है। यह सिद्धान्त फ्रान्सिस के अनुयायियो के 'स्वत्व-वाद'—वैयक्तिक सम्पत्ति—को छोडने के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है। गाधीजी के अत्यन्त समीपस्थ शिष्यो मे से एक ने सार-रूप मे यह बात यो कही है "धन उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आयगा जिसके लिए तुम अपना जीवन उत्सर्ग करने को तैयार हो, लेकिन जब धन नही होगा तो यदि तुम विमुख नही होगे तो उद्देश्य पूरा होता रहेगा, और शायद धन के अभाव मे और भी अधिक अच्छी तरह पूरा होगा।"

दूसरा—और बहुत महत्व का—प्रश्न जो ईसाई नेताओ और गाधीजी के इस वार्तालाप मे छिडा, वह यह था कि 'डाकू' जातियो मे कैसा बर्ताव होना चाहिए। हम

अंग्रेजो के लिए यह अच्छा है कि ऐसे प्रश्नो पर विचार करते हुए हम मान ले कि बहुत-से लोग हम अंग्रेजो की गिनती 'डाकू' जातियो मे करते है। यह बात, कि ब्रिटिश साम्राज्य मे नौ नई आबादियाँ मिलाने के बाद सन् १९१९ के पीछे लूट की अपनी ढेरी को बढाना हमने बन्द कर दिया है और तब से काफी सब्र और शाति से बैठे है, दूसरे राष्ट्रो का सन्तोष नही करती। इतने से ही वे यह अनुभव नही करते कि अन्तर्राष्ट्रीय लूट के नये लोलुपो से हम किसी तरह कम 'डाकू' है। जो लोग ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर शासित जातियो की दु खपूर्ण स्थिति मे है, वे खासतौर से उत्सुक है कि इस अन्तर्राष्ट्रीय डाकूपन से हमारी विवेक-बुद्धि ऊब उठे और जर्मनी, इटली तथा जापान के साथ बदाबदी से हमारा कोई लगाव न रहे।

गाधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि जिनकी अहिसा मे श्रद्धा है और इस पर कुछ-कुछ आचरण करना सीखे है उन्हे यह मानना होगा कि आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय 'डाकूपन' के इस अत्यन्त अप्रिय और भीषण रूप का मुकाबिला भी अहिसा से किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। उन्होने कहा—"बल का प्रयोग चाहे कितना ही न्यायसगत क्यो न दीखे, अन्त मे हमे उसी दलदल मे ला पटकेगा जिसमे कि हिटलर और मुसोलिनी की ताकत ला पटकती है। केवल भेद होगा तो मात्रा का। जिन्हे अहिसा पर श्रद्धा है, उन्हे इसका प्रयोग सकट के क्षण मे करना चाहिए। चाहे हम इस समय जड दीवार से अपना सर टकराते-फिरते अनुभव करे, लेकिन डाकुओ के दिल भी एक दिन पसीजेगे—यह आशा हमे नही छोडनी चाहिए।"

कुछ देर बाद बातचीत मे किसी ऐसे उत्पादक अनुभव पर विचार होने लगा जो पाप के विरुद्ध अहिसामय कार्य के लिए जीवन को निश्चित सफलता दे सके। गाधीजी ने यहाँ अपना वह कटु अनुभव[१] सुनाया जो १९वी सदी के अन्तिम दशाब्द मे दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के सात दिन बाद ही उन्हे हुआ था। इस घटना मे गाधीजी की सफलताओ के दो मूल तत्व प्रकट है। प्रथम तो भय पर उनकी विजय। पश्चिम के किसी राष्ट्र के निवासी, जो प्राय परस्पर समान भाव से रहते है, उस भय की कल्पना भी नही कर सकते जिस भय से औसत हिन्दुस्तानी किसी गोरे को देखता है—अथवा देखता था। किसानो को एक गोरा किसी दूसरे लोक से उतरकर आया प्राकृतिक शक्तियो पर दैवी प्रभुत्व रखनेवाला प्राणी लगता था। उसका आतक प्राय गुलामी पैदा कर देता था, उसके सामने कांपना और बिना आनाकानी उसकी आज्ञा मानना होता था। यह बिलकुल ठीक कहा गया है कि गाधीजी ने अपने देशवासियो को जो सबसे बडी भेट दी है वह है गोरो के सामने भयभीत होजाने की भावना पर विजय।

१ यह घटना रेलगाडी से निकाल दिये जाने तथा बाद में एक गाडीवान के ही होनेवाले हमले की है। वह श्री हाफमेयर के लेख में पृष्ठ ७६ पर विस्तार से उद्धृत की गई है।

गाधीजी ने हिन्दुस्तानियो को, खासकर किसानो को सिखाया कि गोरो के सामने सीधे खडे हो, निडर होकर उनसे आँख मिलाये और जब उनकी कोई आज्ञा देश-हित के लिए हानिकर प्रतीत हो, उसका जान-बूझकर उल्लघन करे। जैसे डर छूत से फैलता है वैसे ही निर्भयता भी। गाधीजी मे निर्भयता की भावना है और इसे दूसरो मे पहुँचाने की बडी-से-बडी ताकत भी। उन्होने भारतीय किसानो मे यह हिम्मत भरदी है कि वे अन्याय से माँगा गया लगान न दे, जिले के अफसर उनके विरुद्ध चाहे कुछ भी क्यो न करे। जो हिन्दुस्तान को जानते है, उनके लिए यह सिद्ध करने के लिए कि भय पर विजय पाने की गाधीजी के व्यक्तित्व मे अनुपम शक्ति है, यही काफी प्रमाण है।

मेरित्सवर्ग रेलवे स्टेशन पर हुई उस तेजपूर्ण घटना से दूसरी बात यह प्रकट होती है कि कष्ट-सहन से अमलन दूसरो का उद्धार किया जा सकता है—गाधीजी अपने सारे जीवन मे इसे मानते आये है। रेल के डिब्बे से निकाल दिये जाने और गाडीवान के हमले की घटना नगण्य प्रतीत होती हो, लेकिन याद रहे कि उस अपमान और पीडा को एक सकोचशील और कोमल हृदय युवक ने दूसरो के लिए स्वय साहस-पूर्वक सहन किया था। उसी दिन व्यवहाररूप मे, केवल सिद्धान्त मे ही नही, गाधीजी के सत्याग्रह का जन्म हुआ। इसका आदर्श यह है कि "कष्ट-सहन से बच निकलने की कोशिश मत करो, साहस से उसमे कूद पडो, वाहवाही लूटने या विरक्त बनने या आत्म-बलिदान कर देने के लिए नही, लेकिन इसलिए कि अगर तुम दूसरो की सहायता करने की सच्ची भावना से इन कष्टो को झेलोगे तो यह कष्ट-सहन बुराई को भलाई बना देनेवाली विधायक शक्ति बन जायगा।" लगभग तीस साल बाद अपने देश का भविष्य उज्ज्वल बनाने की इच्छा से जिस उल्लास और जोश से ढाई लाख हिन्दुस्तानी जेलो मे चले गये, वह इस नवयुवक के उस साहस का ही परिणाम था जिससे कि इस युवा ने नेटाल मे अपना यह कठोर प्रयोग किया। कोई कष्ट-सहन या अपमान ऐसा नही है, जो सद्भावना से झेला जाय तो उससे दूसरो की भलाई न हो। कारण कि सत्याग्रह किसी देश को स्वतन्त्र कराने या उसमें एकता पैदा कराने, या सैनिकवाद और युद्ध को जीतने, अथवा भ्रष्ट सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को ठीक करने का ही साधन नही है। इसका प्रभाव तो और अधिक गहराई मे पहुँचता है। यह आत्म यज्ञ का, क्रॉस का यानी अमर आहुति-धर्म का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त सत पाल के इस कथन का स्मरण दिलाता है कि "मै ईसामसीह के कष्टो की झोली भरता हूँ।" जो मनुष्य सत्याग्रह के इस सच्चे अर्थ को कुछ भी समझ लेता है वह इतिहास के लबे दृश्यो मे, सब जगह, जातियो के धीरे-धीरे होनेवाले विकास मे, उस जाति को उन्नत और जीवित रहता देखता है, जिसके अगणित व्यक्तियो ने बलिदान और कष्ट-सहन किया है। वह देखता है कि वात्सल्य जैसा कोई भाव सृष्टि मे काम करता है। पीछे वही भाव सामाजिक सहयोग के रूप मे प्रगट होता है। आरम्भ मे सहयोग धीमे-धीमे

और परीक्षण के रूप मे बढना है। बाद मे वही निश्चित प्रभाव और बलवाला हो चलता है। लेकिन यह तत्त्व जहाँ किसी भी रूप मे काम नही करता है, वहाँ दूसरो—उदाहरणार्थ अपने वशजो और बाद में अपने साथियो—की भलाई के लिए प्राय स्वेच्छा से स्वीकृत कष्टो और मृत्यु द्वारा व्यक्ति की आत्म-निग्रह की भावना साथ होती है। ज्यो-ज्यो वह मानव-इतिहास के पन्ने उलटता है, यह तत्व जैसे-जैसे समय जाता है अधिकाधिक स्पष्ट तथा प्रकाशित होता जाता है। इतिहास और उन्नति की सारी कुजी ईसा के आहुति-मार्ग में है।

इस प्रकार सत्याग्रह के जिज्ञासु को यह मानना पडता है कि गाधीजी ने अहिंसक रहते हुए दूसरो के लिए स्वेच्छा से कष्ट उठाने के आन्दोलन मे अपने देशवासियो को डालकर एक बार विश्व-विदित सिद्धान्त को प्रकट कर दिया है, जो पश्चिम की स्वार्थमय, विलासमय, और लालचभरी भावना से धुँधला पड गया था। औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ-काल मे लगभग डेढ शताब्दि तक ईसाई मजहब ने क्रॉस (कष्ट-सहन) का बहुतेरा उपदेश दिया, परन्तु सर्वव्यापी स्वार्थपरता की भावना के आगे इसकी एक न चली और यह केवल व्यक्तियो की मुक्ति का एक रूढ चिन्हमात्र रह गया है। हमारी सततियो के सामने एक भारी काम है, (और अगर यह पूरा न हो सका तो सभ्य मानवो में हमारी सतति सबसे पिछड जायगी) वह काम यह कि वे ऐसे 'क्रॉस' की खोज करे जो केवल रूढमात्र न हो, बल्कि अन्याय, युद्ध और हिंसा रोकने मे जीते-जागते अमर सिद्धान्त के प्रतीक-रूप मे हो। हमें फिर से यह सीखना है कि ईसामसीह के 'क्रास को लेकर मेरे पीछे चलो' शब्दो का असली मतलब क्या था? हमें फिर से यह सीखना है कि जिस प्रकार उसने किया उसी प्रकार हम भी स्वेच्छा से हानि, कष्ट और मृत्यु तक का आलिंगन कर सके। यह सब हमे सुधार की भावना से—मनुष्य-जाति को पाप और अन्याय से बचाने के लिए—सर्वथा अहिंसक रहकर, पीडक और अन्यायी के प्रति तनिक भी द्वेष-भावना न रखते हुए, उसके साथ 'जैसा-का-तैसा' ही व्यवहार करने की ज़रा सी कोशिश न करते हुए, करना है। और फिर यह सब नम्रता, वीरता, मित्रता तथा सद्भावना से ही करना है।

लेकिन हज़रत ईसा के जीवन से यह प्रतीत होता है कि ईश्वर का नये रूप में बोध ही हज़रत के क्रॉस उठाने का कारण था। गाधी के सन्देश में भी इसी विश्वास की भनक है। हमे एक फिर ईश्वर की नवीन सत्ता अनुभव करना है। परमात्मा की अपनी कार्यविधि ही क्रॉस और अहिंसा की विधि है। क्रास का यह मार्ग केवल कुछ जोशीले शान्तिवादियो के कोरे तरगित विचार ही नहीं है। पाप और अन्याय की सफल विजय का यही ईश्वरीय अमर मार्ग है। 'क्रास' की छाया ससार के सारे इति-हास और व्यक्ति के जीवन पर पडती है। मानवीय रगमच पर यह ईश्वर की क्रिया-त्मक इच्छा है। हज़रत ईसा ने हमें बताया कि परमेश्वर फ़िज़ूलखर्च लडके के बाप

की नाई गलती करनेवाले का भी स्वागत उदारतापूर्वक बिना डॉट-डपट करता है। वह भले चरवाहे की भाँति अपनी एक भी भटकी भेड को ढूंढने और बचाने के लिए घर से आराम को छोडकर जगलो, पहाडो, आधी और पानी मे घूमता फिरता है। अन्याय या बुराई के विरुद्ध ऐसी कार्यवाही करना परमेश्वर की इच्छा है, उसका अपना स्वभाव और स्वरूप है।

परमेश्वर उद्धार करनेवाली सद्भावना की साधना, और रक्षा मे प्रयत्नशील 'प्रेम' है, जो दुखिया की खातिर अपने ही आप कष्टो, खतरो और मौत तक को अपने ऊपर ओढ लेता है और तबतक ओढ लेता है जबतक कि इस पीडित ससार की रक्षा नही हो जाती। ईश्वर के इस स्वरूप को हमे हिसाब मे लाना है और यदि समय रहते युद्ध-विग्रह और दरिद्रता तथा मानवता के दूसरे अभिशापो को जीतना है तो सारी मनुष्य-जाति को भी उसका हिसाब लगाना होगा।

गाधीजी से एक प्रसिद्ध ईसाई नेता (डा जॉन आर मॉट) ने पूछा कि आपत्ति, सन्देह और सशय के समय उन्हे अत्यधिक सतोष किससे हुआ है? उन्होने उत्तर दिया—"परमात्मा मे सच्ची श्रद्धा से।" परमेश्वर किसीको साक्षात् आकर दर्शन नही देता, वह तो कर्मरूप मे प्रकट हुआ करता है। इस सम्बन्ध मे गाधीजी ने अस्पृश्यता-निवारण-विषयक अपने इक्कीस दिन के उपवास का अनुभव बताया। यदि हम परमेश्वर की इच्छा को पूर्ण करने के लिए कृतसकल्प है तो वह स्वय अपने ही तरीके से पथ-प्रदर्शन करेगा। हजरत ईसा ने एक जगह कहा था—"वह जो परमेश्वर की इच्छा का अनुसरण करता है, उसे सच्चा उपदेश अवश्य मिलेगा।" और क्रूसारोहण से ठीक पहले अपने शिष्यो के पैर धोकर जब उसने हाथ से तुच्छ-से-तुच्छ सेवा करने के महान्, पर भूले हुए सस्कार को फिर से प्रतिष्ठित किया तब उसने कहा—"यदि तुम्हारे गुरु ने तुम्हारे लिए यह किया है तो तुम्हे भी यह करना चाहिए। जो आदर्श **मैंने** तुम्हारे सामने पेश किया है उसको समझकर **उसपर चलने से** तुम सुखी रहोगे।" आचरण मे ईसा की समानता करने से ही हम अपने जीवन के चरम उद्देश्य को पा सकते है, और विश्व के सर्वोपरि ध्येय के साथ ऐक्य अनुभव कर सकते है।

महात्मा गाधी ने इस बात पर भी जोर दिया कि अगर असत् को जीतने मे जीवन को सचमुच समर्थ बनाना है तो इसके लिए 'मौन' भी बहुत जरूरी है। उन्होने कहा, "मै यह कह सकता हूँ कि मै अब सदा के लिए मौन जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति हूँ। अभी कुछ ही दिन पहले मै लगभग दो महीने पूर्णत 'मौन' मे रहा और उस मौन का जादू अभी भी हटा नही है। आजकल शाम की प्रार्थना के समय से मै मौन ले लेता हूँ और दो बजे जाकर मिलनेवालो के लिए उसे छोडता हूँ। आज आप आये तभी मैने मौन तोडा था। अब मेरे लिए यह शरीरिक और आध्यात्मिक—दोनो प्रकार से औषध हो गया है। पहले-पहल यह मौन काम के बोझ से छुटकारा पाने के लिए किया

गया था, तब मुझे लिखने का समय चाहिए था। पर कुछ दिन के अभ्यास से ही इसके आध्यात्मिक मूल्य का भी मुझे पता लग गया। अचानक मुझे सूझा कि परमेश्वर से नाता बनाये रखने का मौन ही सबसे श्रेष्ठ मार्ग है। और अब तो मुझे यही प्रतीत होता है कि मौन मेरे स्वभाव का ही अंग है।"

गांधीजी के भीतर काम कर रही सत्यपरायणता की सफल शक्ति का दृढ आध्यात्मिक आधार क्या है, यह इन शब्दो से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। परमेश्वर में लवलीन हो जाने के इन धीर क्षणो में ही गांधीजी को पैगम्बर और ऋषियो की-सी दिव्य शक्ति प्राप्त होती है और इस शक्ति से ही उनका अपने प्रेमियो और अनुयायियो पर असाधारण अधिकार है।

बाद में और एक अवसर पर गांधीजी ने कुछ अन्य ईसाई नेताओ से, जो हाल की मदरास की परिषद् मे इकट्ठा हुए थे, हम सभीको फिर से लडाई मे और इस प्रकार विद्वेष और हिंसा-पूर्ण उन्माद में झोक देनेवाले भावी अन्तर्राष्ट्रीय महासकट से मनुष्यजाति को बचाने की समस्या के विविध पहलुओ पर विचार किया। सभ्यता की जडो को खा जानेवाली 'नपुसकता की ज़िल्लत' से सभ्यता की रक्षा कैसे की जा सकती है? पश्चिम की सभ्यता करीब दो हज़ार बरस से ईसा का सन्देश सुन रही है, पर इतने अन्तर मे भी वह उस सन्देश पर अमल नही कर सकी। इसलिए आज वह हमारी आँखो के आगे ही नष्ट हो रही है। आज क्या हो रहा है और क्या-क्या होने वाला है, इसके सम्बन्ध में सारे पश्चिम में गहरी बेचैनी है। इसलिए यह उचित ही था कि ये ईसाई नेता उस व्यक्ति के चरणो मे आते जिसने कि ईसा के उपदेश के केन्द्रीय तत्त्व—स्वेच्छा से अंगीकृत कष्टो से उद्धार करनेवाले आत्म-बलिदान—को एक बार फिर से जीता-जागता रखने का प्रयत्न करना स्पष्टरूप से अपना ध्येय बनाया है। और इस प्रकार उस पूर्वकालीन विश्वव्यवस्था की पुनर्सृष्टि की है, जो कई प्रकार से जीर्ण-शीर्ण हो चुकी थी। इस महापुरुष के उद्योग से इस गैर-ईसाई वातावरण और परिस्थिति मे भी उत्पादक रूप से विजयी होकर ईसा का 'आत्म बलिदान'—क्रॉस—फिर एक बार जीवित हो उठा है।

क्या हम आशा न करे कि पश्चिम यद्यपि आर्थिक क्रान्ति के शुरू होने के समय से आजतक पीढियो से अबाधित धन-तृष्णा के पीछे दौड-दौड कर पक्का हो रहा है तो भी 'क्रॉस' का सन्देश फिर कुछ कर दिखायगा और क्रॉस का यह पुनर्जीवन समय रहते सर पर मँडराते हुए सर्वनाश से हमें बचा लेगा?

गांधीजी से एक दर्शनार्थी सज्जन ने पूछा कि आपने भारत के लिए जो कुछ किया है उसका प्रेरक उद्देश्य कैसा है? क्या वह सामाजिक है, राजनैतिक है अथवा धार्मिक? गांधीजी का कार्य इन तीनो क्षेत्रो मे इतना फैला हुआ है और हिन्दू-समाज की मूल रचना और हिन्दुस्तान की राजनैतिक स्थिति दोनो पर उनका इतना

गहरा रग चढा हुआ है कि यह प्रश्न स्वाभाविक था ।

गाधीजी ने उत्तर दिया—"मेरा उद्देश्य विशुद्ध धार्मिक रहा है ।. .सम्पूर्ण मनुष्यजाति के साथ एकीकरण किये बिना मैं धार्मिक जीवन व्यतीत नही कर सकता, और मनुष्यजाति से एकीकरण राजनीति मे हिस्सा लिये विना सम्भव नही । आज तो मनुष्य के सब व्यापारो का समूह एक अखण्ड इकाई है । इन्हे सामाजिक, राजनैतिक या विशुद्ध धार्मिक आदि नितान्त पृथक् भागो मे नही बाँटा जा सकता । किसी धर्म का मनुष्य के क्रिया-कलाप से पृथक् होना मेरी समझ मे नही आता । इससे मनुष्य के उन दूसरे कार्यो को नैतिक आश्रय मिलता है जो अन्यथा अनाश्रित रहते हैं । इस नैतिक आधार के अभाव मे तो जीवन गर्जन-तर्जन मात्र रह जाता है, जिसका कोई भी मूल्य नही होता ।"

इस सम्बन्ध मे गाधीजी से प्रश्न किया गया कि आपके सेवाभाव का प्रवर्त्तक क्या है—अगीकृत कार्य के प्रति प्रेम या सेवा की पात्र जनता के प्रति प्रेम ? गाधीजी ने विना हिचकिचाहट के उत्तर दिया, "मेरा प्रेरक कारण तो जनता के प्रति प्रेम ही है । लोक-सेवा के विना उद्देश्य-सिद्धि कुछ भी अर्थ नही रखती ।" गाधीजी ने उदाहरण-स्वरूप वर्णन किया कि वह किस प्रकार वचपन से ही अस्पृश्यो से सहानुभूति रखने और उनकी उन्नति का प्रयत्न करने लग गये थे । एक दिन उनकी माता ने उन्हे एक अत्यज वालक के साथ खेलने से रोक दिया था । इससे उनके मन मे तर्क-वितर्क उठने लगे और "मेरे विद्रोह का वह पहला दिन था ।"

"पश्चिम मे तो आपकी अहिसा का इतना व्यापक या सफल प्रयोग होना सम्भव नही दिखाई पडता, फिर भी उसके वारे मे जो आपका रुख है उसको कुछ अधिक विस्तार से समझायँगे ?" यह पूछने पर गाधीजी ने कहा—"मेरी राय मे तो अहिसा किसी भी रूप या प्रकार मे निष्क्रियता नही है । मैने जहाँ तक समझा है, अहिसा ससार की सवसे अधिक क्रियाशील शक्ति है अहिसा परम धर्म है । अपने आधी शताब्दि के अनुभव मे कभी ऐसी परिस्थिति नही आई जव मुझे कहना पडा हो कि अब मैं यहाँ असमर्थ हूँ, अहिसा के पास इसका इलाज नही है ।

"यहूदियो के ही सवाल को ले लीजिए । इनके सम्वन्ध मे मैने लिखा है । अहिसा के पथ पर चलनेवाले किसी यहूदी को अपने आपको असहाय महसूस करने की जरूरत नही । एक मित्र ने अपने पत्र मे मेरी इस वात पर ऐतराज किया है कि मैने यह मान लिया है कि यहूदियो की भावना हिसामय थी । यह ठीक है कि उन्होने शरीर से हिंसा नही की, परन्तु उनकी वह अहिसा व्यवहार मे नही आई, अन्यथा अधिनायको (डिक्टेटरो) के कुकृत्यो को देखकर भी वे कहते, 'हमे इनके हाथ से दुख तो मिलता ही है, इनके पास इससे अच्छा और क्या है ! परन्तु यह दुख उस ढग से हमे नहीं झेलना जिस ढग से वह चाहते है ।' यदि एक भी यहूदी इसपर अमल करता तो वह

अपना स्वाभिमान बचा लेता और एक उदाहरण छोड जाता। और वह उदाहरण यदि सक्रामक बन जाता तो सारी यहूदी कौम की रक्षा ही नही करता, बल्कि मनुष्य-जाति के लिए भारी विरासत भी बन जाता।

"आप पूछेंगे कि चीन के बारे मे मेरी क्या राय है ? चीनियो की किसी दूसरे राष्ट्र पर आँखें नही है। राज्य बढाने की उनकी इच्छा नही है। शायद यह सच है, कि चीन हमला करने के लिए ही तैयार नहीं है। और शायद जो उसकी यह शान्ति-वृत्ति मी दीखती है वह वस्तुत उसकी जडता हो। हर सूरत मे चीन की यह अहिंसा व्यवहार में नही आई है। जापान का बहादुरी से मुकाबिला करना ही इस बात का काफी प्रमाण है कि चीन कभी इरादतन अहिंसक नहीं रहा। चीन आत्मरक्षा के लिए लड रहा है, यह जवाब अहिंसा के पक्ष मे नहीं है। इसीलिए जब उसकी व्यावहारिक अहिंसकता की परीक्षा का अवसर आया, तो चीन इसमे असफल हुआ। यह चीन की कोई टीका नही है। मैं तो चीनियो की विजय चाहता हूँ। प्रचलित माप से तो उसका वर्ताव बिलकुल सही हो, पर जब परख अहिंसा की कसौटी से की जाय, तो कहना पडेगा कि ४० करोड जनसख्या वाले चीन-जैसे सुसभ्य राष्ट्र को, यह शोभा नहीं देता कि वे जापानियो के अत्याचार का प्रतिकार जापानियो के तरीके से ही करे। यदि चीनियो मे मेरे विचारानुकूल अहिंसा होती, तो जापान के पास विध्वस के जो नवीनतम यत्र है, चीन को उनका प्रयोग करना ही नही पडता। चीनी जापान से कहते—"अपनी सारी मशीनरी ले आओ, हम अपनी आधी जन-सख्या तुम्हे भेंट करते है, लेकिन बाकी २० करोड तुम्हारे आगे घुटने नही टेकेगे।" चीनी अगर यह करते तो जापान चीन का गुलाम बन जाता।"

महात्मा गाधी का अपने अहिंसा के विश्वास का इससे और अधिक असदिग्ध वर्णन क्या हो सकता है ? अधर्म के स्थान पर—चाहे फिर वह अधर्म उस प्रकार का भी क्यो न हो, जैसा आज चीन सहन कर रहा है—धर्म-स्थापना करने की युद्ध की पद्धति मे दोष यह है कि यह 'शैतान को शैतान से हटाने' का प्रयत्न है। इसमें मनुष्यो को जला देना, गोली मार देना, उनके हाथ-पैर तोड देना, यातना देना आदि पाप कृत्यो के प्रयोग से इन्हीं साधनो से काम लेनेवालो का प्रतिकार करना होता है। इस प्रक्रिया से वह पाप-सकल्प मिट नही सकेगा जिसने प्रथम आक्रमण होने दिया है। इससे तो पाप-सकल्प और अधिक दृढ और अधिक भयानक बनता है। अन्याय को हटाकर न्याय को उसके आसन पर बिठाने के लिए सफल पद्धति यह नही है कि शैतान को शैतानियत से मात किया जाय, हिंसा का अन्त करने के लिए और हिंसा की जाय—यह तो मूर्खतायुक्त और मूलत व्यर्थ पद्धति है। अत्याचार की भावना को मित्रता की भावना में बदलने के लिए स्वेच्छा से कष्ट-सहन करने की सद्भावना ही सफल पद्धति है। गाधीजी ने इस जगह शैली की 'मास्क ऑव अनार्की' कविता की प्रसिद्ध

पक्तियाँ[१] दोहराई। काश कि लोग उन्हे और अच्छी तरह समझ पाते!

शात और स्थिरमति रहकर वन की भाति सघन और नि शब्द खडे होजाओ। हाथ जुडे हुए हो, और आँखो मे तुम्हारे ही अविजित योद्धा का तेज हो।

और, तब यदि अत्याचारी का साहस हो तो आने दो, मचाने दो उसे मार-काट। बोटी-बोटी करे तो करने दो, उसे मनचाही मचा लेने दो।

और तुम बद्धाञ्जलि और स्थिर दृष्टि से, बिना भय और बिना आश्चर्य, उनकी यह खूँरेजी देखते रहो। आखिर क्रोधाग्नि उनकी बुझ जायगी।

तब वे जहाँ से आये थे, वही अपना-सा मुँह लिये लौटेगे। और वह रक्त, जो इस तरह बहा था, लज्जा मे उनके चेहरे पर पुता दीखा करेगा।

उठो, जैसे नीद से जगा शेर उठता है। तुम्हारी अमित और अजेय सख्या हो। बेडियाँ झिटक कर धरती पर छोड दो, जैसे नीद मे अपने पर पडी ओस की बूँद ऊपर से छिटक देते हो। अरे, तुम बहुत हो, वे मुट्ठीभर है।

१ मूल अग्रेजी पद्य इस प्रकार है —

Stand ye calm and resolute,
Like a forest close and mute,
With folded arms and looks which are
Weapons of unvanquished war
And if then the tyrants dare,
Let them ride among you there,
Slash, and stab, and maim, and hew—
What they like, that let them do
With folded arms and steady eyes,
And little fear, and less surprise,
Look upon them as they slay,
Till their rage has died away
Then they will return with shame
To the place from which they came,
And the blood thus shed will speak
In hot blushes on their cheek
Rise like lions after slumber
In unvanquishable number—
Shake your chains to earth, like dew
Which in sleep has fallen on you—
Ye are many, they are few,

अब सवाद इसी विषय के एक दूसरे अग पर चला गया। गाधीजी ने कहा—"यह शका की गई है कि यहूदियो के लिए तो अहिंसा ठीक हो सकती है, क्योंकि वहाँ व्यक्ति और उसके पीडक में शारीरिक सम्पर्क सम्भव है। लेकिन चीन में तो जापान दूरभेदी बन्दूकों और वायुयानो से पहुँचता है। आसमान से मृत्यु की बौछार करनेवाले तो कभी यह जान ही नही पाते कि किनको और कितनो को उन्होंने मार गिराया है। ऐसे आकाश-युद्धो में जहाँ शारीरिक सम्पर्क नही होता, अहिंसा कैसे लड सकती है ?

"इसका उत्तर यह है कि जीवन-मृत्यु का सौदा करनेवाले बमो को ऊपर से छोडनेवाला हाथ तो मानवीय ही है और इस हाथ को चलानेवाला पीछे मानवीय हृदय भी तो है। आतकवाद की नीति का आधार यह कल्पना ही है कि पर्याप्त मात्रा मे इसका उपयोग करने से उत्पीडक की इच्छानुसार विरोधी को झुका देने का अभीष्ट सिद्ध होता है। लेकिन मान लीजिए कि लोग निश्चय कर लेते है कि वे उत्पीडक की इच्छा कभी पूरी न करेंगे, और न इसका बदला उत्पीडक के तरीके से ही देंगे, तब पीडक देखेगा कि आतक से काम लेना लाभदायक नही है। उत्पीडक को पर्याप्त भोजन दे दिया जाय, तो समय आयगा कि उसके पास अत्यधिक भोजन से भी अधिक इकट्ठा हो जायगा।

"मैंने सत्याग्रह का पाठ अपनी पत्नी से सीखा। मैंने उसे अपनी इच्छा पर चलाना चाहा। एक ओर तो उसने मेरी इच्छा का दृढ प्रतिवाद किया और दूसरी ओर मैंने अपनी मूर्खतावश उसे जो कष्ट पहुँचाये उसने उन्हे शान्ति से सहन किया। इससे मैं अपने से ही लजाने लगा और 'मै उसपर शासन करने के लिए ही जन्मा हूँ।'—यह सोचने का मेरा पागलपन जाता रहा, तथा अन्त में वह अहिंसा में मेरी शिक्षिका बन गई। जिस सत्याग्रह की नीति का वह सरल भाव ही से अपने मे अभ्यास कर रही थी, उसका विस्तारमात्र ही मैंने दक्षिण अफ्रीका में किया था।"

सत्याग्रह का यह दूसरा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह एक ऐसा आन्दोलन और विधायक नियम है, जिसमे स्त्रियाँ पुरुषो के साथ समान भाग ले सकती है। इतना ही नही, इस आन्दोलन मे स्त्रियाँ ही नेतृत्व करने में विशेषरूप से योग्य है। अनगिनती सदियो से स्त्रीत्व का उत्कृष्ट गस्त्र धीरता से कष्ट सहन करना और साथ ही हिंसा और अत्याचार के विरुद्ध स्पष्टवादिता और निर्भीकता से डटे रहना रहा है। अब उसको यह भार सौपा जा रहा है कि वह उसी भावना और पद्धति को ससार के बचाने का मूल साधन बनाये।

आइए, यहा हम सत्याग्रह की चार आधारभूत बातो का स्मरण करें

(१) ससार में अन्याय खुलकर खेल रहा है।

(२) अन्याय को मिटाना चाहिए।

(३) अन्याय को हिंसा से नही मिटाया जा सकता। हिंसा से तो कुत्सित सकल्प और अधिक गहराई तक पहुँचकर ज्यादा मजबूत होजाता है और इसे निर्दयता से क्यो न कुचला गया हो, एक-न-एक दिन इसका कई गुनी हिंसा के साथ फूट निकलेना अनिवार्य होजाता है।

(४) अन्याय का प्रतिकार यही है कि इसे धीरता से सहन किया जाय। इसका अर्थ है सद्भावना से स्वेच्छापूर्वक अन्यायजनित दु ख—मृत्युतक—को भी आमत्रित करना। सत्य की वेदी पर किसी एक सत्याग्रही का जीवन बलिदान होजाने पर भी ऐसी भावना को अनिवार्यत पुनर्जीवन मिलता है।

इन चार मूलभूत आदर्शो का जहाँतक सम्बन्ध है, स्त्री अनन्तकाल से इन्हे जानती है और सत्याग्रह का प्रयोग करती रही है। जिस अत्याचार को उसने अपने ऊपर झेला है उसने स्त्री के अन्त करण को अन्याय का बलात् अनुभव करवाया है। क्रमश उसे ज्ञान हुआ और उसने कुछ भी देकर इस अन्याय का अन्त करने के लिए उसे कटिबद्ध कर दिया। वह हिंसक उपायो से इस अन्याय का अन्त नही कर सकती। और स्त्री-पुरुष सम्बन्धी समस्याये ऐसे तरीको से हल हो सकती है, इसकी कल्पना भी न करने की समझ तो उसमे है ही। उसने कार्य की दूसरी ही प्रणाली पकडी, अत्याचार घर मे हो या राष्ट्रीय राजनैतिक क्षेत्र मे—उसका अविचल भाव से साहस-पूर्वक प्रतिरोध किया जाय। स्त्री ने—न केवल स्त्री-आन्दोलन की नेत्रियो ने, बल्कि लाखो साधारण स्त्रियो ने भी—दूसरो की खातिर कष्टो को स्वय वरण करने की भावना से अत्याचार की कठोरतम यत्रणाओ को उद्धार की दृष्टि से सहन करने की आदत डाली। बच्चो की उत्पत्ति, उनके लालन-पालन आदि प्राणि-विद्या-सम्बन्धी मानवीय स्वभाव के मूलभूत नियम स्त्री का सत्याग्रह की मान्यताओ से केवल घनिष्ट परिचय ही नही करा देते, उन्हे अमलन सत्याग्रही भी बना देते है, चाहे ईसामसीह या उनके 'क्रॉस' को एकबार फिर से जीवित शक्ति बना देने का प्रयत्न करनेवाले हमारे युग के नेताओ का भले ही उन्होने नाम भी न सुना हो। बच्चे का जन्म ही स्वय वरण किये कष्ट मे से होता है और उसका लालन-पालन दूसरो के लिए सबकुछ सहन करनेवाले प्रेम से प्रेरणा पाता है।

इसलिए यीशु के 'क्रास' के सिद्धान्त का हमारे कामो में व्यापक-से-व्यापक रूप में उपयोग करने का गाधीजी का अनुरोध वस्तुत स्त्रियो के लिए इन आदर्शो के विश्वव्यापी कहे जा सकनेवाले नेतृत्व के लिए आगे बढकर मनुष्य जाति के बडे-बडे अभिशाप, दरिद्रता, उत्पीडन, युद्ध-विग्रह का अन्त करने का आमन्त्रण है।

हम दुनिया मे जी-भर रहे है, यही इसका प्रमाण है कि केवल प्रसव-वेदना के समय ही नही, बल्कि हमारे बचपन की प्रतिदिन की हजारो भूली हुई घटनाओ मे भी हमारी माताओ ने सत्याग्रह किया है, 'क्रॉस' के पथ का अनुसरण किया है। उन्होने

स्वेच्छा से और खुशी-खुशी हमारे लिए भी कष्ट उठाया, क्योकि उन्हे हमसे प्रेम था। हमे यही आमन्त्रण है कि हम खुशी-खुशी कष्ट-सहन की इसी भावना से मनुष्य-जाति की रक्षा के लिए आगे वढे। यदि हम मनुष्यो मे कुछ भी समझ है तो हमें यह महसूस होगा कि स्त्रिया तो इस दिशा मे हमसे वहुत आगे वढ चुकी है, और इसलिए वे यहाँ हमारा नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन कर सकती है। उनके नेतृत्व के विना हम निश्चय ही असफल होगे।

गाधीजी के एक मुलाकाती ने तव उनके सामने अधिनायकत्व (डिक्टेटरशिप) की समस्या पेश की। कहा, "यहाँ तो किसी नैतिक अपील का तनिक भी असर नही होता। यदि अधिनायको मे आतकित जन उनका अहिंसा से मुकाविला करे, तो क्या यह उनका उनके अधिनायको के हाथ मे खेलना नही कहलायगा? क्योकि अधिनायकत्व तो लक्षण से ही अनैतिक है। तो क्या इनके मामले मे भी नैतिक परिवर्तन का सिद्धान्त लागू होने की आशा है?"

गाधीजी का इस सम्वन्ध का उत्तर भी अत्यन्त हृदयग्राही था। उन्होने कहा—"आप पहले ही यह मान लेते है कि अधिनायको का उद्धार नही हो सकता। परन्तु अहिंसा की श्रद्धा का आधार ही यह धारणा है कि यथार्थत मनुष्य-प्रकृति एक है, इसलिए वे अवश्य प्रेम का प्रतिदान प्रेम से ही देगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि इन अधिनायको ने जव कभी हिंसा का प्रयोग किया है, उसका जवाव तत्काल हिंसा से ही दिया गया है। अवतक उन्हे यह अवसर नही मिला कि कभी सगठित अहिंसा से किसीने उनका मुकाविला किया हो। कभी साधारणत किया भी हो, तो पर्याप्त परिमाण मे ऐसा कभी नही हुआ। इसलिए यह केवल वहुत सम्भावित ही नही है, मै तो इसे अनिवार्य समझता हूँ कि वे अहिंसामय प्रतिरोध को हिंसा के अपने भरसक प्रयोग से भी अधिक और उदात्त अनुभव करेगे। फिर अहिंसा-नीति अपनी सफलता के लिए अधिनायक की इच्छा पर निर्भर नही होती। कारण कि सत्याग्रही तो उस परमात्मा की अचूक सहायता पर निर्भर होता है, जो अन्यथा दुस्तर दीख पडनेवाली विपत्तियो मे उसे सहारा देती है। परमात्मा मे श्रद्धा सत्याग्रही को अदम्य वना देती है।"

यहाँ फिर हमे पता लगता है कि ईसा के 'क्रॉस के आदर्श' की भाँति गाधीजी का सत्याग्रह आदर्श कितना धर्म-प्रधान है! हमे अत्याचार और दमन मे होनेवाले कष्ट की याद मन मे लेकर नही चलना है, क्योकि वह कटु हागी। हमें परमात्मा पर निगाह रखकर चलना आरभ करना है। हमे यहाँ सवसे पहले इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि मै परमात्मा की 'इच्छा' किसे समझता हूँ और परमत्मा को मैं किस प्रकार का मानता हूँ? यदि इस प्रश्न के उत्तर मे हम यह मानते है कि परमात्मा और वह स्वय तो मुक्ति और न्याय मे चलता ही है, वल्कि उस मुक्ति और न्याय को मानव-प्रकृति मे सर्वोच्च आसन भी देना चाहता है, तव हमे उतना ही और करना।

रहता है कि हम इस परमपिता परमात्मा का हाथ थाम ले—और हम ईसाई तो सक्षेप मे यह कह सकते है कि वह परमात्मा और हमारे प्रभु ईसामसीह का पिता है। यदि हम इस प्रकार उसका हाथ पकड ले (और थोडी ही देर मे हमे ऐसा लगेगा कि यथार्थ मे उसने ही हमारा हाथ पकडा है) तो हमे वह 'क्रॉस' पथ पर लेजायगा—यर्थात् दूसरो को पीडा और अन्याय से छुडाने की खातिर सदिच्छा, अथवा दूसरे शब्दो में ईश्वरेच्छा, के विरुद्ध होनेवाले उत्पीडन और अन्याय के निकृष्टतम परिणाम को अहिसक रहकर, स्वेच्छा से सहन करने का मार्ग दिखायगा।

हमारे मार्ग का उद्गम परमेश्वर है। हमारे सब वाद-सवादो और हमारी सब योजनाओ के पीछे परमात्मा की सत्ता है। यदि हम उसे कुछ गिनें ही नहीं, तो निस्सन्देह हम असफल रहेगें। और यदि वह एक जीवित परमेश्वर है तो, जैसा कि गाधीजी बताते है, मौन मे ही उसकी खोज करनी चाहिए। कारण कि अत्यन्त ललित भाषा मे उससे कुछ कहना कुछ महत्व नही रखता, बल्कि महत्व की बात यह है कि परमेश्वर की इच्छा हम जाने और उससे हमारा मार्ग-दर्शन हो। ऐसा पथ-प्रदर्शन और ईश्वरेच्छा के साथ अपनी इच्छा मिलाने से उत्पन्न बल हमे तभी प्राप्त हो सकता है जबकि मौन होकर हम उसकी शरण जायँ और उसकी वाणी को सुने। तब भगवान् की उपासना द्वारा उसके सकल्प को समझने से, जैसा कि गाधीजी कहते है, हमारे हृदय पर वह ज्वलत श्रद्धा अकित होगी जिसकी सहायता से हम सारी विघ्न-बाधाओ को पार कर सकेगे।

किन्तु हमारा आरम्भ परमेश्वर से होना चाहिए। उसको आत्मसमर्पण करके चलना होगा कि हमारी राजनीति और हमारे कार्य हमारे अपने न रहकर उसके हो जायँ।

अविनायको के मुकाबिले मे क्या करना होगा, इसपर और अधिक विचार करते हुए गाधीजी के एक मुलाकाती ने पूछा कि उस हालत मे क्या किया जाय जबकि अन्यायी प्रत्यक्ष रीति से बल-प्रयोग तो न करे, पर अपनी अभीष्ट वस्तु पर कब्जा जमाने के लिए उसकी धमकी देकर आतकित करे?

गाधीजी ने उत्तर दिया—

"मान लीजिए कि शत्रु लोग आकर चेक प्रजा की खानो, कारखानो और दूसरे प्रकृति के साधनो पर कब्जा करले, तो इतने परिणाम सम्भव है—

"(१) चेक प्रजा को सविनय अवज्ञा करने के अपराध पर मार डाला जाय। अगर ऐसा हुआ तो वह चेक राष्ट्र की महान् विजय और जर्मनी के पतन का आरम्भ समझा जायगा।

"(२) अपार पशुबल के सामने चेक प्रजा का नैतिक पतन हो जाय। ऐसा प्राय सभी युद्धो में होता है। पर अगर ऐसी भीरुता प्रजा में आजाय तो यह हिंसा के

कारण नही, वल्कि अहिसा अथवा यथोचित अहिसा के अभाव से होगा।

"(३) तीसरे, यह ही कि जर्मनी विजित प्रदेश मे अपनी अतिरिक्त जनसख्या को लेजाकर वसा दे। इसे भी हिसात्मक मुकाविला करके नही रोका जा सकता, क्योकि हमने यह वात मान ली है कि हिसात्मक प्रतिरोध हमारे प्रश्न से वाहर है।

"इसलिए अहिसात्मक मुकाविला ही सव पकार की परिस्थितियो मे प्रतिकार का सवसे अच्छा तरीका है।

"मै यह भी नही मानता कि हिटलर तथा मुसोलिनी लोकमत की इतनी उपेक्षा कर सकते है। आज वेशक, लोकमत की उपेक्षा मे वे अपना सतोप मानते है, कारण कि तथाकथित वडे-वडे राष्ट्रो मे से कोई भी साफ हाथो नही आता और इन वडे-वडे राष्ट्रो ने इनके साथ गुजरे जमाने मे जो अन्याय किया है, वह उन्हे खटक रहा है। थोडे ही दिन की वात है कि एक सुयोग्य अग्रेज मित्र ने मेरे सामने स्वीकार किया था कि नाज़ी-जर्मनी इग्लैण्ड के पाप का फल है और वार्साई की सधि ने ही हिटलर पैदा किया है।"

यहाँ लेखक के सामने वह चित्र अकित हो जाता है जवकि वार्साई की सधि के वाद भूखो मरने के दिनो मे अमेरिका की वालको को भोजन देने की व्यवस्था पर पूरा-पूरा अमल शुरू होने से पहले वह वियना के वच्चो के अस्पतालो मे गया था। यहाँ हमारे घेरे[1] और उससे उत्पन्न हुई भीपण वीमारियो के शिकार अनगिनती वच्चे थे, उनके शरीर मुडे-तुडे और खडित थे। इस घोरतम अतर्राष्ट्रीय अपराध से मरनेवाले जर्मन और आस्ट्रियन स्त्री-वच्चो की सख्या दस लाख कूती गई है। जव विस्मार्क ने सन् १८७१ मे पेरिस पर कब्जा किया था तो उसने जल्दी-से-जल्दी गाडी से वहाँ भोजन भेजने की व्यवस्था की थी। अस्थायी शान्ति के वाद भी हमने अपने हारे शत्रु को उससे अपनी मनचाही सधि की शर्तो पर 'हाँ' भरवाने के लिए जर्मनी और आस्ट्रिया को आठ महीने तक भूखो मारा। वह सधि-शान्ति हमे मिल गई। मूलत वह भद्दी शाति थी, पर इस शाति को प्राप्त करने का तरीका—'घेरा'—जितना अधार्मिक रहा, इस शाति मे होनेवाले सव अपमान और अन्याय (युद्ध के दोपारोपण की धारा और जर्मनी को उपनिवेश वसाने के अयोग्य करार देना) उतने अधार्मिक नही थे। मुझे याद है कि इन वच्चो को देखकर मैने मन-ही-मन कहा था कि "एक दिन इस काले कारनामे का लेखा चुकाना ही पडेगा।" वह दिन आज आगया है। उन वच्चो मे से वचे हुए या उनके समवयस्क ही आज नाजी सेनाओ के सेनापति है। इन्हीमें से नाज़ीवाद के अधभक्त वने है। हम विजयी राष्ट्रो ने ही युद्ध के वाद इटली के साथ किये गये अपने व्यवहार से, मुसोलिनी को पैदा किया है। व्यवहार की वानगी लीजिए। चौदह शासनाधिकार के प्रदेशो मे से ब्रिटेन ने नौ लिये और इटली को एक भी नही

१ मित्रराष्ट्रो ने युद्ध के वाद शत्रु-देशो पर घेरा डालकर खाद्य-सामग्री आदि का वहाँ जाना वद कर दिया था।

मिला। 'घेरे' के दिनो मे और वार्साई की सधि के द्वारा हमने जो वर्ताव जर्मनी और आस्ट्रिया से किया, उसी व्यवहार का परिणाम हिटलर है। इतने वडे-वडे अन्र्राष्ट्रीय अपराध करके भी यह दुराशा रखना कि भावी भीषण प्रतिक्रिया के वीज नही वोये गये, वन नही सकता। यदि इतिहास कुछ भी सिखाता है, तो यही।

परन्तु हम पीडा और अपमान के उन दिनो पर दृष्टि डाले। नाज़ियो मे यह मशहूर है कि यहूदी इसके जिम्मेदार है। इस विलक्षण गाथा के अनुसार उस समय, जवकि जर्मन सेनाये आगे युद्धक्षेत्र मे विना हिम्मत हारे खूव लड रही थी, यहूदियो ने देश मे विद्रोह की आग जलाकर उनपर आघात किया। इसलिए ये जर्मन यहूदियो को सबसे पहले दडनीय शत्रु मानते है। अत जर्मनी के यहूदियो के त्रास का कारण हम विजेता राष्ट्रो के 'घेरे' और उनकी मनमानी सधि-शाति से हुए अन्तर्राष्ट्रीय पाप की अप्रिय प्रतिक्रिया है। यहूदियो के प्रति नाजियो की नीति की निन्दा करने का हमे अधिकार नही है, क्योकि इस नीति के कारण तो हम ही है। हमे तो सबसे पहले अपना ही दोष मानना चाहिए और फिर इन त्रस्त यहूदियो की जितनी भी सहायता कर सके, करनी चाहिए।

× × ×

एक मुलाकाती ने प्रश्न किया, "मै वहैसियत एक ईसाई के अन्तर्राष्ट्रीय शाति के काम मे किस तरह योग दे सकता हूँ? किस प्रकार अहिसा अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को नष्ट करके शाति-स्थापना मे प्रभावकारी हो सकती है?"

वह दृश्य कितना मनोहर रहा होगा! दो हजार वर्ष तक मेहनत करने के वाद भी ईसा के आहुति-धर्म की पद्धति से युद्ध की समस्या हल करने मे असमर्थ रहकर, शान्ति के राजकुमार के ये चुने हुए राजदूत, हिन्दू होने का गर्व रखनेवाले गाधीजी के चरणो मे, उनसे अपनी ईसाइयत की मूलभूत मान्यताओ को व्यावहारिक वनाने के उचित मार्ग की शिक्षा लेने के लिए ससार के कोने-कोने से आकर वहा एकत्र थे!

गाधीजी ने उत्तर दिया—

"एक ईसाई के नाते आप अपना सहयोग अहिसात्मक मुकाविला करके दे सकते है, फिर भले ही ऐसा मुकाविला करते हुए आपको अपना सर्वस्व होम देना पडे। जवतक वडे-वडे राष्ट्र अपने यहाँ नि शस्त्रीकरण करने का साहसपूर्वक निर्णय नही करेगे, तवतक शान्ति स्थापित होने की नही। मुझे ऐसा लगता है कि हाल के अनुभव के वाद यह चीज़ वड-वडे राष्ट्रो को स्पष्ट हो जानी चाहिए।

"मेरे हृदय में तो आधी सदी के निरन्तर अनुभव और प्रयोग के वाद इतना नि:शक विश्वास है और ऐसा विश्वास आज पहले से भी अधिक ज्वलत होगया है कि केवल अहिंसा में ही मानवजाति का उद्धार निहित है। वाइविल की शिक्षा का सार भी, जैसाकि मैं उसे समझता हूँ, मुख्यत. यही है।"

मारी बात का सार यही है। गाधीजी जब 'अहिंसा' या 'सत्याग्रह' कहते है तो उससे उनका अभिप्राय इसी आत्मयज्ञ अथवा आहुति-मार्ग का होता है। तभी तो बर्मिघम की हमारी बस्ती मे आने पर उन्होंने प्रार्थना के लिए जो गीत चुना, वह था 'When I survey the wondrous Cross' अर्थात् "जब मैं अद्भुत क्रॉस को देखता हूँ।" मानो विश्व-सत्य का सार वह इसमे देखते हो। ये साक्ष्य स्पष्ट हैं कि वह मानते है कि मनुष्यजाति का उद्धार 'क्रॉस' और प्रभु ईसा के "अपना क्रॉस लेकर मेरे पीछे चलो" शब्दो का अक्षरश पालन करने मे हो सकता है।

हमारे धर्म का क्या उद्देश्य है, यह हम कब सीखेंगे ? बहुत करके यह आशा की जा सकती है कि इस महान हिन्दू का कथन और कथन से भी बढकर उसका अपनी मान्यताओ का जीवन मे पालन, ईसाइयत की जाग्रति के दिन नजदीक लायगा। यूरोप के सबसे अधिक घनी बस्ती के ईसाई देश मे चर्च पर आक्रमण शुरु हो ही गये है, तथा राष्ट्र और धर्म के एक नये विस्तृत झगडे मे ईसाई धर्म के खिलाफ और भयानक आक्रमण होगे, ऐसी अफवाहे फैल रही है। क्या जर्मन ईसाई आज समय का लाभ उठायेंगे और ईसाइयत को पुनरुज्जीवित करने और शायद सभ्यता को बचाने के लिए क्रॉस की भावना से कष्टो का सामना करेगे ? कैदखानो को महल मानकर उनमें प्रवेश करेगे और ईसामसीह के लिए कष्ट उठाने का गौरव मिला देखकर खुश होगे ? और क्या हम अपनी समस्याओ का खासकर युद्ध और दारिद्रय का मुकाबिला करने मे भी इस मान्यता पर अमल करेगे ? क्रॉस केवल सक्रिय पीडन के समय मे धारण करने की ही चीज नही है। नगे, भूखे, रोगी और पीडित जो 'प्रभु के अपने है' के कष्टो और आवश्यकताओ से आत्मसम्पर्क जोडने का सिद्धान्त ही 'क्रॉस' है।

गाधीजी ने इसके बाद उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के अपने ताजे अनुभव का जिक्र किया और बताया कि वहाँकी जगली लडाकू जातियो मे अहिंसा की भावना कैसे बढती जा रही है। कहा—"वहाँ मैने जो कुछ देखा उसकी आशा मुझे नही थी। वे लोग सच्चे दिल से और पूरी लगन से अहिंसा की साधना कर रहे है। उन्हे स्वय अहिंसा से प्रकाश मिलने की पूरी आशा है। इससे पहले वहाँ घोर अधकार था। एक भी कुटुम्ब ऐसा न था जिसमे खूनी लडाई-झगडे न चले हो। वे शेरो की तरह मादो मे रहते थे। हालाँकि वे सदा छुरियो, खजरो और बन्दूको से लैस रहते थे, पर अपने बडे अफसरो को देखते ही काँप जाते थे कि कही कोई कसूर न निकल आये और उन्हे अपनी नौकरियो से हाथ न धोना पडे। आज वह सब बदल गया है। जो लोग खान साहब के अहिंसात्मक आन्दोलन के प्रभाव के नीचे आगये, उनके घरो मे खूनी लडाई-झगडे नेस्तनाबूद होते जारहे है, और तुच्छ नौकरियो के पीछे मारे-मारे फिरने के बजाय वे अब खेत-खलिहान से जीविका कमा रहे है। और अगर उन्होंने अपना वचन निबाहा तो वे दूसरे गृह-उद्योग भी जारी करेगे।"

इन पिछले शब्दो से प्रकट होता है कि गाधीजी कठोर मेहनत और खासकर खेत-खलिहान की मेहनत को वहुत महत्व देते है जव वह सन् १९३१ मे इग्लैण्ड आये तो उन्होने इसी वात पर जोर दिया था कि छोटी-छोटी वस्तियाँ होनी चाहिएँ, इससे वेरोजगारी का सवाल भी हल होगा। और ईसाई सभ्यता की फिर से नीव पडेगी। भारत को भी उनका यही सदेश है। इसके साथ वह कहते है कि प्रतिदिन किसी किस्म के गृह-उद्योग मे, खासकर चर्खा कातने मे पर्याप्त समय लगाना चाहिए।

यहाँ यह स्मरण कर लेना लाभदायक होगा कि पाचवी शताब्दि मे जव पुरानी उच्च सभ्यता नष्ट होगई तव इसका उन लोगो ने शनै-शनै कष्ट सहन कर पुर्ननिर्माण किया जो छोटे-छोटे गुट्टो मे, कभी की उपजाऊ पर उस समय की वीरान पडी भूमियो मे जा वसे थे। यहाँ उन्होने ईसा के नाम पर छोटी-छोटी वस्तियाँ ओर मठ वना लिये। प्रारम्भ के ये पादरी, जिन्होने फिर से वैज्ञानिक कृषि शुरू की, फिर शिक्षा, धर्म और कला फैलाई, मुख्यत खुरपा-कुदारी से काम करनेवाले ही थे। खुरपो से ही इन वीर-नेताओ ने मध्ययुगीय महती सभ्यता का निर्माण किया। यह सभ्यता हमारी सभ्यता की अपेक्षा कई प्रकार से अधिक रचनात्मक और वहुत अधिक यथार्थता मे ईसाई थी। उनका यह खुरपा उनके निजी स्वार्थ की पूर्ति का साधन नही था, वे उसको अपने समाज, अपने प्रभु और वर्वर लोगो के आक्रमणो से घायल अपने साथियो की रक्षा के लिए धारण करते थे।

वह तो सम्भव है ही कि इस युग मे भी सभ्यता, जो अपनी सैनिकता और औद्योगिक मुकाविले के कारण इस हालत मे है, फिर नये विश्व-युद्ध मे चकनाचूर हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो ऐसे लोगो की एक वार आवश्यकता पडेगी जो साहस के साथ प्रभु यीशु के लिए अपने हाथो की मेहनत से नवनिर्माण आरम्भ करे। निजी लाभ के लिए नही, वल्कि जाति के अर्थ, युद्ध से सताये लोगो और उनके प्रभु के निमित्त फावडा चलाये और धरती खोदे। लेकिन यदि ऐसा होनेवाला है तो इसकी **तैयारी अभी से करनी पडेगी**। एक कारण यह है कि इग्लैण्ड और वेल्स मे जहाँ-तहाँ वेरोजगारो को रोजगार दिलानेवाली सस्थाये स्थापित होगई है। इसी कारण यह भी आवश्यक है कि कुछ भाग्यशाली वर्ग के लोग ऐसी सस्थाओ मे पर्याप्त सख्या मे सम्मिलित हो और उनके कार्य मे हाथ वटाये।

इसके वाद ईसाई नेताओ और गाधीजी का सवाद फिर धर्म पर चल पडा। गाधीजी से पूछा गया कि उनकी उपासना की विधि क्या है? उन्होने उत्तर दिया, "सुवह ४ वजकर २० मिनट पर और सायकाल ७ वजे हम सव सम्मिलित प्रार्थना करते है। यह क्रम कई वरसो से जारी है। गीता और अन्य सर्वमान्य धार्मिक पुस्तको के श्लोको का और साथ मे सतो की वाणियो का, कभी सगीत के साथ, कभी उसके विना ही, पाठ होता है। वैयक्तिक प्रार्थना का शब्दो में वर्णन नही हो सकता। यह

तो सतत और अनजाने भी जारी रहती है। कोई ऐसा क्षण नही जाता जबकि मैं अपने ऊपर एक ऐसे परम 'साक्षी' की सत्ता अनुभव न कर सकता होऊँ जो सब कुछ देखता है और जिसके साथ मे लवलीन होने का यत्न तक करता होऊँ। मैं अपने ईसाई मित्रो की भाति प्रार्थना नही करता।" (शायद गाधीजी का सकेत यहाँ पन्थ-प्रचलित प्रार्थना की ओर है) "इसलिए नही कि इसमे कही गलती है, पर इसलिए कि मुझे शब्द सूझते ही नही। मैं समझता हूँ यह अदालत की बात है। .भगवान बिना बोले हमारी विरथा जानते है। उसे मेरी प्रार्थना की आवश्यता नही है।. .हाँ, मुझ अपूर्ण मनुष्य को उसके सरक्षण की वैसे ही आवश्यकता है, जैसे कि पुत्र को पिता के सरक्षण की .भगवान से मैने कभी धोका नही पाया। जब कभी क्षितिज पर गहरे से गहरा अधेरा नजर आया, जेलो मे मेरी अग्नि-परीक्षाओ मे, जबकि मेरे दिन अच्छे नही गुजर रहे थे, मैने सदा भगवान् को अपने समीप अनुभव किया।

"मुझे याद नही कि मेरे जीवन मे एक भी ऐसा क्षण बीता हो जबकि मुझे ऐसा लगा हो कि भगवान् ने मुझे छोड दिया है।"

गाँधीजी से मुलाकात करनेवाले इन ईसाई नेताओ की पूर्वकालिक प्रवृत्ति जानने-वाले कुछ हम मित्रो को उक्त सवाद बडा रुचिकर प्रतीत हुआ। इनमे से एक प्रसिद्ध नेता एक बार केम्ब्रिज पधारे। उस समय लेखक वहाँ पढता था। इन्होने इसी पीढी मे ससार के ईसाई होजाने के सम्बन्ध मे एक वाग्मितापूर्ण ओजस्वी भाषण दिया। इस महत्वपूर्ण भाषण मे विश्वास और व्यवस्थित निश्चय की ध्वनि थी। हम प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयो (विशेषत, हममे से प्रिसविटेरियन) के तो पास सत्य का सन्देश था। मानो उलझन इतनी ही थी कि पूर्व को सत्य के अभाव मे ध्वस से बचाने के लिए हम अपने सन्देश के साथ पहुँचे।

फिर महायुद्ध आया। अब अवस्था कितनी बदल गई! हमने देखा कि एक वह पुरुष जो हिन्दू होने का गर्व करता है, हमारी अपेक्षा ईसामसीह के सत्य और क्रॉस के सत्य के अधिक समीप है। हमारे नेताओ का यह सही और बुद्धिमत्ता का ही कार्य था और है कि वे उनके चरणो मे बैठकर ईसाइयत का अभिप्राय सीखने का प्रयत्न करे, क्योकि यदि ईसाइयत का सार कुछ है तो वह मसीह का क्रॉस ही है। क्रॉस यानी आत्म-यज्ञ, आहुति।

: २१ :

एक भारतीय राजनीतिज्ञ की श्रद्धांजलि

सर मिरज़ा एम. इस्माइल, के. सी. आई. ई:

[दीवान, मैसूर राज्य]

महात्मा गाधी की ७१ वी जन्म-तिथि के अवसर पर उन्हे भेट किये जानेवाले, उनके जीवन और कार्यो पर लिखे गये, लेखो व सस्मरणो के ग्रथ मे कुछ लिख देने का अनुरोध सर एस राधाकृष्णन् ने मुझसे किया है। सर राधाकृष्णन् के इस अनुरोध का पालन करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता होरही है।

महात्मा गाधी का ७० वर्ष पूरे कर लेना उनके अनगिनती मित्रो व प्रशसको के लिए, जिनमे शामिल होने का मुझे भी गर्व है, खुशी के इजहार से कही ज्यादा महत्त्व रखता है। उनकी हरेक जयन्ती समस्त राष्ट्र को आनन्दित कर देनेवाली एक घटना की तरह देखी जाती है। और उनकी ७१वी जयन्ती भी, इसमे मुझे कोई शक नही कि, देशभर मे ज़रूर अपूर्व उत्साह का सचार करेगी।

मेरे अपने लिए इस अवसर पर उन परिस्थितियो का वर्णन करना खास दिलचस्पी की चीज है, जिनमे मुझे इस महापुरुष के जो शिक्षक और नेता दोनो ही है, निकट-सम्पर्क मे आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

१९२७ मे या इसके लगभग, जब महात्मा गाधी का स्वास्थ्य गिर रहा था, वह बंगलौर के आरोग्यवर्धक जल और नन्दी पहाडी की तरोताजा कर देनेवाली वायु का सेवन करने के लिए इधर आये। इस जलवायु-परिवर्तन की उन्हे बहुत ज़रूरत भी थी। इन्ही दिनो मुझे उनके निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिला। वह कुछ ही हफ्ते यहाँ ठहरे थे, लेकिन इसी अरसे मे वह मैसूर-निवासियो के दिलो मे कई सुखद स्मृतियाँ छोड गये। उन दिनो महात्माजी से जितनी वार मै मिल सकता था। मिला। उन्हे देखकर उनके प्रति मेरे हृदय मे सम्मान, प्रेम और स्नेह के भाव पैदा हुए। यही भाव उस मित्रता के आधारभूत है, जो लगातार बढती ही जाती है और जिसे मै अपने लिए बहुत मूल्यवान समझता हूँ।

भारतीय गोलमेज़ परिषद् के, और खासकर परिषद् की दूसरी बैठक के दिनो मे लन्दन मे मैने जो बहुत आनन्दप्रद समय बिताया था उसे याद करके मुझे विशेष प्रसन्नता होती है। इस दूसरी बैठक मे काग्रेस ने भी भाग लिया था। महात्मा गाधी इसके एक मात्र प्रतिनिधि थे। इसमे कोई शक नही कि वह भारत से आये हुए प्रतिनिधियो मे

सबसे अधिक प्रतिष्ठित और विशेष व्यक्ति थे। बैठक के दौरान मे उन्होने जो योग्यतापूर्ण भाषण दिये, उनमे हमे सचमुच बहुत स्फूर्ति मिली। इस परिषद् की दूसरी बैठक मेरे अपने लिए इस कारण और भी स्मरणीय हो गई कि महात्मा गाधी ने मेरी उस योजना का समर्थन (यद्यपि कुछ शर्तों के साथ) किया, जो मैने फैडरल स्ट्रक्चर कमेटी मे फैडरल कौंसिल (रईसी कौंसिल) के बनाने के बारे मे रखी थी। मेरी योजना यह थी कि फैडरेशन मे शामिल होनेवाले सब प्रान्तो या रियासतो के प्रतिनिधियो की एक फैडरल कौंसिल भी बनाई जाय। महात्माजी दूसरी रईसी कौसिल के बनाने के सदा से विरोधी थे, लेकिन वह अपने रुख को इस शर्त्त पर बदलने और मेरी योजना का समर्थन करने को तैयार हो गये कि फैडरल कौसिल का रूप एक सलाहकार सस्था का हो। दरअसल, जैसा कि मै मैसूर-असेम्बली के एक भाषण मे पहले भी स्वीकार कर चुका हूँ, "मैने महात्मा गाधी को दूसरी गोलमेज परिषद् मे अपने एक जोरदार समर्थक के रूप मे पाया, जबकि उन्होने व्हाइट पेपर के सबसे अधिक आलोचनीय विधान पर की गई उस आलोचना का समर्थन किया, जो मैने रईसी कौंसिल के विधान के बारे मे की थी।" इसके बाद का घटनाक्रम इतिहास का विषय है। लेकिन मै इस घटना की इसलिए याद दिलाता हूँ कि यह इस बात का बहुत अच्छा उदाहरण है कि महात्मा गाधी भारत का एक अच्छा विधान बनाने के प्रत्येक प्रयत्न मे सहायता देने के लिए बहुत उत्सुक है।

मुझे अपने निजी स मरणो को छोडकर भारतमाता के इस महान् पुत्र के जीवन तथा कार्य के महत्त्व की भी चर्चा करनी चाहिए। उनके जीवन तथा कार्य का महत्त्व केवल भारत के लिए ही नही, वरन् समस्त ससार के लिए भी है। यह अक्सर कहा जाता है कि किसी व्यक्ति के जीवन-काल मे उसकी अमरता की भविष्यवाणी करना खतरनाक है, क्योकि आनेवाली सन्तति आज के किसी व्यक्ति पर अपना निर्णय अपनी इच्छानुसार ही देगी। लेकिन महात्माजी के नाम के साथ अमरता की भविष्यवाणी करते हुए हमे कोई सकोच नही होता, क्योकि उनकी अमरता की भविष्यवाणी को इतिहास कभी असत्य ठहरायगा, इसकी सम्भावना बहुत कम है। आज तो सभी एक स्वर से यह मानते है कि उनके जैसा महान् भारतीय पैदा ही नही हुआ। वह निस्सन्देह आज के भारतीयो मे सबसे महान् और प्रतिष्ठित व्यक्ति है। और, जैसा कि कुछ साल पहले मैने एक सार्वजनिक भाषण मे कहा था, यह कहा जा सकता है कि "वह भारत की आत्मा के सबसे सच्चे प्रतिनिधि है और किसी भी दूसरे से अधिक योग्यता के साथ भारत की भावनाओ को वाणी मे प्रगट कर सकते है।" उन्होने अपने देशवासियो के हृदयो को अपनी सार्वजनिक सहानुभूति और अपने ऊँचे आदर्शो के प्रति अटूट भक्ति के कारण जीत लिया है। सेवाभाव की ओर खिचनेवाले सभी लोग उनकी इज्जत करते है। सचमुच ससार के असाधारण महान् व्यक्तियो मे से वह एक है।

वह भारत के राष्ट्रीय जीवन मे एक अद्वितीय स्थान रखते है। उन्होने अपनी इस असाधारण स्थिति का उपयोग सदा मातृभूमि के हित के लिए किया है। महात्मा गाधी का अपने देशवासियो के हृदयो पर जितना महान् प्रभाव है, उसे देखते हुए उन्हे ब्रिटिश साम्राज्य के वर्तमान अत्यन्त शक्तिशाली महान् पुरुषो मे गिना जा सकता है।

राजनीति वहुत गन्दा खेल है। इसमे प्राय विषम परिस्थितियो से विवश होकर न्याय और धर्म के पथ से गिरना पडता है। यह कुछ वेढगी-सी बात तो लगती है, लेकिन इसमे सचाई जरूर है। कहा जाता है कि राजनीति मे अक्सर वही व्यक्ति सफल होता है, जो न्याय-अन्याय की दुविधाओ की वहुत परवा नही करता। लेकिन महात्मा गाधी की बात निराली है। वह अत्यन्त न्यायपरायण, सतर्क तथा ऊँचे आदर्शो पर दृढ रहनेवाले है और फिर भी सबसे अधिक राजनीतिज्ञ है। वह भारत की एक सनातन पहेली है। दुर्लभ चारित्रिक उन्नति, निर्दोष व्यक्तिगत जीवन, स्फटिक की तरह साफ दीखनेवाली व्यवहार की शुद्धता व गम्भीरता और दृढ धार्मिक मनोवृत्ति—इन सब गुणो के अद्भुत समन्वय गाधीजी को देखकर हमे महान् आध्यात्मिक नेताओ और सन्तो की याद आ जाती है। दूसरी ओर भारतीयो मे एक नयी भावना, आत्म-सम्मान और अपनी सस्कृति के लिए अभिमान के भाव पैदा करने और पुनर्जीवित भारत का स्फूर्तिदायक नेता होने के कारण वह एक महज राजनीतिज्ञ से भी कही अधिक है। वह महान् और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ है। सचमुच जैसा कि रिचर्ड फ्रिअड ने 'स्पैक्टेटर' मे लिखा है—"एक भारतीय राष्ट्र का अत्यन्त अधीरता के साथ उदय हो रहा है। अभी यह प्रयोगकाल मे है, लेकिन उसकी वाह्य रूपरेखा को हम देख सकते है। गाधीजी इसके निर्माता है।"

महात्मा गाधी सन्त, राजनीतिज्ञ और नेता के एक अद्भुत समन्वय है। अंग्रेजो के लिए वह कठिन पहेली है और उनके भारतीय अनुयायी भले ही उन्हे समझ न सके, उनका नेतृत्व तो अवश्य मानते है। महात्मा गाधी ससार के ऐसे महान् पुरुषो मे से एक है, जिनकी प्रशसा सव करते है, लेकिन समझ बहुत कम सकते है। उन्होने राजनीति मे धर्म और नैतिकता की प्रतिष्ठा की है और राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राजनैतिक क्षेत्र मे भौतिक शक्तियो के साथ युद्ध करने के लिए अद्भुत नैतिक हथियारो का आविष्कार किया है। जहाँ एक ओर उन्होने राजनीति की प्रतिष्ठा करके उसे आध्यात्मिक बना डाला है, वहाँ दूसरी ओर धर्म मे भी राजनीति का पुट देकर धर्म को अनेक ऐसे पहलुओ से लौकिक बना दिया है, जिन्हे पुराणप्रिय हिन्दू एकमात्र धार्मिक रूप देते थे। हरिजनो का उत्थान भी ऐसे अनेक प्रश्नो मे से एक है, जिनपर उन्होने रूढिप्रिय हिन्दुओ के विरुद्ध विवेकशील भारतीयो के विद्रोह का नेतृत्व किया है। लेकिन उनके साथ न्याय करने के लिए यह भी मुझे कहना चाहिए कि इस देश से 'अस्पृश्यता' का अभिशाप नष्ट करने की उनकी कोशिश को परोपकार तथा दया

की सहज सच्ची भावना से उतनी ही प्रेरणा मिली है जितनी उनके सुधार के उत्साह और राजनैतिक अन्तर्दृष्टि से ।

महात्मा गांधी को अपने आप मे अगाध विश्वास है—ऐसा विश्वास, जो अध्यात्म शक्ति पर अगम्य श्रद्धा के साथ बढा है और जो कभी-कभी तो ईश्वरी प्रेरणा की हद तक पहुँच जाता है। वह मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय और बुद्धि की अपेक्षा आन्तरिक प्रेरणा से अधिक प्रभावित होते और करते है। बहुत दफा जब विचित्र परिस्थितियो मे वह अपने अनुयायियो को परेशान कर देनेवाली सलाह देते है या स्वय सर्वसाधारण के लिए कोई दुर्बोध कदम उठाते है, तब अपना और उनका समाधान "मेरी अन्तरात्मा की आवाज़" इन सीधे-सादे मगर अगम्य शब्दो से करते है। 'सादा जीवन और ऊँचे विचार' यह गांधीजी के जीवन का मूल आदर्श है। जिस सीमा तक उन्होने अपने मनोभावो, अपनी क्रियाओ और अपने जीवन को नियन्त्रित किया है, दूसरे आदमी उसे देखकर 'वाह वाह' करने लगते है और उसके साथ हम इस सीमातक नही पहुँच सकते, यह निराशा का भाव भी उनमें पैदा हो जाता है। "गांधीजी अनुभव करते है कि अगर तुम अपने पर काबू पालो, तो राजनैतिक क्षेत्र पर तुम्हारा अधिकार स्वय हो जायगा।" वह अपनी दुर्बलताओ के कारण अपने साथ कोई रियायत नही करते। वह अपने स्वभाव और रुचि मे बहुत सरल और तपस्वी है। सत्य और अहिंसा ये दो ध्रुवतारे है, जिनके सहारे उन्होने सदा अपना मार्ग टटोला है और कांग्रेस तथा राष्ट्र के जहाज को भारतीय राजनीति के तूफानी समुद्र मे खेने की कोशिश की है।

मुझसे अगर कोई यह पूछे कि भारत की जनता के दिल व दिमाग पर गांधीजी के इतने प्रभाव का क्या रहस्य है, तो मै उनकी राजनीतिज्ञतापूर्ण योग्यता का—भले ही यह भी गांधीजी मे चरम सीमातक है—सकेत नही करूँगा और न उनकी उस महान् सफलता का निर्देश करूँगा, जिसे प्राप्त करने के लिए उन्होने भारत की समस्याओ के हल के अपने तरीको का इस्तेमाल किया है। भारतीय लोग स्वभावत चरित्र के प्रति विशेष रूप से भावुक होते है और बौद्धिक नेतृत्व की अपेक्षा चारित्रिक नेतृत्व के प्रति वे अधिक आकृष्ट होते है। उद्देश्य की अत्यन्त गम्भीरता और हृदय की पवित्रता के साथ शानदार व्यक्तिगत चारित्र्य का सम्मिश्रण गांधीजी मे एक ऐसी चीज़ है, जिसने न केवल उनके अपने राजनैतिक अनुयायियो, बल्कि कांग्रेस सगठन से बाहर के उन लोगो का भी विश्वास और प्रेम जीत लिया है, जो न उनके सब विचारो से सहमत है और न उनके राजनैतिक सिद्धान्तो और तरीको पर विश्वास करते है।

पाँच साल से कुछ ही ऊपर हुआ, मैने मैसूर-असेम्बली मे एक भाषण के सिलसिले में कहा था—"दूसरे सब लोगो मे ऊँचा एक मनुष्य है, जो हमारी दिक्कतो को सुलझाने और स्वशासन के आधारभूत नवीन चरित्र के निर्माण में हमारी सहायता कर सकता है। मै उन लोगो मे से नही हूँ, जो यह चाहते है कि महात्मा गांधी राजनीति से

रिटायर हो जावे। अब से पहले इतना बुरा समय कभी नही आया था, जबकि हमे सच्चे वास्तविक नेतृत्व की इतनी अधिक जरूरत पडी हो और गाधीजी मे हम एक ऐसा नेता देखते है, जिसकी देश मे असाधारण स्थिति है और जो न केवल सर्वमान्य शान्ति का इच्छुक तथा दृढ देश-भक्त है, वरन् अत्यन्त दूरदर्शी राजनेता भी है। मै अनुभव करता हूँ कि देश मे परस्पर सघर्ष करनेवाले विभिन्न दलो को एक-साथ मिलाने और उन सबको स्वराज्य के मार्ग पर ले जाने की योग्यता उनसे अधिक किसी दूसरे नेता मे नही है। सिर्फ उन्हीमे ग्रेट ब्रिटेन और भारत मे परस्पर अच्छे-से-अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का सामर्थ्य है। मुझे यह निश्चय है कि वह सरकार के एक शक्तिशाली मित्र और ग्रेट ब्रिटेन के सच्चे साथी है। यदि आज इस नाजुक हालत मे वे राजनीति से अलग हो जाये, तो इस बात के लक्षण दीख रहे है कि बहुत सम्भवत भारत के राजनैतिक क्षेत्र पर बातूनी और कल्पना-क्षेत्र मे उडनेवाले लोग कब्जा कर लेगे। उन्हे स्वय कोई स्पष्ट मार्ग तो सूझता नही। निरर्थक चिह्नो व नारो का प्रयोग करते हुए वे देश को गलत रास्ते पर भटका देगे।"

ऊपर लिखे ये शब्द जब मैने कहे थे, उस समय से आजतक बहुत-सी घटनाये घट चुकी है। सभी प्रान्तो मे व्यवस्थापिका सभाओ के प्रति जिम्मेदार मत्रियो की सरकारे कायम हो चुकी है। भारतीय सघ की समस्या आज विचार के लिए हमारे सामने प्रमुखरूप मे आ गई है। गाधीजी के अपने शब्दो मे वह "काग्रेस मे नही रहे, मगर वह काग्रेस के आज भी है।" लेकिन अबतक एक भी ऐसी बात नही हुई कि मुझे अपने उक्त वक्तव्य को वापस लेने या उसमे कुछ तब्दीली करने की जरूरत महसूस हो। देश मे महात्मा गाधी के सिवा, जो आज भी देश मे सबसे प्रभावशाली है—मै कहूँगा उतने ही प्रभावशाली जितना पहले कोई नही हुआ—एक भी ऐसा व्यक्ति नही, जिसपर हम नेतृत्व के लिए पूरी तरह निर्भर हो सके। राजनीति मे सयम, बुद्धि और व्यावहारिकता, इन सबका समन्वय करनेवाली एक खास शक्ति महात्मा गाधी मे है। आज जबतक हम आगे देख सकते है, उस समय तक भारत का गाधीजी के बिना गुजारा नही हो सकता।

यदि महात्मा गाधी भारत मे हमारे लिए इतने अधिक उपयोगी और मूल्यवान् है, तो यह भी कुछ कम सही नही है कि उनके जीवन और कार्य बाहरी दुनिया के लिए भी, जो आज युद्धो व युद्ध की धमकियो के कारण इतनी अधिक व्याकुल हो उठी है, कम महत्त्व के नही है। उनके राजनीति-शास्त्र का मुख्य आधार शान्ति है, और राजनैतिक व्यवहार की फिलासफी का आधार प्रेम, सत्य और अहिसा की चरम सीमा है। उनकी ये दोनो चीजे—राजनैतिक टैकनिक और राजनैतिक व्यवहार की फिलासफी—उन राष्ट्रो के लिए काफी विचार-सामग्री दे सकती है, जिनके आपसी सम्बन्ध आजकल कूटनीति, घृणा और युद्ध द्वारा नियत्रित होते है।

अन्त में मै महात्मा गाधी को उनकी ७१ वी जयन्ती पर हार्दिक बधाई देता हूँ और मगलमय भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह स्वस्थ और प्रसन्न रहते हुए बरसो विशेषत, भारत की तथा सामान्यत तमाम दुनिया की सेवा करने में समर्थ हो।

: २२ :

अनासक्ति और नैतिक बल की प्रभुता

सी. ई. एम. जोड, एम. ए., डी लिट्

[बर्कबेक कालेज, लदन यूनिवर्सिटी]

मानवजाति की सबसे बडी विशेषता क्या है ? कुछ लोग कहेगे नैतिक गुण, कुछ कहेगे ईश्वरभक्ति, कुछ साहस और आत्म-बलिदान को मानवप्राणी की विशेषता बतायेंगे। अरस्तू ने बुद्धि को मनुष्य की विशेषता बताया है। उसका कहना था कि इसी बुद्धि विशेषता के कारण हम पशुओ से पृथक् है। मेरा खयाल है कि अरस्तू के उत्तर में सचाई का एक ही अग है, पूर्ण नही। तर्क-बुद्धि तटस्थ और पदार्थपरक होती है।

अरुचिकर स्वरूप से बचने के लिए, भले लोग जो यथार्थ पर आवरण चढा देते है, उन्हे भेदकर बुद्धि शुद्ध नग्न यथार्थ को देख लेगी, यह उसका गर्व है। एक शब्द मे, बुद्धिवादी निडर होता है। वह वस्तुओ के यथार्थ रूप के ज्ञान से डरता नही है। वह हर पदार्थ को यथार्थ रूप में देखने का प्रयत्न करता है। उसे जबर्दस्ती अपने अनुकूल देखने की कोशिश नही करता। अपनी इच्छा को सर्वोपरि निर्णायक नही मानता और न अपनी आशाओ को ही वह झूठा जज बनाता है।

इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य अनासक्त रहता है, अर्थात् उसकी बुद्धि जिस वस्तु का आलोचन करती है, उसमे आसक्त नही होती।

लेकिन क्या विद्वान् और बुद्धिमान मनुष्य स्वय अपने से भी तटस्थ होता है ? मेरा खयाल है कि नही। मै ऐसे अनेक मनुष्यो को जानता हूँ, जिनकी बौद्धिक योग्यता बहुत ऊँचे दरजे की है, लेकिन जो जूते का तस्मा टूट जानेपर या गाडी चूक जाने पर आपे से बाहर हो जाते है। बडे-बडे गणितज्ञ और वैज्ञानिक अपने मन की धीरोदात्तता के लिए कभी प्रसिद्ध नही होते और दार्शनिक, जिन्हे समबुद्धि होना चाहिए, बडे तुनक-मिजाज होते है। दार्शनिक तो छोटी-छोटी बातो पर अपने उत्तेजित होनेवाले स्वभाव के लिए प्रसिद्ध ही है। इसलिए मेरा खयाल है कि अरस्तू का कथन सत्य की ओर सिर्फ निर्देश करता है, पूर्ण सत्य को प्रकट नही करता। सचाई तो यह है कि मानव-जाति की विशेषता अपने आत्मा के विस्तार में, अपने मानसिक आवेगो, प्रलोभनो,

आशाओ व इच्छाओ मे उस तटस्थ अनासक्त वृत्ति का प्रवेश करना है, जिसको कि तार्किक अपने बुद्धिग्राह्य प्रतिपाद्य विषय पर प्रयुक्त किया करता है। अपने प्रति अनासक्ति रखकर कुछ सत्यो के प्रति तीव्र भक्ति-भाव रख सकना और कुछ सिद्धान्तो के विषय मे अनासक्त आग्रह रख पाना—यही मेरे मन से उस गुण को जाग्रत करना है, जो मानव की विशेषता है। वह है नैतिक शक्ति।

अपने आपसे भी अनासक्ति का यह गुण ही मेरे खयाल मे गाधीजी की शक्ति और प्रभाव का मूल-स्रोत है। उनकी अनासक्ति का एक मोटा-सा चिन्ह है अपने शरीर पर उनका अपना नियन्त्रण। अनासक्त मनुष्य का शरीर उसके काबू में रहता है, क्योकि वह इसे अपनी आत्मा से पृथक् अनुभव करता है और आत्मा के काम के लिए बतौर एक औज़ार के इसका इस्तेमाल कर सकता है। इसलिए गाधीजी के लिए यह कोई असाधारण और अस्वाभाविक बात नही है कि वह बिना एक क्षण की सूचना के एकदम इच्छानुकूल समय तक गहरी नीद मे सो जाते है या भोजन मे बिना कोई परिवर्तन किये जान-बूझकर अपना वज़न घटा या बढा लेते है।

अनासक्ति के उपर्युक्त गुण का दूसरा चिन्ह यह है कि वे साधनो को यथासम्भव अधिक-से-अधिक व्यावहारिक बनाते हुए उद्देश्य पर कट्टर निश्चय के साथ उनका सम्बन्ध कायम रखते है। अनासक्त मनुष्य मोही और हठी नही होता। वह कभी अपने मार्ग के मोह मे इतना नही डूब जाता कि उसे छोड ही न सके या उसकी जगह कोई दूसरा रास्ता पकड न सके। जबतक उसके सामने ध्येय स्पष्ट रहता है, वह हरेक ऐसे रास्ते से उसतक पहुँचने की कोशिश करेगा, जो घटनाओ या परिस्थितियो से बन गया हो। *यही कारण है कि गाधीजी राजनीतिज्ञ और सन्त दोनो एक साथ* है। इसे देखकर बहुत-से लोग परेशान हो जाते है। राजनीतिज्ञता और सन्तपन के अलावा सधि-चर्चा मे निपुणता, बच्चो की सी सरलता, जो फिर पीछे अत्यन्त गहन राजनीति-पटुता के रूप मे दीखती है, एकदम समझौते के लिए उद्यत हो जाना आदि उनकी स्वभावगत विशेषताये है। वह अपने ध्येय के सम्बन्ध मे तो दृढ-निश्चयी है, लेकिन उस उद्देश्य तक पहुँचने के किसी मार्ग से उन्हे मोह नही है। इसी कारण हम देखते है कि राजनैतिक हथियार के तौर पर सविनय भग के प्रेरक गाधीजी जब देखते है कि इससे सफलता की सम्भावना नही है तो उसे बद करने में ज़रा भी नही हिचकिचाते। इसी तरह सन्त गाधीजी आत्मशुद्धि के लिए उपवास करते है, अपने उपवास को सौदे का सवाल बनाकर इस्तेमाल करने और जब उपवास का राजनैतिक उद्देश्य पूरा हो जाता है, फिर अन्न-ग्रहण करने के लिए सदा तैयार रहते है। नये शासन-विधान के कट्टर विरोधी गाधीजी आज उस विधान को, जिसकी उन्होने इतनी सख्त निन्दा की थी, अमल मे लाने के लिए सिर्फ एक शर्त पर सहयोग देने को तैयार है, वह यह कि रियासतो के प्रतिनिधि भी प्रजा द्वारा निर्वाचित हो, न कि

राजाओ द्वारा नामजद जैसा कि विधान मे लिखा है। और अन्त मे हम देखते है कि जीवनभर अँग्रेज़ो के प्रतिपक्षी गाधीजी आज भारत मे अँग्रेज़ो के सर्वोत्तम मित्र—ऐसे मित्र जिनका प्रभाव न केवल सविनयभग को फिर शुरू नही होने देता, वल्कि आतकवाद के मशहूर आन्दोलन पर भी नियन्त्रण करना है—माने जाते है। क्या अग्रेज वहुत अधिक देर हो जाने से पहले ही थोडी-सी रिआयते, जो वह आज माँगते है, दे देगे ? क्या अग्रेज़ अपनी इच्छा और शोभा के साथ रिआयते खुद दे सकेगे ? या कि फिर उन रिआयतो को, जिनसे आज भारत सन्तुष्ट हो सकता है, देने मे इन्कार करके देश का सख्त विरोधी होकर आयर्लैण्ड वन जाना पसन्द करेगे ?

हम फिर अनासक्ति के तत्व पर आयें। अनासक्ति का एक वहुत प्रभावशाली अग है, जिसे हम आसानी से पहचान सकते है, पर जिसकी व्याख्या करना वहुत कठिन है। यह शक्ति नैतिक वल है। और सब जीवधारी प्राणियो मे मनुष्य ही उसका अधिकारी होता है।

भौतिक वल की न तो कोई समस्याये है, न इससे कोई नये सवाल ही उठते है। यदि एक आदमी शारीरिक वल मे आपसे ज्यादा ताकतवर है और आप उसकी इच्छा को ठुकराते है, तो वह प्रत्यक्षत अपनी प्रवल शारीरिक शक्ति के द्वारा वाधित करके या अप्रत्यक्षत दण्ड का भय दिखाकर आपसे निवट ही लेगा। प्रत्यक्ष पशुवल के प्रयोग का फल यह होता है कि आप उठाकर पटक दिये जाते है, और परोक्ष वल का फल यह है कि उस वल के परोक्ष दवाव के भय से आदमी इस जीवन से मुह मोडकर ईश्वर को प्रसन्न करना चाहता है ताकि अगले जन्म मे इस सदा की मुसीवत से वच सके। शरीर-वल को, इस भाति, ऐसी शक्ति कहा जा सकता है जो अपनी मर्जी के मुताविक दूसरे को इस डर से काम कराने को लाचार करती है कि न करेंगे तो फल भुगतना होगा।

लेकिन नैतिक वल मे ऐसे किसी दण्ड का भय नही है। यदि मै नैतिक वल का मुकाविला भी करता हूँ, तो उससे मुझे कोई नुकसान नही होता। तव मै नैतिक वल वाले की वात क्यो मानता हूँ ? यह कहना कठिन है। मै उसके प्रभाव और शक्ति को स्वीकार कर लेता हूँ। उसका मुकाविला करने के वावजूद भी मै जानता हूँ कि वह सही रास्ते पर है और मै गलत रास्ते पर हूँ। मै यह सव वाते इसलिए मानता और जानता हूँ कि मै स्वय भी एक आत्मा हूँ। आत्मा हूँ, इससे उच्चतर आत्म-धर्म जहाँ देखता हूँ वही उसे पहचानता और स्वीकार करता हूँ। इस तरह नैतिक वल मे दवाव नही, प्रभाव है। एक मनुष्य दूसरे मानव-प्राणी के मन और क्रिया पर एक विशेष प्रभाव पैदा करता है, दण्ड के भय या पुरस्कार के लालच से यह प्रभाव पैदा नही होता, वल्कि दूसरे व्यक्ति की वास्तविक उच्चता को अन्त करण स्वय स्वीकार कर लेता है और इस तरह नैतिक वलवाले का प्रभाव पैदा होता है।

यह नैतिक वल ही था, जिससे गाधीजी ने हज़ारो भारतीयो को जेलो मे कैद हो जाने के लिए प्रेरित किया। यह नैतिक वल ही था कि गाधीजी ने हज़ारो को इस वात के लिए तैयार कर लिया कि उनपर चाहे कितना ही भीपण लाठी-प्रहार हो, वह आत्मरक्षा मे एक अगुली तक न उठावे।

नैतिक वल से प्रेरित सविनयभग आज की पश्चिमी दुनिया के लिए वहुत महत्त्व की वस्तु है। आज तो राष्ट्र की सारी वचत ही नर-सहार के साधनो को जुटाने पर क्या खर्च नही हो रही है? क्या ये सव नर-सहार के साधन प्रजा की इच्छानुसार प्रयुक्त होते है? जव एक सरकार किसी दूसरे राज्य की प्रजा का सहार करना वाछनीय समझती है तव क्या वहाके लोग जीवित रहने की आगा कर सकते है? क्या युद्ध मे पडे हुए राष्ट्र के पास विरोधी राष्ट्र की प्रजा की अधिकाधिक सख्या मे हत्या करने के सिवा अपने प्रयोजन की श्रेष्ठता सिद्ध करने का और कोई मार्ग नही है? ये कुछ सवाल है, जिनका जवाव पश्चिमी ससार को जरूर देना चाहिए। और जवतक अतीत काल मे इन प्रश्नो के दिये गये उत्तर के सिवा कोई दूसरा उत्तर नही दिया जायगा, तवतक पश्चिम की सभ्यता विनष्ट होने से नही वच सकती।

गाधीजी को इस वात का वहुत अधिक श्रेय प्राप्त है कि उन्होने इन सवालो का दूसरा उत्तर वताया है और उसपर आचरण करने का साहस भी दिखाया है। उन्होने ठीक ही कहा है कि ईसामसीह और वुद्ध प्रयोगत सही रास्ते पर थे। लडाई-झगडे के लिए दो का होना ज़रूरी है और यदि आप दृढता के साथ दूसरा वनने से इन्कार करदे, तो आपसे लडेगा कौन? तलवार के वल पर मुकाविला करने से इन्कार कर दीजिए, उस समय न केवल आप अपने उद्देश्य को हिंसात्मक उपायो की अपेक्षा अधिक असानी व प्रभावशाली तरीके से पा सकेगे, वल्कि आप हिंसा की निरर्थकता दिखला कर उसको पराजित भी कर देगे। यह सिद्धान्तत तो वहुत पुराना, जवसे कि मनुष्य सोचने लगा है तव का, तरीका है। पर गाधीजी ने मानवी समस्याओ के निदान और समावान के प्रयोग मे जो उसे नया आविष्कार दिया है, इसके लिए सचमुच हमे उनका परम कृतज्ञ होना चाहिए। अपनी उच्चतम कल्पना को सत्य प्रदर्शित करने के मार्ग में जितने खतरे आ सकते थे, उन सवको उठाने के लिए गाधीजी ने हमेशा आग्रह दिखाया है। इसमे कोई सन्देह नही कि वह जिस उपाय का प्रतिपादन कर रहे है, उसका समय अभी नही आया और इसलिए इसमे भी कोई सन्देह नही कि उनके विचार एकदम परेशान कर देनेवाले और आजकल के प्रचलित विचारो से एकदम विपरीत दीखते है। इसमें कोई शक नही कि गाधीजी के विचार आज के स्थापित स्वार्थो को ललकारते है, लोगो के दिलो मे एक उथल-पुथल-सी मचा देते है, उनके नीति-चरित्र-सम्वन्धी विचारो को वदल देते है, तथा आज के शक्तिशाली स्थापित व्यक्तियो की सुरक्षा की जड़ें ढीली करते है। इसलिए अन्य सव मौलिक प्रतिभाशालियो की भाँति उन्हे भी

दुर्दांत, विधर्मी और पाखण्डी आदि गालियाँ दी जाती है। कला म किसी नये मार्ग पर चलने को हद-मे-हद सनक या मूर्खता कहा जाता है। लेकिन राजनीति या चरित्र मे नये मार्ग पर चलने को 'प्रचारको की शरारत' कहकर वदनाम किया जाता है कि जिसको वरदाश्त कर लिया गया तो वह समाज की वर्तमान नीव को ही हिला डालेगी। और प्रचलित समाज-नीति मे जो भी प्रगति या नव सुधार हो—और प्रगति का अर्थ ही है कि भिन्न मत या दिशा मे जा सकना—उसे विचार और नीति-क्षेत्र के स्थापित स्वार्थो का मुकाविला सहना ही पडेगा। क्योकि वर्तमान विचारो को हटाकर ही उसमे क्राति की जा सकती है। इसलिए जहाँ कला में नया मार्ग निकालनेवाले प्रतिभाशाली भूखो मरते है, वहाँ आचार-जगत मे ये नवपथी कानून के नाम पर जेल में डाले जाते है। इस दृष्टिकोण से यदि इतिहास के वडे-वडे कानूनी मुकदमो की परीक्षा की जाय, तो वहुत मजेदार वाते मालूम होगी। सुकरात, जिओरडानो व्रूनो और सर्विटस, सभी पर मुकदमा चलाया गया और वे उस समय के अधिकारियो से भिन्न मत रखने के कारण दोषी ठहराये गये, कि जिन मतो के लिए आज ससार उनका आदर करता है। प्रतिभाशाली व्यक्ति का एक सर्वोत्तम लक्षण शैली के शब्दो में यह है कि वह वर्तमान में ही भविष्य का दर्शन कर लेता है और उसके विचार गुजरे हुए जमाने के फूल और फल के वीज-रूप होते है, जीव-विज्ञान की परिभाषा मे कहे, तो एक प्रतिभाशाली मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र पर विकास-धारा की एक 'लहर' (sport) जिसका उद्देश्य जीवन के भीतर के अव्यक्त को व्यक्त चेतनरूप देना होता है। इसलिए वह प्रतिभाशाली जीवन के लिए एक नई आवश्यकता का प्रतिनिधित्व करता है और विचार और नीति-सम्वन्धी वर्तमान धरातल को नष्ट कर उसकी जगह दूसरा नया ऊँचा धरातल तैयार कर देता है। इसके वाद सारे समाज के विचारो का धरातल भी शीघ्र प्रतिभाशाली के नये सदेश तक उठ चलता है। इतिहास मे यह स्पष्ट है कि एक समय जिस विचार को नया एव समय के प्रतिकूल कहकर नापसन्द किया गया, कुछ समय वाद वही जनता का प्रिय और प्रचलित विचार वन गया।

इन्ही अर्थो मे गाधीजी एक नैतिक-क्षेत्र की प्रतिभा है। उन्होने झगडो के निवटारे के लिए एक नया मार्ग वताया है। यह मार्ग वल-प्रयोग के उपाय की जगह ले लेगा। इसे सभव ही नही मानना है, वल्कि जव मनुष्य सहार की कला मे अधिकाधिक दक्ष और शक्तिशाली वनते जा रहे है, तव यदि मानव-सभ्यता की रक्षा करनी हो तो हमे देखना होगा कि वह जगह ले लेता ही है। गाधीजी का ही एकमात्र ऐसा मार्ग है, जिस पर, दूसरे सव मार्गो को छोडकर चलना पडेगा। इसमे कोई सन्देह नही कि आज गाधीजी का उपाय सफल नही हुआ। इसमें कोई शक नही कि जितने की उम्मीद उन्होने रखी और दिलाई है वह सव कर नही सके है। लेकिन यदि मनुष्य जितना

कर सकते है, उससे अधिक की आशा न रक्खे और न दे, तो यह ससार और दरिद्रतर होता, क्योकि प्राप्त सुधार अप्राप्त आदर्श का अश ही तो है। गाधीजी श्रद्धावान् है, इसलिए लोगो को उनमे श्रद्धा है। और उनका प्रभुत्व, कोई सत्ता पास न होते हुए भी दुनिया मे किसी भी जीवित पुरुष से अधिक है।

: २३ :

महात्मा गांधी और आत्मबल

रूफस एम जोन्स, डी लिट्
[हैवरफोर्ड कालेज, हैवरफोर्ड, पैन्सिलवेनिया]

जिस किसीको महात्मा गाधी और उनके साबरमती-आश्रम मे भ्रातृ-भाव से रहनेवाले साथियो को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह जरूर उनकी ७१वी जयती के उपलक्ष मे निकलनेवाले अभिनन्दन-ग्रथ मे लेख लिखने के अवसर का स्वागत करेगा। मुझे भी उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मै इस ग्रन्थ मे लेख लिखने के अवसर का प्रसन्नता के साथ स्वागत करता हूँ। मेरे जीवन की विचार-दिशा और जीवन-क्रम पर उनका गहरा प्रभाव है। मै सार्वजनिक रूप से इस अद्भुत पुरुष के प्रति अपने ऋणी होने की घोषणा करता हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मै भी उनके जीवनकाल मे रहता हूँ।

मैने सबसे पहले १९०५ मे असीसी के सन्त फ्रासिस का जीवन पढा था और तभी से मै उनके जीवन को एक ऊँचा आदर्श मानता हूँ। जिन लोगो को मै जानता हूँ, गाधीजी उनमे फ्रासिस से ही सबसे अधिक मिलते हुए मालूम पडते है। १९२६ मे जब मै गाधीजी से मिला, मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि गाधीजी असीसी के उस "दीन-हीन आदमी" के बारे मे बहुत कम जानते है। मै उनके पास बैठ गया और 'दी लिटिल फ्लावर्स आव सेट फ्रासिस' से उन्हे कई कहानियाँ सुनाई। सबसे पहले मैने उन्हे 'परमानन्द' वाली सबसे सुन्दर कहानी सुनाई। फिर मैने उन्हे वह कहानी भी सुनाई जिसमे बताया है कि किस तरह बन्धु गाइल्स और फ्रास के राजा सत लुई गले मिले एक-दूसरे को चुबन किया, अनन्तर काफी देर दोनो चुप, प्रणाम की अवस्था मे धरती पर झुके बैठे रहे और फिर बिना एक शब्द बोले दोनो अलग हुए। कुछ भी कहना दोनो को अनावश्यक प्रतीत हुआ। जैसा कि बन्धु गाइल्स ने पीछे लिखा—'हम एक दूसरे के हृदयो को सीधे जैसे पढ सके, मुँह से बोलकर वैसा नही कर सकते थे।" बिना शब्दो के हृदयो को समझने का जो अनुभव गाइल्स को हुआ था, वैसा ही अनुभव मुझे भी तब हुआ, जब मै आधुनिक काल के सत के साथ ज़मीन पर बैठा

हुआ था। यह ठीक है कि इस सत के पास वैसी शाही पोशाक नही थी, जैसी कि नौवाँ लुई प्राय पहनता था।

मुझे यह भी मालूम हुआ कि गाधीजी जॉन वुलमैन के बारे मे भी, जिससे वह बहुत कुछ मिलते-जुलते है, बहुत कम जानते है। जॉन वुलमैन १८वी सदी के क्वेकरो मे अत्यन्त असाधारण और महान् सन्त हो गये है। आत्मबल की वह जीती-जागती प्रतिमा थे। वुलमैन ने एक दिन सुना कि मुसकिहाना के रैड इण्डियन पश्चिम की बस्तियो मे बसनेवालो से लड रहे है और उन्हे मार रहे है। उनके हृदय मे इन इण्डियनो को देखने के लिए 'विशुद्ध प्रेम की धारा' बहने लगी। उसकी इच्छा हुई कि "वह उनके जीवन और मनोभावो को समझने की कोशिश करे और यदि सभव हो तो उनके साथ रहे।" वह लिखते है कि "मै उनमे, सभव है, कुछ शिक्षा ले सकूँ या उन्हे सत्य की शिक्षा देकर उनकी थोडी-बहुत सहायता कर सकूँ।"

उन्होने देखा कि रैड इण्डियन लडाई की पोशाक पहने हुए है और मार्च कर रहे है। वह उनकी एक सभा मे गये जहाँ वे गम्भीर और शान्त बैठे थे। तब वुलमैन ने शान्त और मीठी वाणी मे उन्हे अपने आने का प्रयोजन बताया। इसके बाद उन्होने फिर ईश्वर की स्तुति-वन्दना की। जब सभा खत्म होगई, तब एक रैड इण्डियन अपनी बोली मे बोल पडा कि, "जहाँ से ये शब्द आते है उसे अनुभव करना मुझे अच्छा लगता है।" उसकी भाषा पराई थी, पर वह मन को मन से समझ गया था। गाधीजी की कार्य-पद्धति भी ठीक इसी तरह की है। उनकी उपस्थिति ही लोगो के हृदय को उनकी वाणी या लेखो की अपेक्षा अधिक स्पर्श करती है, क्योकि "लोग उनके हृदय की गहराई को, जिसमे वह बोलते है, अनुभव करते है।"

हम प्राय उनके जीवन सिद्धान्त—सत्याग्रह—की अहिंसा के रूप मे चर्चा करते है। लेकिन यह तो उसकी निर्गुण व्याख्या है जबकि उनके जीवन-सिद्धान्त की व्याख्या सगुण है और गौरवपूर्ण है। गाधीजी ने कहा कि "मै क्वेकर माइकेल कोट्स का बहुत ऋणी हूँ। जब मै दक्षिण अफ्रीका में रहता था, वह मेरे घनिष्ट मित्र थे। उन्होंने मुझे ईसा के 'गिरि-प्रवचन' से परिचित कराया। उन्होने ईसा की शिक्षा, उनके जीवनक्रम और प्रेम के सन्देश आदि के प्रति मेरी सहानुभूति और श्रद्धा पैदा की। इस शिक्षा से मेरी अन्तर्दृष्टि और भी गहरी होगई और अदृश्य शक्ति में मेरी आस्था और भी बढ गई। अनेक महान् आत्माओ ने मेरे जीवन और विचार-दिशा को बनाने मे बहुत भाग लिया है। टाल्स्टाय, रस्किन, थॉरो और एडवर्ड कार्पेण्टर मेरे ऐसे अभिन्न मार्गदर्शक है, जिनसे मैने बहुत-कुछ सीखा है।

"सत्याग्रह" से गाधीजी का मतलब उस शक्ति के प्रकाश से है जो डाईनेमो से फूटकर काम करनेवाली चमत्कारी स्थूल शक्ति से किसी कदर कम नही है। डाईनेमो कोई नई शक्ति पैदा नही करता। यह शक्ति को अपने द्वारा छोडता है, यही कुछ उस

व्यक्ति के विषय मे है जो उस 'आत्म शक्ति' को मुक्त करता है, जो उसके सीमित क्षुद्र व्यक्तित्व की नही, बल्कि गहन गम्भीर जीवन स्रोत का अग है। व्यक्ति की आत्मा अपने गूढान्तर मे चित् और शक्ति के अगाध सागर के प्रति मानो खुल जाती है। वहाँ तो प्रेम और सत्य और ज्ञान का अबाध प्रवाह है। योगयुक्त होने पर वह प्रवाह व्यक्ति के माध्यम से फूट निकलता है। उपनिषदो मे पुरुष के असीम रूपो का कथन आता है। प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा की सत्ता बतलाई है।

जो व्यक्ति यह जान लेता है कि इन सूक्ष्म और गहरी जीवन-शक्तियो को किस तरह जाग्रत किया जाय, वह न केवल शान्ति और निर्मलता का अधिकारी होता है, वल्कि साथ-ही-साथ वीरतापूर्ण प्रेम, साहस और उत्पादनशील क्रिया-शक्ति का भी केन्द्र बन जाता है। गाधीजी आत्मवल का जो अर्थ समझते है, वह भी कुछ इसी तरह का है। उनका जीवन आत्मवल का अनुपम प्रदर्शन है। यह वीरतापूर्ण शान्ति या निष्क्रियता ही नही है, उससे बहुत अधिक है।

एक दफा मैने उनसे पूछा कि कठिन ससार की सब कठिनाइयो और निराशाओ के बावजूद भी क्या आप 'आत्म-बल' मे विश्वास करते है? उन्होने कहा—"हाँ, प्रेम और सत्य की विजय करनेवाली शक्ति मे मै सदा अपने अन्तरतम से विश्वास करता हूँ। ससार मे ऐसी कोई वस्तु नही है, जो इस शक्ति पर से मेरा विश्वास विचलित कर दे।" जब ये शब्द उनके मुँह से निकल रहे थे, उनकी अँगुलियाँ अपनी निकली हुई हड्डियो और पसलियो पर घूम रही थी। दरअसल वह अपने छोटे-से पतले और कमज़ोर शरीर की शक्तियो की बात नही सोच रहे थे। वह तो प्रेम और सत्य के अनगिनती स्रोतो के भण्डार सूक्ष्म आत्मशरीर की शक्तियो का चिन्तन कर रहे थे।

वीरतापूर्ण प्रेम का यह सन्देश और हिसा से बहुत ऊँचा यह जीवनक्रम कुछ ऐसे लोगो मे भी था, जिन्हे गाधीजी नही जानते, लेकिन वे भी क्षमा और नम्रता के इसी पथ के पथिक थे। मै इनका सक्षिप्त परिचय देकर वीरतापूर्ण और इस जीवन-क्रम के कुछ और उदाहरण देना चाहता हूँ। सबसे पहले मै १७ वी सदी के क्वेकर जेम्स नेलर का नाम लूँगा। इनपर नास्तिकता का अपराध लगाकर इन्हे क्रूरतापूर्वक दण्ड दिया गया था। लोहे की एक गरम लाल सलाख से उनकी जीभ छेदी गई थी। उन्हे दण्ड देने के निमित्त बने सख्त लकडी के साचे मे दो घटे तक रक्खा गया। छकडे के पीछे बाँधकर, पीठ पर जल्लाद के हाथो चाबुक की मार सहते उन्हें लदन की गलियो मे घसीटा गया था। उसके माथे पर दाग से दाग दिया गया था। यह भी हुक्म उन्हे हुआ था कि वह ब्रिस्टल मे घोडे की पीठ पर उलटा मुँह करके सवार हो, सरेबाज़ार उन्हे चाबुक लगाये जायँ और फिर ब्राइडवैल के जेल के एक तहखाने में कैद कर दिया जाय, जहाँ उन्हे कलम-दवात कुछ भी न दी जायँ। अत मे बहुत समय बाद पार्लमेण्ट ने एक कानून बनाकर उन्हे छोडा।

इस मनुष्य ने मनुष्य की अमानुषिकता का शिकार होकर अपने साथ अन्याय करनेवाले समार को यह शिक्षा दी, "मुझ में एक ऐसी आत्मा है, जो कोई बुराई न करके, किसी अन्याय का बदला न लेकर आनंदित होती है। वह तो सबकुछ सहन करने में ही प्रसन्न होती है। उसे यह आशा है कि अन्त में सब भला ही होगा। वह क्रोध सब झगडो, निर्दयताओ और अपनी प्रकृति से विरुद्ध सब दुर्गुणो पर विजय पालेगी। यह आत्मा ससार के सब प्रलोभनो को पार कर दूर की चीज़ देखती है। इसमे स्वय कोई बुराई नहीं है, इसलिए यह और भी किसीकी बुराई नही सोच सकती। यदि कोई इसके साथ धोखा-धडी करे, तो वह सहन कर लेती है, क्योकि परमात्मा की दया और क्षमा इसका आधार और मूलस्रोत है। इसका चरम विकास नम्रता है, इसका जीवन स्थायी और अकृत्रिम प्रेम है। यह अपना राज्य लड-झगडकर लेने की अपेक्षा अनुनय-विनय से बढाती है और उसकी रक्षा भी हृदय की विनम्रता से करती है। इसे केवल परमात्मा के सान्निध्य में ही आनन्द आता है। यह निर्विकार और निर्लेप है। दुःख मे इसका बीजारोपण होता है और जन्मने पर यह किसीसे दया की अपेक्षा नहीं रखती। कष्ट या सासारिक विपत्ति मे यह कभी विचलित नही होती। यह विपता मे ही आनन्द मनाती, और सासारिक सुखभोग में अपनी मृत्यु मानती है। मैंने इसे उपेक्षित एकाकी अवस्था मे पाया। झोपडो और उजाड स्थानो पर रहनेवाले ऐसे दरिद्र लोगो से मेरी मित्रता है जो मृत्यु पाकर ही पुनर्जन्म और अनन्त पवित्र जीवन पाते है।"[१] आत्मबल का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

विलियम लॉ १८वी सदी के प्रमुख रहस्यवादी अंग्रेज़ थे। उन्होने नेलर जितने कष्ट तो नही सहे, लेकिन फिर भी उन्हे काफी कष्टो की चक्की में पिसना पडा। उन्होने भी बहुत सुन्दर और सतत स्मरणीय शब्दो में आत्मबल का यही सदेश दिया है। उनकी एक व्याख्या निम्नलिखित है

"प्रेम अपने पुरस्कार की अपेक्षा नहीं रखता, और न सम्मान या इज्जत की इच्छा करता है। उसकी तो केवल एक ही इच्छा रहती है कि वह उत्पन्न होकर अपने इच्छुक प्रत्येक प्राणी का हितसम्पादन करे। इसलिए यह क्रोध, घृणा, बुराई, आदि प्रत्येक विरोधी दुर्गुण से उसी उद्देश्य से मिलता है, जिससे कि प्रकाश अन्धकार से मिलता है। दोनो का उद्देश्य उसपर आशीर्वाद की वृष्टि करके उसपर काबू पाना है। यदि आप किसी व्यक्ति के क्रोध या दुर्भावना से बचना चाहते है या किन्ही लोगो का प्रेम प्राप्त करना चाहते है, तो आपका उद्देश्य कभी पूर्ण नहीं होगा। लेकिन अगर आपके अन्दर सर्वभूतहित के सिवा और कोई कामना ह ही नही, तो आपको जिस किसी स्थिति में भी गुज़रना पडे, वही स्थिति आपके लिए निश्चित रूप से सहायक

१ 'लिटिल बुक ऑव सलेक्शन्स फ्रॉम दी चिल्ड्रन ऑव दी लाइट'—लेखक रुफस एम जोन्स, पृष्ठ ४८-४९

सिद्ध होगी। चाहे शत्रु का क्रोध हो, मित्र का विश्वासघात हो या कोई और बुराई हो, सभी प्रेम की भावना को और भी विजयी होकर अपना जीवन बिताने तथा उसके उदात्त आशीर्वादो को पाने मे सहायक सिद्ध होते है। आप पूर्णता या प्रसन्नता, जिस किसी का भी विचार करे, वह सब प्रेम की भावना के अन्तर्गत आ जाते है और आना भी चाहिए, क्योकि पूर्ण और आनन्दमय परमात्मा प्रेम और भूतहित की अपरिवर्तनीय इच्छा के सिवा और कुछ नही। इसलिए यदि सर्वभूतहित की इच्छा के सिवा किसी और इच्छा से कोई काम करता है, तो वह कभी प्रसन्न और सुखी नही हो सकता। यही प्रेम की भावना का आधार, प्रकृति और पूर्णता है।"[१]

: २४ :

गांधी का महत्व

शांति-प्रतिज्ञ एक ईसाई की मनोनुभूति

स्टीफेन हॉवहाउस, एम् ए

[ब्रॉक्सबोर्न, हर्ट्स, इग्लैण्ड]

हमारा धर्म अथवा दर्शन कितना भी वहिर्लक्षी प्रतीत हो, किन्तु हममे से जिस किसीमे भी विचार और आकाक्षा की क्षमता है, उसे एक अपनी ही दुनिया का निर्माण उन वस्तुओ मे से करना पडा है जो कि उसके चारो ओर की गूढ और अज्ञात परिस्थिति द्वारा उसे उपलब्ध हुई है। हमारे इस चैतन्य-ब्रह्माण्ड मे कुछ ऐसी वस्तुये है—शक्ति, गुण, आदर्श अथवा व्यक्ति कहकर उन्हे पुकारते है—जो एक अद्भुत और प्रभावकारी आकर्षण द्वारा हमारे स्वभाव, हमारे हृदय और हमारी बुद्धि के केन्द्रीय तन्तुओ मे हलचल कर देती है। और तव अपनी स्वस्थतर घडियो मे एक निरन्तर चाहना हममे जग आती है, कि उन्हे हम जाने, उन्हे प्रेम करे, उनसे अधिकाधिक रूप मे तादात्म्य करले। और हम बराबर इस कोशिश मे होते है कि जो कुछ भी तुच्छ, अनावश्यक, असुन्दर और अपवित्र दीखता है, उससे मुक्ति पा ले।

वे लोग, जिनका अन्त करण भिन्न है, इस केन्द्रीय आकर्षण को बहुत कुछ मानव-कला की कृतियो मे या वैज्ञानिक प्रक्रिया की सूक्ष्म सगतियो मे पायँगे। मै उन अनेको मे से एक हूँ, जिन्हे उनका दर्शन व्यक्तित्व की अनिर्वचनीय विस्मयकारिता और सौन्दर्य मे होता है, कि जिनकी कल्पना उनकी जीवनगत सपूर्णता मे उन श्रेष्ठ और सुन्दरतम नर-नारियो द्वारा होती है जो कि देह-रूप मे अथवा पुस्तको मे हमारी दृष्टि की राह

१ "सलैक्टिव मिस्टिकल टाइटिल्स ऑव विलियम लॉ"—स्टीफेन हॉबहाउस द्वारा सम्पादित, पृष्ठ १४०–१४१

मे गुज़रते है और या उमी व्यक्ति-रूप विस्मय और सौन्दर्य की एक अकथनीय भावना द्वारा, जो कि हममे आकाश, धरती और चेतन जगत् मे प्रत्यक्ष प्रकृति ने उस समय भर उठती है जबकि उस प्रकृति की और हमारी मनोभावनाओ मे एक शातिप्रद अन्तरैक्य होता है। और अपने उच्चतम अनुभव के इन दो केन्द्रो से मै अनिवार्यत उस आस्था मे खिच आता हूँ, जिसे हम परमात्मा कहते है, यानी एक उस अनन्त इन्द्रियातीत और फिर भी एकदम इन्द्रियान्तर्गत और सर्वोच्च कल्याणकारी सत् की परीक्षा और खोज के प्रयोग मे, जो कि जीवन और सौन्दर्य के उन समस्त पृथक् जीवन-केन्द्रो का एक साथ आदि और अन्त है जो कि मेरे भीतर और मेरे चारो ओर मुक्ति और अभिव्यक्ति की चेप्टा मे रत है।

साथ ही, दु ख है कि विकृति और विभेद के वे तमोमय और नाशकारी तत्त्व भी मुझे उतने ही अवगत रहते है जो कि अपनी दुष्क्रिया मे स्वस्थ जीवन के विकास में बाधक बना करते है। कुछेक हदतक ये विकारी शक्तियाँ बाह्य प्रकृति मे मौजूद रहती मालूम होती है, किन्तु जिस हदतक भी मानव की साहसी आत्मा प्रकृति की विपरीतता पर काबू पाने और उसे व्यर्थ करने में आश्चर्यकारी क्षमता से युक्त है, वे (विकारी शक्तियाँ) आज मनुष्यो के हृदयो मे, और खासतौर से मेरे हृदय में, कही अधिक खतरनाक है। बिना सहारे मै भी अत्यधिक बार आस्था खो बैठता हूँ और इन दुष्प्रवृत्तियो की आसुरी शक्ति के आगे निस्सहाय होते-होते बचता हूँ। और तब सहायता और रक्षा के लिए किसी दूसरे व्यक्तित्व मे, वह मानवी हो अथवा दैवी, आत्मा का निकटतर सग पाने को प्रवृत्त होना पडता है।

विधि का आदेश है कि मै उस सम्प्रदाय मे पैदा हुआ और पला हूँ जहाँ भूत और वर्त्तमान दोनो ने मिलकर ईसामसीह की ऐतिहासिक मूर्त्ति को मुझे उस अगाध चित्-सत्ता के सर्वोच्च अवतार-रूप मे साक्षात् कराया, जो कि शिव और सुन्दर मात्र के हृदय मे विराजती दीखती है। चिंतन ने, प्रार्थना ने, और एक और भी शक्तिमयी उस परम्परा के प्रभावो ने, जो कि पुरातन की विवेकशीलता मे पवित्र हुई और अब, जैसा कि पहले शायद कभी भी नही, विपरीत जमा हुई मलिनताओ से विशुद्ध हुई है, मुझे विश्वस्त कर दिया है कि यह इतिहास-गण्य व्यक्ति विश्व और विश्वपति के हृदय मे वह स्थान ग्रहण किये हुए है जो कि अन्य किसी भी मानव-मूर्त्ति या दैवी अवतार की पहुँच के बाहर है। उसी आत्मा का अन्य मानव-प्राणियो मे भी कुछ कम किन्तु फिर भी गौरवमय-गरिमामहित अधिवास है। अनेक उनमे वे है, जिनकी स्मृति का पीछे अब कोई भी उल्लेख नही रह गया है और कुछ उनमें ऐसी आत्माये है कि जिनकी याद-गार को अपने जाति-इतिहास के उज्ज्वल और जगमगाते रत्नो के रूप में सुरक्षित रक्खा गया है। उनके आभामण्डल पर एक थोडे-से काले चिन्ह असल मे मिल जायें, लेकिन इनसे उसकी कल्याणमयता नही ही के बराबर धुधली हो पाती है। मै इन सब

को शाश्वत ईसा के दूतो या पैगम्बरो के रूप मे देखता हूँ। भले ही उनमे से कुछ ईसा को प्रभु और परमात्मा स्वीकार नही कर पाये या करने को उद्यत नहो हुए।

इन महान् युग-पथ-प्रदर्शको मे एक सबसे बडे, प्रतीत होता है, मोहनदास करमचन्द गाधी हैं, और वह अहिसा-सत्याग्रह का पैगाम लेकर जगत मे जनमे है। निश्चय ही, अपने इस युग के तो वह सबसे वडे व्यक्ति है। प्राचीन मतो और नीति की मान्यताओ के ह्रास ने, मशीन द्वारा हुए अत्याचार ने और उद्भ्रान्त व्यवसायवादियो और सेनावादियो द्वारा हुए वैज्ञानिक ज्ञान के दुरुपयोग ने अनेक नई और सुन्दर सचाइयो की हाल मे होनेवाली उपलब्धि के बावजूद भी, एक ऐसा सकट ला खडा किया है कि जैसा दुनिया मे दूसरा नही मिलता। यहाँ तक कि ऐसा आभास होने लगा है कि सभ्यता, अधिक स्पष्ट शब्दो मे ही कहो तो व्यवस्थापूर्वक भलमनसाहत के साथ रहनेवाला शिक्षित समाज, जैसाकि कुछ भाग्यशाली व्यक्तियो ने उसे समझा है, अब शायद पहले कभी की भी अपेक्षा अधिक पूरे तौर से उस विश्व-व्यापी अराजकता और विनाशकारी युद्ध मे नष्ट-भ्रष्ट हो जाये, जिसे कि स्वार्थ-साधन मे नग्न मानव की स्वेच्छाचारी वासनाओ ने जन्म दिया है।

मैने इस लेख मे यह समझाने की कोशिश की है कि गाधी के महान् और अत्यन्त सम्बद्ध अहिंसा और सत्याग्रह के आदर्श ही केवल वह उपाय जान पडते है जिससे हमारी छिन्न-विच्छिन्न और रुग्ण अवस्था को मुक्ति तथा स्वस्थ और सच्चा जीवन प्राप्त हो सकता है। और ऐसा करते समय, साथ-ही-साथ मुझे यूरोपीय विचार-शृखला के गत इतिहास मे आये इन आदर्शों के उल्लेखो पर भी नजर डालते जाना है, क्योकि अधिकाशत आँखो से ओझल और प्राय ईसाई सस्कृति के नेताओ द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित रहकर भी वे अभी कायम है। (भारत और चीन मे अहिंसा का जो इतिहास रहा, उसके वारे मे लिखने का मै अधिकारी नही हूँ।)

उस यूरोप के मध्य मे जो आज ध्वस और विनाश के लिए तलवारो से भी कही अधिक भयकर असख्य साधन जुटाने मे तेजी के साथ सलग्न है, जर्मन प्रदेश सिलीसिया है और वहाँ गौरलिज़ नामक एक प्राचीन नगर है, जो अब आधुनिक साज-सज्जा से सज्जित है। यहाँ एक प्रमुख सडक पर जहाँ कि मोटरो की घू-घूँ से वायु गूँजा करती है, एक महान् किन्तु अल्पख्याति ईसाई जेकब बोहमे के सम्मान मे एक प्रस्तर मूर्ति कोई पन्द्रह वर्ष हुए स्थापित की गई थी। इस मूर्ति के निचले भाग मे स्वय उस ईसाई सत्पुरुष के आस्था और चेतावनीभरे शब्द खुदे हुए है—"प्रेम और विनय ही हमारी तलवार है", "जिसके द्वारा ईसा के काँटो के ताज की छाया मे हम लड सकते है।" इन शब्दो से उस उद्धरण की पूर्ति हो जाती है जिसे कि उस वृद्ध छायावादी सत ने वहाँ अकित किया है। और बोहमे वह सत थे जिन्होने ईश्वर-सत्ता के प्रति अपनी आस्था के अर्थ अनेक विपदाये सही। इस आस्था ही के द्वारा मानव का उद्धार हो सकता है,

यह घोषणा करने के अपराध में वह घर से निकाल दिये गये थे। यूरोपीय इतिहास, निश्चय ही अन्य ऐसे अनेक विनयी, प्रेमी और निर्भीक नर-नारियों की कथाओं से भरा है जिन्होंने कि उसी, यानी अहिंसा के, सन्देश को अपने जीवन में निभाया है और देश की सामाजिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में अधिकांश को अहिंसा के विपरीत जाते देखा है। लेकिन वास्तव में बहुत ही कम उस बल, साहस और प्रेरणा का सचय कर पाये जिससे मौजूदा व्यवस्था के निर्वाण और समाज के पुनर्निर्माण के लिए वे अपने देश-वासियों को विश्व-प्रेम का उपदेश प्रभु-सन्देश के रूप में खोलकर सुना सकते। अवतक परलोक-वाद के अतिरंजन की परम्परा होने के कारण, ऐसे आत्म-ज्ञानी व्यक्ति लगभग हमेशा यह समझकर खामोश हो जाते रहे कि दुनिया और दुनिया की व्यवस्था का विनाश तो विधिद्वारा ही निश्चित है, और इसलिए वे दोनों सुधार के बस की बातें नहीं हैं।

आखिर अब, जब कि यूरोप, जिसका कुछ भाग फिर भी ईसाई होने का दावा कर रहा है, अन्य समस्त 'सभ्य' जातियों के साथ एकसाथ एक आत्मघातक युद्ध की ओर भी जी-जान से बढ रहा है, साम्प्रदायिक और धार्मिक झगड़ों से बुरी तरह छिन्न-विच्छिन्न भारत में एक छोटे-से पतले-दुबले हिन्दू का उदय हुआ है। वह पहले वकील भी रह चुका है। अब वह हज़ारों स्त्री-पुरुषों को सत्य और न्याय के नाम पर एक बिल्कुल नये किस्म की लड़ाई के लिए भर्ती होने को प्रेरित कर सकता है। यह एक ऐसी लड़ाई है, जिसके सैनिक विनाशकारी यंत्रों के गन्दे स्पर्श से एकदम अलग बचे रहने की कोशिश करते हैं। यह एक लड़ाई है जिसके लड़ने के लिए है निर्दोष अस्त्र आत्म-शक्ति और अहिंसा, निर्दय शत्रुओं के भी साथ दिखाई गई सद्वृत्ति, और ईश्वर के समक्ष निष्ठापूर्ण विनय। हाँ, मैं कहूँगा, यह लड़ाई है, जो खुशी-खुशी ईसा का कांटों का ताज और उसकी सूली का दर्द अपनाकर इस दृढ आस्था से लड़ी जाती है कि यह वह सूली और कांटों का ताज है जिससे पीडित और पीडा देनेवाला दोनों सुधरकर ईश्वर तक पहुँच सकेंगे। भारतीय पाठक मुझे क्षमा करेंगे कि मैं स्वभाववश ईसाईधर्म की भाषा पर उतर जाता हूँ। लेकिन मैं हिन्दू-धर्म की हृदय से प्रशंसा करता हूँ कि जिसने अहिंसा के पैगम्बर को जन्म दिया है।

जहाँ आज इस दुनिया में चारों ओर भय और अन्धकार छाया हुआ है, वह एक स्वप्न है, इतना सुन्दर कि विश्वास नहीं होता कि वह सच हो आया होगा। पर यदि विश्वसनीय साक्षियों की बातों पर विश्वास करें, और विश्वास कर सकते हैं तो आश्वासन की सूचना है कि एक जीवन और स्फूर्ति देनेवाले जन-आन्दोलन के प्रथम प्रयोग आरम्भ हो गये हैं। अवतक उसमें असफलतायें और भूल-चूक (नेता और उनके अनुयायियों द्वारा) हुई हैं, यह जुदा बात है। पिछले कुछ महीनों में महात्मा (आम-तौर से इसी पद से भारत में उन्हें विभूषित किया जाता है और वह स्वयं इसे ग्रहण

करने से इन्कार करते है) ने स्वय एक बार फिर पिछली असफलता और निराशा की अनुभूति को नि सकोच स्वीकार किया है, लेकिन फिर भी भविष्य मे अपना अडिग विश्वास प्रगट किया है। "ईश्वर ने मुझे", वह लिखते है, "इस कार्य के लिए चुना है कि मै भारत को उसकी अपनी अनेक विकृतियो से निवृत्ति पाने के लिए अहिंसा का अस्त्र भेट करूँ। अहिंसा मे मेरी निष्ठा अब भी उतनी ही दृढ है जितनी कभी थी। मुझे पक्का विश्वास है कि इससे न सिर्फ हमारे अपने देश ही की सब समस्याये हल होगी, बल्कि इससे, यदि उपयोग ठीक हुआ, तो वह रक्तपात भी रुक जायगा जो कि भारत के बाहर हो रहा है और पाश्चात्य जगत को उलट देना ही चाहता है।"

ज़रा खयाल तो कीजिए एक उस लोकव्यापी और देश-भक्ति से ओतप्रोत आन्दोलन का उन लोगो मे, जो कि आक्राता विदेशी लोगो के शासनाधीन है और जहाँ मालूम होता है सहस्रो ने आनन्द-मग्न और विश्वस्त भाव से नीचे लिखे वचनो को अपने कर्म का आधार-सूत्र स्वीकार किया है। ये वचन उनके उस महान् नेता की लेखनी अथवा मुख से निकले लिये गये है।[१]

"अहिंसा का अर्थ अधिक-से-अधिक प्रेम है। अहिसा ही परमधर्म है, केवल उसीके बलपर मानव-जाति की रक्षा हो सकती है।"

"वह जो अहिंसा मे विश्वास रखता है, जीवन-रूप परमात्मा मे विश्वास करता है।"

"अहिंसा शब्दो द्वारा नही सिखाई जा सकती। हृदय से प्रार्थना करने पर ही वह प्रभु की कृपा से अन्त करण मे जगती है।"

"अहिंसा, जो सबसे वीर है और बलिष्ठ है, उनका शस्त्र है। ईश्वर के सच्चे जन मे तलवार चलाने की शक्ति होती है, लेकिन वह चलायेगा नही, क्योकि वह जानता है कि हरेक आदमी ईश्वर का प्रतिरूप है।"

"यदि रक्त बहाया जाय, तो वह हमारा रक्त हो। बिना मारे चुपचाप मरने का साहस जुटाना है।"

"प्रेम दूसरो को नही जलाता, वह स्वय जलता है, खुशी-खुशी कष्ट सहते मृत्यु तक का आलिगन करता है। किसी एक अग्रेज की भी देह को वह मन, वचन, या कर्म से, जान-बूझकर क्षति नही पहुँचायेगा।"

"भारत को अपने विजेताओ पर प्रेम से विजय पानी होगी। हमारे लिए देश-भक्ति और मानव-प्रेम एक ही चीज़ है। भारत की सेवा के प्रयोजन मे मै इग्लैण्ड या जर्मनी को नुकसान न पहुँचाऊँगा।"

१. कुछेक स्थानो में मैंने गाधीजी के अलग-अलग वचनो को, जैसे कि वे गाधीजी द्वारा स्वयं अथवा भिन्न लेखकों द्वारा प्राप्त हुए थे, सक्षिप्त कर दिया है या जोड दिया है।

"अहिंसा और सत्य अभिन्न है। एक का ध्यान करो कि दूसरा पहले ही आ जाता है।"

"सत्य से परे और कोई ईश्वर नही है। सत्य ही सर्वप्रथम खोजने की वस्तु है।"

"स्वय ईश्वर द्वारा सचालित हमारे पवित्र युद्ध मे कोई ऐसे भेद नही हैं जिन्हे गुप्त रखने की चेष्टा की जाय, चालाकी की कोई गुजायश नही है, असत्य को कोई स्थान नही है। सब कुछ शत्रु के सामने खुलेआम किया जाता है।"

"सत्याग्रह के लिए आवश्यकता है कि शुद्धि के लिए प्रार्थना करके ऐन्द्रिक और अहगत समस्त वासनाओ पर काबू पाया जाय।"

"एक-एक पग पर सत्याग्रही अपने विरोधी की आवश्यकताओ का खयाल करने के लिए बाध्य है। वह उसके साथ सदा विनम्र और शिष्ट रहेगा, यद्यपि सत्य के विरुद्ध जानेवाली उसकी बात या हुक्म को वह नही मानेगा।"

"सत्याग्रही न्याय के रास्ते से नही डिगेगा। पर वह सदैव शान्ति के लिए उत्सुक रहता है। दूसरो मे उसको अत्यन्त निष्ठा है, अनन्त धैर्य है और अमित आशा है।"

"मानव-प्रकृति तत्त्वत एक है और इसलिए अन्यायकारी (अन्त मे) प्रेम के प्रभाव से अछूता रह नही सकता।"

"धरती पर कोई शक्ति ऐसी नही, जो शान्ति-प्रिय, कृत-सकल्प और ईश्वर-भीरु जनो के आगे ठहर सके। ससार के समस्त शस्त्र-भडारो के मुकाबिले भी अहिंसा अधिक शक्तिशाली है।"

"जो ईश्वर से डरता है, उसे मृत्यु से कोई भय नही।"

"रण-क्षेत्रवाली वीरता तो हमारे लिए सभव नही। लेकिन निर्भीकता बिलकुल जरूरी है। शरीर के चोट खाने का डर, रोग या मृत्यु का डर, धन-सपदा, परिवार अथवा ख्याति से वचित होने का डर, सब डर छोड देना होगा। कोई वस्तु दुनिया मे हमारी नही है।"

"अहिंसा के लिए सच्ची विनम्रता चाहिए, क्योकि 'अह' पर नहीं, केवल ईश्वर पर निर्भर होने का नाम अहिंसा है।"

असल में, जिस हद तक हम दुनिया की सम्पदा का अनुचित हिस्सा बटोरकर आराम से बैठे हुए हैं, या अपने साथी जनो को शोषित करने या उनपर शासन चलाने मे सन्तोष का अनुभव करते हैं, वहांतक भले ही हमे ऊपर के जैसे सिद्धान्तो को अपने नित्य जीवन मे लाने मे डर लगता हो, लेकिन सद्भावना-भरे उन सब स्त्री-पुरुषो को, जो मानव और ईश्वर मे और आत्मानन्द के जगत् की वास्तविकता में निष्ठा रखकर जीवन बिताने की चेष्टा करते है, अवश्य ही एक ऐसे आन्दोलन मे आह्लाद मिलना

चाहिए, जिसने, बावजूद अपनी सब भूल-चूको के, मानव-इतिहास मे पहले-पहल अपनी पताकाओ पर विशुद्ध जीवन-स्फूर्ति देनेवाले ऐसे उपदेश-वचन अकित किये है।

खासतौर से ध्यान देने योग्य बात यह है कि कम-से-कम दो ऐसे अवसरो पर, जहाँ कि सविनय-अवज्ञा के रूप मे सत्याग्रह-आन्दोलन ने एक अपर्याप्त रूप से शिक्षित जनता मे भयावह उत्तेजना का ऐसा वातावरण पैदा कर दिया था, जिससे नौबत हिंसात्मक कार्योतक पहुँच गई थी, भारत के इस नेता ने एक नितान्त असाधारण साहस का परिचय दिया। अपनी 'हिमालय-जैसी भूल' को उसने कबूल किया और आदोलन को एकदम बन्द कर दिया, यद्यपि उसके बहुत-से अनुगामियो को बुरा लगा और उन्हे रोष भी हुआ। इसके अतिरिक्त, हिंसा और अत्याचार की बुराई का प्रतिरोध करने के लिए गाधीजी का जो कार्यक्रम है, उसीसे अभिन्न रूप मे जुडे हुए और विविध कार्य क्रम है जिनसे प्रकट होता है कि "जो सबसे दीन है, नीचे गिरे है, कहीके नही रहे है," और खासतौर से जो भारत के 'अछूत' बने दर-दर मिलते है उन सबसे सत्याग्रही किस बेचैनी के साथ मिलकर एक होजाने को उत्सुक रहता है।

पिछली कुछ शताब्दियो मे पश्चिम के तौर-तरीके और विचार-सस्कारो ने फैलकर पृथ्वी के अधिकाश भागो को आच्छादित कर लिया है। पर उस समाज मे ईसा के सुन्दर आदर्शो का बहुत-से-बहुत उपयोग है तो वह अश-मात्र। यह सच है कि उस सस्कृति के प्रभाव से जीवन को स्फूर्ति मिली है, अभागो और पीडित जनो को न्याय, दया और सहायता का कुछ-कुछ भाग प्राप्त हुआ है, सचाई और ईमानदारी को बल भी मिला है, और एक बहुत बडी सख्या को भोग-प्रधान जडवाद की दलदलो से उबरने का सास भी मिल सका है। लेकिन इन क्षेत्रो मे भी उस पद्धति की सफलता अत्यत सीमित होकर रह गई है। उधर ईसाई आदर्श तो, जैसा कि हम जानते है, बेकारी, व्यावसायिक प्रतियोगिता, और युद्ध की मुसीबतो को दूर करने मे अकृतकार्य ही हुआ है। वजह यह है कि लगभग सब ईसाई, यहाँतक कि अतिशय धार्मिक जन भी 'सुरक्षितता' के मोह मे रहे है और उन्होने अपना विश्वास अनात्म मे और जडता मे और सचित सम्पदा मे अटका लिया है। शान्ति-रक्षा के निमित्त ध्वसकारी शस्त्रो मे उनका विश्वास है, ईश्वर मे और ईश्वरदत्त आत्म-शक्ति मे आस्था उन्हे नही रही है। हम ईश्वर और लक्ष्मी दोनो की साधना करना चाहते है। हम अपनेको बेशुमार ऐसे सामान से घिरा रखते है जो प्राय अज्ञान और अनिच्छुक मजूरो और आत्मा का हनन करनेवाली मशीनो द्वारा बना होता है। हम अपने नौजवानो को मार-काट और ध्वस की शिक्षा पाने की प्रेरणा देते है, और यह सब इसलिए कि अपराधियो और भूखो के हमलो से हम बचे रहे। पर हमारे लालच और स्वार्थ से भूखा और भूखा रहने को लाचार होकर अत मे अपराधी हो उतरता है।

ईसा ने अपनी महान् उपदेश-वाणी में, और इससे भी अधिक स्वय अपने जीवन

और मृत्यु के दृष्टान्त द्वारा हमेशा के लिए इस झूठी सभ्यता की चिकित्सा वता दी है। वह स्त्री और पुरुषो का आवाहन करते है कि वे सीखें कि किस प्रकार जीवन की सादगी और स्वस्थ-कर दीनता से (पतनकारी लाचार दीनता से नहीं) सतुष्ट रहना चाहिए, किस प्रकार ईश्वर की सहायता और सरक्षकता मे पूर्ण विश्वास रखना चाहिए, और किस प्रकार अन्य सभी कुछ से ऊपर परमात्मा, आत्मानन्द, और जीवन-मोक्ष को महत्त्व देना चाहिए। वह कहते है कि सव मानव-प्राणियों से एकता प्राप्त करो और एक दूपित आत्मा का मुकाविला अजेय धैर्य और प्रेम से करो। इस विश्वास से विचलित न होओ कि अन्यायी भी न्यायी वन सकता है और निष्ठा प्राप्त करो कि वलपूर्वक किसी का हिंसात्मक प्रतिरोध करने के वजाय स्वय कष्ट सहोगे और इसमें जाने देने को तैयार रहोगे। वुरो को भलो मे वदल देने की यही परमात्मा की रीति है।

आदि मे, ईसा के कुछ थोडे ही अनुयायियो ने वुराई का मुकाविला करने का यह तरीका पूरे तौर पर समझा मालूम होता है। यह हमारा दुर्भाग्य है। और तो और, वाइविल मे भी, जहाँ इसकी व्याख्या है, वहाँ पुरानी दड-भावना का भी आवरण चढ गया है। कम-से-कम कुछ लेखको ने तो उस पवित्र पुस्तक में ऐसी धारणा प्रकट की है कि कोप और दण्ड की तलवार चलाना और ईश्वर का और राज्य का—यानी नास्तिक राज्य का—अधिकार-सिद्ध कर्म है, हाँ, व्यक्ति-रूप मे, एक ईसाई को वुराई का जवाव वुराई मे नही देना चाहिए। कुछ अस्वाभाविक नहीं था कि ईसाई-धर्म-शासन (चर्च) ने भी इस धारणा को अपनाया। और फिर उस जहर को ईसाई लोक-शासन मे भी प्रविष्ट कर दिया। खास तौर से यह मूल धारणा कि, ईश्वर के पुत्र मसीह ने एक नित्यवर्त्ती नरक की सत्ता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, ईसाई विचार पर कलक की तरह विद्यमान है। ऐसे विश्वास को लेकर 'क्रॉस' (आत्म-यज्ञ) के अर्थ के पूरे महत्त्व को पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

सपूर्ण मानव के रूप मे मसीह के व्यक्तित्व के प्रति आत्यतिक भक्ति (और भक्ति उचित है यदि, और मै मानता हूँ कि अवश्य ईसा लोकोत्तर पुरुष थे) यहाँ तक कि गूढ आराधना और प्रेमरूप ईश्वर के प्रति तन्मयता भी ईसाई मत के सन्तो को मानव-समाज के प्रति उस ईश्वर के यथार्थ आदेश को प्रकट करने में असफल रही। निस्सन्देह, उनमें अनेक ने सच्ची अहिंसा का आचरण किया। लेकिन ईसाइयत के किसी वडे नेता ने मनुष्य-जाति के उद्धार के लिए अहिंसा को अकेला एक कारगर उपाय नहीं वताया। पीछे सतजन हुए जिन्होंने प्रयत्न किये कि ईसाइयत सामाजिक हिंसा से छूटे। पर जान पडता है कि ये भी ऐसे ईश्वर के रूप में श्रद्धा रखते रहे जिसमे क्रोध और दण्ड की भावना को स्थान है। उनका विश्वास ऐसे ईश्वर मे मालूम होता है कि जो हमारे युद्धो का पुरस्कर्ता है और जिसने जीवन-काल मे प्रायश्चित्त न हो सकनेवाले पाप-भोग के लिए अनन्त नरकयातना का विधान किया है। जहाँ-तहाँ

विचारक और साधु-सन्त लोग यदि हुए भी है तो उनकी आवाज अरण्य-रोदन की तरह अनसुनी रह गई है। उनपर ध्यान नही दिया और उन्हे गलत समझा गया है। आखिर मानवता की परम आवश्यकता की घडी मे लियो टॉल्स्टॉय का उदय हुआ। युवावस्था मे उन्हीसे मैंने प्रकाश पाया है और उनकी कथाकार की धन्य-शक्ति का मैं कृतज्ञ हूँ। उनके लेखो से लोगो मे अपने सम्वन्ध मे प्रश्नालोचन पैदा होता है। वही फिर फल लाता है। टॉल्स्टॉय से पश्चात् महात्मा गाधी हमारे समक्ष है। उन्होने ईसामसीह के शिक्षा-स्रोत से टॉल्स्टॉय ने जो उन शिक्षाओ का स्पष्टीकरण किया, उससे तथा पवित्र हिन्दू-शास्त्रो से प्रेरित होकर अहिंसा का सन्देश ग्रहण किया और जीवन के हर विभाग मे उसका उपयोग किया है और उससे ऐसे तर्क-सिद्ध आकर्षक रूप में सामने रक्खा है कि हज़ारो पिपासु आत्माओ को तृप्ति होती है। उस सन्देश मे हृदय पर अधिकार करने का बडा वल है और वह विज्ञानयुक्त भी है।[1]

ईसाई साधु-सन्तो के सदृश गाधीजी को भी ईश्वर निश्चयपूर्वक नीतिवान और व्यक्तिवत् रूप मे प्रतीत होता है। यह तो है ही कि ईश्वर अपौरुषेय है। यहाँ दोनो की मान्यताओ मे मैं कोई भेद नही देखता। न तो पुनर्जन्म का हिन्दू-विश्वास उनके व्यावहारिक उपदेश पर कोई ऐसा प्रभाव डालता दीखता है, जिसपर किसी भी तरह एक ईसाई को आपत्ति हो सके। और गाधीजी के लेखो मे, कही इस प्रकार का सकेत मुझे नही मिला कि ईश्वर मे, पुरुष-रूप, वह क्रोध की किसी भावना या दण्ड के किसी कार्य की गुजाइश देखते हो। यह तो धन-तृष्णा है, मनुष्य का अहकार और स्वार्थ है, जिसका दण्ड मनुष्य स्वय भोगता है और नष्ट होता है। गाधीजी कहते है, "ईश्वर प्रेम है।" "वह तो सहिष्णुता का अवतार है।" "उसका तन्त्र ऐसा सम्पूर्ण प्रजातन्त्र है कि उसकी दुनिया मे समानता नही हो सकती।" पाप-फल और कर्म-सिद्धान्त की व्याख्या मे गाधीजी निर्गुण-निराकार ईश्वर के तत्त्व को मानते मालूम होते है। वोहेम और लॉ और कुछ अन्य आधुनिक विचारको ने कर्म मे ही फल-शान्ति मानी है। वह शायद सत पॉल की मान्यता थी। गाधीजी भी उसके विल्कुल समीप

१ यहाँ स्मरण दिलाना अच्छा होगा कि दक्षिण अफ्रीका की अपनी पहली सार्वजनिक अहिंसक प्रवृत्ति के आरभ में गाधीजी अपनेको टॉल्स्टॉय का शिष्य मानते थे। अपनी सब प्रवृत्तियो का विवरण लिखकर गाधीजी ने टॉल्स्टॉय को भेजा था। सन् १९०३ में (अपनी मृत्यु से कोई सात वर्ष पहले) टॉल्स्टॉय ने जवाव में एक लम्बा पत्र दिया। वह पत्र वडे काम का है। अन्त में उसके जो वाक्य थे, वे भविष्य-वाणी जैसे लगते है। लिखा था 'दुनिया के इस दूसरे छोर पर रहनेवाले हमलावरो को मालूम होता है कि वहाँ ट्रान्सवाल में जो आप कर रहे है वह वहुत ही आवश्यक काम है। दुनिया में जितने काम किये जा रहे है, उन सवमें महत्वपूर्ण आपका काम है। उसमें ईसाई देश ही नहीं, बल्कि दुनिया के सव देश भाग लिये विना बच नहीं सकेगे।"

है। गाधीजी के आदर्श मे जो एक अगम्य निष्ठा है उससे पापीमात्र के निरन्तर और अनिवार्य उदार के तत्त्व का और ईश्वर के साथ मनुष्य-जाति की वास्तविकता एकता के तत्त्व का भी प्रतिपादन होता है। "आत्मा सबकी एक है मैं इस तरह पापी-से-पापी के कर्म मे अपने आपको अलग नही करता मेरे प्रयोग (अर्थात् सत्याग्रह) मे इसलिए तमाम मनुष्य-जाति का सवाल आ जाता है।"[१]

पर दूसरी ओर यह कोई अचरज की बात न होगी यदि मेरे समान एक पश्चिम देश के ईसाई को गाधीजी के समूचे कार्यक्रम मे सहमति न हो सके। उदाहरण के लिए, विवाह के सम्बन्ध मे उनके विचार अहिंसा से सगत न मालूम होकर आत्यन्तिक काया-दमन के लगते है। उनकी स्वदेशी की धारणा और शुद्ध हिन्दू राष्ट्रीयता भी यथार्थ सनातनी अथवा ईसाई अहिंसा-सत्याग्रह की प्रकृति से असगत और विभिन्न या विपरीत भी जान पडती है। पर दिन-पर-दिन यह हममे से अधिकाधिक पर प्रकट होता जाता है कि जैसे कि एक भारतीय मिशनरी ने कहा है, "सत्याग्रह, जोकि गाधीजी बतलाते और आचरण मे लाते है अथवा उनके सच्चे अनुयायी जीवन मे जिसे उतारते है, वह ईसाई-धर्म की मूल शिक्षा से एकदम अभिन्न है। वह बुराई को प्रेम से जीतने और स्वेच्छा से स्वीकार की गई और प्रीति के साथ बरदाश्त की गई वेदना के बल से पाप को धर्म मे परिवर्तित कर देनेवाले शाश्वत सिद्धान्त 'क्रॉस' यानी आत्म-आहुति और यज्ञ-धर्म का दूसरा रूप है।

ईसाइयो को इस बात का तो सामना करना ही होगा कि ज़ाहिरा तौर पर उनके सम्प्रदाय का न होकर वह एक सनातनी (कट्टर) हिन्दू है। टॉल्स्टॉय की ऐसी ही भिन्न स्थिति की भी कल्पना कीजिये जिसने कि क्रॉस के आहुति-धर्म के सार को पाया है और समाज के लिए उसके परम महत्त्व को समझा है। वह है जो असलियत मे ईसा-मसीह की दूसरो के पापो का प्रायश्चित करनेवाली और जीवनदायिनी मृत्यु के रहस्य को धारण कर सका ह, और वह है कि उस सन्देश के प्रति अपनी तत्पर लगन और निष्ठा से हज़ारो आदमियो मे वैसी ही त्याग की स्फूर्ति भर सका है। वह धन-तृष्णा को परास्त करता आया है और काया के विकारो मे कभी फँस नही गया। मुझे विश्वास है कि जन्म और स्वभावगत हिन्दू-सस्कारो की बाधा न होती, तो ईसामसीह की शिक्षा का ऋण ही नही, बल्कि स्वय ईसामसीह के जीवन के सर्वोच्च आदर्श और उसकी प्रेरक आत्मा को आज गाधी अपने सत्याग्रह के मूल में स्वीकार करते।

जब सोचता हूँ कि मनुष्य-जाति के इतिहास पर सत्याग्रह का क्या प्रभाव पडेगा, क्या परिणाम इस सम्पर्क का होगा, तो कल्पना कुछ इस तरह की सम्भावनाये प्रस्तुत करती है। अधिनायक तत्रवाले राष्ट्रो की रीति-नीतियां कैसी भी बुरी हो, लेकिन धार्मिक बुद्धि के लिए तो परिस्थिति के दो पहलू विचारणीय है। एक तरफ प्रजातन्त्र

१ सन् १९२४ में दिल्ली में उपवास के समय के गाधीजी के वचन।

कहे जानेवाले पश्चिम के राष्ट्र है। सभ्यता, सस्कृति या धर्म के विषय मे यही देश अगुआ है। पर ये दुनिया की जो बहुत सी ज़मीन, माल और साधन अपनाये बैठे है, उसमे और मुल्को के साथ बराबरी का बँटवारा करने को वे तैयार नही है। उधर खुलकर जोर की आवाज के साथ यही देश ऐलान करते है कि उनके पास जो कुछ भी धन-जन-साधन उपलब्ध है, उन सबको लडाई मे झोक देने को वे तैयार है। आधुनिक लडाई का रूप कल्पना मे न लाया जाय तो ही अच्छा है। उसके ध्वस की तुलना नही हो सकती। और यह युद्ध होगा किसलिए ? इसलिए कि आसपास के जो भूखे देश लूट मे अपना भी हिस्सा माँगते है उन्हे दूर ठिकाने ही रक्खा जाय। धन-दौलत और अधिकार के पीछे बेतहाशा आपाधापी और होडा-होड लगी है। तिसपर उस वृत्ति मे आ मिली है बुद्धि की चतुरता। आदमी का दिमाग बेहद बढ गया है। प्रकृति की शक्ति और मनुष्यो के सगठन को काबू मे करके अब वह बहुत कुछ कर सकता है। नतीजा यह हुआ है कि भारी शक्ति बटोरकर लोग उन आसुरी वृत्तियो को पोस रहे है। ऐसे क्या होगा ? होगा यही कि सारी दुनिया मे डिक्टेटरशाहियो या कि अन्य तन्त्र-शाहियो के गुट्ट लोक-तृष्णा और शक्ति-सचय की प्यास मे आपस मे घमासान मचायेगे और प्रजातन्त्र नामवाले देश भी उन अन्य तन्त्र-शाहियो की ताकत का मुकाबिला ताकत से करेगे। इस तरह मुसीबत और बढेगी ही। त्रास बढेगा, दैन्य बढेगा। लोभ और आतक का दौरदोरा होगा। क्योकि आज की-सी लडाई की भीपणता के बीच या तो यह है कि पजातन्त्र, राष्ट्र दुश्मनो की ज्यादा मजबूत हिंसा-शक्ति के आगे हार कर नष्ट हो या फिर अपने ही अन्दर सैनिक वर्ग और वृत्ति-प्रधानता बढते जाने के कारण, आवश्यकता के बोझ से स्वय अपने मे ही डिक्टेटरशाही उपजाकर उसके हाथो पडकर नष्ट हो।

उसके बाद फिर तो विश्वव्यापी पैमाने पर पुराने रोम-शाही के खुले दौर का समय होगा ही। दया और धर्म की पूछ तब नही होगी। पर जैसा कि सशस्त्र विरोध के मिटने के बाद, रोम-राज्य भी धीरे-धीरे उदार और निष्पक्ष होने लगा था, वैसे ही दुनिया की यह एकच्छत्रता स्वेच्छाचारी और जडवादी रहते हुए किसी कदर कर्मसस्ती की ओर एव एक निरकुश की बुजुर्गशाही की ओर झुकेगी।

पर फिर भी हजारो लाखो स्त्री-पुरुष होगे जो निरकुशता के हाथो बिकेगे नही, न उसके मूक साधन बनेगे। उनका इन्कार दृढ रहकर बढता और फैलता ही जायगा। कष्टो से पवित्र, शनै शनै ऐसे बहुत सख्या मे समुदाय होते जायँगे। ईसाई उसमे होगे, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान या अन्य धार्मिक वर्ग होगे। ये समूह आपस मे पास खिचेगे और इकट्ठे बनते जायँगे। वे सहिष्णु होगे और रह-रहकर उनपर अत्याचार टूटेगा। (ईसाई होने के नाते यह विश्वास मुझे है कि अन्त मे जाकर ईसा के सच्चे विसर्जन-धर्म के ही किसी स्वरूप की विश्वव्यापी विजय होगी, चाहे फिर उसमे सदियाँ ही क्यो न लग जायँ।) ये सब समुदाय सरकारी अत्याचार या जनता के अनाचार के

प्रतिकार का जो उपाय करेंगे, वह अहिंसा-सत्याग्रह ही होगा, अधिक सगठित, अधिक व्यापक, अधिक अनुशासित, तेजोमय और विमल। पर भविष्य का वह प्रौढ आन्दोलन होगा इसी शिशु समर्थरूप से, जिसे हमारे इस युग मे गाधीजी ने जन्म दिया है। और आगामी सतति के लोग गाधीजी की तरफ और उससे भी पीछे टाल्स्टाय की तरफ उनके नवयुग के स्रष्टा के रूप मे देखेंगे। कुछ काल तो अवश्य निरकुश विश्व के नियता अधिनायकजन, अपना बाह्य शत्रु न देखकर लोकमन को, खास तौर से नई पीढी को अपनी ही तरह की शिक्षा से छा देगे और सदा के लिए अजेय दिखाई देने लगेगे। लेकिन आदमी के अन्दर की दिव्यात्मा को इस प्रकार दफनाकर कबतक रक्खा जा सकता है। अन्तत शासक-वर्ग की शक्ति अन्दर से धीमे, पर निश्चितरूप में क्षीण और खोखली होती जायगी। बुराई मे, अव्वल तो, स्वय ही अनिवार्य नाश का बीज होता है, जो बढता रहता है। और यदि सद्भावनावाले लोग पथभ्रात और अधीर हिंसा का आश्रय लेकर उसे न छेडे तो वह नाश और भी शीघ्र आजाय। यानी उस शासन-शक्ति के प्रतिस्पर्द्धी दलो मे फूट पैदा होने लग जायगी। दल बढते जायँगे और घरेलू युद्ध-कलह मच जायगा। इन लडाइयो मे असहयोगवाली सत्याग्रह-भावना के व्यापक प्रचार के कारण, लडानेवालो को बरसो गुजर जाने पर उनकी लडाई लडने के लिए इस दुनिया मे कम-से-कम लोग हथियार बनकर मरने को राजी मिलेगे। आखिर इस धरती पर लाखो की सख्या मे ऐसे स्त्री-पुरुष तैयार हो जायँगे, जो सबकुछ सह लेगे, पर अहिंसा, अन्याय और धन-तृष्णा के हाथो अनुचित अस्त्र बनने को राजी न होगे।

साथ ही, यह विश्वास और आशा करने के लिए सजबूत कारण है कि सद्भावना का प्रभाव सत्याग्रहियो के सघो मे फूट-फूटकर शनै शनै शासको और उनके अनुयाइयो की छावनियो मे छाता जायगा। यह प्रभाव कोरी निषेधात्मक साधुता का नही होगा बल्कि सक्षम प्रेम का बल उसमे होगा। उस ईश्वर की निष्ठा का उसे बल होगा, जो ईसा मे मूर्तिमान् हुआ, या कहो, बुद्ध अथवा कृष्ण मे मूर्तिमान् हुआ। वही ईश्वर स्वय उनका नेता और त्राता होगा। वास्तव मे वही सत्य होगा, वही प्रेम होगा। वह प्रेम का अधिष्ठाता प्रभु होगा और सबके हृदय में स्वर्ग का राज होगा। इस प्रकार शासक लोग भी उन्नति करते-करते इस विषम सघर्ष के परिणामस्वरूप अधिकाधिक मनुजोचित व्यवहार के योग्य बनेगे और शासन-शान्ति के भले के लिए सत्याग्रहियो की उपयोगिता पहचानकर उन्हे स्वराज्य और स्वधर्म की अधिकाधिक स्वतन्त्रता देगे। अर्थ-शास्त्र के क्षेत्र मे इस स्वतन्त्रता का अभिप्राय होगा कि धर्म-सघ स्वावलम्बी होगे और मशीन के विकारी प्रभाव से बचे रहेगे। वही मशीने रक्खी जायेगी और रह पायेगी जो मनुष्य के सम्पूर्ण विकास और पशु अथवा जन्तु-जगत् के भी सौन्दर्य और सुख के विरुद्ध न होगी। सत्याग्रही-धर्म-सघो मे अधिक-से-अधिक सख्या मे लोग खिचकर आयेगे, यहातक कि

ससार के अगभूत बडे-बडे साम्राज्यो के अन्दर ऐसे सत्याग्रहियो का बहुमत होता चलेगा। वे सत्याग्रह की शक्ति मे इतना पर्याप्त विश्वास रक्खेगे कि कहे कि शासन-सत्ता का मूलाधार वही सिद्धान्त हो सकता है। उसके बाद तो छुट-पुट सनकी या झक्की-से ही लोगो के दल शेष रह जायेगे। उनके हाथो अधिकार भी कुछ न होगा। पर वे भी फिर स्वय ही ऐन्द्रिक विलास या तृष्णागत कर्म के चक्कर से ऊब चलेगे। क्योकि सब ओर उन्हे ऐसे लोगो का समाज मिलेगा जो विना धैर्य खोये, न किसी प्रकार का आवेश लाये, सब सह लेगे और किसी तरह का बदला लेने से इन्कार कर देगे। वह समय होगा कि देवदूत ईसा के ये वचन पूरे होगे कि "धन्य है वे जो नम्र (शान्त, अथवा अहिसक) है, क्योकि वे धरती पर राज करेगे।" राज्य!—नरलोक, सुरलोक, दोनो का राज्य!

बस, यहाँ आकर कल्पना हार बैठती है। आप कह सकते है कि यह तो आदर्श की बात हुई। पास से चित्र देखने से निराशा होती है, दूर रखकर देखने से ही आशा होती है। पर बुरी-से-बुरी सम्भावना और भली-से-भली आशा का सामना करने की आदत रखना उपयोगी होता है। हो सकता है कि विधाता की ओर से कोई अभूतपूर्व सकट आपहुँचे जिसमे मानव-जाति ही का ध्वस होजाय, कौन जानता है! पर यदि ऐसा नही है, और इस धरती पर यदि एक दिन शान्ति और न्याय का साम्राज्य स्थापित होना ही है, तब तो निश्चय ही रास्ते मे कुछ विघ्न-बाधाओ के मिलने की हमे आशा रखनी ही चाहिए। ईश्वर का काम अचूक है, पर वह जल्दी का नही होता। और मनुष्य के भीतर का विकार भी नष्ट होने मे शीघ्रता नही करता दीखता। पर यदि, और जब, इस धरती पर राम-राज आयेगा तथा आदमी और आदमी के (गाधीजी तो कहेगे कि आदमी और पशु के भी) बीच द्वेष और कलह की, कम-से-कम बाहरी, सम्भावना तो मिट ही जायेगी, उस समय यह आशका कृपाकर कोई न करे कि जिन्दगी यह वीरान और सुनसान जगल की तरह हो जायगी, दिलचस्पी की बात कोई न रहेगी और सब ऊबने जैसा होजायगा। नही, हम विश्वास रख सकते है कि चैतन्य की असीम सृजन-शक्ति चुप नही बैठा करती और उसकी गति और प्रवृत्ति के लिए सदा असीम अवकाश रहे ही चला जायगा। ईश्वर की रचना मे तो अतोल भेद और अनन्त रहस्य भरा पडा है। आदमी की चेष्टा उसके अनुसन्धान मे बढती ही जा सकती है। और यही होगा। पर तब प्रेरणा प्रीति की होगी और कर्म यथार्थ होगा। वही प्रेरणा और वैसा ही कर्म है, चाहे वह स्वल्प और अविकसित रूप मे ही क्यो न हो, जो हिन्दुस्तान की जनता को इस समय उभार दे रहा है।

आनेवाले साल सकट और अन्धकार से भरे हो सकते है। पर वे ही प्रकाश और आनन्द से भी भरे होगे। इन पक्तियो का लेखक कृतज्ञता के साथ यहाँ स्मरण करना चाहता है कि कैसे चालीस बरस पहले लियो टॉल्स्टॉय के स्फूर्तिमय वचनो को पढकर

उसने युद्ध-प्रतिकार और स्वेच्छा से वरण किये हुए दैन्य-दारिद्रय के आदर्श मे हिच-किचाहट के साथ कुछ प्रयोग शुरू किये थे। फलस्वरूप काफी दिन जेल की कोठरी का भी उसे अनुभव हुआ। भला होता यदि उसके प्रयत्न बाद में भी उस दिशा मे जारी रहे होते। आज तो वह इच्छा-ही-इच्छा है। तो भी उस भारतीय महापुरुष के प्रति, जिसे उस रूसी महर्षि का आज का स्थानापन्न कहना चाहिए, श्रद्धाजलि भेट करने के अवसर के लिए यह लेखक परमकृतज्ञ है।

हाल ही मे स्वर्गवासी हुए कवि यीट्स ने कहा है कि "मेरी कवि-वाणी चिर-नवीन है।" यीट्स का कहना सच ही था। पर यह और भी सच है कि श्रमजर्जर, आयु-जीर्ण, मोहनदास गाधी के ओठो से प्रस्फुटित हुआ आत्म-शक्ति का सन्देश सदा अजर-अमर है। वह नित-नवीन है—पैंतालीस वर्ष पहले जब वह अध्यात्म-पुरुष पहले-पहले सत्य के साहसपूर्ण प्रयोग कर रहा था, उस समय से भी आज वह नवीन है। क्योकि क्या आयु के वर्षो के साथ-साथ वह पुरुष भी क्रम-क्रम से अजर-यौवन और दिव्य-नम्र उस सत् शक्ति के स्रोत ईश्वर से अभिन्न ही नही होता जा रहा है? उस चिदानन्द चैतन्य के साथ उत्तरोत्तर एकाकारता क्या उसे नही प्राप्त हो रही है, जहाँ मृत्यु द्वारा जीवन का वरण किया जाता है? हो सकता है कि ईसाई होने के कारण या समाज-दर्शन की ओर से वस्तु-विचार करने की आदत की वजह से हम पश्चिमी ईसाई उनकी दृष्टि की स्पष्टता पर मर्यादाये भी देख पाते हो। पर यह तो असदिग्ध है कि गाधी हमारे युग के महात्मा है। वह मुक्त मानवता के अवतार है, नवजाग्रत समाज के और विश्व के भविष्य के वह अग्रदूत है। और भावी विश्व का वह रूप अब और इस समय भी हमारे बीच जन्म-काल में है। बस, यदि हम ही अपना कर्त्तव्य निभाना जान लेते।

अस्तु, हम जो ईसामसीह की छाया के नीचे खडे है, भक्ति-भाव से उस पुरुष-श्रेष्ठ को प्रणाम करते है। उसके सत्याग्रह-सघ के सच्चे सदस्यो को भी हमारा प्रणाम हो। उन्हीकी भाति हम भी ईश्वर की अमरपुरी के, अपनी स्वप्नपुरी के, नम्र नागरिक है।

: २५ :

ब्रिटिश कामनवेल्थ को गांधीजी की देन

ए० बेरीडेल कीथ, एम ए., डी. लिट्., एल-एल. डी., ई. एफ्. बी. ए
[एडिनबरा यूनिवर्सिटी]

हममे से कुछ के लिए महात्मा गाधी के जीवन की विशेषता इसीमे है कि वह, ऐसे ससार मे जो अपने व्यावहारिक कार्यो में आदर्श पर अमल करने का विरोधी है,

आदर्शवाद के पथ पर चलते हुए अनिवार्यरूप से सामने असख्य कठिनाइयो के होते हुए भी आदर्श की प्राप्ति के लिए किये गये दृढ तथा निरन्तर प्रयत्नो का द्योतक है। दक्षिण अफ्रीका मे मानवीय व्यक्तित्व का मूल्य मनवाने के लिए उन्होने जो सेवाये की है, उनको ब्रिटिश कामनवेल्थ के इतिहास मे अवश्य ही प्रमुख स्थान मिलेगा। दक्षिण अफ्रीका के अफ्रीकन भाषा-भाषी लोगो का सिद्धान्त ही यह था कि क्या धर्म और क्या राजनीति, दोनो मे गैर-यूरोपियनो के साथ समानता का वर्ताव नही किया जा सकता। वहाँ भी गाधीजी ने इस सिद्धान्त पर आग्रह किया कि मनुष्य-मनुष्य समान है और जाति या वर्ण के आधार पर किया गया कृत्रिम भेद युक्ति-विरुद्ध और अनैतिक है। उन्होने वहाँ भारतीयो की स्थिति मे भारी सुधार किया और दक्षिण अफ्रीका मे उनकी स्थिति की समस्या को एक नई रोशनी मे रक्खा। इस काम मे जिन विरोधी शक्तियो का उन्हे सामना करना पडा, उनके वल की ठीक कल्पना होने पर ही हम समझ सकते है कि उनका उक्त काम उनकी सब सफलताओ मे सर्वोपरि था। यह बडे दु ख की बात है कि उनके वहाँ से चले आने के बाद वह सकीर्णतासूचक वर्ण-भेद फिर से वहाँ होगया है। लेकिन जवसे महात्माजी ने भारतीयो मे आत्मसम्मान की भावना भरी और इस विचार का निषेध किया कि अपने वडप्पन के लिए एक मनुष्य या मनुष्य-समाज द्वारा दूसरो का शोपण करने मे वुराई नही, तवसे वहाँके भारतीयो की विरोध करने की शक्ति वढ वहुत गई है। कुछ समय के लिए यह आदर्श दवा रह सकता है, पर यह खयाल नही किया जा सकता कि वह विलकुल ही मिट जायगा। केनिया और जजीवार मे भी उनके सिद्धान्तो का अच्छा परिणाम हुआ और उनकी वजह से वहाँके अग्रेजो ने इग्लैण्ड मे अपने प्रभाव से भारतीय हितो का उचित ध्यान रक्खे विना इन स्थानो का शासन खुद हथिया लेने का जो प्रयत्न किया था, उसका असर कम होगया। महात्माजी के प्रयत्न भारतीय हितो तक ही सीमित नही रहे। जिन सिद्धान्तो का उन्होने प्रचार किया, वे अफ्रीकन लोगो के भविष्य पर भी मानव रूप से लागू होते है। उन्होने कभी इस वात का समर्थन नही किया कि भारतीयो को अपनी ऐतिहासिक सस्कृति और सभ्यता के आधार पर केवल अपने समानाधिकार का दावा करके सन्तुष्ट होजाना चाहिए और अफ्रीका के मूल निवासियो को कमीना समझने और दासवृत्ति के योग्य मानने में यूरोपियनो का साथ देना चाहिए।

भारत मे उन्होने इसी सिद्धान्त की शिक्षा दी कि भारतीय भी मनुष्य-मनुष्य सव समान है। इसको किसी यूरोपीय से घटकर न माने। इस प्रकार उन्होने अपने उन भारतीय साथियो के लिए कुछ धर्म-सकट अवश्य पैदा कर दिया, जिनके धर्म-ग्रन्थो मे—अन्य सव देशो के पुराने धर्म-ग्रन्थो के समान ही—मनुष्य-मनुष्य मे असमानता पर ईश्वरीय स्वीकृति की छाप लगादी गई है। परन्तु उन्होने भारतीयो का आत्म-शासन का अधिकार स्वीकार करने मे युक्तिरूप से जो सवसे वडी अडचन पेश की जाती थी उसका

अन्त कर दिया। वह अडचन यह थी कि नीची श्रेणी के समझे जाने वाले लोगो का हित इस बात मे नही है कि उनका भाग्य उन लोगो के हाथो मे सौपा जाय जिनके लिए ऐतरेय ब्राह्मण मे कुछ लोगो को शेप मनुष्य-समाज का सेवक होने और आवश्यकता पडने पर घरो मे बाहर कर दिये जाने और मार डाले जानेतक का विधान किया गया है। महात्माजी ने अछूतो का जो पक्ष लिया और उसमे हिन्दू-धर्म के सबमे अच्छे सिद्धान्तो को बढावा देने मे जो सफलता मिली, ये सब बाते उनके चरित्र की विशेषताये है और कालान्तर मे उनके चरित्र का सबसे प्रमुख अग रहेगी। ऐतिहासिक विकास के महत्वपूर्ण क्षणो का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी को इन बातो से शुद्ध सन्तोप मिलेगा।

सरकार के साथ अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त का इतिहास तो बडा विवाद-ग्रस्त है। साधारण मनुष्य की प्रकृति से जो आशा की जासकती है, इस सिद्धान्त पर अमल के लिए उसमे कुछ अधिक योग्यता की आवश्यकता है, क्योकि मनुष्य तो स्वभाव से ही लडाका है, और जिन लोगो ने अहिंसा के सिद्धान्त के प्रचार का बीडा उठाया, वे खुद अपनी आदि भावनाओ को शिकार होगये। फिर भी इतिहास बतलाता है, और इससे कोई इन्कार नही कर सकता कि न जाने किस अगम्य मनोवैज्ञानिक कारण से ब्रिटिश सरकार जिन मागो की निरे युक्ति-बल द्वारा पेश किये जाने पर उपेक्षा करती रही, उन्हीको उसने तब झट स्वीकार कर लिया जब उन्हे मनवाने के लिए उसके शासन मे अडचन खडी करदी गई। अत यदि महात्माजी ने ऐसी नीति अपनाई जिसमे हिंसात्मक कार्यों का खतरा था और जिनको अमल मे लाने पर वास्तव मे ऐसा हुआ भी, तो भी यह मानना पडेगा कि वह उन ध्येयो को केवल इसी प्रकार प्राप्त कर सकते थे जिन्हे वह भारत के लिए प्राणप्रद समझते थे। भारत के प्रान्तो मे प्रान्तीय स्वराज्य पर जो अमल हो रहा है, वह ब्रिटिश कामनवेल्थ के इतिहास की अत्यन्त विशिष्ट घटनाओ मे से एक है। और यद्यपि जीवित और दिवगत महापुरुपो मे से और कइयो को भी इसका श्रेय है, पर महात्माजी के समान किसी दूसरे को नही। वह वस्तुत उनका एक स्थायी स्मारक है। संस्कृत-साहित्य की यह अद्वितीय विशेपता है कि वह ऐसे अर्थपूर्ण श्लोको से भरा पडा है, जिन्हे इस देव-भाषा को पढानेवाला प्रत्येक विद्यार्थी बचपन मे ही याद कर लेता है। मालूम होता है कि ऐसा ही एक श्लोक बालक गाधी के मन पर अकित होगया था, क्योकि यह श्लोक उस आदर्श को प्रकट करता है, जिसे पूरा करने के लिए उन्होने अपना सारा जीवन निछावर कर दिया। वह श्लोक यह है —

अय निज परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

(यह हमारा है और वह पराया, ऐसा ख़याल तो छोटे दिल के लोग किया करते है, उदार-चरित व्यक्ति तो सारी दुनिया को ही अपना कुटुम्ब मानते है।)

: २६ :

विश्व-इतिहास में गांधीजी का स्थान

काउण्ट हरमन काइज़रलिंग

[डार्मस्टाट, जर्मनी]

हम ऐसे बडे ज़बरदस्त और चक्करदार सघर्षो के युग मे रह रहे है जो मानव-इतिहास मे शायद ही पहले कभी हुए हो। काल और अन्तरिक्ष पर विजय पा लेने से अब एक-दूसरे से अलग होने का विचार ही भ्रमपूर्ण जान पडता है। गत महायुद्ध से पूर्व ससार के सभी देशो मे सचमुच अल्पसख्यको का, चाहे उन्होने किसी सिद्धान्त का दावा क्यो न किया हो, राज्य था। परन्तु आज इसके विपरीत जनता जागी है, अथवा यो कहे कि सभी जगह बहुसख्यको के हाथ राजनैतिक और सामाजिक शक्ति आई है, जिससे वह ज़बरदस्त शक्ति बन गई है, बल्कि बहुसख्यकत्व आज के युग का एक खास गुण बन गया है। जिस प्रकार विद्युत-शक्ति विद्युत की दो विरोधी धाराओ (पॉजीटिव और निगेटिव) की आवश्यक सहचारिता द्वारा व्यक्त होती है (जहाँकि एक ध्रुव अपने विरोधी ध्रुव को प्रेरित ही नही, बल्कि पैदा भी करता है) उसी प्रकार जीवन भी उन परस्परविरोधी और सघर्षशील शक्तियो का सतत-अस्थिर सन्तुलन है, जिनमे से बहुत-सी ध्रुवत्व गुणवाली है। इसलिए ऊपर जिन परिवर्तनो की रूपरेखा बताई गई है, उन्होने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहाँ मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक धरातल पर अश्रुतपूर्व शक्तियोवाली धाराये एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करती है। जितनी अधिक-से-अधिक शक्तिशाली विद्युद्धाराओ की हम कल्पना कर सकते हो उनसे इन धाराओ की तुलना की जा सकती है। ससार के खास-खास आन्दोलनो के साथ जो निश्चित विचार जोडे गये है, उनका तो कुछ महत्व ही नही है और वे हमेशा भ्रम मे डालनेवाले होते है। इसकी वजह पहली तो यह है कि उनमें से हरेक को बनानेवाले उपादान इतने अधिक होते है कि वे सब उस नाम के अन्तर्गत नही आते। दूसरे जैसाकि समस्त इतिहास बतलाता है, एक आन्दोलन के 'नाम और रूप' के पीछे जो वास्तविक शक्ति रहती है और उसके नाम व रूप मे, कालान्तर मे, समानता बहुत कम रह जाती है। बहुधा देखा गया है कि एक आन्दोलन एक खास उद्देश्य को लेकर चला। वह कालान्तर में जैसे जीवन प्रगति करता गया, किसी दूसरे रूप मे ही बदल गया। इसलिए आज जितने ससारव्यापी आन्दोलन चल रहे है और उनके लिए जो नाम रक्खे गये है, मै उनको ठीक नही मानता। ससार का कोई राष्ट्र जो प्रजातत्र या समाजवाद या स्वतत्रता या अनीश्वरता के नाम

पर लडाई छेडना है, उस समय जो कुछ वह कहता है उसका वही मतलब नहीं होता जिसका कि वह दावा करता है। वास्तव मे तो सब-के-सब अंधेरे मे उस उद्देश्य के लिए जो उन्हे अभी तक मालूम नहीं है, भटकते फिर रहे हैं। उस उद्देश्य की आखिरी रूपरेखा उसी समय मालूम होगी जब कि वे न केवल गर्भावस्था (जिसमे कि हरेक इस समय है) मे बाहर ही आ जाये, बल्कि उसके बाद काफी बढ भी जाये। आज मनुष्य जिन उद्देश्यो और ध्येयो के लिए लड रहे है, उनमे से कोई भी अन्तिम विजय प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि ससार इस समय सघर्ष के विशाल क्षेत्रो मे, भयकर शक्ति के केन्द्रो मे, बँटा हुआ है। सघर्ष के विस्फोट के अनतर जो कुछ बचे उसका एकानुरूप समन्वय ही अधिक स्थिर सन्तुलन पैदा कर सकता है। परन्तु यह समन्वय बडी दूर की बात है और उस तक पहुँचना बडा कठिन है।

इसके साथ ही एक कठिनाई और भी है, जिस पर विचार करना है, और वह यह कि यह बात आसानी से नहीं कही जा सकती कि इस समय जो बडी-बडी शक्तियाँ काम कर रही है, उनमे से कौनसी देर तक टिकी रहेगी और कौनसी शक्ति, जिसका इस समय अस्तित्व भी नहीं है, ससारव्यापी शक्ति बन उठेगी। लेकिन अगर हम यहाँ पर दो सिद्धान्तो को समझ ले, जिनकी महत्ता को अभीतक शायद ही समझा गया है तो वे हमे एक अधिक सच्ची भविष्यवाणी करने में सहायक हो सकेंगे। इनमे से पहला सिद्धान्त तो प्राचीन चीन की देन है। इसके अनुसार प्रत्येक ऐतिहासिक घटना स्थूल व प्रत्यक्ष रूप मे घटित होने के पच्चीस वर्ष पूर्व ही घटित हो जाती है। कल्पना यह है कि आज के बच्चे, न कि आज के वयस्क पुरुष, पच्चीस साल मे दुनिया पर राज्य करेगे, अत उस भविष्य के रूप का अनुमान बच्चो के जीवन और भावना का ठीक अन्दाज लगाकर कर सकते है। दूसरा सिद्धान्त है ध्रुव नियम का सिद्धान्त (ला ऑव पोलेरिटी)।[१] इसके अनुसार प्रत्येक क्रियाशील शक्ति (यदि हम इसे ज्योतिष की भाषा मे कहे तो) ध्रुवत्व गुणवाली विरोधी शक्ति के साथ सम्बन्ध जोडती है। इसी प्रकार एक दृढ सिद्धान्त, अपनी दृढता व शक्ति के कारण, एक विरोधी सिद्धान्त पैदा करता और उसे बल देता है।

एक आन्दोलन एक ही दिशा मे जितने जोरो से चलेगा, उतनी ही तेजी से उसका विरोधी दिशा मे आन्दोलन होने की सम्भावनाये है। मेरे विचार मे केवल इसी दृष्टि से कुछ सभावना के साथ महात्मा गाधी की ऐतिहासिक महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस विशाल दृष्टि से तो उनकी महत्ता वास्तव मे बहुत बडी मालूम होती

१ यह सिद्धान्त यह है कि एक भौतिक पदार्थ में दो विरोधी गुण होते है। जैसे कि चुम्बक लोहे में एक ओर लोहा खींचने का गुण और दूसरा लोहे को पीछे धकेलने का गुण। अगर एक प्रकार के गुणवाले दो ध्रुव एक-दूसरे के पास लाये जायगे तो वे एक-दूसरे को पीछे धकेलेगे। —सपादक

ह । पहले कोई भी युग हिंसा से इतना ओतप्रोत नही था जितना कि आज का हमारा युग है । क्योकि आज सभी गोरी जातियोवाले देशो के वहुसख्यक जन किसी-न-किसी प्रकार हिसा के पक्ष मे हैं । इसी प्रकार काली जातियोवाले देशो के वहुसख्यक भी इसके पक्ष मे है । इस सवको देखने हुए यह निश्चित ही है कि वल-प्रयोग से क्रान्ति करनेवाला यह आन्दोलन उस समय तक समाप्त नही होगा जवतक कि वह इस सवध मे इन सभी अवसरो व सम्भावित उपायो का प्रयोग न करले । पृथ्वी के किसी-न-किसी भाग मे अनेको शताब्दियो तक लम्बी-लम्बी लडाइयाँ होगी, सघर्ष ही सघर्ष होगे । और क्योकि ऐसा हो रहा है और होगा, इसीलिए अहिंसा के ज़ाहिरा निपेधात्मक विचार द्वारा प्रेरित किया हुआ आन्दोलन प्राण-सदृश एव ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त कर सकता है, जो कि उसे इससे भिन्न परिस्थितियो मे न तो मिलती ओर न अभीतक कभी मिली ही है । ऐसा इसलिए भी होगा, क्योकि अहिसा के आदर्श और उसके विरोधी आदर्श मे जो ध्रुव सघर्ष है, वह एक ओर ध्रुवत्व (Polarity) अथवा ध्रुव-सघर्ष का द्योतक है । वह है साध्य बनाम साध्य की अपेक्षा साधन की प्रमुखता । और मेरे विचार से यही दूसरा ध्रुवत्व महात्माजी को एक पतीक के रूप मे अमर वनाता है, फिर चाहे वस्तुस्थिति के धरातल पर उनके द्वारा आरम्भ किये गये आन्दोलन की सफलता कैसी ही क्यो न हो ।

जेसुइट लोगो का सिद्धान्त है कि 'लक्ष्य पवित्र हो तो साधन सव उचित है ।' (धर्माभिमानी पाश्चात्यो ने सचमुच ही 'रेड इण्डियनो' के साथ व्यवहार करने मे इसी सिद्धान्त पर अमल किया था ।) परन्तु जवतक यह सिद्धान्त चलता रहेगा उस समय तक ससार की स्थिति मे वास्तविक एव स्थायी रूप से सुधार होना दूर की वात है । विनाशकारी साधनो का प्रयोग वदले मे प्रति-विनाशकारी साधनो को पैदा करेगा और इस तरह सिलसिले का अन्त न होगा । बुद्ध ने कहा ही है, "अगर द्वेष का जवाव द्वेष से ही दिया जाता रहेगा, तो द्वेप का अन्त फिर कहाँ है ?"

ससार मे आज वल-प्रयोग और आक्रमण द्वारा अपना प्रसार करने का ढग चल रहा है । आज सभी शक्तिशाली जातियो ने उसी ढग को अपना रक्खा है । और भी जैसे समय वीतता जायेगा, अधिकाधिक जातियाँ उस ढग मे पडेगी । महात्मा गाधी ही इसके विपरीत-ध्रुव (Counter-pole) अथवा विरोधी धारा के जीवित प्रतीक है । जिस प्रकार शान्तिवादी चीन को आत्म-रक्षा के लिए आक्रामक वनना पडा है उसी प्रकार भारत मे भी, जहाँकि और जातियो के साथ वहुत-सी लडाका और वीर जातियाँ भी रहती है, वहुत करके ऐसी ही घटनाये घटने की सम्भावना है । परन्तु महात्माजी तो पूर्वोक्त विरोधी-ध्रुव (अर्थात् अहिंसा) के सवसे स्पष्ट, महान्, विशुद्ध-हृदय अव्यभिचारी प्रतीक रहेगे । वास्तव मे उस दिशा मे अभीतक वह अकेले ही एक विशाल जन-आन्दोलन के प्रतिनिधि है । अहिंसा वास्तव में हिन्दुओ के सवसे प्राणभूत

आदर्शों से मिलती-जुलती है, प्राणभूत इसलिए कि भारत के हृदय में इनकी गहरी जड़ जमी हुई है। व्यक्तिगत रूप से मेरी यह पक्की धारणा है कि महात्माजी एक दूसरे कारण से भी एक बड़े ऐतिहासिक महापुरुष होंगे। वह दो विभिन्न युगों के सन्धि-द्वार पर खड़े हैं। एक ओर तो वह भारतीय ऋषियों के पुराने आदर्श के प्रतीक हैं और दूसरी ओर वह बिल्कुल आधुनिक जननायकों की श्रेणी में भी गणनीय हैं। इस सीमा तक तो उनका ऐतिहासिक महत्व जॉन बेपटिस्ट के समान ही है। एकांगी ऋषि का तो मेरी कल्पना में भावी मानव-समाज में, 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[1] की संज्ञा देता हूँ, वैसा कोई विशेष भाग अब न हो सकेगा जैसा भूत काल में था। भविष्य का लक्षण होगा धर्म का और तेज का समन्वय। शौर्य का नम्रता के साथ वरण होगा।

मानव-समाज के भविष्य के उस पुरुष में पूर्णता होगी आध्यात्मिक और भौतिक शक्तियों का उसमें समन्वित सतुलन होगा। और यदि कोई जीवित है जिसका भाग उस भविष्यत् के पूर्ण पुरुष के निर्माण और आह्वान में सबसे अधिक गिना जायगा तो वह महाव्यक्ति है, युग-सधि का अधिवासी गांधी।

: २७ :

जन्मोत्सव पर बधाई

जार्ज लेन्सबरी

[मेम्बर पार्लमेण्ट, लन्दन]

ससार के प्रत्येक भाग के उन करोड़ो मनुष्यों का साथ देने में मुझे प्रसन्नता होती है, जो अक्तूबर १९३९ में महात्मा गांधी के जन्मदिन के बारम्बार मंगलमय पुनरागमन की कामना कर रहे हैं।

उन्होने एक बड़े आदर्श की तत्परता से सेवा के लिए अपना महान् जीवन लगा दिया है। और अपने और भारत तथा संसार में अपने करोड़ो समर्थकों और मित्रों के जीवन द्वारा दिखला दिया है कि हरेक प्रकार की बुराई और पाप के विरुद्ध निष्क्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध में कितनी महती शक्ति है। जिस युग में उनका जन्म हुआ है उसमें उनसे अधिक लगन और निरन्तरता के साथ 'सत्य' का समर्थन करनेवाला दूसरा कोई नहीं हुआ। हमारी यही कामना है कि वह पूर्व का ही नहीं, बल्कि संसार के हरेक भाग के स्त्री-पुरुषों का विश्व-शान्ति, विश्व-प्रेम, सहयोग और सेवा की दिशा में नेतृत्व करते रहने के लिए युग-युग जीते रहें।

१ लेखक की प्रमुख पुस्तक (World in the making) का दूसरा अध्याय देखिए।

: २८ :

गांधीजी की श्रद्धा और उनका प्रभाव

प्रोफेसर जान मैकमरे, एम. ए

[यूनिवर्सिटी कॉलेज, लन्दन]

पिछली सदी मे एक अग्रेज कवि ने यह यह लिखना उचित समझा कि—
"पूर्व पूर्व है, पश्चिम पश्चिम, इन दोनो का मिलन कहाँ ?"

जिस समय ये पक्तियाँ लिखी गई थी उस समय ये ऐसा मत प्रकट करती थीं, जिसपर गम्भीरतापूर्वक चर्चा भी की जा सकती थी। आज तो यह मत निश्चितरूप से इतना अर्थ और तर्क-हीन है कि यह पद एक खासा मजाक वन गया है। मानवजाति के द्रुत गति से एक इकट्ठे होते जाने मे वहुत-कुछ वजह तो यातायात के साधनो का विकास है। इसके कारण इतनी सुगमता होगई है कि एक देश के पुरुष को सव देशो के लोग आसानी से जान लेते है और वह सहज ही अतर्राष्ट्रीय ख्याति का वन जाता है। स्वभावत प्रश्न और विस्मय होता है कि इन आधुनिक ख्यातियो मे कितनी समय की कसौटी पर ठहरेगी और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त महापुरुपो मे से कितने भावी पीढी के मन और हृदय पर ऐतिहासिक महापुरुपो के रूप मे अकित रहेगे ? शायद ही किसी व्यक्ति के सम्वन्ध मे यह वात निश्चित तौर पर कही जा सके। पर एक व्यक्ति ऐसा है जिसके वारे मे इस सम्वन्ध मे ज़रा-सी भी शका करनी असम्भव है। वह व्यक्ति महात्मा गाधी है।

मनुष्य की महानता की दिशाये और दशाये अनेक है। पर वडप्पन का स्थायित्व गहराई मे है। इतिहास के महापुरुप वे व्यक्ति है जिनका ससार के लिए महत्त्व मानवीय व्यक्तित्व की गहराई से उत्पन्न होता है। ऐसे आदमी की एक खासियत यह मालूम होती है कि लोग उसका भिन्न-भिन्न और आपस मे एक-दूसरे से मेल न खानेवाला अर्थ लगाते है। मसलन् सुकरात की महत्ता इस वात से प्रकट होती है कि उसके मरने के एक सदी वाद यूनान मे वहुत-से दार्शनिक आम्नाय पैदा हो गये, जिनमे आपस मे एक-दूसरे से होड रहती थी और प्रत्येक सुकरात की सच्ची शिक्षाओ का यथावत् प्रचार करने का दावा करता था। ये महापुरुप, ध्यान की वात है, न तो पुस्तको के लेखक होते है और न, शब्द के साधारण अर्थ मे, वडे कामकाजी और कर्मठ ही होते है। पर इन दोनो क्षेत्रो मे दूसरो के द्वारा इनका व्यक्तीकरण हुआ करता है। दूसरो से उनके व्यक्ति का जो सस्पर्श होता है वह स्वय एक विधायक शक्ति होती है। उनके इस

संसार जैसे वह है, वह होनामात्र ही इस संसार को ऐसा बदल देता है कि वह फिर कभी लौटकर वैसा ही हो नहीं सकता। गांधीजी इसी प्रकार के व्यक्ति हैं। उनका प्रभाव लगभग सब उनके अपने व्यक्तित्व की परिपूर्णता पर अवलम्बित है। उसका प्रकाश दूसरों पर पड़नेवाले उनके असर में प्रकट होता है। वह प्रभाव दूसरे के दृष्टिकोण को बदल देता है और उनकी अनरग मानवता, उनकी क्षमता और संभावना को गंभीर बनाता है। एक औलिया, एक राजनीतिज्ञ, एक शान्तिवादी, एक प्रजातंत्रवादी एक सामाजिक क्रान्तिकारी, तथा एक बड़े प्रतिक्रियावादी के से स्थितिपालक—चाहे जिस रूप में उन्हें देखा जा सकता है। उनके जीवन-कर्म के महत्त्व को अमुक पहलू से लेकर वही उन्हें यह देने में असमीचीन कुछ नहीं है। परन्तु इनमें कोई एक उनके प्रभाव के रहस्य को छूता हो, सो बात नहीं। उनका एक-दूसरे से भिन्न होना ही यह सिद्ध करता है कि उनके प्रभाव की महत्ता उस धरातल से, जिसतक कि इस प्रकार का वर्गीकरण पहुँच सकता है, परे है।

महात्मा गांधी के लिए मेरे हृदय में जो आदर व सम्मान है वह उनके विचारों या नीति से सहमत या असहमत होने के कारण नहीं है। मेरे हृदय का आदर-सम्मान तो, बल्कि इसलिए है कि वह ऐसे व्यक्ति हैं कि सिद्धान्त अथवा कार्यक्रम-सम्बन्धी सहमति या असहमति के प्रश्न ही उनके सामने होकर बिल्कुल असंगत पड़ जाते हैं। संसार में वही एक पुरुष हैं जिन्होंने एक बार फिर भावुक और नीतिपरक सत्य-निष्ठा की शक्ति की विधायकता को, एक बड़े पैमाने पर, संसार को खुली आँखों दिखा दिया है। उस युग में जबकि पश्चिमी सभ्यता भौतिक शक्ति में अपने विश्वास के कारण टुकड़े-टुकड़े हो रही है, उस युग में जिसमें कि मानवी एकता की भावना को लोग एक ऐसा आदर्श समझते हैं जो भौतिक शक्तियों के सामने शक्ति-हीन है, महात्माजी ने धन और शस्त्रों की संगठित शक्ति को हराने के लिए नैतिक शक्ति की टेक थाम ली है। अभी उनकी सफलता या असफलता का अनुमान लगाने का समय ही नहीं आया है। पर इस समय भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने (नैतिक सिद्धान्तों में) अपने इसी विश्वास के बल पर छिन्न-भिन्न भारत को संगठित कर दिया, उस समय जबकि भारत के भाग्य का निर्णय करने का दावा करनेवाली सभ्यता के प्रतिनिधि उनकी इसी विश्वास पर से अपनी श्रद्धा हट जाने के कारण छिन्न-भिन्न हो रहे थे। सत्य के आदर्श शासक के समान जान पड़ता न ... रहने हुए सत्तावान् है। उन्होंने जन-साधारण को जाग्रत किया और भारत को राष्ट्र बनाया है। अपनी नैतिक साहस की सहज प्रतिभा द्वारा अपने देशवासियों के जनसामान्य में आत्म-सम्मान का भाव भर दिया है। उनमें अपनी मनुष्यता में विश्वास जगाया है। यह करके उन्होंने इतिहास की धारा को ही बदल दिया है और मानव-जाति के एक बड़े भाग के भविष्य को निर्धारित कर दिया है।

: २६ :

योग-युक्त जीवन की आवश्यकता

डान साल्वेडोर डी मेड्रियागा, एम. ए.

[लन्दन]

मानव-जाति किसी दिन हमारे युग को ऐसे युग के रूप मे देखेगी, जिसमे मानव कलाओ मे सवसे कठिन कला अर्थात् शासनकला (और मनुष्य द्वारा प्रतिपादित यह अन्तिम कला होगी) वर्वरता से ऊँची उठनी शुरू हुई। हमारी आँखो के सामने और हमारे पीछे राज्य-शासन की कला वर्वरता से परिपूर्ण है। अगर मुझे विरोधाभास की भाषा का प्रयोग करने दिया जाय तो मैं कहूँगा कि अभी तो लोगो मे राज्य-शासन की कला का विचार ही नही वना है। शासनकला का उद्देश्य तो यह है कि समाज और व्यक्ति के जीवन की धाराओ मे सन्तुलन और समत्त्व हो। शासन-कला का जो विचार इस समय लोगो के मन मे है वह एक अपूर्ण व अपरिपक्व विचार है।

आदि-जातियो की परम्पराये एव प्रथाये, उनके मुखियाओ के अत्याचारी कार्य, एशिया के पुराने सामन्तो का गौरव, रोम के सम्राटो की नीललोहित (अर्थात् कालिमा लिये हुए) प्रतिभा और रक्तमय आतक, रोम के पोपो का वर देनेवाला और साथ ही छीन लेने वाला हाथ, मध्ययुग के वीरतापूर्ण और जघन्य युद्ध, साम्राज्य-निर्माताओ और विजेताओ के साहसपूर्ण और जघन्य साहसिक कार्य, आदेश से अनुमति और अनुमति से विवेक तक कानून का क्रमागत विकास, उद्योग-धन्धो के गृह-युद्ध और उनके हडताल और तालावन्दी के उग्र और तैयार साधन जिनसे समाज के एक कोने मे एक छोटेसे सघर्ष को हल करने मे सारा समाज क्रियाहीन होजाता है राष्ट्र-सघ का उत्थान एव प्रथम (पर अन्तिम नही) पतन, मार्क्सवाद का उत्थान एव प्रथम (पर अन्तिम नही) पतन, यत्ररूप अत्याचार के प्रतीक फासिज्म ऐव नाजीवाद का उद्भव—भविष्य की दृष्टि से देखने पर ये सव सघर्ष तथा अन्य अनेक, जिन्हे दिमाग पकड नही सका है, मनुष्य-समाज की उसी चिर-समस्या को सुलझाने के लिए प्रस्तुत किये गये अस्थायी और जल्दी मिटजानेवाले स्वरूप है, जो काल (समय) और स्थान (विभिन्न देशो) की परिस्थितियो और निकट आवश्यकताओ के अनुसार वनाये गये है। वह समस्या है मानव-समाज व मनुष्य की जीवन-धाराओ मे सन्तुलन पैदा करने की समस्या।

मनुष्य अपनी त्वचा को अपने शरीर की सीमा समझ अपने को स्वशासित ही

नही, वल्कि स्वतन्त्र प्राणी भी समझता है। पूर्वी देशो के निवासियो की अपेक्षा हम यूरोपियन इस भ्रम मे ज्यादा पडे हुए है। परन्तु सभी व्यक्ति कम या अधिक मात्रा में एव किसी-न-किसी रूप में अपने को स्वतन्त्र घटक समझते है। परन्तु थोडा भी विचार वताने के लिए पर्याप्त है कि केवल शरीर-शास्त्र की दृष्टि मे भी मनुष्य घूमने-फिरने या गमन करनेवाली प्रवृत्तियोवाला वृक्ष[१] है, जिसने अपनी जडे और मिट्टी समेटकर अपने पेट मे रखली है ताकि वह चल फिर सके।

जिस प्रकार मूंगे की द्वीप-माला से अथवा मधु-मक्षिका की मक्खी के झुंड से पृथक् कल्पना नही की जा सकती उसी प्रकार शरीर-शास्त्रीय दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य किसी दृष्टिकोण से व्यक्ति की मनुष्य से (अधिक स्पष्ट शब्दो मे मनुष्य की मानव-समाज से) अलग कल्पना ही नही की जा सकती। वास्तव मे मनुष्य समाज या समूह का एक घटक (unit) है।

परन्तु मुख्य प्रश्न (समस्या) तो यह है कि इस समाज या समूह के दुहेरे उद्देश्य या ध्येय है। (एक तो अपने ध्येय की प्राप्ति और साधना, दूसरा समाज के ध्येय व लक्ष्य की प्राप्ति और साधना) मधुमक्खियो में तो मधुमक्खियो का व्यक्तिगत ध्येय तथा उसे कार्य मे प्रवृत्त करनेवाली प्रेरक भावना मधुमक्खी के झुंड के ध्येय से पृथक् नही है, परन्तु हमारा विश्वास है (फिर चाहे वह ठीक हो या गलत, यह अलग और महत्त्वहीन वात है) कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत चरम ध्येय होता है। इसी कारण मनुष्य का जीवन सचमुच एक विराट समस्या वन जाता है। यदि हमें केवल समाज या समूह के हितो का ही विचार करना पडे तो उसका हल यद्यपि कठिन अवश्य होगा, परन्तु वह समस्या, यो कहे कि, एकमुखी ही होगी। किन्तु जब समूह के हितो और ध्येयो के साथ हमें व्यक्ति के हितो और ध्येयो का भी ध्यान रखना पडता है तव तो हमारी कठिनाई वर्गाकार वढजाती है।

सक्षेप में सामूहिक जीवन की समस्या की दो धारायें है—

व्यक्ति की धारा, जिसको वर्षो मे वनाये तो वह ७० वर्ष की होगी।

समाज या समूह की धारा जिसे शताब्दियो द्वारा ही मापा जा सकता है।

इसके साथ ही चरमध्येय के ध्रुव भी दो है—

पहला तो व्यक्ति का जो अपनेको ही अपना अन्तिम ध्येय समझता है और है भी।

दूसरा समूह या समाज का, जो अपने मे अपना अंतिम ध्येय मानता है।

इस व्यवस्था की उलझने यही समाप्त नही हो जाती, क्योकि इनके अतिरिक्त कुछ समूह और भी है, जिनके मनुष्य अग है। इनमे से एक (यानी राष्ट्र) तो आज

१ कुछ पश्चिमी दार्शनिको का मत है कि मनुष्य वास्तव में वृक्ष है। भेद केवल इतना है कि वृक्ष एक जगह स्थिर रहता है और चल-फिर नहीं सकता, परन्तु मनुष्य चल-फिर सकता है। —अनुवादक

इतना जबर्दस्त होगया है कि वह मनुष्य को कुचले डाल रहा है। राष्ट्र मानव-समुदाय का वह एकत्र रूप है जिसमे मनुष्यो को अधिक-से-अधिक प्राण-शक्ति मिली है। उसकी जीवन-धारा शताब्दियो मे मापी जा सकती है। मानव-समुदाय के जितने रूप है उनमे यह रूप (राष्ट्र) सबसे ज्यादा देर तक जीनेवाला (चिरायु) हो, सो नही है। चिरायु तो वस्तुत मानव-जाति—इस पृथ्वी पर बसनेवाले सभी मनुष्यो का समाज—ही है। और क्योकि यह (मानवजाति) सभी काल और सभी स्थानो मे व्याप्त है, अत यही मनुष्य-समाज का सबसे सुस्पष्ट रूप है। इस प्रकार जीवन-धाराओ और चरम-ध्येयो की हमारी सरणी इस प्रकार बनती है —

धाराये	चरम-ध्येय
मनुष्य	मनुष्य
राष्ट्र-विशेष	राष्ट्र-विशेष
मानव-जाति	मानव-जाति

सारा इतिहास सन्तुलन के लिए इन दोनो का सघर्ष ही है। स्वतन्त्रता की पताका के नीचे जितने गृह-युद्ध और क्रान्तियाँ हुई वे मनुष्य की धारा या गति और उसके चरम-ध्येय मे सन्तुलन प्राप्त करने के लिए हुई, तानाशाही (डिक्टेटरशिप) के झण्डे के नीचे जो प्रतिक्रियाये और अत्याचार हो रहे है, वे राष्ट्र की गति और चरम-ध्येय मे सन्तुलन के लिए और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध भी विभिन्न देशो के गति-प्रवाहो और ध्येयो में सन्तुलन के लिए ही हुए हैं। पर इन सबके साथ एक और सघर्ष निरन्तर और अनवरत चल रहा है। वह श्रेष्ठतर शान्ति प्राप्त करने और आध्यात्मिक अथवा भौतिक एकता अथवा दोनो को प्राप्त करने के लिए चल रहा है। यह मानव-समाज के गति-प्रवाह और ध्येय मे सन्तुलन के लिए है।

अब प्रश्न यह है कि किसी भी युग की अपेक्षा आज यह सघर्ष ही सबसे विकट क्यो होगया है?

इसका उत्तर स्पष्टत इस वस्तुस्थिति मे है कि यद्यपि हमारी सरणी की तीसरी वस्तु, यानी मानव-जाति इतिहास मे पहले किसी भी समय की अपेक्षा आज के युग मे तीव्र गति से प्रमुख व महत्वपूर्ण स्थान पा गई है, पर (इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए) वह आध्यात्मिक मार्ग की अपेक्षा भौतिक मार्ग पर ही ज्यादा वेग से अग्रसर हुई है।

मानव-जाति ने पहले एकता की ओर अपनी प्रगति के लिए आध्यात्मिक या धर्म का मार्ग ग्रहण किया, परन्तु उसका परिणाम भयकर और विनाशकारी हुआ। धर्म के अत्यन्त पवित्र मन्त्रो (सिद्धान्तो) के विपर्यास से प्रत्येक स्थान मे धर्म के कारण सघर्ष, कलह, फूट और रक्तपात हुआ। तब मानव-जाति ने स्वतन्त्र विचार और विवेक-बुद्धि द्वारा प्रत्येक प्रश्न का निर्णय कर लेने की पद्धति से जिसे उन्नीसवीं

शताब्दी मे विज्ञान का धर्म भी कहा जाता था, अपने उद्देश्य तक पहुँचने का प्रयत्न किया। इस बार उसे सफलता पूरी मिली, परन्तु वह भी उतनी ही विनाशकारी थी।

सफलता पूरी इसलिए कि मानव-जाति ने प्रकृति की शक्तियो पर आश्चर्य-जनक विजय प्राप्त करने और वैज्ञानिक सत्य की रक्षा के लिए एकता के अन्य सब आदर्शों का (यहाँ धार्मिक आदर्शों की ओर निर्देश है) परित्याग करके मानव-जाति की एकता प्राप्त की। मानव-जाति इतनी सर्वव्यापक पहले कभी नही थी, जितनी कि वह आज है। उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम भाग मे वैज्ञानिक आविष्कारो की लहर के साथ उसकी सख्या अकगणित के परिमाण मे बढी, पर आजकल तो वह वस्तुत ही बढ गई है, क्योकि आवागमन की इतनी अधिक शक्ति उसे प्राप्त है कि वह अपने को सर्वव्यापक अनुभव कर सकती है। सख्या और गमन-गति मे वृद्धि से धनता भी बढी है। आज मानव-समाज का शरीर बहुत विस्तृत होगया है, साथ ही उसमे एकता की भावना और चेतनता भी बढी है, पर उतनी मात्रा मे नही।

और यह उन्नति विनाशकारी इसलिए हुई कि उक्त शृखला के दूसरे दो अगो मनुष्य और राष्ट्र ने इस परिवर्तन को स्वीकार नही किया। वे व्यक्ति और राष्ट्र अपने-ही-अपने मे चरम-ध्येय है, इसीकी चेतन अथवा अर्द्ध-चेतन भावना मे वे बद्ध रहे, मानो उनका बृहद् मानव-जाति मे कोई सम्बन्ध ही नही था।

१ यही कारण है कि मानव-जीवन के व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और सार्वलौकिक तीन रूपों मे समन्वय सन्तुलन आज इतना कठिन हो रहा है। पर मानव-समाज के इतिहास मे तो यह चिरसमस्या है।

जब कभी समाज मे सन्तुलन के भग होने की आशका पैदा होती है, जिससे कि समाज के उपादनभूत एक या अन्य ध्येय खतरे मे पड जायँ, तब समाज उस सन्तुलन को बनाये रखने के लिए बल-प्रयोग की प्रणाली चलती है। इस प्रकार अपने नैतिक आदर्श से भटककर मनुष्य ने जबर्दस्त समाज को, स्वस्थसमाज अथवा अधिक स्पष्ट शब्दो मे, दमन करने, कुचलने तथा एकाधिकार जमानेवाले समाज को जबर्दस्त समाज २ समझने की भूल की। परन्तु यह स्पष्ट ही है कि समाज की उन्नति बल-प्रयोग के क्रमश ह्रास मे होती है। समाज पूर्णता की ओर उतना ही विकसित होता जाता है जितनी उसके सुचारु सचालन मे बल-प्रयोग और दबाव की मात्रा कम होती है।

अत समाज के प्रति बल-प्रयोग मनुष्य-शरीर के प्रति शल्य-प्रयोग के समान एक कृत्रिम साधन है, जो तत्काल के लिए वह काम कर देता है जिसे स्वयकाय की जीवन-शक्ति स्वय अन्दर से करने मे असमर्थ है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह समस्या सन्तुलन के आधार पर ही हल की जा सकती है। और क्योकि मनुष्य, राष्ट्र और मानव-समाज का परस्पर समन्वय-सन्तुलन ही निश्चित ध्येय है, अत न तो उदारतावाद, न सत्तावाद (चाहे सत्ता

ससार के सामने अहिंसा की शक्ति प्रत्यक्ष कर दिखाई। यह उस ससार के सामने एक महान् उदाहरण था, जो तलवार की शक्ति के सिवाय और किसी शक्ति को मानता ही नही, और प्रत्यक्षत यह बात स्वीकार करने मे असमर्थ है कि हिंसा से हिंसा की समाप्ति नही, बल्कि वृद्धि होती है।

मै यह बखूबी जानती हूँ कि अहिंसा का सिद्धान्त महात्माजी ने नया नही निकाला। वह तो एक धार्मिक मतव्य के रूप में भारत मे सदियो से मौजूद था। लेकिन जैसा कि श्री ब्रेलस्फोर्ड ने कहा है, उन्होने 'पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा और आचरण की लहर के विरोध में' उसकी पुन स्थापना की और इस प्रकार अपने देशवासियो के नेता के रूप मे उनकी नैतिक शक्ति अत्यन्त प्रभावशाली हो उठी। १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलनो मे उन्होने अपने लाखो-करोडो अनुयायियो को एक राजनैतिक विधि ही नही, बल्कि एक गहरी धार्मिक श्रद्धा भी दी, जैसी कि ईसामसीह ने पहले के उन ईसाइयो को दी थी, जो 'सत्य' की अपनी ईश्वर-प्राप्त व्याख्या की खातिर शहीद हो गये।

उन्होने भारत की जनता को बन्दूको और मशीनगनो की शक्ति नही दी जिसका प्रयोग उसके दमनकारी करते थे, बल्कि वह शक्ति दी जो जनता के व्यक्ति-व्यक्ति मे अन्तर्निहित है, जो युद्धो मे पीडित इस ससार को अभी प्राप्त करनी है और जिसका यदि पूर्णता के साथ उपयोग किया जाय तो वह युद्धो को असम्भव बना सकती है। राजनीतिज्ञ और युद्ध-प्रेमी लोग, अपने उद्देश्यो की सिद्धि के लिए हिंसात्मक साधनो का प्रचार करते समय एक बात को भूल जाते है और वह यह कि मनुष्य का स्वतन्त्रता में से विश्वास उठ नहीं सकता। सक्षेप मे, बन्दूक और मशीनगनें मनुष्य की या राष्ट्र की आत्मा को नष्ट नही कर सकती। किसी राष्ट्र को कुचल कर गुलाम बनाया जा सकता है, परन्तु 'शक्ति' के बूटो की ठोकरे स्वतन्त्रता की जीवित भावना को निर्मूल नही कर सकती। वे कुछ समय के लिए उसे आँखो से ओझल कर सकती है, जमीन-तले छिपाकर रख सकती है, पर वह अधेरे में भी चुपचाप बढती रहती और पुन शक्ति प्राप्त कर लेती है। और एक दिन आता है जब वह प्रज्ज्वलित हो उठती और मानव-जाति के लिए पथ-प्रदर्शक ज्योति बन जाती है।

जिस मनुष्य का अपनी आत्मा पर अधिकार है, उसे गुलाम नही बनाया जा सकता। उसका शरीर नष्ट होजाने से तो उसकी आत्मा अधिकाधिक शक्तिशाली होती जाती है। सूली पर चढा हुआ ईसामसीह उस ईसामसीह को अपेक्षा कही अधिक शक्तिशाली था जिसके विजयोत्सवो के जुलूसो के मार्ग में लोग ताड के पत्ते बिछा देते और आकाश-मण्डल को जय जयकार के स्वर से गुंजा देते थे।

हिंसा का जवाब हिंसा से देना तो उस अत्याचारी के निम्न धरातल पर उतर आना है, जो शक्ति की नाप केवल मृत्यु और विनाश द्वारा करता है। अहिंसात्मक उपायो की शक्ति जीवन की, उस आत्मा की शक्ति है, जिसकी पिपासा कभी शान्त

नही होती। हम कह सकते है कि अपनी शिक्षा से गाधीजी ने भारत की 'आत्मा' को मुक्त कर दिया है। नीच और नगण्य दासो से भारतवासी फिर मनुष्य होगये है। वे अपना मस्तक ऊँचा उठाकर अपनी आँखो मे आशा और विश्वास की ज्योति लिये हुए, अपने दमनकारियो द्वारा अपनाये हुए नीच साधनो की उपेक्षा करके अपनी अन्तिम मुक्ति की ओर कूच करने मे समर्थ एक राष्ट्र बन गये है। महिलाओ ने अपनी दासता का प्रतीक परदा उतार फेका और उन्होने भी स्वतन्त्रता के लिए इस रक्तहीन सग्राम मे पुरुषो के कधे-से-कधा भिडाकर काम किया। उनमे गर्व के साथ नम्रता थी, नम्रता के साथ गर्व था। आत्म-सम्मान की भावना उनमे फिर से भर गई थी और क्योकि उनके हृदय मे स्वतन्त्रता की पवित्र ज्योति जगमगा रही थी, अत वे मुक्त थी। सभी अवस्थाओ के स्त्री-पुरुषो ने अनुभव किया कि जीवन वस्तुत एक 'पवित्र ज्योति' है, और अपने अभ्यन्तर मे स्थित एक अदृश्य सूर्य के प्रकाश से ही हम अपने जीवन-पथ पर चलते है और इस अनुभूति के प्रकाश मे पराजय का नाम भी नही है।

सन् १९३० मे राष्ट्रवादी भारत ने अहिसा की शक्ति को एक व्यावहारिक राजनैतिक अस्त्र के रूप मे सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिखाया। वह मनुष्य की आत्मा की महान् विजय का भी प्रदर्शन था। हज़ारो-लाखो आदमी जेलो मे ठूँस दिये गये, उनपर पाशविक अत्याचार किये गये, परन्तु यह सब भारतीय जनता की उस महान् नैतिक जाग्रति के ज्वार-भाटे को रोक न सका।

यह समझने के लिए, कि अहिसा का मूल्य एक राजनैतिक अस्त्र से बढकर है, यह जान लेना आवश्यक है कि महात्माजी तप और त्याग पर इतना ज़ोर क्यो देते है। यह बात भी साफ तौरपर समझने की है कि 'अहिसा' प्रेम के तत्वज्ञान और सत्य की साधना सिद्धान्त के साथ इस प्रकार जुडी हुई है कि उसे अलग नही किया जा सकता। वस्तुत विश्व-प्रेम का नाम ही अहिसा है। इन्द्रियो के दमन और आत्मा के विकास का सिद्धान्त कोई नया सिद्धान्त नही है। यह तो ईसामसीह की शिक्षा का भी एक अग था। पर महात्मा गाधी ने आज के जीवन मे इसे घटित करके दिखा दिया है और इससे उनकी गणना सन्तो, महापुरुषो और प्रभावशाली नेताओ मे हुई है।

महात्मा गाधी की शिक्षाओ का यह एक मुख्य भाग है कि मनुष्य किसी बुराई को मिटाने या किसी झगडे को निपटाने के लिए जितना ही अधिक हिसा से काम लेगा उतना ही वह सत्य से परे हटता जायगा। वह कहते है कि वह बाहरी शत्रु पर आक्रमण करके भीतर के शत्रु की अपेक्षा कर देते है। "हम चोरो को इसलिए दण्ड देते है, कि वे हमे तग करते है। कुछ समय के लिए वे हमे छोड देते है, पर होता यह है कि अपना ध्यान हमपर से वे हटाकर दूसरे शिकार पर केन्द्रित कर देते है। यह दूसरा शिकार दूसरे रूप मे हम ही है। इस प्रकार हम एक चडाल-चक्र मे फँस जाते है। कुछ समय बाद हम यह अनुभव करने लगते है कि चोरो को सह लेना उन्हे दड देने मे अच्छा है। अगर हम उन-

को दरगुज़र करते जायेंगे तो आशा है कि उनकी बुद्धि आप ही ठिकाने आजायगी। जब हम उन्हें सहन करते हैं तब हम आप ही यह अनुभव करने लगते हैं कि चोर हमसे भिन्न नहीं, बल्कि हमारे ही सगे-सम्बन्धी और मित्र हैं और उन्हें दंड नहीं दिया जा सकता।"

नैतिक दृष्टि से उनके अहिंसा के तत्त्वज्ञान का यही सार है और इसी रूप में हम उसे युद्ध या स्वतंत्रता के लिए सामाजिक संग्राम में भी लागू कर सकते हैं। गांधीजी दैनिक जीवन की तथा संसार की समस्याओं के हल के लिए अहिंसा के उपयोग में भेद नहीं करते। वह स्वीकार करते हैं कि अहिंसा के मार्ग में निरन्तर कष्ट-सहन और अनन्त धैर्य की आवश्यकता हो सकती है। लेकिन वह बतलाते हैं कि इसके फल-स्वरूप मन की शान्ति और साहस की अधिकाधिक वृद्धि होती है। हम यह भेद करना सीख लेते हैं कि कौनसी वस्तु मूल्यवान् और स्थायी है और कौनसी नहीं। दैनिक जीवन को नियन्त्रित करनेवाला यह साधुओं का-सा तप, पश्चिमी सभ्यता के लिए उतना ही दुर्बोध है, जितनी कि ईसाइयत। ध्यान रहे, मैंने ईसाइयत का ज़िक्र किया है, "पॉलीएनिटी" (सन्त पाल द्वारा चलाया हुआ धर्म) का नहीं। तो भी पीड़ित मानव-जाति को घृणा की जगह विश्व-प्रेम को अपनाने और हिंसा का सर्वथा परित्याग करने से ही शान्ति की प्राप्ति हो सकती है और उस शान्ति का अर्थ केवल युद्ध का अभाव नहीं, बल्कि मानव-सुख के लिए आवश्यक आन्तरिक शान्ति है।

महात्मा गांधी का बीसवीं शताब्दि के उस अद्वितीय सन्त के रूप में अभिवादन करना चाहिए, जो अपनी शिक्षा और अपने उदाहरण द्वारा उस संसार में शान्ति का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं, जो अगर उसकी शिक्षाओं पर ध्यान न देगा तो नष्ट होजायेगा। यद्यपि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा भारत की महान् सेवायें की हैं और उनके उपवासों का राजनीति पर बहुत प्रभाव पड़ा है, तो भी उन्हें एक राजनैतिक नेता नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक नेता और शिक्षक मानना चाहिए। उनके तथाकथित राजनतिक कार्य, उनके नीतिशास्त्र और दार्शनिक मन्तव्यों का एक स्वाभाविक परिणाम है।

किसी सन्त का आदर और स्तवन करने के लिए आवश्यक नहीं कि हम उसके आचार-विषयक सिद्धान्तों का समर्थन ही करें। महात्माजी ने अहिंसा की जो व्याख्या की है उसमें अगर विरोधी भौतिकवाद के अनुयायियों को जीवनविहीनता की गन्ध आये, तो भी यह मानना पड़ेगा कि आध्यात्मिक धरातल पर, जिसपर कि महात्माजी का सारा आग्रह है, स्थिति इससे ठीक विपरीत होती है। महात्माजी ने स्वयं कहा है कि प्रत्येक धर्म ने महान् स्त्री-पुरुष उत्पन्न किये हैं। आज के संसार में तो महात्मा गांधी हमारे बीच अहिंसा की शक्ति के जीवित उपासक के रूप में एक प्रखर ज्योति के समान जगमगा रहे हैं। "दूसरों का तो दोष-दर्शन हुआ है, किन्तु तू इन से परे है। तेरा ज्ञान सर्वोच्च है।"

गांधीजी का ज्ञान सब मनुष्यों, और सब काल के लिए है।

: ३१ :

गांधीजी और बालक

डॉ० मेरिया मॉन्टीसरी, एम डी., डी. लिट्

[लन्दन]

महात्मा गाधी के निकट रहनेवाले उन्हे जिस रूप मे देखते है, उससे बिलकुल भिन्न रूप मे हम यूरोपियन उन्हे देखते है। हम जब रात को एक तारा देखते है, तो वह हमे एक छोटी-सी चमकदार टिमटिमाती हुई-सी चीज़ मालूम देती है, लेकिन अगर किसी तरह हम उसके पास जा सके तो वह छोटी या ठोस चीज़ मालूम न होगी, बल्कि भौतिक पदार्थ से हीन एकरग और ज्योति का एक पुज दिखाई देगा।

हम यूरोपियनो को भी गाधी एक मनुष्य-सा ही—एक बहुत छोटा मनुष्य जो सिर्फ एक लगोटी लगाये रहता है—लगता है। यूरोप के कोने-कोने मे एक-एक बच्चा उसे जानता है। जब भी कोई आदमी उसका चित्र देख लेता है, वह फौरन अपनी भाषा म चिल्ला उठता है—"यह गाधी है।"

पर हम यूरोपियन, जो उससे बहुत दूर और उससे बिलकुल भिन्न एक सभ्यता मे रहते है, उसके बारे मे क्या ख़याल करते है? यूरोपियन उसे शान्ति का उपदेश देने वाले एक मनुष्य के रूप मे जानते है। परन्तु वह यूरोप के शान्तिवादियो से भिन्न है। हमारे यूरोपियन शान्तिवादी बहस करते और इधर-उधर हड़बड़ाये हुए भागते फिरते है। उन्हे बहुत-सी सभाओ मे भाग लेना होता है और पत्रो मे लेख लिखने होते है। परन्तु गाधीजी कभी उतावले नही होजाते। कभी-कभी वह जेल मे रहते है, जहाँकि वह बहुत कम बोलते और बहुत कम खाते है। लेकिन फिर भी भारत के लाखो-करोडो आदमी उनके पीछे-पीछे चलते है, क्योकि वे उनके अन्त करण को पहचानते है।

उनकी आत्मा उस महान् शक्ति के समान है, जिसमे मनुष्यो का एकीकरण करने की शक्ति है, क्योकि वह तो उनकी आन्तरिक अनुभूतियो पर अपना असर डालती है और उन्हे एक दूसरे के निकट खीचती है। यह रहस्यमय और चमत्कारक शक्ति 'प्रेम' कहलाती है। प्रेम ही वह शक्ति है, जो मनुष्यमात्र को वास्तव मे एक कर सकती है। बाहरी परिस्थितियो और भौतिक हितो से बाध्य होकर मनुष्य परस्पर सगठित होते है, पर उनमे प्रेम नही होता और बिना प्रेम के सगठन स्थिर नही रहता और ख़तरे की ओर जाता है। मनुष्यो को दोनो प्रकार मे सगठित होना चाहिए—एक तो आध्यात्मिक शक्ति से जो एक दूसरे की आत्मा को अपनी ओर खीचे और दूसरे भौतिक सगठन द्वारा।

कुछ साल पहले जब गाधीजी यूरोप गये थे तब भारत लौटते समय कुछ दिनो के लिए रोम ठहरे थे। इसका मेरे हृदय पर बडा गहरा असर हुआ। मैंने देखा कि गाधीजी मे से एक अगम्य शक्ति प्रस्फुटित होती थी। जब वह लन्दन मे थे, मेरे स्कूल के बालको ने उनके सम्मानार्थ उनका स्वागत किया। जब वह फर्श पर बैठे हुए तकली कात रहे थे, सब बच्चे उनके चारो ओर बडी शान्ति के साथ बैठे रहे। वयस्क पुरुष भी इस स्वागत के समय, जिसे हम कभी नही भूल सकते, चुपचाप और स्थिर बैठे हुए थे। हम सब एक साथ थे। यही हमारे लिए काफी था। नाचने, गाने या भाषण देने की जरूरत ही नही थी।

लेकिन मुझपर तो उस समय बहुत प्रभाव पडा जब मैंने कुछ कुलीन महिलाओ को सवेरे साढे चार बजे महात्माजी को प्रार्थना करते देखने और उनके साथ प्रार्थना करने के लिए जाते देखा। एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना यह हुई कि रोम-प्रवास के दिनो मे वह एक गाव के एकान्त मकान मे ठहरे हुए थे। एक दिन सवेरे एक युवती पैदल चलती हुई वहां आई। वह गाधीजी से एकान्त मे बातचीत करना चाहती थी। वह थी इटली के सम्राट् की सबसे छोटी पुत्री राजकुमारी मेरिया!

हमे इस आध्यात्मिक आकर्षण के विषय मे अवश्य विचार करना चाहिए। यही शक्ति है, जो मानवता की रक्षा कर सकती है। केवल भौतिक हितो के बन्द रहने के बजाय हमे परस्पर इस आकर्षण का अनुभव करना सीखना चाहिए। पर यह हम सीखे कैसे?

जिस तरह सारे ससार मे प्रकाश की सर्वव्यापी किरणे मौजूद है, उसी तरह हमारे चारो ओर यह आत्मिक शक्तियाँ भी विद्यमान रहती है। लेकिन ये सर्वव्यापी किरणे खास-खास यन्त्रो द्वारा ही, जिनके द्वारा कि हम उन्हे देख सकते है, केन्द्रित की जा सकती है। पर ये यन्त्र इतने दुर्लभ नही है, जैसा कि हम खयाल करते है। ये यन्त्र बच्चे है! जिस प्रकार हम आकाश मे गरमी और प्रकाश के पुज के तारे को एक छोटे-से चमकदार बिन्दु के रूप मे ही देखते है, ठीक उसी प्रकार अगर हमारी आत्मा बच्चे से बहुत दूर है तो हम उसका छोटा-सा शरीरमात्र ही देख सकते है। अगर हम उसके चारो ओर चक्कर लगानेवाली रहस्यमयी शक्ति को अनुभव करना चाहते है तो हमे उसके अधिक नज़दीक पहुँचना चाहिए।

बच्चो के जिनसे कि हम वास्तव मे बहुत दूर है, आध्यात्मिक रूप से निकट पहुँचने की कला मे एक ऐसा रहस्य है जो ससार मे विश्व-भ्रातृत्व पैदा कर सकता है। यह एक ईश्वरीय कला है, जो मानवजाति को शाति देगी। बच्चे तो बहुत-से है। वे असख्य है। वे एक तारा नही है। वे तो आकाश-गगा के समान है—उन तारिका-पुंज के समान है, जो आकाश मे एक ओर से दूसरी ओर को घूमते है।

गाधीजी के जन्म-दिन पर मै उनसे एक ही प्रार्थना करूँगी कि वह भारत मे

और ससार मे वच्चे का मान करे और अपने अनुयायियो को, जो उनकी शक्ति और उनकी शिक्षा मे विश्वास रखते है, वच्चे मे विश्वास करने के लिए प्रेरित करे।

: ३२ :

महात्मा गांधी का विकास

आर्थर मूर

[सम्पादक, स्टेट्समेन, दिल्ली-कलकत्ता]

सत्तर वर्ष की आयु मे भी महात्माजी चालीस वर्ष की आयु के वहुत-से आदमियो से उत्साह मे अधिक युवा है। वह अव भी एक विद्यार्थी और परीक्षार्थ प्रयोग करनेवाले है। यह सच है कि उनके अपने कुछ सिद्धान्त है, परन्तु उनकी सीमाये सकुचित नही है। और मुझे यह मानना चाहिए कि उन्होने हमेशा सत्य की खोज को अपना मुख्य लक्ष्य रक्खा है। उस सत्य का उपदेश और दूसरो का नेतृत्व या सार्वजनिक कार्य उनका गोण कार्य है। जव-जव वह लम्वे समय के लिए सार्वजनिक नेतृत्व से अलग हो जाते है, तव-तव वह सत्य के उज्ज्वल प्रकाश की ही तलाश करते है।

मै उनसे पहली वार दिल्ली मे सितम्वर १९२४ मे मिला। उस समय वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इक्कीस दिन का उपवास कर रहे थे। उनके मित्रो को उनके जीवन की भारी चिन्ता थी। मौलाना मुहम्मदअली प्रत्येक व्यक्ति को, जिसका नाम उन्हे याद आता जाता था, 'एकता-सम्मेलन' मे भाग लेने को दिल्ली आने के लिए तार देते जाते थे, ताकि महात्माजी को यह जानकर कुछ सान्त्वना प्राप्त हो कि उनके उपवास का एकदम असर पडा है और आपस मे लडती रहनेवाली दो जातियो मे एकता कराने के लिए फौरन ही असाधारण प्रयत्न आरम्भ हो गये है। उस साल गर्मियो मे लगातार वहुत-से साम्प्रदायिक दगे हुए थे। मै भी उन व्यक्तियो मे से था, जो निमन्त्रण पाकर दिल्ली आये थे। जिस दिन मै आया, वडे सवेरे ही मेरे होटल के सोने के कमरे मे मौलाना मुहम्मदअली मुझे मिले और मुझसे कहा कि मै आपको एकदम गाधीजी के पास ले जाना चाहता हूँ। महात्माजी रिज मे स्व० ला० सुल्तानसिह के मकान मे श्री सी एफ एण्ड्रूज आदि परिचर्य्या करनेवालो के वीच लेटे थे। वह कमजोर थे, परन्तु मुस्करा रहे थे। हम दोनो मे कुछ देर वातचीत हुई, परन्तु महात्माजी ज्यादा वोल नही सकते थे और अव तो मुझे याद भी नही कि उन्होने क्या कहा था। पर उनकी मूर्ति इस समय भी मेरे हृदय पर उतनी ही स्पष्टता से अकित है। वह सम्पर्क वहुत घनिष्ठ और आनन्दप्रद था। उसके वाद पिछले सालो मे यद्यपि मुझे उनसे वातचीत करने का मौका छ या सात वार से ज्यादा न पडा

होगा, परन्तु उस समय उन्होंने जो मित्रता तथा घनिष्ठता की भावना प्रदर्शित की वह मेरे मन पर सदा अंकित रहेगी। एक पत्रकार की हैसियत से और कुछ दिन केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस-विरोधी दल के सदस्य की हैसियत से मुझे उनके कार्यों और खासकर १९३०-३२ के कार्यों व नीति की आलोचना करनी पड़ी और यथाशक्ति उनका विरोध भी करना पड़ा। परन्तु इस सबका उस व्यक्तिगत सम्बन्ध पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। कभी-कभी हम दोनों में पत्र-व्यवहार भी हुआ है। मैं हमेशा साफ-साफ बातें लिखता और वह सदा सहानुभूतिपूर्ण उत्तर देते। सन् १९२७ और १९२९ में उनकी आत्मकथा के दो भाग निकले और मुझे उनकी विस्तृत आलोचना लिखनी पड़ी। खादी की जिल्द चढ़ी हुई और अहमदाबाद में उनके अपने प्रेस में सुन्दर और स्पष्ट छपी हुई दोहरी जिल्दें ('सत्य के प्रयोग' या 'आत्मकथा') बड़ी रोचक, सशक्त साहित्यिक कृति है। उनको पढ़ने के बाद मैंने अनुभव किया कि इस रहस्यमय शक्ति के सम्बन्ध में मेरा ज्ञान बहुत बढ़ गया। उनके मन की गति सरल नहीं है और आसानी से समझ में नहीं आ सकती। परन्तु इन पुस्तकों की भाषा बहुत स्पष्ट है। इसके साथ ही, बहुत से अवसरों पर उनके कामों की सरलता, काम करने का सीधा ढंग और वक्तव्यों की स्पष्टता उतनी ही असाधारण और अमूल्य होती है जितनी कि दूसरे मौकों पर उनके विचारों और युक्तियों की सूक्ष्मता और गूढ़ता।

महात्माजी के जीवन के दो रूप हैं—एक राजनैतिक नेता का और दूसरा धार्मिक नेता का। अपने देशवासियों के राजनैतिक नेता के रूप में उन्होंने अपना जीवन उनमें राष्ट्रीय भावना भरने, उनका नैतिक बल बढ़ाने, उन्हें आत्म-सम्मान की शिक्षा देने और स्वेच्छा से त्याग व बलिदान की उनमें भावना भरने में लगाया। इस सबके साथ उन्होंने अपने तप और अपरिग्रह के आधार पर जनता से अपील की। पूर्वी देशों में खासकर भारत में, जहाँ धन और भौतिक इच्छाओं के क्रमश परित्याग द्वारा आत्मदर्शन तक पहुँचने की शिक्षा दी जाती है, तप और अपरिग्रह बहुत महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं। अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि मेरे राजनैतिक अनुभवों का मेरे लिए कोई विशेष मूल्य नहीं है, परन्तु आध्यात्मिक जगत् में 'सत्य के प्रयोगों' ने ही मेरा वास्तविक जीवन बनाया है। १९२७ तक की कठोर जीवन-यात्रा की कहानी में, एक दृष्टि से, वास्तव में उन्होंने अपनी सफलता को स्वीकार किया है। तीस वर्षों से वह 'आत्म-दर्शन' और 'ईश्वर का साक्षात्कार करने और मोक्ष प्राप्त करने' के लिए प्रयत्न व उद्योग कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने अहिंसा, ब्रह्मचर्य, निरामिष भोजन और अपरिग्रह का परीक्षण व प्रयोग किया और तलवार की धार के समान तंग व तीक्ष्ण मार्ग पर चले। लेकिन इतने वर्षों के बाद भी उनका कहना है कि मैं पूर्ण सत्य "ईश्वर' की एक झलकमात्र" देख पाया हूँ। यद्यपि उन्हें यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि ईश्वर है और वही चरम सत्य है, परन्तु उन्हें अभी पूर्ण सत्य या ईश्वर के दर्शन नहीं हुए।

महात्मा गाधी एक 'प्यूरिटन'[१] है, जिन्हे जैसाकि उन्होने हमसे कहा है, 'ओरिजिनल सिन'[२] (मूल पाप) के सिद्धान्त की सचाई मे पूरा-पूरा विश्वास है। अन्य सव तपस्वियो के समान वह भी मनुष्य-जीवन को त्यागो की एक शृखला मानते है, ईश्वर का यश प्रकट करने के लिए धन्यवादपूर्वक सासारिक सुखो का उपभोग करने की वस्तु नही। उनके विचार से स्त्री-पुरुप-सम्वन्धी काम-वासना ही सारी वुराइयो की जड है। महात्मा गाधी के एतद्विषयक विचार तथा व्रह्मचर्य पर लिखे गये उनके अध्यायो के विषय मे यही कहा जा सकता है कि वे वर्तमान मनोविज्ञान और चिकित्सा-शास्त्र के सिद्धान्तो के इतने विरोधी है कि जिसकी आज के जमाने मे कल्पना ही नही की जा सकती। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियो को वह विलकुल शर्मनाक समझते है और इनका उनकी राय मे एक ही उपचार है। वह है उनका दमन और अत्यधिक दमन। उनका कहना है कि "अपरिग्रह की तो कोई सीमा ही नही है।" और वह स्वय इस वात से वहुत दुखी है कि वह अभीतक दुग्ध-पान, जिसे वह व्रह्मचर्यव्रत के पालन के लिए वहुत हानिकर वस्तु समझते है, नही छोड सके। उनके सिद्धातानुसार ताजे फल और सूखी मेवा ही "व्रह्मचारी का आदर्श भोजन" है। परन्तु जितना अधिक-से-अधिक सहन किया जासके, उतना उपवास इन सवसे अच्छा है।

यह कोई आश्चर्य की वात न होती यदि जनता की पहुँच से वहुत दूर के इन आदर्शो के कारण महात्माजी भी ईसाई सन्तो के समान असहिष्णु और कठोर वन जाते। लेकिन इस तरह की कोई वात नही हुई। सयम के सभी कठिन अभ्यासो के वावजूद, जिनसे उन्होने जीवन को अपने ही लिए एक कठिन वस्तु वना लिया है, उनके होते हुए भी चरित्र मे वह मृदुता और प्रेम है जिसने उन्हे इतनी भारी शक्ति दी है। सत्य के पवित्र दर्शन करने की पिपासा के होते हुए भी उनका सवसे उत्तम गुण—मानवसमाज के प्रति उनका सच्चा प्रेम है। एक ओर उन्हे निर्दयता और अत्याचार से घृणा है तो दूसरी ओर वीमारी और गदगी से। तप की भावना से ही उन्होने कभी किसी नाच-घर में पैर नही रक्खा। उनके जीवन के प्रारम्भिक दिनो की कहानी मे हम उन्हे तरह-तरह के नये तजुरवो और मौज की जिन्दगी से पीछे हटता हुआ पाते है।

इग्लैण्ड मे विद्यार्थीजीवन मे ही उनकी अपने सनातन धर्म मे श्रद्धा और भक्ति वढी और उन्होने वही पहलेपहल सर एडविन आर्नल्ड के अनुवाद द्वारा गीता का परिचय प्राप्त किया।

१ रानी एलिजवेथ के समय का एक ब्रिटिश सम्प्रदाय, जो राजनीति में भी जीवन की शुद्धता तथा धार्मिकता पर जोर देता था।

२ वाइविल में आदम को मानव-जाति का आदिपितामह मानकर कहा गया है कि वह पापी था, और उसके पाप का अश पितृ-परम्परा से मनुष्य-मात्र में आ गया है। इस कारण मनुष्य-प्रकृति स्वभाव से ही पतित है। इसी को 'ओरिजिनल सिन' कहते है।

अब भी जब मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना घटी है। महात्मा गांधी अब एक नये युग मे प्रवेश कर रहे जान पडते है।

हाल ही मे महात्मा गांधी ने लिखा है कि राजकोट के अनुभवो के परिणाम-स्वरूप उन्हे नया प्रकाश मिला है। वह नई रोशनी क्या है, इसका स्वरूप अब बताया गया है और वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। महात्मा गांधी का पिछले वर्षो मे हिंदू-जनता पर बहुत प्रभाव रहा है और भारत के वर्तमान इतिहास के निर्माण मे उनका जो भाग है, उसमे कोई सन्देह नही कर सकता। कुछ वर्षो के व्यवधान से उन्होने दो सविनय आज्ञाभग आन्दोलनो को जन्म दिया, जिन्होने देश मे उथल-पुथल मचा दी और अधिकारियो के लिए भारी चिन्ता पैदा कर दी। इसके अलावा इन आन्दोलनो ने देश पर अपने प्रभाव की वह धारायें छोडी जो उनके समाप्त हो जाने के बाद भी आजतक काम कर रही है। अत महात्मा गांधी के सिद्धान्त और उनकी शिक्षाओ मे—इस बडी अवस्था मे जबकि उनका काग्रेस और जनता के मन पर एकच्छत्र अधिकार प्रत्यक्ष गोचर हुआ है—मौलिक परिवर्तन होना वस्तुत एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका प्रभाव भारत पर ही नही ससार मे अन्यत्र भी पडेगा, क्योकि महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त व्यक्ति है और उनके अनुयायी सारे ससार मे है।

दूसरे लोगो के साथ मैने भी अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्त के आध्यात्मिक दावे की आलोचना की है, क्योकि वह शारीरिक और मानसिक हिंसा के बीच एक आध्यात्मिक भेद मानता है। यह अहिंसात्मक असहयोग निश्शस्त्र मनुष्यो की लडाई का ही एक तरीका है। बहिष्कार व हडताल से, जो इस असहयोग के अग भी है, इसकी तुलना की जा सकती है। इसके उपाय की सफलता या असफलता दो बातो पर निर्भर है। एक तो अपने और विरोधी के सगठन का बल, दूसरे सघर्ष के मुख्य उद्देश्य की महत्ता। लेकिन यह निश्चित है कि यह उपाय सशस्त्र-विद्रोह या युद्ध मे अधिक आध्यात्मिक हथियार नही है। ईसाइयो के लिए तो यह बात साफ ही है कि उनके अनुसार पाप तो मन के विचार और हृदय की भावनाओ ही मे है। कार्य तो उसकी व्यजना-मात्र है। अहिंसात्मक आन्दोलन को बल व बढावा देने के लिए स्वय महात्मा गांधी ने हिंसामय विचार-धारा को उत्तेजित किया, अँग्रेजो की निन्दा की और विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का प्रचार किया। उनके अनुयायियो ने जाति-द्वेष की भावना पैदा करने के लिए सबकुछ किया और कहा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत मे 'अहिंसात्मक" आन्दोलन के समय पत्रो और भाषणो में जितनी अधिक असयत तथा हिंसामय भाषा का प्रयोग किया गया, उतनी सभवत ससार के किसी और देश में नही पाई जायगी। स्वभावत इसके परिणामस्वरूप हिंसात्मक घटनायें भी हुई। बस, उन दिनो या यही काम था। युद्ध ने जो रूप धारण किया, उसकी अँग्रेजो ने कभी शिकायत नही की,

क्योकि आखिर तो वह युद्ध का ही एक रूप था। पर उन्होने भारतीयो का यह दावा नही माना कि इस प्रकार के असहयोग का धरातल ऊँचा और नैतिक था, अथवा कि वह ईसाइयत या उससे भी किसी ऊँची चीज का फलितरूप था। सच्चे और खरे शब्दो मे कहे तो, लकाशायर के माल का वहिष्कार करने का उद्देश्य भारत मे कुछ मनुष्यो को काम, रोजी और रोटी देना और इग्लैण्ड मे दूसरो का काम, रोजी और रोटी छीनना था। भूखा मारने और जान से मारने मे कोई वडा नतिक भेद नही है। कोई सच्चा अँग्रेज इस वात का दावा नही करेगा कि पीडित जर्मन नागरिको तथा सिपाहियो पर युद्ध वन्द कराने का दवाव डालने के लिए की गई जर्मन की सामुद्रिक नाकेवन्दी और रणक्षेत्र मे की गई लडाई मे कुछ भी नैतिक भेद है। और उन्होने यदि कुछ भेद माना भी तो वह नाकेवन्दी को ज्यादा वुरा वतायेगे।

जिस समय वह हिसा भडक उठी, जो कि स्पष्टत इस असहयोग आन्दोलन की ही उपज थी तो महात्माजी के पास उसका एक ही इलाज था। वह था उनका निजी उपवास। उनका विश्वास था कि आठ दिन के उपवास से चौरी-चौरा-काण्ड के पापो का थोडा-वहुत प्रायश्चित अवश्य हो जायगा। वाद मे उन्होने अपने उपवासो के उद्देश्यो का दायरा वडा कर दिया। १९२४ मे उन्होने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इक्कीस दिन का उपवास किया। दूसरे असहयोग आन्दोलन मे जव उन्हे जेल भेज दिया गया, तव उन्होने उपवास द्वारा ही अपनी रिहाई कराई। साम्प्रदायिक निर्णय मे सशोधन कराने के लिए भी उन्होने उपवास किया। परन्तु मालूम होता है कि उनके पिछले उपवासो मे, जिनमे राजकोट का उपवास भी शामिल है, प्रायश्चित्त की भावना नष्ट हो गई थी। उनके वहुत-से साथियो ने ही उनको दवाव डालने वाला कहकर आलोचना की।

असहयोग और उपवास मे निर्दिष्ट अहिसा के आध्यात्मिक मूल्य या गुण की जो आलोचनाये हुई उनपर महात्मा गाधी ने पहले कोई ध्यान नही दिया। उन्होने जो कुछ कहा, उससे ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने आन्तरिक अनुभव से यह जानते है कि इनको आध्यात्मिक महत्व देने मे वह गलती पर नही है। और जहाँ दुनिया ने स्पष्टत उनको असफलता वतलाया, वहाँ भी गाधीजी ने उन्हे सफलता ही माना। परिणाम यह हुआ कि भारत मे सर्वत्र जिस किसी भी वात पर उपवास या 'अहिसात्मक' सत्याग्रह की नकल करनेवाले वहुत-से लोग पैदा हो गये।

परन्तु अव यह सव वदल गया है। महात्मा गाधी को नई रोशनी मिली है। वह स्वय अपनी नीयत मे सन्देह करने लगे है। वह यह सोचने लगे है कि उस समय जव कि मै समझता था कि मै आध्यात्मिक उद्देश्यो के लिए कार्य कर रहा हूँ, मै वास्तव मे राजनैतिक और भौतिक उद्देश्यो के लिए कार्य कर रहा होता था। उन्होने हमसे कहा है कि "मेरे राजकोट के उपवास मे 'हिसा का दोप' था।" अव उन्होने अपने सव

अस्त्र नीचे डाल दिये है। यदि आत्म-शुद्धि के लिए किये गये इतने प्रयत्नो, इतने वर्ष के तप और त्याग और अपने विरोधियो को प्रेम करने के प्रयत्नो के बाद भी वह यह समझते है कि वह इन साधनो का प्रयोग करने के योग्य नही है तो क्या इस बात की कभी आशा की जा सकती है कि जनता, अथवा जो आदमी इस समय इन साधनो द्वारा काम करने का प्रयत्न कर रहे है, वे कभी भी इनका प्रयोग करने के योग्य होगे ?

पर महात्माजी ने स्वय जो उन्नति की है वह इस विचार से कही अधिक महत्त्व-पूर्ण है और उसके भारत मे तथा अन्यत्र भी आश्चर्यजनक परिणाम होगे। बहुत वर्षो से महात्माजी ईसाई-धर्म के सिद्धान्तो व मान्यताओ के बहुत निकट पहुँच चुके है। उन्होने हाल ही मे जो कुछ कहा है उससे मालूम होता है कि उन्होने बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म के आन्तरिक तत्त्व को समझ लिया है। 'अ' अर्थात् 'नही' का महत्त्व बहुत नही है। 'सहयोग' मे 'अ-सहयोग' से अधिक सद्गुण है। ससार इस समय हिंसा से पीडित हो रहा है। मनुष्यो का हृदय-परिवर्त्तन करने के लिए एक नई प्रेरक क्रान्तिकारी शक्ति की भारी और ज्ञानपूर्वक आवश्यकता है। सभी देशो मे इस बात की माग भी शुरू हो गई है। वहाँ ऐसे आन्दोलन चल पडे है जो 'मानव-जाति के लिए अत्यन्त आवश्यक' नये परिवर्तन के आने की भूमिका है। हो सकता है कि महात्माजी का विकास इससे भी अधिक बातो का द्योतक हो।

हमारे समय की अनेक समस्याओ मे सबसे अधिक जटिल समस्या यह है कि युद्ध के प्रति हमारा रुख क्या हो ? बहुत-से बौद्ध ईसाई तथा वे सच्चे लोग जो किसी धर्म-विशेष को माननेवाले नही है, यह जानते है कि आत्म-रक्षा के लिए भी युद्ध करना ठीक नही। बुराई का प्रतिरोध न करने का ईसाइयो का सिद्धान्त व्यक्तियो के समान राष्ट्रो पर भी लागू होता है। मुझे साफ कहना चाहिए कि महात्माजी ने टाल्स्टाय का जो सिद्धान्त अपनाया है, वह मुझे दार्शनिक अराजकतावाद ही मालूम होता है। इस युक्ति का मुझे कोई जवाब नही मिलता कि जब हमे रक्षा के लिए सेनाये रखने की जरूरत है तब हमे पुलिस भी न रखनी चाहिए। एक व्यक्ति अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले के प्रति सच्चा प्रेम होने के कारण उसके आक्रमण को बरदाश्त करके अत मे उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर सकता है। लेकिन यदि एक राष्ट्र के आदमी, जिन्हे स्वय कोई व्यक्तिगत तकलीफ न उठानी पडे, आक्रमणकारी राष्ट्र को अपने पर और अपने ही कुछ आदमियो पर मनमाने अत्याचार करने दे, तो मै उनके इस काम को अच्छा और रुचिकर नही मान सकता। जो लोग इन सिद्धान्तो का प्रचार करते है, वे एक प्रकार के नैतिकता के जोश मे, जो उतना ही खतरनाक है जितना कि नैतिक घृणा, अपने मे व्यक्तिगत रूप से सच्ची नम्रता पैदा करने मे सन्तोष मानने के बजाय दूसरो पर एक विशेष प्रकार का आचरण लादने का प्रयत्न करते है। हममे से सभी आदमी

नीचे कहे गये दो प्रकार के व्यक्तियो मे से एक-न-एक प्रकार के है। एक तो वे मनुष्य है जिनका हृदय अपने आक्रमणकारियो के प्रति नैतिक घृणा से परिपूर्ण है, और जो नम्रता को भूलकर यह समझने मे भी असमर्थ हो गये है कि आक्रमणकारी और वे स्वय दोनो मनुष्य ही तो है। दूसरे मनुष्य वे है जो नम्रता के नैतिक जोश की अधिकता के कारण अपने नैतिक जीवन मे (दूसरो के द्वारा पहुँचाये गये) आघातो को प्रेमपूर्वक स्वय सह लेने का अभ्यास करने के बजाय, जिन लोगो तक उनकी पहुँच है, उन्हे आक्रमणकारियो के सामने नम्रता से झुक जाने का उपदेश देने मे ही अधिक समय व्यतीत करते है। इन दोनो प्रकार के व्यक्तियो मे कोई विशेष भेद नही है। ये दोनो ही जीवन मे असफल है, और स्वय आदर्श आचरण करने की अपेक्षा 'पर उपदेश कुशल' अधिक है। दोनो प्रकार के व्यक्ति जिस समय नैतिक द्वेष या नैतिक शान्ति-वाद के जोश मे बह जाते है उस समय मानव-जाति के साथ अपनी एकता की भावना को भूल जाते है। नैतिकता के इन उत्साही आदमियो की बुराई का सम्मिलित प्रति-रोध न करने का सिद्धान्त चल जाये तो बुराई को खुलकर खेलने का अवसर मिल जायगा और नैतिकतावादियो की दो पीढी पीछे की सन्तान ऋषि या सन्त नही, बल्कि गुलाम होगी। नम्रता के बजाय दासता फले-फूलेगी। दास जाति की गिनी-चुनी आत्माये ही ससार के लिए पथ-प्रदर्शन का काम करती है। जनता को तो चाटुकारी, गुप्तता और छल-कपट की कला सीखनी पडती है।

मुझे तो यह मालूम होता है कि भगवद्गीता मे अर्जुन को उपदेश देते समय भगवान् कृष्ण बहुत पहले ही 'शान्तिवाद' की युक्ति का पूर्णतया खण्डन कर चुके है। तीन वर्ष पूर्व मैने महात्माजी से यह युक्ति मनवाने का प्रयत्न किया। पर उनका मन्तव्य, जहाँतक कि मै उसे समझ पाया हूँ, यह था कि भगवद्गीता मे युद्ध की कथा तो रूपक मात्र है, वास्तविक नही, अत यह युक्ति भौतिक युद्ध और वास्तविक प्राण-हरण पर लागू नही हो सकती।

पर राजकोट के बाद से तो मै एक नये ही महात्मा को देख रहा हूँ। हम सबको उस व्यक्ति का आदर करना चाहिए, जिसने अपने सेवा-मय जीवन मे निरन्तर कठोर आत्म-सयम, कठोरतम तपस्या और आत्म-शुद्धि के लिए सतत प्रयत्न किया। यदि उन्हे एक नवीन-ज्योति प्राप्त हुई है तो वह उस दर्पण के द्वारा प्रतिक्षिप्त होकर और भी चमक उठेगी, जिसे बनाने मे इतने वर्ष लगे और इतना परिश्रम करना पडा है। आज प्रत्येक देश यह बात मान रहा है कि ससार की आशा व्यक्ति की आत्मा के विकास मे ही है। प्रत्येक को अपनेसे ही आरम्भ करना होगा। पर हमे एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता है, जो वह नीरवता पैदा करदे, जिसमे हम अपनी आत्मा की आवाज सुन सके, अन्यथा हम अपने मार्ग से भटककर दूर जा पडेगे। नैतिक जोश के प्रवाह मे बहे हुए आदमी शान्ति के इन क्षणो के सम्बन्ध मे बडा शोर मचाते है

और अन्तरात्मा की आवाज़ सुनने के बजाय दूसरो को अपने मत मे परिवर्तित करने के लिए अधिक चिन्तित रहते है। कम-से-कम भारत मे तो महात्माजी वह नीरवता उत्पन्न कर सकते है, जिसमे सच्ची शान्ति जन्म ले सके।

: ३३ :

गांधीजी का आध्यात्मिक प्रभुत्व

गिलबर्ट मरे, एम. ए., डी. सी एल.
[एमरीटस अध्यापक, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी]

जिस ससार मे राष्ट्रो के शासक पाशविक शक्ति पर अधिक-से-अधिक भरोसा किये हुए है और राष्ट्रो के निवासी अपने जीवन के अस्तित्व और आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए ऐसी पद्धतियो पर भरोसा रक्खे हुए है, जिनमे कानून, और भ्रातृभाव के लिए तनिक भी गुजाइश नही रही है, उसमे महात्मा गाधी एकाकी खडे दीख पडते है और उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। वह ऐसे राजा या शासक है, जिनका कहना लाखो मानते है। इसलिए नही कि वे उनसे डरते है, बल्कि इसलिए कि वे उन्हे प्यार करते है और इसलिए नही कि उनके पास विपुल सम्पत्ति, गुप्तचर, पुलिस और मशीनगन है, बल्कि इसलिए कि उनके पास ऐसा नैतिक प्रभुत्व है कि जब वह उससे काम लेने लगते है तब ऐसा प्रतीत होता है कि वह भौतिक ससार के सारे महत्व को धूल मे मिला देगे। मै 'प्रतीत होता है,' इसलिए कहता हूँ कि भौतिक शक्ति के विरुद्ध उसका प्रयोग सहृदयता, सहानुभूति अथवा दया के बिना निरर्थक है। इसे अपने मोर्चो में केवल इसलिए विजय प्राप्त होती है कि यह अपने दुश्मन की अन्तरात्मा मे सोई हुई उस नैतिकता या मनुष्यता को जगाती है, जो ऐसा मृदुल-मधुर तत्त्व है कि मनुष्य पशु बनने का कितना भी यत्न क्यो न करे, उससे पूरी तरह छुटकारा नही पा सकता। बीस वर्ष पहले मैने इसीसे गाधीजी के बारे मे लिखा था कि, "वह एक ऐसे युद्ध मे लगे हुए है, जिसमें असहाय और निश्शस्त्र आत्मिक शक्ति का भौतिक साधनो से अत्यधिक सम्पन्न लोगो के साथ मुकाबिला है। उस युद्ध का अन्त हमे इस भय मे दीख पडता है कि भौतिक साधनो से सम्पन्न लोग धीरे-धीरे युद्ध का एक-एक मोर्चा हारते जाते है और आत्मिक शक्ति की ओर झुकते चले जा रहे है।"

हम, निस्सन्देह, यह नही मान सकते कि आत्मिक प्रभुता रखनेवाले व्यक्ति का नेतृत्व सदा ही सही होता है। उसके दावो और कार्यो का समर्थन या प्रतिवाद सहसा शायद ही किया जा सकता है, क्योकि उनका सचालन तो उन मानवो द्वारा ही होना है, जो साधारण मनुष्यो के समान भूलो से परे नही है और शक्ति-सम्पन्न होने पर जिनका स्वेच्छाचारियो के समान पतन होना सभव है। लेकिन नैतिकता के बल पर

शासन करनेवालो, अथवा अन्य साधारण शासको मे भी गाधीजी का स्थान अद्वितीय ही है। पहली बात तो यह है कि वह कोई आदेश या हुक्म नही देते। केवल अपील करते है, हमारी अन्तरात्मा को सबोधन करते है। वह बताते है कि उनके पास 'सत्य' क्या है। लेकिन उनकी उपेक्षा और निन्दा नही करते, जो उनसे भिन्न क्षेत्र मे सचाई की खोज करते है।

दूसरी बात यह है कि उनका लडाई का तरीका अजीब और अनूठा है, जिसे कि उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दुस्तानियो के अधिकारो के लिए लगातार पन्द्रह वर्ष तक लडी गई लडाई मे खूब अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। वह और उनके अनुयायी बार-बार गिरफ्तार करके जेल भेजे गये, नैतिक अपराध करनेवालो के साथ रक्खे गये और उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। लेकिन जब भी कभी उनकी दमन करनेवाली सरकार कमजोर पडी या उसपर कोई सकट आया, अपनी बात को मनवाने एव लाभ उठाने के बजाय उन्होने अपना रुख बदल दिया और उसकी सहायता की। जब वह भीषण युद्ध की भयानक दलदल मे धँस गई, तब उसकी सहायता के लिए उन्होने हिन्दुस्तानी स्वयसेवको की सेना खडी की। अपने हिन्दुस्तानी अनुयायियो की अहिसात्मक हडताल के जारी रहते हुए जब सरकार के लिए क्रान्तिकारी लोगो की रेलवे की हडताल की आशका उपस्थित हुई, तब उन्होने सहसा अपने लोगो को काम शुरू करने की आज्ञा दे दी, जिससे उनके विरोधी निरापद हो जायँ। इसमे आश्चर्य ही क्या कि अन्त मे उनकी विजय हुई। कोई भी सहृदय शत्रु इस तरीके की लडाई का सामना नही कर सकता।

तीसरी बात, जो कि एक नेता के लिए बडी कठिन होती है, यह है कि गाधीजी कभी यह दावा नही करते कि उनसे भूल या दोष नही होता। यह भी उस हालत मे जबकि असख्य लोग उन्हे एक आदर्श मानकर पूजते है। हमे पता है कि इस समय उन्होने अपने असहयोग आन्दोलन को रोक रक्खा है, जिससे कि वह और उनके विरोधी आत्म-निरीक्षण तथा परीक्षण कर सके।

एक नि शस्त्र व्यक्ति का करोडो मनुष्यो पर नैतिक प्रभुत्व होना स्वत ही आश्चर्यजनक है। लेकिन जब वह न केवल हिसा को छोडने की शपथ लिये हुए है, बल्कि अपने शत्रुओ तक की सकट मे सहायता करता है और अपनी मानवीय कमज़ोरियो को भी स्वीकार करता है तब वह निर्विवाद रूप से सारे ससार का श्रद्धा-भाजन बन जाता है। एक दूसरे देश मे बैठे हुए, बिल्कुल भिन्न सभ्यता को मानते हुए जीवन-सम्बन्धी अनेक व्यावहारिक समस्याओ के बारे मे उनसे सर्वथा विपरीत विचार रखते हुए, उस यूरोप के चिन्ताशील तथा सघर्षमय विचारो मे निमग्न रहते हुए भी जिसमे मनुष्य का दिल और दिमाग पाशविक शक्ति और अज्ञान की चोट खाकर अपने को कुछ समय के लिए असहाय-सा अनुभव कर रहा है, मै बहुत खुशी के साथ इस

महापुरुष को 'महात्मा गाधी' के उस शुभ नाम से पुकारता हूँ, जिसका कि उसके भक्त उसके लिए दावा करते है और बडी श्रद्धा और आदर के साथ उसका उच्चारण करते है।

: ३४ :

सुदूरपूर्व से एक भेंट

योन नागूची

[कियो विश्वविद्यालय, टोकियो, जापान]

दिसम्बर १९३५ के अन्त मे नागपुर से बबई जाते हुए मै वर्धा ठहरा था। वर्धा एक साधारण-सा शहर है। लेकिन नैतिक दृष्टि से वह गाधीजी के आन्दोलन का केन्द्र बना हुआ है। मुझे गाधीजी को आश्रम मे देखकर बहुत खुशी हुई। वह आश्रम एक तपोभूमि या साधना-मन्दिर था, जहाँ पुराने ऋषि-मुनियो या साधको से सर्वथा भिन्न रूप मे इस युग के ऋषि पर अपने राष्ट्र के जीवन की आशा या पीडा की समस्त हलचलो की प्रतिक्रिया होती है। बीमारी के कारण वह उस समय वर्गाकार और बीच मे आगनवाली दुमजिले मकान की पक्की छत पर लगाये गये एक तम्बू मे लेटे हुए थे। सन्त की जैसी एक मुस्कराहट उनके चेहरे पर थी। उनकी नगी टागे दुबली-पतली पर लोह-शलाका-सी मजबूत, सामने फैली थी। एक शिष्य मालिश कर रहा था। इस साधारण और अलिप्त-से आदमी का उन महान् ऐतिहासिक उपवासो के साथ मेल मिलाना मेरे लिए कठिन हो गया, जिन्होने इग्लैण्ड की विशाल आत्मा को भी एक बार भय से थर्रा दिया था। जब मैने सूती कपडे मे कुछ लपेटा उनके सिर पर रक्खा देखा, तब मैने पूछा कि यह क्या है? उन्होने बताया कि वह गीली मिट्टी है, जो कि उनके डाक्टरो के कथनानुसार उनके जैसे खून के दबाव वाले लोगो के लिए फायदेमन्द होती है। फिर कुछ व्यग और कुछ दार्शनिकता से मिश्रित मुसकान के साथ बोले, "मै हिन्दुस्तान की मिट्टी से पैदा हुआ हूँ और यही हिन्दुस्तान की मिट्टी मेरे सिर का ताज है।"

थोडी-सी बात करने के बाद मै उनसे विदा लेकर उनके तीन या चार शिष्यो से मिलने के लिए नीचे उतर आया, जो मुझे सारा आश्रम दिखाने के लिए नीचे खडे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मधु-मक्खियाँ रहने के स्थान के पास से गुजरने के बाद मै तेल की घानी के पास पहुँचा। उसके बाद मै वहाँ पहुँचा, जहाँ कागज बनाने का प्रयोग किया जा रहा था। उन मेरे साथवालो मे से एक ने कहा कि "कागज बनाना कितना सुगम है। यदि पूरक धन्धे के तौर पर इनका हमारे देश मे चलन हो जाय तो हम

अपना कितना रुपया अपने ही देश मे बचाकर रख सकेगे ?" यह कहने की जरूरत नही कि आश्रम मे चरखे को प्रधान स्थान प्राप्त है। एक छोटा-सा लकडी का डिब्बा लाया गया जिसे खोलने पर एक छोटा-सा चरखा प्रकट हुआ। इसका गाधीजी ने जेल मे खाली समय मे स्वय आविष्कार किया था। मुझे कहा गया, "आप इसे हैण्डबेग तक मे रख सकते है और खाली समय मे सूत कातने के लिए रेलगाडी के सफर मे इसे साथ ले जा सकते है।"

फिर मुझे बताया गया कि "गाधीजी एक विशेष वैज्ञानिक व्यक्ति है। उनका अटूट धैर्य सदा उनके आविष्कारक मन का साथ देता है, जिससे उन्हे पूरी तरह सफलता मिलती है। अगर वह घडीसाज होते तो उन्होने ससार मे सर्वोत्तम घडी बनाने का श्रेय-सम्पादन किया होता। सर्जन या वकील के रूप मे भी उन्होने सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की होती। लेकिन १९२२ के मुकदमे के समय अपने को पेशे से किसान और जुलाहा उन्होने बताया और इस तरह हाथ की मजूरी की पवित्रता मे निष्ठा प्रकट की। ऐसे कामो मे वह कताई को सबसे अधिक महत्त्व देते है, क्योकि उनका खयाल है कि इससे मनुष्य मितव्ययी बनने के साथ-साथ समय का भी ठीक-ठीक उपयोग करना सीख जाता है। वह किसी भी वस्तु के अपव्यय को सबसे अधिक घृणा की दृष्टि से देखते है। उनका यह विश्वास है कि हाथ की मिहनत से ही हिन्दुस्तान को नया जीवन मिल सकता है। इसलिए चरखे को अपना आदर्श मानकर वह जनता से स्वतन्त्र जीवन के झण्डे के नीचे आने के लिए अपील कर रहे है।"

यह तो केवल आकस्मिक घटना है कि उनका आन्दोलन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक विद्रोह प्रतीत होता है, क्योकि वह आन्दोलन, जहाँ एक ओर भारत को नीति-भ्रष्टता से बचावेगा तहाँ वह दूसरे देशो को भी उबारेगा। क्योकि वह शक्ति को उत्पादक कामो मे लगाने की तथा खेतो और खलिहानो से मिलते-जुलते जीवन बिताने की महान् शिक्षा देता है। दूर के आदर्शो के पीछे भटकते-फिरने की अपेक्षा अपने आस-पास के लोगो की ही सेवा करने का महत्त्व केवल हिन्दुस्तान तक ही सीमित नही रह सकता। स्वदेशी की 'आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन' की भावना का प्रभाव समस्त देश और काल मे व्यापक होकर रहेगा।

दीन-दुखियो और गरीबो की सेवा करने और उनके साथ अपने को तन्मय करने से अधिक पवित्र और ऊँचा मार्ग ईश्वरोपासना के लिए गाधीजी नही ढूँढ सकते। उदा-हरण के लिए वह जब रेल मे सफर करते है, तो सदा ही तीसरे दर्जे का टिकिट लेते है। इससे वह अपने आपको यह याद दिलाते है कि वह उन निम्नतम मनुष्यो मे से है, जिनमे मानवता और स्नेह ही सबसे बडी सम्पत्ति माने जाते है। ऐसे व्यक्ति के रूप मे जिसने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग मजूरो के साथ बिताया हो और उनके सुख-दुख मे समान भाग लिया हो, गाधीजी आत्म-निर्भर और स्वावलम्बी जीवन

बिताने की प्रेरणा देते रहने के लिए अपने मित्रों को चर्खा भेंट करते हैं।

बम्बई जाते हुए गाडी मे अपने डिब्बे मे अकेला लेटा हुआ मैं अपने मन मे महात्मा गाधी की मूर्ति को थोडे समय के लिए भी दूर नही कर सका। मुझे एकबार उनका एक छोटा-सा निबन्ध 'स्वेच्छापूर्वक गरीबी' (अपरिग्रह) पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिसमें उन्होने उन वस्तुओ के परित्याग से होनेवाले अपने आनन्द का वर्णन किया है, जो कभी उनकी अपनी थी। उनका यह विश्वास है कि हिन्दुस्तान सरीखे देश मे अनिवार्यत आवश्यक से अधिक अपने पास कुछ रखकर जीवन-निर्वाह करना डाकेजनी करके गुजारा करने के समान है। जबतक कि तुम उसके-जैसे न हो जाओ, जो नगा और भूखा बाहर खुले मे सोता है, तबतक तुम्हे यह कहने का अधिकार नहीं कि तुम हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियो की रक्षा कर सकते हो। मुझे बताया गया है कि जिस कपडे से गाधीजी अपने-आपको ढापते है, वह भी कम-से-कम है। यह स्वाभाविक है कि गाधीजी इस गरीबी की ऐसी लगन मे उस साधना और तप के आदर्श पर पहुँच जायँ, जहाँ आत्मशुद्धि के अर्थ पचेद्रिय-दमन किया जाता है।

वह योद्धा जो आत्म-दर्शन मे जूझता हुआ बिगुल बजाता अदृश्य विजय की निश्चित आशा से स्वर्ग के निकट पहुँच गया है, जिस बिगुल की आवाज नरक के कोने-कोने मे गूंज उठी है। और जो अकेला ही वहा से भावी को ललकार रहा है।

दुर्बल, क्षीणकाय परन्तु जिसकी महान् आत्मा ने ससार कँपा दिया है। विस्मृत और तिरस्कृत प्रेम ने, जीवन की कुचली और झझोडी हुई स्वतन्त्रता ने, अपुरस्कृत और अपमानित शारीरिक परिश्रम ने इस पुरुष की गर्जना मे अत्याचार के विरुद्ध चुनौती की आवाज उठाई है, ईश्वरीय न्याय के लिए प्रार्थना की है। धरती-माता के अत्यन्त निकट जीवनयापन का करुण मन्त्र पढनेवाला जादूगर, उस मनुष्य से बढकर कौन पुरुष है जिसके हृदय मे देश-भक्ति की ज्वाला इतने जोर से धधक रही हो। सत्य का वह एक एकाकी शोधक है। वह सब सासारिक सुखो को तिलाञ्जलि दे चुका है। इस मनुष्य की आत्मा से बढकर किसकी आत्मा 'अवतारी' हो सकती है? वह भूख और दुख के अनन्त और दुर्गम पथ का पथिक है।[1]

१ मूल अग्रेजी पद्य इस प्रकार है —

A warrior in combat near Heaven with a prospect of unseen victory,
Blowing a bugle that rings to the last gulf of Hell,
A lonely hero challenging the future for repose
Withered and thin,
But with a mammoth soul shaking the world in fear—

: ३५ :

विविधरूप गांधीजी

डा० पट्टाभि सीतारामैया, बी. ए., एम. बी, सी. एम.

[मछलीपट्टम]

गांधीजो—अवतार

"जो व्यक्ति अपने इन्द्रिय-सुख की कुछ परवाह नही करता, जो अपने आराम या प्रशसा या पद-वृद्धि की कुछ चिन्ता नही करता, किन्तु जो केवल उसी बात के करने का दृढ निश्चय रखता है जिसे वह सत्य समझना है, उससे व्यवहार करने में सावधान रहो। वह एक भयकर और असुविधाजनक शत्रु है, क्योकि उसके जा सकनें वाले शरीर पर काबू पा करके भी तुम उसकी आत्मा पर बिलकुल अधिकार नहीं कर सकते।"

—प्रो० गिलबर्ट मरे

ससार ने समय-समय पर महान् पुरुषो को जन्म दिया है। प्रत्येक राष्ट्र ने अपने सन्त, अपने शहीद, अपने वीर, अपने कवि, अपने योद्धा और अपने राजनीतिज्ञ उत्पन्न किये है। भारतवर्ष ने हम अपने महापुरुषो को अवतार कहते है। वे ऐसे व्यक्ति है जो पुण्य की रक्षा और पाप का नाश करने के लिए ईश्वर के मूर्तरूप होकर पृथ्वी पर आते है। हमारे लिए गाधीजी एक अवतार है, जिन्होने इस कर्मरत ससार मे पूर्ण अहिंसा को कार्यान्वित करके बताया है।

गांधीजी—स्थितप्रज्ञ

गाधीजी की सम्मति मे स्वराज्य का अर्थ यह नही है कि गोरी नौकरशाही की जगह काली नौकरशाही कायम होजाय। स्वराज्य का अर्थ है जीवन के ढाचे का

Through this man love, profaned and ignored,
Through this man life's independence, shattered and fallen,
Through this man, body-labour bereft of honour and prize,
Cry rebel-call against tyranny, to God's justice be praise!
A Sad chanter of life close to the mother-earth,
(Where is there a more burning patriot than this man ?)
A lone seeker of truth denying the night and self-pleasure,
(Where is there a more prophetic soul than this man's ?
A pilgrim along the endless road of hunger and sorrow

बिल्कुल बदल जाना। दूसरे शब्दों में, भारत का पुनर्विजय करना। उनके मस्तिष्क में तो समस्या यह है कि देश के भिन्न-भिन्न टुकडो को, जो प्रादेशिक दृष्टि से प्रान्तों और देशी राज्यों में, सम्प्रदायों की दृष्टि से हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों में, व्यवसायों की दृष्टि से शहरी और देहाती समुदायों में बँटे हुए है, और जो कही 'बहिर्गत प्रदेशों' और कही 'अन्तर्गत प्रदेशों' में विभक्त हैं, किस प्रकार एक सूत्र मे ग्रथित किया जाय। वह यह भी चाहते है कि राष्ट्र की संस्कृति का पुनरावर्तन किया जाय और उसमें आधुनिक जीवन में से नकल की जाने योग्य बातों को भी ग्रहण किया जाय, सेवा के आदर्श को पुनर्जीवित किया जाय, नई सभ्यता से उत्पन्न हुई स्वार्थपरायणता के स्थान पर दीन-दरिद्रों के प्रति दया की भावना बढाई जाय, पीडित समाज मे अत्यन्त धनिकों और अत्यन्त निर्धनों के समुदाय बनने देने के स्थानों पर निम्नश्रेणी वालो की सतह पर लाया जाय, सभी लोगो के लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था की जाय और कुछ लोगो के उत्कर्ष की खातिर रहन-सहन की कोटि ऊँची करने के बजाय, यदि आवश्यक हो तो, औसत जीवन-कोटि को ही कुछ नीचा कर दिया जाय। इस दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन में ही एक नये सामंजस्य का विकास किया है, और हिन्दू-धर्म के चारों वर्णों और चारों आश्रमों को उन्होंने अपने जीवन में सन्निविष्ट कर लिया है। वह ब्राह्मण का कार्य करते है, वह व्यवस्था देते है। वह क्षत्रिय है, वह भारत के मुख्य चौकीदार है। वैश्य के रूप मे वह भारत की सम्पत्ति का विनियोग करते है, और शूद्र के रूप मे उन्होंने अन्न और वस्त्र की उत्पत्ति की है। अपने ऊपर चलाये गये सुप्रसिद्ध अभियोग में उन्होंने कहा था कि मैं जुलाहा और किसान हूँ। और गृहस्थ होते हुए भी वह ब्रह्मचारी की भाँति संयम मे रहते है, वानप्रस्थ की भाँति अपनी पत्नी के साथ मानव-जाति की सेवा करते है। और वह सच्चे सन्यासी भी है, क्योंकि उन्होंने अपना सब-कुछ मनुष्य-जाति के कल्याण के लिए परित्याग कर दिया है। इतने पर भी गांधीजी प्रधानता एक मनुष्य है। वह मानवोत्तर होने का न ढग रखते है न कोई ऐसा दावा ही करते है। वह पक्के कार्य-कुशल आदमी है, बडी उम्र के लोगो में खुश-मिजाज है, और मनुष्य-जाति के लिए एक साधु है, ऋषि है, पथ-प्रदर्शक है, दार्शनिक है और सबके मित्र है। उनका चेहरा तेजोमय है, उनकी दोनो आँखो मे तेज है और उनकी हँसी मे तो उनका सम्पूर्ण अन्तर्मन बाहर प्रकट हो जाता है। वह एक अंश में स्पष्टवक्ता हैं, और उन्हे लोगो के पीठ-पीछे आक्षेप सुनने की आदत नही है। किन्तु वह आक्षेपकर्ताओं के समक्ष ही आक्षिप्तो के सामने उन्हे रख देते है। वह आपके स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लेते हैं, और आपकी बात को सत्य मान लेते है। वह बातचीत बडी निश्चिन्त और नपी-तुली करते हैं और आशा करते है कि उनके वक्तव्यों को समझने मे उनके 'अगर-मगर' को तथा प्रधान वाक्यांशों को ध्यान मे रक्खा जायगा। अधिकांश लोगो ने उनके प्रधान वाक्यांशों को तो ले लिया, पर 'अगर-मगर' को भुला दिया, और इस प्रकार अपने

उत्तरदायित्वो को उठाये विना उन्होने वाह्य परिणामो की आशा वाँध ली। उनकी लेखन-शैली अपनी ही और विलक्षण है। उसमे छोटे-छोटे वाक्य होते है—छोटे, उतने ही प्रवल, सीधे और उतने ही गतिमान, जैसे तीर और असर करने मे भयकर। गाधीजी उपनिषदो मे वर्णित पूर्णपुरुष है, जिनसे परिचित होना क सौभाग्य है, और जिनके साथ काम करना एक वरदान है। वह भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ है, जिन्होने अपने आत्मसयम और आत्मत्याग से अपनेआप पर और ससार पर विजय पाई है।

गांधीजी का द्विविध कार्यक्रम

सत्याग्रही के रूप मे गाधीजी पराजय को जानते ही नही। जव राष्ट्र आक्रामक कार्यक्रम से थक जाता है तो उसे फौरन रचनात्मक कार्यक्रम मे लगा दिया जाता है। जिस सरलता से कारखाने मे मशीन का पट्टा फास्ट पुली से लूज पुली पर आ जाता है, उसी सरलता से गाधीजी के शक्ति-चक्र का पट्टा भी युद्ध के विध्वसक-क्षेत्र से रचनात्मक क्षेत्र पर उतर आता है। उतनी ही तेजी-फुर्ती से वह सविनय आज्ञाभग के आक्रामक कार्यक्रम का वटन दवा देते है, और यह कार्यक्रम भी तूफान या ज्वार की-सी तीव्रता और वेग के साथ वढ जाता है। उनके आक्रमण कितने प्रवल होते है, यह ससार अच्छी तरह से जानता है। उन्हे खुद मालूम न था कि सामूहिक सविनय आज्ञा-भग कैसा होगा। पर वह जानते थे कि वह आज्ञाभग होगा जो सविनय या अहिंसात्मक रूप मे होगा और अपरिमित परिमाण पर सामूहिक रूप मे कार्यान्वित किया जायगा। उनके युद्धो मे, जो कि देखने मे तो नगण्य होते है। किन्तु जिनका लक्ष्य एक और निश्चित, तथा परिणाम स्थायी और व्यापक होता है, कोई-न-कोई नैतिक प्रश्न ज़रूर शामिल रहता है। कभी तो अमृतसर-हत्याकाण्ड का प्रश्न ले लिया जाता है, जिसके लिए क्षमा-याचना की माँग की जाती है, कभी खिलाफत के अन्याय का प्रश्न होता है, जिसका घटनास्थल तो दूर-देशीय होता है, किन्तु परिणाम और प्रभाव निकटवर्ती होता है, तो कभी-कभी नमक-कर का ही प्रश्न उठा लिया जाता है, जो यद्यपि छोटा-सा कर है, किन्तु जो परिणाम मे पापमय है। जव ससार समझता है कि गाधीजी परा-जित होगये तव उस पराजय को वह एक वाक्य से विजय वना लेते है।

गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की देश मे स्तुति भी हुई है और निन्दा भी हुई है, और उसके प्रति आज भी अधिकाश जनता का आकर्पण कम है। उनका खद्दर दरिद्रो की रामवाण औपधि है, नया आर्थिक कवच है, विधवाओ और अनाथो का, अपाहिजो और अन्धो का आश्रयदाता है। खद्दर किसानो को, जो कि ऋण और कर के असह्य वोझ मे दवे जा रहे है, सहारा देनेवाला एक सहायक धन्धा है। खद्दर का पुनर्जीवन स्वय एक सम्पूर्ण पन्थ ही है, क्योकि वह मानव-जाति पर यन्त्रवाद के जो कि अच्छा नौकर किन्तु वुरा मालिक है, आघात का विरोध करता है। खद्दर भारत की

उत्पादनशील प्रतिभा के पुनर्जीवन का एक चिन्ह है। खद्दर कारीगर की अपनी स्वतन्त्रता और मिल्कियत की भावना का, जो कि भारतीय कारीगर में सदा अनुप्राणित रही है, मूर्तस्वरूप है। खद्दर पवित्रता और परिवार की अक्षुण्णता के वातावरण का, जिसमे कि भारतीय शिल्पकला सदा फूली-फली है, एक प्रतीक है। खादी भारतीय देशभक्त की वर्दी है और राष्ट्रीय स्वतत्रता का बिल्ला है। गाधीजी के प्रधान-काल के प्रथम पांच वर्ष खद्दर की जड मजबूत करने में लग गये, जिसमे कि अन्य ग्रामीण उद्योगों और घरेलू धधो का रास्ता साफ होजाय और जीवन मे मशीन की, जो कि हिंसा का ही एक चलता-फिरता रूप है, मर्यादा सुनिश्चित होजाय।

गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के तीन भाग हैं—वह खद्दर के रूप मे आर्थिक, **अस्पृश्यता-निवारण** के रूप मे सामाजिक और **मद्य-निषेध** के रूप मे नैतिक है। पहले भाग को पूर्ण करके वह दूसरे भाग में लग गये, और सितम्बर १९३२ मे उनके आमरण अनशन करने की घटना तो अब विश्व-इतिहास का एक अध्याय ही बन गई है। और तीसरे भाग मद्य-निषेध को प्रान्तीय स्वतन्त्रता के अधीन मत्रियो के कार्यक्रम मे सम्मिलित करके कार्यान्वित किया जा रहा है। अभी कुछ ही हफ्ते पहले गाधीजी ने बडे दुख के साथ निराशा प्रकट की थी कि उनके विश्वस्त सहयोगी इस सुधार की दिशा मे बहुत धीरे-धीरे कदम बढा रहे हैं, क्योंकि उन्होने भारत मे पूर्ण मद्य-निषेध के लिए जो मियाद रक्खी है, वह साढे तीन वर्ष की ही है। रचनात्मक कार्यक्रम का चौथा भाग सास्कृतिक है और वह है **राष्ट्रीय शिक्षा**, जिसके लिए हरिपुरा मे एक अखिल-भारतीय बोर्ड कायम कर दिया गया है, और उसके तत्वावधान मे वर्धा-योजना नामक शिक्षा-पद्धति का प्रचार किया जा रहा है, जिसका लक्ष्य है बच्चों के शिक्षण को राष्ट्र के जीवन से सम्बन्धित करना। केवल एक बडे सुधार का होना रहा है—**साम्प्रदायिक एकता** का, जो मुख्यत हिन्दू-मुस्लिम एकता ही है। इसका गुरुमत्र तैयार होने में कुछ देर नही है, और इस एकता का जो तरीका सोचा गया है उसमे अनुपातो का सौदा नही होगा, किन्तु भारत के दो बडे समुदायो की उदात्त भावनाओ और बुद्धिमत्ता को जाग्रत करना होगा। इस प्रकार जब राष्ट्र की प्रवृत्तियो और ध्यान को एक बार सैन्य और शस्त्र-सग्रह करने मे और दूसरी बार युद्ध करने मे लगा दिया जाता है, या कभी-कभी यह क्रम पलट भी दिया जाता है, तो जीत या हार की बात कोई नही कह सकता।

गाधीजी के विचारानुसार ब्रिटेन से लडाई मूलत एक नैतिक लडाई है, क्योंकि अग्रेजो ने जो सात किलेबन्दियां की है वे अपनी केन्द्रीय सत्ता के चारो ओर सात नैतिक (अथवा, अनैतिक) प्राकार (चहारदीवारियां) खडी की है। उनके नाम है—सिविल सर्विस (सरकारी नौकरियां), व्यवस्थापिका सभायें, अदालते, कालिज, स्थानीय स्वशासन-सस्थायें, व्यापार और उपाधिकारी वर्ग। गाधीजी के असहयोग के

कार्यक्रम का उद्देश्य वारी-वारी से इनमे से हरेक को और अन्त मे सभीको नष्ट कर देना ही है। कोसिलो, अदालतो और कालिजो का वहिष्कार इसी योजना का एक भाग है। एक वार सरकारी नौकरो और फौजवालो से भी अपनी गुलामी छोड देने की अपील की गई थी। इस प्रकार भारत के अग्रेजी राज्य की मोहकता और अजेयता का नाग किया गया था।

गांधीजी और सत्याग्रह

हिंसा और युद्ध के युग मे सत्याग्रह उतना ही विचित्र हथियार है जितना कि पत्थर युग मे लोहे की छुरी या बैलगाडियो के वीच मे पेट्रोल का एँजिन। लोग इसे समझ नहीं सकते, इसमे विश्वास नही करते, इसकी ओर देखना भी नही चाहते। जव ट्रासवाल की सफलता का उदाहरण दिया जाता है, तो लोग कहते है कि वह घटना तो एक छोटे-से परिणाम मे हुई थी। वह एक छोटी-सी लडाई थी। वह उदाहरण भारत-जैसे विशाल देग के लिए लागू नही हो सकता। चम्पारन, खेडा और वोरसद को भी यह कहकर तुरन्त नगण्य वता दिया जाता है कि वे भी छोटी-छोटी-सी सफलताये थी, जिनकी राष्ट्रव्यापी रूप मे पुनरावृत्ति नही हो सकती। किन्तु आज तो सारी शकाये मिट चुकी है और सव कठिनाइयॉ हल होगई है। समस्या यही है कि सत्याग्रह को सत्य और उसकी आनुषगिक—अहिसा—की सीमा के भीतर रक्खा जाय। सत्य और अहिसा जो इस नये हथियार के दो अग है, निष्क्रिय नही है, निषेधात्मक तो है ही नही। वे विधानात्मक, आक्रमक शक्तियाँ है, जिनसे कि कार्यक्रम मे वही सव गुण आजाते है जो कि हिसा के क्षेत्र मे युद्ध मे होते है। अपने शत्रुओ को घवरा देने और भयभीत करने ओर अन्त मे उनका हृदय-परिवर्तन करके उन्हे जीत लेने, अपने अनुयायियो मे एक सख्त अनुशासन-भावना पैदा करने, इस नये शस्त्र के समर्थको के मस्तिष्क और भावना को प्रभावित करने, साहस, त्याग और धैर्य को जाग्रत करने, अत्यल्प पूजी से और विनाशक शस्त्रास्त्र की सहायता के विना ही राष्ट्रव्यापी प्रतिरोध खडा करने के कारण सत्याग्रह एक निश्चयात्मक और अदम्य शक्ति का काम देता है, और अनुभव भी इसकी उपयोगिता का काफी प्रमाण देता है।

गाधीजी की सत्य और अहिसा-सम्वन्धी धारणा को वहुत कम लोग समझते है। उनके मतानुसार दोनो के दो-दो स्वरूप है—क्रियात्मक और निषेधात्मक। चम्पारन के कलक्टर ने उन्हे एक कडा पत्र लिखा था, जिसे उसने वाद मे वापस लेने का निश्चय किया और वापस माँगा। जव गाधीजी के नये अनुयायी उसकी नकल करने लगे तो उन्होने उन्हे फटकारा और कहा कि अगर उसकी नकल रखली गई तो पत्र वापस लिया हुआ नही कहा जायगा। यह सत्य की एक नई परिभाषा थी, और इसीकी पुनरावृत्ति गाधी-अरविन समझौते के समय भी हुई, जवकि होम सेक्रेटरी श्री इमरसन

का अपमानकारक पत्र पुनर्विचार के बाद वापस लिया गया। काग्रेस के कागजो मे उसकी नकल नही है। इसका कारण भी यही था कि वापस लिये हुए पत्र की नकल रखना अपनी फाइलो मे और अपने हृदयो मे उसे बनाये रखने के बराबर है। और ऐसा करना असत्य होगा और अहिंसा के विरुद्ध होगा।

गाधीजी हिंसा के सूक्ष्मतम प्रोत्साहन को भी सहन नही करते। सन् १९२१ में जब गाधीजी की यह राय हुई कि अलीबन्धुओ के भाषणो मे से हिंसा के अनुकूल अर्थ निकाला जा सकता है तो उन्होने उनसे एक वक्तव्य निकलवाया कि उनका ऐसा कोई इरादा नही था। किन्तु जब उन्ही अलीबन्धुओ पर अक्तूबर १९२१ मे कराची-भाषण के कारण मुकदमा चलाया गया तो उन्होने उसी भाषण को त्रिचनापल्ली मे दोहराया और सारे भारतवर्ष मे उसीको हजारो सभामचो पर दोहरवाया। उनके सामने एक ही कसौटी रहती है—क्या भाषण पूर्णतया अहिंसात्मक है? यदि अहिंसात्मक है, तो वह उतनी ही शीघ्रता से उसपर रण-ललकार देने को तत्पर रहते है, जितनी शीघ्रता से कि यदि वह अहिंसात्मक नही है तो क्षमायाचना करने को भी तैयार हो जाते है। चूंकि उनका अहिंसा-सम्बन्धी दृष्टिकोण ऐसा है, इसलिए जब १९२१ के सविनय आज्ञाभग आन्दोलन मे, ब्रिटिश युवराज के आगमन के समय, ५३ आदमी मारे गये और ४०० घायल हुए तो उनके हृदय को बडा आघात पहुँचा। उन दिनों में उन्होंने प्रायश्चित के रूप मे पाँच दिन का उपवास किया था जोकि उनके बाद के २१ दिन और २८ दिन और अन्त में किये गये प्रायोपवेशन के मुकाबिले मे आज इतने समय बाद भले ही बहुत छोटा-सा दिखाई देता हो।

गाधीजी का असहयोग सदा अन्त मे सहयोग स्थापित करने के इरादे से किया गया है, किन्तु उन्होने अपने सत्य और अहिंसा के मूल तत्त्वो को कभी नही छोडा है, जैसाकि उनके १ फरवरी १९२२ के लार्ड रीडिंग को लिखे हुए पत्र से प्रकट होता है—

"किन्तु इससे पहले कि बारडोली के लोग सचमुच सविनय आज्ञाभग प्रारम्भ करदे, मै भारत-सरकार के प्रमुख के नाते आपसे सादर अनुरोध करूँगा कि आप अपनी नीति का पुनर्निरीक्षण करे, और समस्त असहयोगी कैदियो को, जो देश मे अहिंसात्मक कार्यों के कारण दण्डित हुए हो या विचाराधीन हो, छोड दें, चाहे वे खिलाफत या अन्याय दूर कराने के कारण हो या पजाब के अत्याचारो के कारण हो या स्वराज्य के या अन्य कारणो से हो, और चाहे वे ताजीरात हिन्द की या जाब्ता फौजदारी या दूसरे किसी भी दमनकारी कानून की धाराओ के भीतर भी आते हो। शर्त केवल अहिंसा की है। मै आपसे यह भी अनुरोध करता हूँ कि आप अखबारो को शासन-विभाग के समस्त नियन्त्रणो से मुक्त करदे। और हाल मे लागू किये हुए जुर्मानो और कुर्कियो को भी वापिस करदे, इस प्रकार के अनुरोध मे मै आपसे वही मांगता हूँ, जो कि आज प्रत्येक सभ्य शासनाधीन देश मे हो रहा है। यदि आप इस वक्तव्य के प्रकाशन की

तारीख़ से सात दिन के अन्दर आवश्यक घोषणा निकाल देने मे समर्थ हो सकेगे, तो मै तवतक के लिए आक्रामक ढग के सविनय आज्ञाभग को स्थगित करने की सलाह देने को तत्पर हो जाऊँगा जवतक कि कैदी कार्यकर्ता जेलो से छूटकर सारी परिस्थिति पर नये सिरे से पुर्नविचार न करले।"

गांधीजी की असंगतियाँ

गाधीजी पर नरम विचारो के लोग यह आरोप लगाते हैं कि उनके आदर्श अव्यवहार्य है, उग्रविचार के लोग यह आरोप लगाते है कि उनका कार्यक्रम बहुत नरम है। और दोनो यह आरोप लगाते है कि उनके कार्य बहुत असगत होते है। पर अपने जीवन और कार्य-सम्बन्धी इन परस्पर-विरोधी अनुमानो के बीच वह चट्टान की भाति अविचल खडे रहे हैं, निन्दा और स्तुति के प्रवाह का उनपर कोई प्रभाव नही हुआ है। उनके जीवन का एकमात्र पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त भगवद्‌गीता के इस श्लोक मे है—

सुखदु खे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि ॥[1]

१८९६ मे गाधीजी पूना गये और तिलक और गोखले के चरणो मे बैठकर उन्होने राजनीति का प्रथम पाठ पढा। उन्होने कहा कि तिलक तो हिमालय के समान है—महान् और उच्च किन्तु अगम्य और गोखले पवित्र गगा के समान है,जिसमे वह निर्भीकता-पूर्वक डुवकी लगा सकते है। १९३९ मे तो गाधीजी स्वय हिमालय-जैसे ऊँचे होगये हैं, किन्तु वह सवके लिए सुलभ हैं,उन्होने गगा की थाह लेली है और सदा पावन करनेवाले हैं।

जव सत्याग्रह को स्थूलरूप से निष्क्रिय प्रतिरोध कहा करते थे उस समय बहुत कम लोग समझते थे कि सत्याग्रह क्या है। गोखले ने (१९०९ में) इस प्रकार उसकी परिभाषा की थी—

"उसका स्वरूप मूलत रक्षणात्मक है, और वह नैतिक और आध्यात्मिक हथियारो से युद्ध करता है। निष्क्रिय प्रतिरोधक अपने शरीर पर कष्ट सहकर जुल्मो का प्रतिरोध करता है। वह पाशवी शक्ति का मुकाविला आध्यात्मिक शक्ति से करता है, मनुष्य की पाशविक वृत्ति के सामने दैवी वृत्ति को खडा कर देता है, जुल्म के मुकाविले मे कष्ट-सहन को अपनाता है, पशुवल का सामना आत्मवल से करना है, अन्याय के विरुद्ध श्रद्धा का, और असत्य के विरुद्ध सत्य का सहारा लेता है।"

१९३९ मे सत्याग्रह एक घर-घर-व्यापी शब्द वन गया है, और वह पीडित लोगो का चाहे वे ब्रिटिश भारत के हो चाहे देशी राज्यो के, एक सर्वमान्य साधन होगया है। जर्मन-आक्रमणो के मुकाविले मे यहूदियो से और जापानी हमलो के मुकाविले में चीनियो से भी सत्याग्रह की ही ज़ोरदार सिफारिश की जाती है।

१ गीता—२-३८

१९१३ में कराची में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने " भारत के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए और भारतीयो के कष्ट दूर कराने के लिए दक्षिण अफ्रीका की लडाई मे गाधीजी और उनके अनुयायियो ने जो वीरतापूर्ण प्रयत्न किये और जो अनुपम बलिदान किया", उसकी प्रशसा का प्रस्ताव पास किया। यह प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हुआ था। और १९३१ में कांग्रेस के ४५वे अधिवेशन में जोकि फिर कराची में ही हुआ था, गाधीजी को अपने वीरतापूर्ण प्रयत्नो के लिए राष्ट्र की प्रशसा फिर प्राप्त हुई। किन्तु दक्षिण अफ्रीका के मुट्ठीभर लोगो की ओर से नही, बल्कि ३५ करोड जनता के पूरे राष्ट्र की ओर से, जिनकी मुक्ति का श्रीगणेश सत्याग्रह के उन्ही मुख्य और स्थायी सिद्धान्तो के आधार पर सफलतापूर्वक किया गया था।

१९१४ में गाधीजी ब्रिटिश साम्राज्य के एक राजभक्त नागरिक थे, और जैसे उन्होने बीसवी सदी के प्रारम्भ में जुलू-विद्रोह और बोअर-युद्ध मे रेड क्रास सोसाइटी का सगठन किया था, इसी तरह महायुद्ध के लिए भी सिपाहियो की भर्ती में सहायता दी थी। हालांकि युद्ध-सम्बन्धी उनका रुख अब एक छोर से दूसरे छोर पर आगया है, फिर भी कभी वह इस तरफ और कभी उस तरफ रहा। यद्यपि १९१८ के अगस्त मास तक वह भर्ती के मामले मे अंग्रेज़ो को बिना शर्त के सहायता देने के पक्ष में थे, तथापि १९३८ के सितम्बर में, जबकि यूरोप पर युद्ध के बादल झुके आरहे थे, वह युद्ध की परिस्थिति मे भारत के लिए लाभ उठाने के या आगामी युद्ध में किसी अंश में भी भाग लेने के सख्त खिलाफ थे। इन दोनो चित्रो का कुछ अधिक विस्तृत अध्ययन करना ठीक होगा।

१९१९ मे तिलक के नाम एक आर्डर निकाला गया कि वह ज़िला मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बिना कोई भाषण न दे। कहा जाता है कि इससे एक सप्ताह पहले ही वह भर्त्ती कराने के पक्ष मे ज़ोरदार काम कर रहे थे, और अपनी सद्भावना के प्रमाण के तौर पर उन्होने महात्मा गाधी के पास पचास हज़ार रुपये का एक चेक भेजा था कि यदि मैं शर्त को पूरा न कर दिखाऊँ तो यह रकम शर्त हारने के जुर्माने के रूप में ज़ब्त करली जाय। शर्त यह थी कि यदि गाधीजी सरकार से पहले यह प्रतिज्ञा प्राप्त करले कि भारतीयो को सेना में कमीशण्ड ओहदा दिया जायगा तो तिलक महाराष्ट्र से पचास हज़ार आदमियो की भर्त्ती करा देंगे। गाधीजी का कहना था कि सहायता किसी सौदे के रूप में न होनी चाहिए और इसलिए उन्होने तिलक का चेक लौटा दिया।

सितम्बर १९३८ मे यूरोप की युद्ध-सम्बन्धी परिस्थिति पर विचार करने के लिए दिल्ली में कांग्रेस-कार्यसमिति की बैठक प्रतिदिन हो रही थी। देश में दो तरह की विचार-प्रणाली के व्यक्ति थे—एक वे जो ब्रिटेन से भारत के अधिकारो की बाबत कोई समझौता करने के और उसके बाद सहायता देने के पक्ष मे थे। दूसरे वे लोग थे जो युद्ध मे किसी परिस्थिति मे भी सहायता करने को तैयार न थे। गाधीजी दूसरे दल मे थे, और १९३८ मे किसी भी परिस्थिति में युद्ध में भाग लेने के उतने ही दृढ

विरोधी थे जितने कि १९१८ मे ब्रिटेन को विलाशर्त सहायता देने के पक्षपाती थे।

१९१८ मे गाधीजी अनेक कार्यो मे पड गये, जिनमे सबसे प्रसिद्ध कार्य रौलट-बिलो का विरोध था। आज भी वह उसी प्रकार के उन अनेक कानूनो से लडने मे लगे हुए हैं जो भारत के अनेक देशी राज्यो मे—त्रावणकोर, जयपुर, राजकोट, लीम्बडी धेनकानल आदि मे—पूरे जोर-शोर से अमल मे आ रहे हैं। उनकी योजना और उद्देश्य की बाबत भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित 'इण्डिया—१९१९' के लेखक के लेख से अच्छा ओर क्या प्रमाण दिया जा सकता है —

"गाधीजी सामान्यतया ऊँचे आदर्श और पूर्ण निस्वार्थता रखने वाले टाल्स्टाय-वादी समझे जाते है। जबसे उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे भारतवासियो का पक्ष लिया तबसे उनके देशवासी उन्हे उसी परम्परागत श्रद्धा-भक्ति से देखते है जो पूर्वीय देशो मे सच्चे त्यागी धार्मिक नेता के प्रति हुआ करती है। उनमे एक विशेपता यह भी है कि उनके प्रशसक केवल किसी एक ही मत के नही है। जबसे वह अहमदाबाद मे रहने लगे, तबसे उनका कई प्रकार के सामाजिक कार्यो मे क्रियात्मक सम्बन्ध होगया है।

"जिस किसी व्यक्ति या वर्ग को वह पीडित समझते है उसके पक्ष मे पडकर लडने को वह शीघ्र तत्पर हो जाते हैं, और इस कारण वह अपने देश के सामान्य लोगो मे बडे लोकप्रिय बन गये है। बम्बई प्रान्त के कई भागो की शहरी और देहाती जनता मे उनका प्रभाव असदिग्ध है, और उनके प्रति लोग इतनी श्रद्धा रखते हैं कि उसके लिए पूजन शब्द कहना अत्युक्ति न होगा। चूकि गाधीजी भौतिक शक्ति से आत्मिक बल को ऊँचा समझते है, इसलिए उनको यह विश्वास होगया कि रौलट-एक्ट के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध का वही शस्त्र प्रयुक्त करना उनका कर्तव्य है, जो उन्होने सफलतापूर्वक दक्षिण अफ्रीका मे प्रयुक्त किया था। २४ फरवरी को यह घोपणा करदी गई कि अगर बिल पास कर दिये गये तो वह निष्क्रिय प्रतिरोध या सत्याग्रह चलायेगे। सरकार ने और कई भारतीय राजनीतिज्ञो ने भी इस घोपणा को अत्यन्त गम्भीर समझा। भारतीय लेजिस्लेटिव कौसिल के कुछ नरम विचार के मेम्बरो ने सार्वजनिक रूप मे ऐसे कार्य के भयकर परिणामो की आशका प्रकट की। श्रीमती बेसेण्ट ने, जिन्हे भारतवासियो के मानस का अच्छा ज्ञान था, अत्यन्त गम्भीर भाव से गाधीजी को चेता दिया कि जिस प्रकार का आन्दोलन वह चलाना चाहते है, उससे भीपण परिणाम पैदा करनेवाली अतोल क्रियाशक्तियाँ उत्पन्न होगी। यह स्पष्ट कह देना होगा कि गाधीजी के रुख या वक्तव्यो मे ऐसी कोई बात न थी, जिसमे सरकार के लिए उनके आन्दोलन शुरू करने से पहले उनके विरुद्ध कोई कार्य करना उचित होता। निष्क्रिय प्रतिरोध विधानात्मक नही, बल्कि निपेधात्मक क्रिया है। गाधीजी ने प्रकटरूप से पार्थिव बल-प्रयोग की निन्दा की। उन्हे विश्वास था कि कानूनो के निष्क्रिय भग से वह सरकार को रौलट-कानून हटा देने को बाध्य कर सकेगे। १८ मार्च को

रौलट कानूनों की बाबत उन्होंने एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें लिखा था—"चूंकि हमारी अन्तरात्मा को यह विश्वास है कि इण्डियन क्रिमीनल लॉ एमेण्डमेण्ट बिल नं० १, सन् १९१९, और क्रिमिनल एमर्जेंसी पावर्स बिल नं० २ सन् १९२० अन्यायपूर्ण हैं, स्वतन्त्रता और इन्साफ के उसूलों के विरुद्ध हैं, जिनपर कि सम्पूर्ण भारत की सुरक्षितता और स्वयं राज्यसत्ता का आधार है, इसलिए हम गम्भीरतापूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि ये बिल कानून बना दिये गये तो जबतक ये वापस न ले लिए जायँगे तबतक हम इन कानूनों का और आगे मुकर्रर होनेवाली कमेटी जिन-जिन कानूनों को बनाना उचित समझेगी उन-उनका पालन करने से विनयपूर्वक इन्कार कर देंगे। और हम यह भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस लड़ाई में हम ईमानदारी से सत्य का अनुसरण करेंगे और जान-माल और जात के प्रति हिंसा न करेंगे।"

१९१९ (२१ जुलाई) में गांधीजी ने सरकार की और मित्रों की सलाह मानली और सविनय आज्ञाभंग स्थगित कर दिया और १९३४ (अप्रैल) में फिर उन्हें अपने आपके सिवा सबके लिए सविनय आज्ञाभंग स्थगित करना पड़ा। १९१९ में उन्होंने कहा कि "मुझपर यह आरोप लगाया गया है कि मैंने एक जलती हुई दियासलाई छोड़ दी है। यदि मेरा आकस्मिक प्रतिरोध एक जलती हुई दियासलाई है तो रौलट कानून का बनाना और उसको जारी रखने की ज़िद करना तो भारतवर्ष में हज़ारों जलती हुई दियासलाइयाँ बिखेर देने के समान है। सविनय प्रतिरोध की बिलकुल नौबत न आने देने का उपाय है उस कानून को ही वापस ले लेना।" फिर सविनय आज्ञाभंग स्थगित करते समय ७ अप्रैल १९३४ को अपने पटना के वक्तव्य में उन्होंने कहा

"मुझे प्रतीत होता है कि सामान्य जनता को सत्याग्रह का पूरा सन्देश प्राप्त नहीं हुआ है, क्योंकि सन्देश उस तक पहुँचते-पहुँचते शुद्ध नहीं रह पाता है। मुझे यह स्पष्ट होगया है कि आध्यात्मिक साधना का प्रयोग जब अनाध्यात्मिक माध्यमों द्वारा सिखाया जाता है तब उसकी शक्ति कम होजाती है। आध्यात्मिक सन्देश तो स्वयं-प्रचारित होते हैं।

"मैं सब राष्ट्रवादियों को सलाह देता हूँ कि वे स्वराज्य की खातिर सविनय भंग, जो विशेष कष्टों को दूर करने की खातिर किये जानेवाले सविनय भंग से भिन्न है, स्थगित करदें। वे इसे केवल मेरे ऊपर छोड़ दें। मेरे जीवित रहते तक इस शस्त्र का प्रयोग दूसरे लोग केवल मेरे नियन्त्रण में रहकर करें, जबतक कि कोई और व्यक्ति ऐसा पैदा न होजाय जो इस विज्ञान का मुझसे ज्यादा जानने का दावा करता हो और विश्वास उत्पन्न कर सके। मैं सत्याग्रह का जन्मदाता और प्रारम्भकर्त्ता होने के कारण यह सलाह देता हूँ। इसलिए जो लोग मेरी सलाह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष से पाकर स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सविनय आज्ञाभंग में लग गये थे, वे कृपया सविनय

आज्ञाभग करने से रुक जायँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भारत की लडाई के हित मे ऐसा करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।

"मानव-जाति के इस सवसे वडे शस्त्र के विषय मे मेरे मन मे वहुत ही सर-गर्मी है।"

उसी पटना-वक्तव्य मे १९३४ मे उन्होने शोक प्रदर्शित किया कि "वहुत-से लोगो के आधे हृदय से किये हुए सविनय आज्ञाभग के कारण, चाहे उसका परिणाम कितना भी भयकर क्यो न हुआ हो, सामान्यतया न तो आतकवादियो के हृदय पर प्रभाव पडा और न शासको के हृदयो पर।" किन्तु आज उन्हे यह सतोष मिला है कि २५०० से अधिक ऐसे मित्र नजरबन्दी से छूट गये है, और उन्होने अहिंसा पर अपना विश्वास भी प्रकट कर दिया है। हिंसा पर अहिंसा की विजय का सवसे वडा उदाहरण तो यह हुआ कि सरदार पृथ्वीसिह ने, जिसे मरा हुआ मान लिया गया था, किन्तु जो वास्तव मे दूसरी जगह ले जाते समय हिरासत मे से चलती रेल से कूदकर भाग गया था और तवसे सत्रह वर्ष तक भारत और यूरोप के वीच सरलता से फिरता रहा था, गाधीजी के हाथो मे अपने आपको सौप दिया, और उन्होने भी उसे भारत की ब्रिटिश सरकार की जेल के सुपुर्द कर दिया, और वह अव फिर उसकी रिहाई के लिए ज़ोरदार प्रयत्न कर रहे है।[1]

१९१९ मे सविनय आज्ञाभग को स्थगित करने के वाद गाधीजी को पजाव की घटनाओ के इस अप्रत्याशित ढग से घटित होने की वात जानकर नि सन्देह वडा आघात पहुँचा। उन्होने स्वीकार किया कि उनसे 'हिमालय-जैसी वडी भूल हुई', जिसके कारण ऐसे अयोग्य लोग जो सच्चे सविनय आज्ञाभगकारी न थे, गडवड पैदा कर सके।"

जब १९१९ का शासन-सुधार-कानून वना, तव गाधीजी का यह मत था कि यद्यपि सुधार असतोषजनक और अपर्याप्त है, तो भी काग्रेस को सम्राट् की घोषणा की भावनाओ को मानकर प्रकट करना चाहिए कि उसे विश्वास है कि "सरकारी अधिकारी और जनता दोनो इस प्रकार सहयोग करेगे कि जिससे उत्तरदायी सरकार कायम होजायगी।" अव इससे उनके उस रुख का मुकाविला कीजिए, जवकि उन्होने १९३७ मे प्रातीय शासन के दैनिक कार्य मे गवर्नरो द्वारा अपने विशेषाधिकारो का प्रयोग न करने और दखल न देने का आश्वासन सरकार से माँगा और हिंसा-सवधी कैदियो के छोडे जाने, उडीसा के गवर्नर के नियुक्त किये जाने, देश के जमीदार और भूमि-सम्वन्धी कानूनो का आमूल सुधार करने और वारडोली के किसानो को उनकी ज़ब्तशुदा ज़मीने वापस दिलाने के मामलो मे उन्होने उस आश्वासन को कार्यान्वित करवाया।

१ सरदार पृथ्वीसिह २२ सितम्बर १९३९ को रिहा कर दिये गये। —सपादक

अमृतसर-कांग्रेस मे गाधीजी ने कहा था कि "सरकार के पागलपन का जवाब समझदारी से देना चाहिए, न कि पागलपन का जवाब पागलपन से।" आज वह देश को विश्वास दिला रहे है कि राजकोट में और दूसरी रियासतो में जहाँ-जहाँ शासकवर्ग पागल होरहा है वहाँ अन्त मे जनता की ही विजय होगी, यदि वे अहिंसा पर दृढ रहे और पागलपन का जवाब समझदारी से दें।

गाधीजी का पूर्णतया मानव-सेवा के क्षेत्र से निकलकर विशुद्ध राजनैतिक क्षेत्र मे पहुँच जाना धीरे-धीरे अज्ञातरूप से और इच्छा के बिना ही हुआ—यह नही कि वह इस क्षेत्र-परिवर्तन को जानते न थे, किन्तु वह इसको रोक न सकते थे। और जब वह ऑल इण्डिया होमरूल लीग में शामिल हुए और उसके अध्यक्ष बन गये तो उन्हे अपनी शर्तों के अनुसार कर्तव्य की पुकार सुनाई दी। उनकी शर्ते उन्हींके कथनानुसार ये थी—"जिन कार्यों में उन्हे विशेषज्ञता प्राप्त थी उनके, अर्थात् स्वदेशी, साम्प्रदायिक कता, राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, और प्रान्तो के भाषा-आधार पर पुनर्विभाजन के कार्यों के प्रचार में सत्य और अहिंसा का कड़ाई से पालन किया जाय।" उनकी दृष्टि मे सुधार तो गौण थे। इस प्रकार धर्म के मार्ग द्वारा सामाजिक सेवा से राजनीति मे आजाना उनके लिए एक सरल परिवर्तन था। आज भी वह उसी मार्ग द्वारा राजनीति से फिर सामाजिक सेवा मे चले आते है। वास्तव में उनकी दृष्टि में दोनो चीजे एक ही है, जैसे कि किसी सिक्के की दो बाजुयें होती है, और वह सिक्का स्वय सत्य और अहिंसा की धातुओ से बना हुआ है, जो सारे धर्मों के मूल सिद्धान्त है।

गाधीजी के लिए असहयोग स्वय कोई उद्देश्य नहीं है, किन्तु किसी उद्देश्य का साधन है। उनका सहयोग का हाथ उनके विरोधी के सामने हमेशा खुला रहता है, बशर्ते कि राष्ट्र के आत्म-सम्मान को उससे धक्का न लगता हो। १९२० मे भी उनकी यही स्थिति थी और आज भी उनकी यही स्थिति है। १९२० में सरकार ने उनका तिरस्कार किया, १९३९ में सरकार ने उनको उत्साह के साथ अपनाना चाहा।

इसी प्रकार का परस्पर-विरोध गाधीजी के रुख मे पूर्ण स्वाधीनता के विषय मे १९२१ मे और १९२९ मे मिलता है। १९२१ मे उन्होने अहमदाबाद में कहा था

"इस प्रश्न को आप मे से कुछ लोगो ने जैसा मामूली-सा समझ रखा है उससे मुझे दुख हुआ है। दुख इसलिए हुआ है कि उससे जिम्मेदारी की कमी मालूम होती है। यदि हम जिम्मेदार स्त्री-पुरुष है तो हमे नागपुर और कलकत्ता के पिछले दिनो पर वापस पहुँच जाना चाहिए।"

१९२८ मे जब स्वाधीनता का प्रश्न फिर आगे लाया गया, तब गाधीजी ने निम्नलिखित अनूठी बात कही

"आप स्वाधीनता का नाम अपने मुँह से उसी प्रकार लेते रहे जैसे मुसलमान अल्लाह का या धार्मिक हिन्दू राम व कृष्ण का नाम लेते रहते है। किन्तु केवल

मन्त्र रटने से कुछ न होगा, जबतक कि उसके साथ अपने आत्मगौरव का भाव न होगा। यदि आप अपने शब्दो पर टिके रहने के लिए तैयार नही है तो स्वाधीनता कैसी होगी? आखिरकार स्वाधीनता तो वहुत कष्ट-साध्य वस्तु है। वह केवल शब्दाडम्बर से नही आजाती।"

और १९२९ मे २३ दिसम्बर को जव उन्होने लार्ड अरविन से वातचीत समाप्त की तो प्राय यह चुनौती देदी कि अव वह देश को पूर्ण स्वाधीनता के लिए सगठित करेंगे।

१९२० मे सरकार ने यह आशा और विश्वास प्रकट किया कि "ऊँचे वर्ग और सामान्य वर्ग के लोग इतने समझदार है कि वे असहयोग को एक काल्पनिक और असम्भव योजना समझकर त्याग ही देंगे। यदि यह सफल होजाय तो परिणामय ही होगा कि सर्वत्र अव्यवस्था होजायगी, राजनैतिक अराजकता फैल जायगी और देश मे जिन-जिनकी कोई माल-मिलकियत है उन-उनका सर्वनाश होजायगा।" सरकार ने कहा कि "असहयोग मे द्वेप और नादानी को जाग्रत किया जाता है। उसके सिद्धान्त में कोई रचनात्मक वीज नही है।" वही सरकार आज उस आन्दोलन के जन्मदाता से, तथा उसके सर्वोत्तम भाग अर्थात् सविनयभग के उत्तराधिकारी से सधि करने को उत्सुक है।

१९२१ मे जव लार्ड रीडिंग ने गाधीजी से वातचीत की—और वह वातचीत इसलिए असफल होगई कि कलकत्ता मे लार्ड रीडिंग के नाम गाधीजी का तार कुछ देरी से पहुँचा—उस समय प्रत्येक व्यक्ति का अनुमान था कि गाधीजी एक अव्यावहारिक, वल्कि असम्भव आदमी है। किन्तु जव लार्ड अरविन ने १९३१ मे दस साल वाद उनको और उनके छव्वीस साथियो को जेल से छोड दिया, तो प्रत्येक व्यक्ति ने उनके उचित वात मानने और मनवाने की तथा उनके उचित दृष्टिकोण रखने के गुणो की प्रशसा की। और जून १९३७ मे जव गाधीजी और लार्ड लिनलिथगो के वीच सौजन्यपूर्ण सन्धि-चर्चा हुई तो उसमे भी यही सद्गुण फिर उसी प्रकार सामने आये। और उसी प्रकार परिणामकारी हुए, जिससे कि अन्त मे काग्रेस ने पदग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

१९२२ मे चौरी-चौरा-काण्ड के कारण, जिसमे कि इक्कीस पुलिस के सिपाही और एक सव-इन्सपेक्टर और वह थाना जिसमे कि वे सव वन्द थे जला दिये गये, गाधीजी ने सविनय आज्ञा-भग के सारे कार्यक्रम को स्थगित कर दिया और १९३९ मे राणपुर (उडीसा) मे वेजलगेटी की हत्या के कारण भी उन्होने उडीसा की ईस्टर्न एजेन्सी के देशी राज्य के लोगो को वही सलाह दी। अहिंसा की सर्व-प्रधानता के मार्ग में स्वप्रतिष्ठा का खयाल कभी आडे नही आया है। १९२४ मे गाधीजी के जेल से छूटने के वाद उन्होने एक वक्तव्य दिया, जिसमे उन्होने कहा कि "मेरी राय

अब भी यही है कि कौंसिल-प्रवेश असहयोग के साथ असगत है।" परन्तु १९३४ मे जब सविनय आज्ञा-भग स्थगित कर दिया गया तो कौंसिल-प्रवेश का उन्होने समर्थन किया, और उसको ऐसी शर्तो के साथ मन्त्रिपद ग्रहण कर लेने तक पूरी तरह कार्यान्वित कर दिया, जिससे कि मन्त्रिगण रिफार्म्स एक्ट पर राष्ट्र की इच्छा व माँग के अनुसार, न कि अग्रेजो की मर्जी के अनुसार, अमल करने मे समर्थ हुए।

१९३४ मे ७ अप्रैल को अपने प्रसिद्ध पटना-वक्तव्य मे उन्होने देशी राज्यो के विषय मे लिखा कि "देशी राज्यो के बाबत कुछ व्यक्तियो ने जिस नीति का समर्थन किया, वह मेरी नीति से बिल्कुल भिन्न थी। मैंने इस प्रश्न पर कई घण्टे गम्भीर चिंता के साथ विचार किया है, किन्तु मै अपनी सम्मति बदल नही सका हूँ।"

१९३९ मे उन्होने अपनी सम्मति पूरी तरह बदल ली, और इसका कारण यही था कि देशी राज्यो की परिस्थितियाँ बिलकुल बदल गई। देशी राज्यो की जाग्रति ने उनकी सहानुभूति यहाँ तक प्राप्त कर ली है कि आज वह देशी राज्यो की जनता के पक्ष को अधिक-से-अधिक समर्थन दे रहे है, यहाँतक कि श्रीमती (कस्तूर बा) गाधी आज राजकोट की जेल मे बन्द है और गाधीजी ने कह दिया है कि देशी नरेशो को या तो अपनी जनता को उत्तरदायी शासन देदेना पडेगा या मिट जाना पडेगा।

गाधीजी की आन्तरिक प्रेरणा

सत्य और अहिंसा मनुष्य के ऊँचे अनुभव की बाते है, जिनको समझने के लिए आदमी मे उसी प्रकार की अभ्याससिद्ध अनुभव-शक्ति की आवश्यकता पडती है जैसी कि सगीत और गणित को या खद्दर-वस्त्र और साम्प्रदायिक एकता को समझने के लिए। अभ्यस्त सवेदन शक्ति से अन्तरात्मा की अनुभूतियाँ बढ जाती है, और गाधीजी सदा अन्तरात्मा की अनुभूति अन्त प्रेरणा से निर्णय करते है न कि बुद्धि-प्रयोग से। सद्गुणी लोग सत्य को अन्तरात्मा की प्रेरणा से अनुभव कर लेते है। इसी प्रकार सद्गुणो की यह साकार मूर्ति भी सत्य का अनुभव अन्तरात्मा की प्रेरणा से किया करती है। और गाधीजी के चरणचिन्हो पर चलनेवाले अनुयायियो का यह कर्तव्य होजाता है कि उनकी शिक्षाओ का अपने काल और अपने देश के नैतिक नियमो और सामाजिक व्यवहारो के अनुसार अर्थ लगाये और व्याख्या करे। अपनी आन्तरिक प्रेरणा से ही उन्होने १९२२ मे बारडोली मे सविनय आज्ञा-भग को सहसा स्थगित करने का, १९३० मे नमक-सत्याग्रह चालू करने का, १९३४ मे सविनय आज्ञाभग बन्द करने का, और १९३९ मे देशी राज्यो सम्बन्धी नीति का निर्णय किया। उन्हे सहसा नये प्रकाश, नये ज्ञान का अनुभव होता है। कई बार उन्होने कहा है कि मुझे प्रकाश नही मिल रहा है, और उसको पाने के लिए मै प्रार्थना करता रहता हूँ और जब उन्हे प्रकाश मिल जाता है तो उनके अनुयायियो को वह विचित्र प्रतीत होता है, क्योकि उनका

उपाय भी अभूतपूर्व और भयोत्पादक होता है। यदि अखिल-भारतीय महासभा-समिति की किसी बैठक मे एक विक्षिप्त मनुष्य बाधा डालता है तो वह स्वयसेवको को उसे बाहर निकाल देने से रोक देते है और तीन सौ सदस्यो की उस सभा को ही स्थगित कर देते है। बाधा डालनेवाला लाचार, निष्क्रिय, होजाता है। यदि चिराला-पेराला की जनता पर जबरदस्ती और लोगो की मर्जी के विरुद्ध एक म्युनिसिपल कमेटी लाद दी जाती है तो उनका उपाय यह है कि जनता को स्थान खाली करदेना चाहिए। और वास्तव मे जनता ने शहर उसी तरह खाली कर दिया जैसा कि प्राचीनकाल मे जेबेक डोरची के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले तातारो ने किया था। बारडोली और छरसदा के करबन्दी आन्दोलनो मे किसानो से कहा गया कि अपने घर-बार छोडदे और निकट-वर्त्ती बडौदा राज्य मे जा बसे, और इस प्रकार बडी-बडी पल्टने रखनेवाली शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार को भी लडाई मे बेबस होना पडा। जब उडीसा के नीलगिरी राज्य के लोगो पर राजा ने जुल्म किये तो गलती करनेवाले राजा को सीधी राह पर लाने के लिए तैयार और पुराना नुस्खा देशत्याग बता दिया गया, और उस पर अमल भी हुआ। इन सब मामलो मे सफलता जनता की सहनशक्ति और हृदय की पवित्रता पर निर्भर करती है। परन्तु गाधीजी के अनुयायी सदा उनसे सहमत नही होते। उन्होने फरवरी १९२२ मे बारडोली के सविनय आज्ञाभग के त्याग का जोरदार विरोध किया, और अराजकता-काण्ड मे जो भावना रही थी, उसकी प्रशसा की। १९२४ के हेमन्त मे जब महासभा-समिति की बैठक मे अहमदाबाद मे सिराजगज-प्रस्ताव पर फिर वोट लिया गया, तो गाधीजी खुली सभा मे रो पडे। उन्हे रोना इसलिए आया कि कुछ उनके ही परम अनुयायियो ने अपराध करनेवाले युवक की प्रशसा मे वोट दिया था।

गाधीजी की आदत आग से खेलने की है, किन्तु वह इस जोखिम के खेल मे से सदा बेदाग निकल आते है। वह कई बार गिरफ्तार हो चुके है। प्रत्येक बार अग्नि-परीक्षा ने उनके शरीर की धातु को और भी चमकदार बना दिया है। उन्होने अपने लोगो के पागलपन की खातिर अगणित बार खेद-प्रकाशन किया है, और काग्रेस से भी ऐसा ही करने का आग्रह किया है। उन्होने सामूहिक सविनय आज्ञाभग की अपनी परमप्रिय योजनाओ को भी स्थगित करना बार-बार मजूर कर लिया है, केवल इसलिए कि कही-न-कही, कितनी ही दूर पर क्यो न हो, हिंसा होगई।

गाधीजी जब बात करते है, तब की अपेक्षा देश पर उनका प्रभाव उस समय अधिक पडता है जब वह मौन रहते है, और जब वह काग्रेस के अन्दर रहते है, तबकी अपेक्षा अधिक प्रभाव उस समय पडता है जब वह उसके बाहर रहते है। लोग शायद भूल गये होगे कि उन्होने १९२५ मे कानपुर मे राजनैतिक मौन रखने का प्रण किया था, जिसे उन्होने दिसम्बर १९२६ मे गोहाटी मे समाप्त किया। लेकिन उनके लिए तो शारीरिक और राजनैतिक मौन की ऐसी अवधियाँ मानसिक मन्थन की ही अवधियाँ होती है,

जब उनके मस्तिष्क में बड़ी-बड़ी योजनायें बनती है और वे पूर्ण परिपक्व होकर सुनिश्चित कार्यक्रमो और सिद्वान्त-सूत्रो के रूप में प्रकट कर दी जाती है। ऐसी एक लम्बी अवधि कानपुर-अधिवेशन (१९२५) और कलकत्ता-अधिवेशन (१९२९) के बीच मे रही थी जिसके बाद कि लाहौर (१९२९) में पूर्ण स्वाधीनता के आधार पर सरकार को चुनौती देदी गई। गाधीजी अपने अनुयायियो की बात को नही मानते और उनको भी उसी प्रकार की कसौटी पर चढाते हैं जिस प्रकार कि अपने विरोधियो को। यदि उनकी कसौटी पर वे ठीक बैठते है तो वह उनके विचारो को ग्रहण कर लेते और अपने बना लेते है। यदि वे कसौटी पर नही बैठते तो छोड दिये जाते है। उन्होने सविनय आज्ञाभग के विषय में, पूर्ण स्वाधीनता के विषय मे, और अन्त में देशी राज्यो के विषय मे भी ऐसा ही किया। आजकल वह देशी राज्यो के मामले मे बडे उग्र हो रहे है, जिससे कि उनके साथियो को भी बडा आश्चर्य और उनके विरोधियो को बडा क्लेश हो रहा है। नवयुवक कॉंग्रेसवादी उनकी नेकनीयती मे सदेह करते है, और उन्होने उनपर अँग्रेजो के फेडरेशन के मामले मे समझौता करने की तैयारी का सार्वजनिक आरोप लगाया है। वे जोर-जोर से चिल्ला कर घोषित करते है कि फेडरेशन की इमारत को, जो कि दोमज़िला है, नष्ट कर देने का उनका निश्चय है। नवयुवक अपनी तोपो का मुंह ऊपरी मजिल की ओर कर रहे है। गाधीजी पहले से ही पहली मज़िल को और उसके खभो को गिरा रहे है। ये खभे है देशी राज्य, जिनके बिना फेडरेशन की इमारत नही बन सकती और नीचे की मज़िल के प्रांतीय कमरे भी गिरते हुए से हो रहे है, क्योकि ऊपरी मज़िल को उठानेवाले खभे भी तेजी से टूट-टूट कर गिरते जा रहे है। गाधीजी की रण-नीति का आधार सत्य है। उनका अस्त्र-शस्त्र अहिंसा है। वह जो शब्द कहते है सच्चे अर्थों मे कहते है। और जो कहते है वह कर दिखाते है। जब उन्होने दूसरी गोलमेज परिषद् मे इगलैण्ड मे कहा था कि यदि सरकार हरिजनो के लिए पृथक चुनाव-क्षेत्र बनायगी तो अपने प्राण देकर भी मैं हिन्दू-समाज को टुकडे किये जाने से बचाऊँगा, तो उन्होने यह कथन सच्चे अर्थों में किया था। उन्होने इगलैण्ड से लौटकर (२८ दिसम्बर १९३१ को) आज़ाद मैदान में फिर इस कथन की पुष्टि की। उन्होने इस बात को मार्च १९३२ मे सर सैम्युअल होर के नाम एक पत्र में लिखित रूप में भी भेज दिया और २० सितम्बर १९३२ को उन्होने इसी बात पर 'आमरण अनशन' प्रारम्भ कर दिया। आज वह देशी राज्यो के प्रश्न पर फिर एक भयानक प्रतिज्ञा कर रहे है, और वह फेडरेशन को तोड देंगे। "और तो क्या, यदि ईश्वर ने चाहा तो, मै तो यह अनुभव करता हूँ कि मुझ मे अभी पहली लडाइयो से भी जोरदार एक और लडाई लडने का बल और उत्साह मौजूद है।"

गाधीजी के जीवन और व्यवहार मे परस्पर-विरोध मिलते है, किन्तु वह दिखावटी और काल्पनिक ही है, क्योकि जो व्यक्ति अत्यन्त धार्मिक और बहुत

व्यावहारिक होता है उसमे ऐसी विशेषताये होना आवश्यक ही है। वास्तविक जीवन से आदर्श को मिलाना, सावधानी से साहस को जोडना, प्राचीनता-प्रेम से क्राति-भावना को सयुक्त करना, भूतकाल के आग्रह के साथ भविष्य की दौड को सम्मिलित करना, सार्वभौमिक-मानवता-वाद की तैयारी के साथ राष्ट्रीयता-विकास का सामजस्य करना—अर्थात्, सक्षेप मे, बन्धुत्व-भावना के साथ स्वतन्त्रता का सामजस्य करना और दोनो मे से मानवता को विकसित करना, ऐसा ही कार्य है जैसा कि एक सुनिर्मित रेलगाडी के एञ्जिन के ब्रेक लगाना, और उसे अपनी पटरी पर उचित स्थानो पर ठहराते हुए और उचित समय पर चालू करते हुए आगे ले जाना। इस यात्रा मे कही धीरे-धीरे चढाई चढनी होगी, कही शीघ्रता से उतरना होगा, कही सीधी समभूमि पर चलना होगा और कही असमतापूर्ण और चक्करदार मार्ग से जाना होगा। भारत को यह गौरव प्राप्त है कि उनका नेता एक ऐसा व्यक्ति है जो सामान्य जनता मे से ही एक साधारण मनुष्य है, किन्तु आजकल की दुनिया जिसे देखकर चकित है। वह चमत्कारी बन गया है। वह है तो एक दुबला-पतला मनुष्य ही, किन्तु मानो वास्तविक आलोक है, स्थितप्रज्ञ है, बल्कि अवतार ही है, जिसने समाज के भीतर होनेवाले सघर्षो को उच्च नैतिकता और मानवता के स्पर्श मे प्रभावित कर दिया है, और जो उस दूरवर्ती दिव्य घटना—मनुष्यजाति की महापचायत और विश्व-सघ—के शीघ्र-से-शीघ्र घटित करने का प्रयत्न कर रहा है।

: ३६ :

गांधीजी का विश्व के लिए संदेश

कुमारी मॉड डी पेट्री

[स्टारिंगटन, ससेक्स, लदन]

मै एक अग्रेज महिला हूँ, फिर भी ऐसे व्यक्ति के जीवन पर कुछ कहना चाहती हूँ जिसने खुद मेरे देश के चारित्र्य और जीवन-व्यवहार की आलोचना करने मे दया नही दिखलाई है और जिसने बहुत हद तक उसके विरोध मे अपना जीवन लगाया है। फिर भी जब उन्हे भेट की जानेवाली इस पुस्तक मे मुझे कुछ लिखने के लिए कहा गया तो उसे मैने बेखटके स्वीकार कर लिया, क्योकि मै जानती हूँ कि यद्यपि महात्मा गाधी ने अपने देशवासियो की सेवा मे ही सारा जीवन लगाया है ता भी उन्होने उससे बडे और बहुत व्यापक उद्देश, अर्थात मानव-जाति की सेवा के सिद्धान्त का भी समर्थन और प्रतिपादन किया है। और इस कारण मै मानती हूँ कि ऐसा करके उन्होने आवश्यक रूप से उन तमाम देशो के आदर्शो की पूर्ति के लिए काम किया है, जो इस बात को जानते है कि हमे ससार के भाग्य-निर्माण मे क्या खेल खेलना है और खुद अपने देश

के काम-काज में क्या हिस्सा लेना है। क्योंकि एक व्यक्ति की तरह एक राष्ट्र के मन में भी दो प्रकार की जीवन प्रेरणाये होती हैं। एक तो यह कि अपनी परपरा और संस्कृति के अनुसार अपना जीवन कायम रक्खे और खुद अपने कल्याण की दृष्टि से उसे चलावे, और दूसरी यह कि तमाम राष्ट्रो और मनुष्य-जाति के इस महान् समाज का एक अग बनकर अपना जीवन-यापन करे।

महात्माजी प्रत्येक मनुष्य और मानव-समाज के हृदय मे उठनेवाली इस दूसरी विशाल प्रेरणा के एक सदेशवाहक और नेता हैं, इसलिए उनके जीवन का अकेला राजनैतिक पहलू मुझे और बातो की अपेक्षा महत्वहीन मालूम हुँ। और इसलिए मैं यहाँ उनकी उन्ही शिक्षाओं के बारे मे कहने का साहस करूँगी, जो उन्होने मानवी नि स्वार्थता और विश्वजनीन उदारता के विषय मे निरतर हमे दी हैं। क्योंकि मैं मानती हूँ कि इन शिक्षाओ पर भावी पीढी को भी अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा।

उन्होंने खुद भी तो ऐसा ही कहा

"आज अगर मैं राजनीति में भाग लेता हुआ दिखाई देता हूँ तो इसका कारण यही है कि आज राजनीति हमसे उसी तरह चारों ओर लिपटी हुई है जैसे के साँप के उसकी केचुल, जिससे कि हजारो प्रयत्न करने पर भी हम नहीं छूट सकते हैं। मैं उस साँप के साथ कुश्ती लडना चाहता हूँ मैं राजनीति में धर्म की पुट देने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"[1]

अब एक ऐसे व्यक्ति के जीवन से जिसकी मुख्य दिशा सारे मानव-समाज का नैतिक पुनरुज्जीवन अर्थात् स्वार्थभाव, प्रतिस्पर्धा और निर्दयता का परस्पर सहिष्णुता और भाई-चारे के सहयोग मे रूपातर करना रही है, हम क्या अपेक्षा रख सकते हैं? समझदार आदमी की अपेक्षा तो ऐसे मामलो मे निराशा की, जिल्लत की और असफलता की ही हो सकती है, और मैं यह कहने की धृष्टता करती हूँ कि गाधीजी अपनी बहुत-सी सफलताओ के बावजूद वीरतापूर्ण असफलता के एक उदाहरण हैं। सुधारकों को तो हमेशा इस बात के लिए तैयार रहना पडता है कि वे आदर्श के एक किनारे खडे देखते-देखते खतम होजाय, क्योंकि हजरत मूसा की तरह वे अपने आदर्श की झलक ही देख सकते हैं, उसको पा नही सकते।

"मैंने तेरी अपनी आँखो से उसे दिखाया है, पर तू वहाँ न जाना।' क्योकि खुद गाधीजी ने ही कहा है—"एक सुधारक का काम तो यह है कि जो हो सकनेवाला नहीं दीखता है, उसे खुद अपने आचरण के द्वारा प्रत्यक्ष करके दिखा दे।' लेकिन जब वह अपने खुद की "अल्पता और मर्यादाओं' का ख्याल करते हैं, तो "चकाचौंध हो जाते हैं।"

क्योंकि जब एक बार महान् आध्यात्मिक उद्देश के अनुसार प्रत्यक्ष कार्य और

१. रोम्या रोला कृत 'महात्मा गाधी' से उद्धृत।

उद्योग किया जाता है तब शरीर और आत्मा का शाश्वत युद्ध शुरू हो जाता है, आध्यात्मिक साधना की शुद्धि मे मलीनता आजाती है, हमारा उद्देश धूमिल होकर छिपने लगता है और उसका प्रवर्त्तक मानवी राग-द्वेषो के अखाडे मे आ खिचता है, उसकी अच्छी-से-अच्छी योजनाओ को पूरा करने का काम नादान लोगो के हाथ मे चला जाता है, उसके अत्यन्त शुद्ध प्रयत्न पूर्ण होते-होते माननीय राग-द्वेषो और स्वार्थ-साधना से कलुषित होने लगते है।

हाँ, ऐसे सग्राम मे तो हार-ही-हार है। पर यही हार है जो, अन्त मे, कारीगरो द्वारा तिरस्कृत पत्थरो की तरह नये जेरूसलेम अर्थात् नवीन धर्म की दीवारो की आधारशिला जैसी सावित होती है। हज़रत मूसा को अपने आदर्श की प्राप्ति तो नही हुई। उसके दर्शन अवश्य हुए। पर उसका लक्ष्य था सच्चा, इसलिए वहाँतक उनके पहुँच पाने या न पहुँच पाने से इसराईल के भविष्य पर कोई असर नही पडा। जिसके किनारे उन्होने अपना शरीर छोडा, उस सुरम्य स्थान मे बैठकर दूसरे कइयो ने शाति-लाभ किया।

और इसलिए, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के प्रधान प्रयत्नो की गिनती करते समय हम उसकी असफलताओ की गिनती करते है, क्योकि असफलता अनिवार्य है, मगर असफलता ही फल भी लाती है।

यहाँ मै गाधीजी की कुछ ऐसी लडाइयो का जिक्र करती हूँ, जिनमे उनकी हार तो हुई है, लेकिन जिनकी शिक्षाये सदा अमर रहेगी।

सबसे पहले मशीन के खिलाफ उनकी लडाई को ही लीजिए, जिसका मुकाविला तलवार या बन्दूक के सहारे नही, वल्कि चर्खे से करना उन्होने चाहा। कितना दया-जनक उद्योग था यह—जैसा कि उनके कितने ही अनुयायियो ने कहा भी! यह एक ऐसा प्रयत्न था जिसकी असफलता निश्चित थी, लेकिन फिर भी उसी चर्खे ने सत्य का—आत्म-शोधक सत्य के मधुर मत्र का—गुजार किया है, जिसे हम वहुतो ने कभीसे और वहुत दु खित हृदयो से अनुभव कर लिया है।

मशीन का परिणाम मनुष्य-जीवन को मानवता-हीन वनाने मे हुआ है। उसमें हमारे जीवन की अधिक श्रेष्ठता आ गई है, जिससे हिन्दुस्तान के तमाम चर्खे उस पर विजय प्राप्त नही कर सकते। लेकिन फिर भी सभव है हिन्दुस्तान का चर्खा हमे अपनी दासता को महसूस करा दे। वह जो सादे और अधिक मानवीय जीवन की पुकार मचा रहा है उससे मनुष्य अन्त को खुद अपनी आदिमता का जोर जमाने मे कामयाव हो, और इस भीमकाय राक्षस (मशीन) की काया को घटाकर उसे उचित सीमा मे ला रक्खे। उसे मानवीय आत्मा का मालिक नही, वल्कि सेवक वनावे और जव वह मनुष्य के शरीर और आत्मा के वास्तविक कल्याण के विरुद्ध जाने लगे तव वह उसकी लगाम खेंचकर रक्खे और उससे जो क्षणिक भौतिक लाभ होते है उनसे भी मुँह मोड़ लेने के लिए कहे।

अब दूसरी लडाई लीजिए, जो उन्होने मनुष्य और पशु के सम्बन्ध मे की जाने-वाली निर्दयताओ के विरुद्ध ठानी थी और इसमें उन्हे, दूसरे देश के लोगो की तरह, अपने देश के लोगो से भी लडाई और विवाद में पडना पडा। उन्होने इस बात पर ज़ोर दिया है कि "अपनी जाति से बाहर के प्राणियो का भी ध्यान रक्खो और प्राणी-मात्र के साथ अपनी एकात्मता का अनुभव करो।"

और जहाँ कि उन्होने प्राणिमात्र को पवित्र मानने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, तहाँ उन मूक प्राणियो के कष्टो को देखकर, जो वास्तव में कत्ल नही किये जा रहे थे, वल्कि जिनकी अच्छी तरह से सम्हाल नही की जा रही थी, उनके हृदय ने खून के आसू वहाये है।

उनकी तीसरी और सबसे बडी लडाई हुई है एक के दूसरे पर दबदबे और हिंसा की भावना के खिलाफ। लेकिन इसमे वह मनुष्य के पाशविक बल और राग-द्वेष रूपी राक्षस के सामने दाऊद से भी अधिक निःशस्त्र होकर आगे बढ गये है। उनके पास एक ही हथियार है—अहिंसा।

लेकिन वह अपने शत्रुओ द्वारा ही नही, बल्कि इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी कि, अपने मित्रो के द्वारा बारबार असफल बनाये गये है। अब वह इस उलझी हुई शान्तिवाद की समस्या को सुलझाने के लिए जोरो से जुट पडे है कि इस हिंसामय जगत् में एक अहिंसाधर्मी कैसे जीवित रहे और इस हिंसा-प्रधान जगत् मे खुद अहिंसा भी कैसे अपनी हस्ती कायम रख सके?

जो लोग यह अनुभव करना चाहे कि वे कौनसी समस्या है, जिन्होने महात्मा-जी को निरन्तर व्याकुल कर रक्खा है, तो उन्हे 'यग इण्डिया' (अब हरिजन) पढना चाहिए।

और वे देखेगे कि यही वह विषय है जिसमे महात्माजी की असफलता की विजय अच्छी तरह दिखाई देती है, क्योंकि वह फिर-फिरकर कहते है कि 'अहिंसा-सिद्धान्त का पूरा-पूरा अमल वास्तव में अवतक किया ही नही गया है।"

और इसलिए वह कहते है कि "इसको आजमाओ। क्योकि जबतक हम शरीर-बल के द्वारा अपनी आत्मा की रक्षा करना बन्द न करेंगे, तबतक हम आत्मबल का सच्चा अन्दाज़ कभी नही लगा सकेगे।

"मै तो जालिम की तलवार की धार को ही बिलकुल भोटा कर देना चाहता हूँ। उससे अधिक तेज धारवाले हथियार से नहीं, बल्कि इस आशा में उसे निराश करके कि मैं शरीर-बल से उसका मुकाबिला करूँगा। इसके बदले मे जिस आत्मबल से उसका प्रतिकार करूँगा उसे देखकर वह भ्रान्त रह जायगा। पहले तो चकाचौंध मे पड जायगा, पर अन्त में उसे उसका लोहा मानना ही पडेगा, जिसके फलस्वरूप उसका नेजोभंग नही होगा, बल्कि वह ऊँचा उठेगा। इसपर यह कहा जा सकता है

कि यह तो आदर्श अवस्था हुई। तो मैं कहूँगा कि हाँ, यह आदर्श अवस्था ही है।"[१]

इसमे हमे उनकी श्रद्धा का और अपनी सफलता की प्रत्यक्ष मान्यता का एव अपनी अहिसा-नीति के सम्वन्ध मे उनके दृढ विश्वास का और उसके साथ ही इस वात के निश्चय का भी कि उसकी सम्यक् पूर्ति का समय अभी नही आया है—वह आ भले ही रहा हो—अच्छी तरह पता चलता है।

तव क्या हम इस वात का अफसोस करे, जैसा कि एक महान् कवि ने किया है, कि गाधीजी ने अपनी शिक्षा और अपने आदर्शो को मनुष्य-जीवन के राग-द्वेषादि के अखाडे मे इस तरह उतारा है जिससे उनकी आज तो असफलता—भले ही वह आशिक हो—प्रकट होती है ? इसका जवाव 'हा' भी है और 'नही' भी।

'हा', तो इसलिए कि मनुष्य को यह अच्छा नही लगता कि वह श्रेष्ठ मानवीय आदर्शो के दिवालिया होजाने पर विश्वास करे।

'हाँ' इसलिए भी कि किसीको यह देखना वुरा लगता है कि एक पैगम्वर की लडाई-झगडो मे खीचातानी हो—वह उस से ऊपर उठा हुआ न रहता हो, जैसे कि कुछ उदाहरण देखे भी जाते है।

'नही' इसलिए कि इस सघर्ष की पशुता ने ही मनुष्यो को आँखे खोलकर उन आदर्शो को देखने के लिए मजवूर किया है, जो अन्यथा कुछ थोडेसे विचारशील लोगो के मस्तिष्क मे ही शाति के साथ मजे मे सोये पडे होते। यहूदियो को हज़रत ईसा पर प्रहार करने के पहले उनके चेहरे की ओर देखना पडता था। और निश्चय ही मनुष्यो को नम्रता और उदारता का सदेश तो सुनना ही होगा, भले ही वे उसे मानने से इन्कार कर दे।

लडाई मे तो घाव झेलने ही पडते है। उनके विना भला लडाई कैसे लडी जा सकती है, ओर न ही हम, जव हमारी वारी आये, वार किये विना रह सकते है—भले ही हमपर पडनेवाले प्रहार नगण्य ही क्यो न हो। यही कारण है जो महात्माजी के राजनैतिक सग्राम मे हमे अच्छी और वुरी दोनो वाते देखने को मिलती है।

लेकिन इन गुजरती हुई प्रतिद्वन्द्विताओ और लडाई-झगडो के शोरगुल के अन्दर से ही एक मानवीय सन्देश निकला है, जोकि वास्तव मे सारी मनुष्य-जाति के लिए है। वह पूर्व और पश्चिम दोनो के लिए है। वह है तो असल मे एक हिन्दू-धर्म का सन्देश, परन्तु दिया गया है अधिकाशत ईसाई-धर्म की भाषा मे।

और यही कारण है कि महात्मा गाधी की भारतीय और कोरी राष्ट्रीय नीति पर ध्यान न देकर मै, वडी नम्रता के साथ उनके व्यक्तित्व और जीवन-लक्ष्य को खुद अपने देश तथा दुनिया के तमाम देशो के नाम पर अपनाने की धृष्ठता कर रही हूँ।

१. 'यग इडिया', अक्तूवर १९२५

: ३७ :

गांधीजी का उपदेश

हेनरी एस. एल पोलक

[लन्दन]

डॉ० मॉड रायडन के मन्त्रित्व-काल में, जब कुछ साल पहले, गिल्ड हाउस में 'आधुनिक विचार-धारा के निर्माता' विषय पर कुछ व्याख्यान हुए थे, तब उनमें गांधीजी का भी नाम शामिल था। मगर यह कोई दैवयोग की बात नहीं थी, क्योंकि आज के महापुरुषों की कीमत आंकने का और संसार के विचार और आचार में किसने क्या देन दी है, इसकी चर्चा करने का जब समय आवेगा तब, मैं समझता हूँ, हिन्दुस्तान के इस सबसे बड़े नेता से बढ़कर शायद ही किसी का नाम अधिक प्रमुखता से और विधायक रूप में लिया जा सके।

संसार में दूसरे नेता भी ऐसे हैं जिनके नाम इनसे भी ज्यादा मनुष्यों की ज़बान पर आते हैं। वे नेता तो हैं मगर जीवन के नहीं, मौत के। वे नेता अवश्य हैं, मगर रसातल की ओर लेजानेवाले, न कि शिखर की ओर। वे नेता हैं द्वेष और हिंसा के, न कि प्रेम और अहिंसा के। वे ऐसे नेता हैं जो कि वापस बर्बरता की ओर ले जाते हैं, न कि आगे अधिक उत्तम सभ्यता की ओर। वे नेता हैं एक परमपिता परमेश्वर की गोद में खेलनेवाले बालकों के, भ्रातृ-भाव के नहीं, बल्कि जाति-विशेष की श्रेष्ठता के सिद्धान्त के, जो कि मिथ्या देवत्व की कोटि तक पहुँचा दिया गया है।

परन्तु क्या वह पुरुष जो भूतकालीन इतिहास के धुंधले प्रकाश को देखता है, उसकी शिक्षाओं को हृदयंगम करता है और उसके परिणामों को ध्यान से देखता है, यह सन्देह कर सकता है कि अन्त में जाकर गांधीजी की अहिंसा की शिक्षा ही विजय के सिंहासन पर बैठने वाली है, न कि इन नये कैसरों के हिंसा के अवलम्बन? गांधीजी की जो विजय हुई है वे आत्मिक जगत् में हुई हैं, जिन्होंने मानव-जाति के पुनरुज्जीवन के बीज बोये हैं, जबकि उन नेताओं की सफलतायें पार्थिव जगत् की हैं और उनके पथ पर खून और आंसुओं की बूंदें बिखरी हुई हैं। गांधीजी अपने विरोधी को खुद कष्ट-सहन करके जीतेंगे, जबकि ये नेता जो कोई भी उनके रास्ते में खड़ा हो उसके निष्ठुर विनाश के द्वारा मानव-जाति के कष्टों और दुःखों में उलटे वृद्धि करते हैं।

कई साल पहले गांधीजी ने मुझसे कहा था कि लोग कहते हैं कि "मैं सन्त हूँ, मगर राजनीति में फँसकर अपने आपको गँवा रहा हूँ। पर सच बात यह है कि मैं र

राजनीतिज्ञ हूँ और सन्त वनने का भगीरथ यत्न कर रहा हूँ।" यह मानवीय अपूर्णता का एक नम्रतापूर्ण, घरेलू और आधुनिक ढग का स्वीकार है, जो कि आत्मानुशासन के द्वारा निश्चित रूप मे पूर्णता के शिखर की ओर उत्तरोत्तर वढने का यत्न कर रहा है। पिछले पचास वर्षो की 'सत्य शोध' की अपनी यात्रा मे जो दोष उनके कार्यो मे प्रकट हुए है और जो निर्णय की भूले उनसे हुई है, जिन्हे कि बार-बार उन्होने कबूल किया है, उनका स्पष्टीकरण उनके इस कथन से हो जाता है। उन्होने अपने इस निरन्तर आग्रह मे कि "सत्यान्नास्ति परो धर्म" कभी कसर नही की है और इस बात को जानने और मानने के लिए यह ज़रूरी नही है कि कोई उनके परिस्थिति-सम्वन्धी या उसके मुकाविला करने के सर्वोत्तम साधन-सम्वन्धी विचारो से सहमत ही हो। और हम एक मनुष्य से और क्या माँग सकते है, सिवा इसके कि वह अपने आदर्श की ओर वरावर ध्यान लगाये रहे और अपने विश्वास पर अटल रहे। अगर वह कही किसी समय लडखडाता है या अटकने लगता है, तो उसे ऐसी कठिन यात्रा के मनुष्यमात्र को होनेवाले अनुभवो के सिवा और क्या कह सकते है? ऐसे समय गाधीजी हमसे यह विश्वास करने के लिए कहते है कि ये तो हमारे लिए चेतावनियाँ है, जिनसे कि हम अपनी गलतियो को सुधार सके और अपने निश्चित ध्येय की ओर ज्यादा सही तरीके से आगे वढ सके।

अपनी इस पवित्र यात्रा के दरमियान उन्होने वहुत-से पाठ सीखे है और वहुतेरे, व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किये है, जो इस पथ के तमाम पथिको के लिए वडी सपत्ति का काम देगे। केवल मत्रोच्चार की उनके नजदीक कोई कीमत नही है। उनकी राय मे उनमे मानवीय जीवन की आवश्यकता की पूर्ति और मामूली व्यवहार मे उपयोगी वनने का भाव भी अवश्य होना चाहिए। फिर उनका कहना है कि वे ऐसे हो जो सव जगह लागू हो सके। और यदि वे ऐसे नहीं है तो कहना होगा कि वे मुख्यत असत्य है। इसलिए अहिसा का जो अर्थ जीवन के व्यवहार-नियम के तौर पर हमारे सामने उन्होने रक्खा है, उसपर हमे आश्चर्य नही होना चाहिए।

वह कहते है—"जो दूसरो के प्रति अपने व्यवहार मे अहिसा (जिसको दूसरी जगह गाधीजी ने सत्य का 'परिपक्व फल' कहा है) का आचरण नही करते और फिर भी वडी वातो मे उसका उपयोग करने की आशा रखते है, वे वडी गलती पर है। पुण्य की तरह अहिसा की शुरुआत भी घर से होनी चाहिए। और अगर एक व्यक्ति को अहिसा की तालीम लेने की ज़रूरत है, तो उससे भी अधिक एक राष्ट्र के लिए उसकी तालीम ज़रूरी है। यह नही होसकता कि हम अपने घर-आँगन मे तो अहिसा का व्यवहार करे और वाहर हिसा का। नही तो कहना होगा कि हम अपने घर-आँगन मे भी दरअसल अहिसक नही है। हमारी अहिसा अक्सर दिखाऊ होती है। आपकी अहिसा की कसौटी तभी होती है जव आपको किसी प्रतिकार का सामना करना पडे।

भद्र पुरुषों में रहते हुए आपका सभ्यता और शिष्टता का व्यवहार अहिंसा नहीं भी कहा जा सकता है। अहिंसा तो कहते हैं परस्पर सहिष्णुता को। अतएव जब आपका यह विश्वास होजाय कि अहिंसा हमारे जीवन का धर्म है, तो आपके लिए यह जरूरी है कि आप उनके प्रति अहिंसक रहें जोकि आपके साथ अहिंसा का व्यवहार करते हों। और यह नियम जैसे व्यक्ति पर घटता है वैसे ही एक-दूसरे राष्ट्रों पर भी लागू करना चाहिए। हाँ, यह ठीक है कि दोनों के लिए तालीम की जरूरत है और शुरुआत तो थोड़े से सभी जगह होती है। पर अगर हमें सचमुच विश्वास होगया है तो और चीज़ें अपने आप ठीक होजावेंगी।" इसका सार उनके एक पुराने कथन मे समा जाता है—'तुम अपना आदर्श और नियम ठीक रक्खो, किसी दिन अवश्य सफल होगे।"

इस किस्म की शिक्षा—जो कि भारत (और फिलस्तीन) मे प्राचीन समय मे रही है—उन तानाशाहों को महज़ पागलपन मालूम होगी जिनकी सत्ता-लोलुप राजनीति हमारे ससार की उच्च और उदार बातों को नष्ट कर करती हुई ससार के लिए महान् सकट सिद्ध होरही है। और हिंसा तथा निर्दयता के कोप-भाजन बने भयत्रस्त लोगों को भी, तथा उन लोगों को भी जो आधुनिक विजयों की हृदयहीनता और अर्थलिप्सा के हमले की आशका मे काँप रहे हैं, महज पागलपन ही दिखाई देगा। मगर फिर भी क्या गाधीजी की और उनके ऋषि-मुनि पूर्वजों की, जिन्होंने यह सिखाया कि द्वेष को प्रेम से जीतो, दूसरों को अपने ही समान समझो और प्रेम करो, और यह कि हम एक-दूसरे के भाई-भाई है, शिक्षा और उपदेश सही नहीं है? और क्या यह भी सही नहीं है कि द्रुत सम्पर्क और आवागमन के परस्पराश्रय के स्वीकार, और बढते हुए परस्पर विचार-मिश्रण की इस दुनिया में मनुष्य के और उच्च-उदात्त वस्तुओं के जीवित रहने का एक ही अवसर है, और वह यह कि इस नये पैगबर ने आधुनिक भाषा मे जो यह प्राचीन शिक्षा दी है उसपर अमल किया जाय?

जबकि लोग औरों को 'नेता' कहते हैं और गाधीजी को 'महात्मा' (हालाँकि गाधीजी को इसपर दुःख ही होता है) तो यह निरर्थक नहीं है। सचमुच ही वह महान् आत्मा थी, जिसने तीस साल पहले अपनी अन्तर्दृष्टि से लिखा था "आत्म-बल की दुनिया मे कोई जोड़ नहीं। शस्त्र-बल से वह कहीं श्रेष्ठ है। तब उसे महज कमजोर का शस्त्र कैसे कह सकते हैं? सत्याग्रही के लिए जिस साहस की जरूरत होती है उसे वे लोग नहीं जानते जो शारीरिक बल से काम लेते हैं। सच्चा योद्धा कौन है? वह जोकि मृत्यु को हमेशा अपना आत्मीय मित्र समझता है। सिर्फ मन पर अपना अधिकार होने की जरूरत है, और जब यहाँतक पहुँच गये तो मनुष्य स्वतन्त्र हो जाता है फिर उसका एक दृष्टिपात ही शत्रु को निस्तेज कर देता है।" तब कोई आश्चर्य नहीं, यदि उन्होंने निर्भीक और निश्चयात्मक स्वर से कहा—"मेरा यह विश्वास अटल बना हुआ है कि अगर एक भी सत्याग्रही आखिरतक डटा रहे तो विजय अवश्य ही निश्चित है।'

आजकल तलवार खडखडानेवाले लोग ध्वनि-वाहको (माईक्रोफोन) के द्वारा ससार को आदेश देते है और वम-गोले गिराकर तथा ज़हरीली गैस छोडकर अपने आदेश को विराम देते है। वे दूसरे राष्ट्रो पर हुई अपनी विजय की शेखी वघारते फिरते है और आजादी के खडहरो मे अकडकर चलते है। और लोग एक ओर उनके इस अभिमान के सावन वनते है तो दूसरी ओर उनकी हिंसा के शिकार। कहाँ यह और कहाँ इस भारतीय गुरु की धीमी वाणी, उनका आत्मिक शक्तियो पर दिया हुआ जोर और शान्ति, प्रेम तथा वन्धुता के प्राचीन सन्देश का पुन स्मरण। सदा की तरह अव भी नवयुग का यह सन्देश हमको पूर्व से मिला है। क्या हममे उसे सुनने की अक्ल और उसे सीखने की समझदारी है ? गाधीजी यह ढोग नही करते कि उनका सन्देश मौलिक है। अपनी 'आत्म-कथा' मे वह कहते है—"जिस ऋषि ने सत्य का साक्षात्कार किया है उसने अपने चारो ओर व्याप्त हिंसा मे से अहिंसा ढूंढ निकाली है और गाया है—हिंसा असत है और अहिंसा सत् है।"

नवयुवक लोगो मे एक पीढी या उससे कुछ पहले जैसी हवा वही थी वैसी अव भी वह चली है। वे धर्म का मजाक उडाते है और यह कहकर उससे इन्कार करते है कि यह, इससे भी अधिक हीनकोटि का नही तो कम-से-कम मानवीय अज्ञान और मूर्खता का अधविश्वासपूर्ण अवशिष्ट-मात्र है। नि सन्देह हिन्दुस्तान मे भी एक ऐसा ही मिथ्या दर्शन फैल रहा है और वहुत-से नवयुवक और नवयुवतियाँ भूसी के साथ गेहूँ को भी फेक देने की कोशिश कर रहे है।

क्या ही अच्छा हो कि वे अपने महान् ऋषि-मुनियो के वचनो का मनन करे और उस प्राचीन ज्ञान के वास्तविक अर्थ को नये सिरे से ढूँढने का प्रयत्न करे। परन्तु यदि वे अपने प्राचीन पूर्वजो के विद्या और ज्ञान से लाभ नही उठाना चाहते तो, कम-से-कम उन्हे, अपने ही समय के, इस महान् राष्ट्रीय नेता के ज्ञान और शिक्षा पर तो अवश्य ध्यान देना चाहिए, जवकि वह अधिकारयुक्त वाणी से कहते है

"धर्म हम लोगो के लिए कोई वेगानी चीज नही है। हमी मे से उसका विकास होना है। हमेशा वह हमारे भीतर विद्यमान है। कुछ के अन्दर जाग्रत रहता है, कुछ के अदर विलकुल सुप्त, मगर है हरेक मे जरूर। और यह धार्मिक भाव जो कि हमारे अदर है, उसे चाहे हम वाहरी सावनो की सहायता से, चाहे आन्तरिक विकास क्रिया-द्वारा जाग्रत करे, वात एक ही है। पर हाँ, उसे जाग्रत किये विना गति नही है—यदि हम किसी काम को सही तरीके से करना चाहते हो या किसी स्थायी चीज़ को पाना चाहते हो।" इसी तरह वह और कहते है—"अहिंसा सत्य की रूह है और अहिंसा ही परमधर्म है।" आगे वह और भी कहते है—हम चाहे इसे मान सके या न मान सके—"यदि तुम अपने प्रेम का—अहिंसा का—परिचय अपने तथाकथित शत्रु को इस तरह से देते हो, जिसकी अमिट छाप उसपर वैठ जाय, तो वह अपने प्रेम का परिचय दिये

विना नही रह सकता।"

टॉल्स्टॉय के वाद ही इतनी जल्दी जिस जमाने ने एक दूसरा महान् 'मानवता-का पुजारी' पैदा किया है उसमे रहना कितना अच्छा है! अहा! ये साधु-संत, ये पैगंबर और भक्तगण—फिर वे छोटे हो या बडे—किस प्रकार वातावरण को स्वच्छ निर्मल बनाते है और आसपास फैले हुए 'सघन तिमिर' मे प्रकाश चमकाते है! इन आध्यात्मिक महत्तरो' के विना हमारा क्या हाल हो, जो कि युग-युग मे और पुश्त-दर-पुश्त हमारे अन्त करण की शुद्धि मे सहायक बनने के लिए जन्म लेते है, जिससे कि हम अपनी दैवी प्रकृति को पुन पहचान सकें और हमे अपनी साधना-शक्ति को फिर एक बार बढाने का प्रोत्साहन मिले एव अपने लक्ष्य के ऊँचे शिखर तक चढने का दृढ निश्चय और साहस हममे पैदा हो?

ओलिव श्रीनर ने अपने एक गद्यकाव्य में 'सत्यरूपी पक्षी' की खोज मे प्रयत्नशील साधक का एक चित्र खीचा है। उसे उस पक्षी की झलक एक वार दिखाई दी। उसकी तलाश मे वह पर्वत-शिखर पर पहुँचता है, जहाँ जाकर उसका शरीर छूट जाता है। उसके हाथ मे उस पक्षी का गिरा हुआ एक पख है, जिसे वह छाती पर चिपकाये हुए सोया है। गाधीजी अपने सत्तरवे साल में जो सदेश हमारे लिए छोड रहे है वह हमारे लिए ऐसा ही एक पख सिद्ध हो, और हम सचमुच वडभागी होगे अगर अपनी मृत्यु के समय उसे अपनी छाती से लगाये और अपनाये रहेगे!

: ३८ :

आत्मा की विजय

लिवलिन पॉविस

[क्वेवेटेल, डेवोस प्लाज, स्वीजरलैण्ड]

एक पक्का बुद्धिवादी और भौतिक जीवन का प्रेमी होते हुए मेरे लिए महात्मा गाधी-जैसे असाधारण व्यक्ति के द्वारा सुझाये गये विचारो को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना सरल काम नही है। यह तो स्पष्ट है कि उनका हमारे बीच विद्यमान होना एक ऐसी कडी चुनौती है जिसकी अवहेलना नही हो सकती। आज की इस व्यवहारू दुनिया मे हम उस पुरुष के प्रति आकर्षित हुए बिना नही रह सकते। किसी भी दैनिक पत्र मे ज्यो ही हमारी दृष्टि उनके चित्र पर पडती है, जिसमे वह मामूली व्यापारिक पृष्ठ पर से निर्मल ज्ञानगरिमा की निगाहो से झाकते हुए लगते है, त्योही हमारी स्वाभाविक आत्मिक जडता मे हलचल होने लगती है। कहते है, चीन के कुछ हिस्सो मे सफेद चिमगादड होते है और इस दुर्लभ पुरुष के चित्र इन असाधारण जन्तु से शायद कुछ

कम अजीव मालूम पडते हो, क्योकि आंखे उनकी ऐसी है जो जीवन के गुप्त-से-गुप्त रहस्यो तक प्रविष्ट करती हुई जान पडती हैं, और कान उनके ऐसे हैं जो अपनी उदारतापूर्ण आदत से यह सावित करना चाहते है कि उनका स्वभाव ऐसा मधुर है जैसा पूर्व या पश्चिम मे कही भी शायद ही पाया जावे। हमारे जमाने मे उनसे ज्यादा सफलता के माथ किसी भी मनुष्य ने उस प्रेम की शक्ति का प्रभाव नही दिखाया है जो अगूर की बेलो या लहलहाते खेतो से छाई प्रकृति के सौन्दर्य का नही, वल्कि हिन्दू का और ईसाई का और रहस्यवादियो का आदर्श प्रेम हैं और जो हमारी स्वभावगत पशुता के एकदम विपरीत चलता है। लोकोत्तर कथाओ के विषय मे जिनके चित्त शकाशील है उन्हे गाधीजी के विचार निरर्थक ही जान पडेगे। उन्हे लगेगा कि मानो वे हवाई हैं। प्रतीत होगा कि उनकी जड मे अक्सर वही बने-बनाये नीतिसूत्र हैं जो उन पीडितो के मुह मे रहा करते हैं जिन्हे समाज मे अधिक सुख-सुविधा के निमित्त हर बात के लिए दैवी समर्थन की जरूरत रहती है—उससे गहरी उनकी जडे नही हैं। साँप-छछूंदर से डरनेवाला यह व्यक्ति युवावस्था मे इग्लैण्ड, दक्षिण अफ्रीका और हिन्दुस्तान की उपासनाओ मे और भजनो मे बेमतलव ही शरीक नही होता था। लेकिन गाधीजी का मस्तिष्क जबकि अलौकिक प्रभावो से सहज प्रभावित होजाता दीखता है, तव उनके हृदय की वात कुछ और ही रहती है। वह तो सदा स्वस्थ, उत्साहयुक्त, दयालु और उदात्त ही रहता है।

गाधीजी की 'आत्मकथा' पढने से सचमुच ही आत्मवल की शारीरिक वल पर विजय होने का सच्चा दिग्दर्शन होजाता है। एक जगह पर वह कहते हैं कि उनका हमेशा प्रयत्न रहा है कि परमसूक्ष्म और शुद्ध आत्मा के निकट-स्पर्श मे आ सकू। हमे कल्पना भी होसकती है कि कितने बारीक धर्म-सकट के बीच उनका आत्म-मथन चलता रहता है? सुई की नोक से भी सूक्ष्म उन वारीकियो पर वह अपने-को कैसे साधते है, यही परमआश्चर्य का विषय है। उनके पवित्र मस्तिष्क मे जो पहेलियाँ निरन्तर प्रवेश करती रहती है वे एक स्वतन्त्र मनवाले को कितनी अजीब लगती हैं! गाधीजी गाय का दूध न पीने का व्रत लेते हैं, और जब वह थोडा-सा बकरी का दूध मुँह से लगाते हैं तो फौरन उनके मन मे धर्माधर्म का मथन शुरू हो जाता है कि कही यह दूध भी मेरे व्रत मे शामिल तो नही है? वह एक बछडे को असाध्य रोग से पीडित देखते है, तव क्या उनको उसे मरवा डालने की दया दिखलानी उचित है? और 'हमारे समझदार किन्तु शैतान भाई' बन्दर बिना हिंसा का आश्रय लिये किस प्रकार किसानो की फसलो से दूर हटाये जा सकते है? यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इन सुन्दर पहेलियो का हिन्दू-धर्म की गौ-पूजा से घनिष्ट सम्बन्ध है। इस सिद्धान्त का गाधीजी के लिए वडा व्यापक महत्त्व है और वास्तव मे उस धार्मिक श्रद्धा मे किसी अश मे कम नही है कि मनुष्य-जाति का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि धरती पर रहनेवाले

दूसरे प्राणियों को, चाहे वे कितने ही तुच्छ और नगण्य क्यों न हो, अपनी शरण मे ले, उनकी हमेशा रक्षा करे और उनकी कभी हत्या न करे। गाधीजी का नीति-अनीति-सम्बन्धी विवेक कष्टसाध्य होसकता है, परन्तु यह उतना ही अचूक भी होता है। और पश्चिम की घोर नीति-हीनता की भर्त्सना मे कभी उनके इतना जोर नही आता है जबकि वह जन्तुओ की चीरा-फाडी का जिक्र करते है तब उनकी वाणी मे आजाता है। यह एक काली घिनौनी प्रथा है जिसको, वे सरकारे स्वीकार किये हुए है, जो एक तरफ भावुक और दूसरी तरफ हृदय-हीन है, जो नैतिकता मे वैसी ही अधी है जैसी कि उदारता मे हीन।

फिर भी इस 'अवतारी व्यक्ति' के प्रति यूरोपियनो ने जैसा व्यवहार किया है वह उनके लिए भारी-से-भारी शर्म की बात रहेगी। कभी अपमानित हुए, धक्के-मुक्के दिये गये, कभी धमकिया दी गई, कभी पीटे गये और एकबार तो डर्बन मे गोरो के एक गिरोह ने पत्थर मारते-मारते उनका दम-सा निकाल दिया। परन्तु वह कभी नही खीझे, बल्कि अपने अटल और दृढ कदमो से अपनी स्वर्गीय कल्पनाओ की ओर बढते चले जा रहे है। इस नन्ही-सी जीर्णशीर्ण देह मे कितनी शक्तिशालिनी आत्मा निवास करती है! चाहे दुनिया उनका जयघोष करे चाहे उनके प्रति घृणा करे, उनपर कुछ भी असर नही होता। उनका व्यक्तिगत गौरव इतना सर्वोपरि है कि वह प्राणघातक शारीरिक अपमानो को भी बिना अशान्त और क्षुब्ध हुए सह सकते है। कभी यहां तो कभी वहां सताये जाने मे, कभी खचाखच भरी रेलगाडी की खिडकी से खीचे जाने मे, तो कभी रीढ झुकाये हुए मजदूरो का पाखाना साफ करने मे और कभी 'अछूतो' की सेवा करने मे मानो वे उनके निकट-से-निकट सम्बन्धी हो, उनकी पूर्ण सरलता और पूर्ण सज्जनता मे कतई कुछ भी फर्क नही आया। उनमे आध्यात्मिकता का वह मिथ्याभिमान नही पाया जाता जो हमारे यहांके आदर्शवादियो मे पाया जाता है, चाहे वे पारमार्थिक हो या दुनियवी। उनकी प्रतिभा बादल की भाति मुक्त है और वह एक रातभर मे अपने विचार या प्रथा बदल देगे, यदि उन्हे वही सचाई नजर आ जाय। वह ऐसे कार्तिकेय है जो कोई बन्धन स्वीकार नही करते, सिवाय उनके जो उनके स्वधर्म के मर्यादास्वरूप है। अपने ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तो और ऊँचे-ऊँचे विचारो के होते हुए गाधीजी के पास व्यावहारिक विवेक की विलक्षण निधि है। जीवन के प्रत्येक अग मे यही चीज उनकी पूर्ण निस्स्वार्थ-भावना से मिलकर उनको अत्याचार और दमन के विरुद्ध अनेक प्रकार के सघर्षों मे अजेय बना सकी है। जहां भी वहां वह जाते है, सारा विरोध शान्त होजाता है, मानो अपने नोटबुक के थामनेवाले हाथ मे अँगूठे और अगुली के बीच मे वह कोई जादूगर की छडी साधे हुए हो।

अगर कभी किसीने ईसा का सन्देश व्यवहार मे ला दिखाया है तो वह इस हिन्दू ऋषि ने किया है। सभवत यही कारण है कि ईसा के शब्द प्राय उनके अधिक उन्हीं

जबान पर रहते हैं, हालाकि वह इतने अधिक स्पष्ट विचारक हैं, इतने अधिक सच्चे और ईमानदार मनवाले है कि हमारे पश्चिम के नीति-नियमो और ब्रह्मविद्या के आविष्कारो के कायल होने को तैयार नही हैं। "मेरी बुद्धि इस बात पर विश्वास नही करती कि ईसा ने अपनी मृत्यु और अपने रक्त से दुनिया के पापो का प्रायश्चित्त कर लिया है। रूपक मे कहे तो इसमे कुछ सचाई हो सकती है।" वह ईसाई मत के आत्मबलिदान के आदर्श के प्रति बहुत आकर्षित हुए है और ईसा के 'गिरि-प्रवचन' और उसके अनगिनती निष्कर्षो ने उनपर गहरी छाप छोडी है। नीत्से की एक मर्मवेधी विरोधाभास-मूलक उक्ति है—"दुनिया मे ईसाई तो केवल एक ही पैदा हुआ है और वह तो क्रूस पर लटका दिया गया।" यदि यह सनकी दार्शनिक इस दूसरे गुरु के जीवन-कार्यो को देखने के लिए जीवित रहता तो सभवत उसने अपने इस प्रख्यात व्यग मे कुछ सशोधन कर दिया होता।

अत्यन्त सज्जनोचित कोमलता और दृढ लगन के साथ गाधी ने जुलू-बलवे के नाम से पुकारे जानेवाले उस अक्षम्य 'नरमेध' मे घायलो और बीमारो की सेवा-सुश्रूषा की थी और जब वह अफ्रीका के 'उन गभीर निर्जन स्थानो' मे चल रहे थे, उन्होने ब्रह्मचर्य-पालन का व्रत लिया। क्या गाधीजी की तरह ईसामसीह भी अपना घर-बार छोड कर इस विश्वास पर नही चले गये थे कि—"जो परमात्मा से मित्रता करना चाहता है उसे अकेला ही रहना चाहिए?" एक साहसपूर्ण उद्गार और सुनिए—"ईश्वर हमारी तभी मदद करता है जब हम अपने पैरो के नीचे दबी धूल से भी तुच्छ अपने आपको समझने लगे। कमजोर और असहाय को ही ईश्वरीय सहायता की आशा करनी चाहिए।"

इस पृथिवी पर कौन-कौनसे प्रभाव हमारे मानवीय भाग्य का निर्माण करेगे, यह अभीसे कह देना कठिन है। 'रूपक मे कहे तो' निष्पाप और पाप-भीरु इन दोनो प्रकाश-पुत्रो को दैव से ही मानो कुछ भेद प्राप्त हुआ, जिससे पाताल-लोक के असुर कीलित हो रहे है। अगर कही हम जान जायँ कि उनकी जादूभरी वाणी और देवताओ जैसे स्वभाव से सतयुग फिर से आ सकता है तो जाने कबसे लाछित और क्षुब्ध हमारी मानव-जाति के सौभाग्य का दिन खिल जाय। गाधीजी ने अपने चार हिन्दुस्तानी कार्यकर्त्ताओ से जब पूछा कि क्या वे मृत्यु के समान भीषण और काले प्लेग से पीडित आदमियो की सेवा-सुश्रूषा करने चलेगे, तो उन्होने सीधा-सा जवाब दिया—"जहाँ आप जायँगे, हम भी साथ चलेगे।"

जनरल डायर के द्वारा अमृतसर मे जो नृशस और रोमाचकारी कृत्य—एक भीषण युद्ध का भीषण परिणाम—किया गया, उस पर यदि गाधीजी का ईश्वर-प्रेरित सौजन्यमात्र हम अग्रेजो के हृदयो को दुखी और टुकडे-टुकडे कर सकता है तो उन्होने हमारे देश मे पदा होकर न जाने क्या-क्या अमूल्य सेवायें की होती। उन्होने एक बार

पुन यह साबित कर दिखाया होता कि ससार पर 'भय' शासन नही कर सकता और तलवार की रक्त-रजित विजय से भी अधिक शक्ति दुनिया मे मौजूद है।

× × × ×

यह हमे कैसे सहन हो सकता है कि हमारी अग्रेज जाति का उज्ज्वल नाम "हिंसक मनुष्यो की बर्बर और पाशविक शक्ति के कारण" उच्चता से गिराया जाकर धूल मे मिला दिया जाय। शकर भगवान् के नेत्र मे गाधीजी आर-पार देखते हैं। हमारी पश्चिमी सभ्यता का चापल्य, यत्रो पर उसका अवलम्बन, द्रव्य का उसका लालच, अधिकार की उसकी तृष्णा, जिन्दगी की बाहरी और थोथी बातो का उसका मोह—गाधी उन आँखो से इस सबको भेद कर देखते हैं। निर्दोष जगली जानवरो को मारते-मारते उसके प्रतिफल मे जो हमारी आदत भी तदनुकूल बन गई है, गाधी उसे देखते है। वह देखते है हमारी यह सस्कृति जो भक्ति-उपासना को नही जानती, जो चतुर्दिक् व्याप्त जीवन की कविता को गिराकर धूल कर देती है और खेत की घास की मानिंद मूल्यहीन बना देती है।

सन् १९२२ मे हिन्दुस्तान मे चौरीचौरा मे जनता की एक सामूहिक हिंसा का शर्मनाक नमूना पेश होगया। गाधीजी ने उसी दम अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर दिया और अनशन का एक भीष्म सकल्प लिया। यह आचरण महात्माजी की उस महान् आत्मा के योग्य ही था। चौदहवीं शताब्दी की एक छोटी-सी किन्तु ठोस धार्मिक राजनैतिक पुस्तक 'पियर्स प्लौमैन' मे एक वाक्य आया है जिसे मै अर्से से अपने साहित्य का एक अनमोल रत्न मानता आया हूँ। अपने झिझकते जी की सराहना के इस लेख के अन्त मे उसे रखना अनुचित न होगा—

"जब तूने सुई की नोक जैसी तीक्ष्ण या मार्मिकता के साथ तड़पते हुए मानव के रक्त और मास का हरण किया तब तेरा प्रेम पीपल-पत्र से भी हल्का था।"[1]

: ३९ :

चीन से श्रद्धांजलि

एम क्युओ तै-शी

[चीनी राजदूत, लन्दन]

हमारे इस जमाने मे सारे चीन मे जो सामाजिक राजनैतिक नवजागरण की प्रवृत्तियां हो रही है वे एशिया के और सब देशो मे भी है और उनका सचालन और

१ मूल अग्रेजी इस प्रकार है —

"Never lighter was a leaf upon a linden tree than thy love was, when it took flesh and blood of man, fluttering piercing as a needle point"

सपोषण करने के लिए कुछ नेताओ का समूह निश्चित रूप से तैयार होगया है। हमारे महादेश की सबसे बडी आवश्यकता ऐसे दो नेताओ मे मूर्तिमान हुई है। वह आवश्यकता यह है कि राष्ट्रीय नवनिर्माण की पद्धतियाँ चाहे जो और विविध हो, राजनैतिक बुद्धि-क्षमता के ऊपर प्रभाव नैतिकता का ही रहेगा। सनयात सेन के परमअनुयायी भक्त होते हुए मुझे इसे अपना सौभाग्य समझना चाहिए कि मै महात्मा गाधी की ७१वी जन्म-तिथि के अवसर पर उन्हे श्रद्धाजलि के रूप मे कुछ कह रहा हूँ।

: ४० :

राजनेता : भिखारी के वेष में

सर अब्दुल कादिर

[भारत-मन्त्री के सलाहकार]

कुछ वर्षो पहले मै वीयना—आस्ट्रिया और जर्मनी के एक हो जाने के पूर्व के प्राचीन और सुन्दर वीयना—को देखने जा रहा था। दोपहर को खाना खाने के लिए मै एक बडे भोजनालय मे गया। वह कामकाज का वक्त था और वहाँ काफी भीड थी, इसलिए अपने लिए खाली मेज़ तलाश करने मे कठिनाई हुई। एक नौकर मेरे पास आया और मुझसे यह तो नही पूछा कि मै क्या लाऊँ, वल्कि वोला, "आप गाधीजी के देश से आये है ?"

"हाँ, मै हिन्दुस्तान से आया हूँ। मैने गाधीजी को देखा है और एक-दो बार उनसे बातचीत भी की है।"

यह सुनते ही उसे आनन्द हुआ और वह कहने लगा—"मुझे तो वडी खुशी हुई। अब मै यह कह सकूँगा कि मै ऐसे आदमी से मुलाकात कर चुका हूँ जिसने गाधीजी से मुलाकात की है।"

हालाँकि मै यह जानता था कि गाधीजी की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैल चुकी है, मगर मुझे इस बात का पता नही था कि ऐसे मुल्को के बाजार का मामूली आदमी भी उन्हे जानने और इज्ज़त करने लगा है, जो हिन्दुस्तान से कोई ताल्लुक नही रखते, वल्कि स्थल और जल से उससे जुदा है।

इस बात से मेरा ध्यान पीछे सन् १९३१ की ओर गया। तव मै लन्दन मे था और महात्मा गाधी दूसरी गोलमेज परिषद् मे शरीक होने वहाँ आये थे हिन्दुस्तान के कुछ लोगो का खयाल था कि उनके इग्लैण्ड जाने से उनकी शान को वट्टा लगा और परिषद् मे शरीक होकर उन्होने गलती की। मगर मै इस राय से सहमत नही हूँ। मेरा तो खयाल है कि हालाँकि लन्दन मे जनता के सामने प्रकट किये हरेक उद्गार मे

उन्होने इस बात को छिपा नही रक्खा कि वह अपने देश के लिए पूरी-पूरी आजादी चाहते है, तो भी उन्होने इग्लैण्ड के राजनैतिक विचारशील लोगो पर बडा असर डाला और इस देश मे अपने लिए अनुकूल वातावरण बना लिया।

कुछ क्षेत्रो मे उनकी पोशाक पर कुछ हलकी आलोचना भी हुई, लेकिन ऐसी आलोचनाओ मे गाधीजी को क्या ? उनके व्यक्तित्व ने और परिषद् मे उनके भाग लेने का जो महत्व था उसने उसपर विजय प्राप्त करली।

गाधीजी के चरित्र की एक प्रभावक विशेषता यह है कि एकबार उनकी बुद्धि को सतोष देनेवाले कारणो मे जब वह अपने आचरण का कोई मार्ग निश्चित कर लेते है, तब फिर लोग उसके बारे मे कुछ भी कहते रहे, वह उसकी नितात अवहेलना करते है। इसलिए जो पोशाक वह पिछले बरसो मे पहनते आये थे, अपनी इग्लैण्ड की यात्रा मे भी पहनते रहे। कमर मे एक लगोटी टाँगे खुली हुई और कधो के ऊपर मौसम के अनुसार खादी की चादर या कबल। यही उनकी अब पोशाक है। और फ्रास मे सफर करते हुए, जहाँ कि उनका हार्दिक स्वागत हुआ, या लन्दन के बडे-बडे जलसो मे शरीक होते हुए, यहाँतक कि खुद गोलमेज परिषद् की बैठको तक मे उन्होने इस पोशाक को नही छोडा। परिषद् की बैठके आम लोगो के लिए नही थी, क्योकि सेट जेम्स के महल का वह हॉल जहा परिषद् हुई थी इतना बडा नही था कि दर्शक भी आते। मगर मुझे मालूम हुआ कि कभी-कभी किसी-किसीको थोडी देर के लिए खास तौर पर मन्त्री की जगह बैठने की इजाज़त दी जाती थी। मै एक दिन वहाँ जा पहुँचा। लार्ड सेकी अध्यक्ष थे। उनके दाहिनी ओर भारत-मत्री सर सेम्युअल होर और पार्लमेण्ट के प्रतिनिधिगण बैठे थे। उनके बाई ओर सबसे पहली जगह गाधीजी को दी गई थी और उनके बाद दूसरे हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियो को, जिनमें से कुछ अध्यक्ष की कुर्सी के सामने भी बैठे थे। लार्ड सेकी ने गाधीजी के प्रति जो आदर प्रदर्शित किया, वह उल्लेखनीय था।

गाधीजी ने पोशाक के मामले मे प्रचलित पद्धति मे जो स्वतत्रता ली थी, उसकी सीमा तो तब देखने को मिली, जब मैने उन्हे काग्रेस के प्रतिनिधियो और दूसरे अतिथियो के सम्मान मे दिये गये शाही भोज के समय बादशाह और मल्का के अभिवादन के लिए अपने कधो पर कम्बल ओढे हुए बकिघम-पैलेस की उन बनात से ढकी हुई सीढियो पर चढते देखा। मै नही समझता कि पहले कभी ऐसे लिबास में कोई मेहमान उस महल मे आया होगा और यह धारणा करना भी कठिन है कि किसी दूसरे आदमी को इतनी ही आज़ादी के साथ वहाँ जाने भी दिया जाता।

इस सिलसिले मे दो मजेदार सवाल उठते है। पहला यह कि गाधीजी ने यह पोशाक क्यो धारण की, और दूसरा यह कि वह चीज़ क्या है, जिसने उनको इतना चढा दिया है कि जिससे उनके द्वारा की गई प्रचलित प्रणालियो की उपेक्षा को दर-

गुजर कर दिया जाता है ?

जिन्होने गाधीजी की आत्मकथा को, जिसे उन्होने 'सत्य के प्रयोग' नाम दिया है, पढा है, वे जानते है कि जब वह बैरिस्टरी पढने के लिए पहले-पहल इग्लैण्ड आये तब वह फैशनेबुल आदमी के जीवन से परिचित थे और वेस्ट एण्ड के दर्जी के द्वारा सिले सूट ही पहनते थे। बैरिस्टर होने और हिन्दुस्तान लौट आने के बाद वह एक कानूनी मुकदमे के सिलसिले मे दक्षिण अफ्रीका गये और वही रहने का उन्होने निश्चय कर लिया। इसी समय उनके जीवन का गम्भीरपूर्ण उद्देश्य तैयार हुआ। वहीपर उन्होने अपने प्रवासी देशवासियो के हित के लिए त्याग और बलिदान करने का श्रीगणेश किया। उनके दु ख और दर्द मे सहानुभूति रखने से उनके जीवन मे एक परिवर्तन होगया। उन्होने वहाँ जो उपयोगी कार्य कर दिखाये उनकी कथा इतनी अधिक प्रसिद्ध होगई है कि उसको यहाँ फिर से दोहराने की जरूरत नही है। जब वह लौटकर हिन्दुस्तान आये और हिन्दुस्तान की आजादी की कशमकश मे हिस्सा बँटाने लगे, तो उन्होने वकालत करने के तमाम इरादे को छोड दिया और स्वय को राजनैतिक तथा सामाजिक सुधारो के लिए समर्पित कर दिया। इसी समय से उन्होने अपरिग्रह के रूप मे लँगोटी पहनना शुरू किया और अपने रहन-सहन को कम-से-कम खर्चीला कर लिया। गरीब-से-गरीब लोगो के वेश मे और गाधीजी के वेश मे फर्क ही क्या ह ? उन्होने अपनी 'आत्मकथा' मे कहा है कि जबसे वह लन्दन मे विद्यार्थी-जीवन व्यतीत करते थे तभीसे धर्म के सर्वोच्च स्वरूप—त्याग की भावना उन्हे अत्यत प्रिय रही है। उनके मन मे प्रविष्ट यह बीज आज एक वृक्ष बन चुका है और उसमे फल भी लग गये है।

गाधीजी की वेशभूषा के विषय मे उठनेवाले पहले प्रश्न के उत्तर से दूसरे प्रश्न का भी उत्तर मिल ही जाता है। उनका बल अपने खुद के लिए किसी भी वस्तु की कामना न करने मे ही है। अपने बहुअगी जीवन-विभाग मे, जहाँ कठिनाइयाँ, नजरबन्दी और कारावास के पश्चात् विजयोपलक्ष्य मे निकलनेवाले जुलूसो तथा सम्मान के लिए किये जानेवाले उत्साहपूर्ण जयघोषो का क्रम आता है, वहाँ 'स्व', पदलोभ, प्रतिष्ठा, प्रभाव अथवा अर्थलाभ की कामना का कोई प्रश्न ही नही रहा है। यही उनके जीवन का एक अग है, जिसने क्या मित्र और क्या विरोधी सबके हृदयो पर समान रूप से असर डाला है।

गवर्नरो और वायसरायो ने हमारे देश (हिन्दुस्तान) के भविष्य पर प्रभाव डालनेवाले मसलो पर साफ-साफ चर्चा करने के लिए उन्हे बुलाया है। राजाओ ने मशविरे किये है और मत्रियो ने उनसे परामर्श माँगा है। हमारे सुप्रसिद्ध हिन्दुस्तानी शायर स्वर्गीय सर मुहम्मद इकबाल की एक मशहूर गजल उनके विषय मे बहुत उचित ठहरती है—"दिल-ए-शाह लरजा गिरद-जे गदा-ए-बेनियाज" (अर्थात्—ऐसे

भिखारी को देखकर कि जो भीख नही मागता, सम्राट् का भी हृदय काँप उठना है)। यही है वह भीख न माँगना और शारीरिक आवश्यकताओ और कामनाओ से ऊपर उठना, जिससे गाधीजी को प्रभावशाली और आश्चर्यजनक महत्व मिल सका है।

जबतक महात्मा गाधी इग्लैण्ड मे रहे, वह लन्दन के पूर्वी सिरे मे किंग्सले हाल मे ठहरे। गोलमेज परिषद् के काम मे जो कुछ वक्त उनके पास बचता था, उसे वह गरीब लोगो मे बिताते थे। जब वह उनसे मिलते है तो सर्वदा सुखी रहते है, एव उनकी और स्वय की आत्मा मे अभिन्नता के अनुभव का आनन्द उठाते है। वह चाहते तो लन्दन के किसी भी शाही होटल मे टिक सकते थे। वह अपने किसी मित्र के सजे-सजाये आरामदेह घर मे ठहर सकते थे, मगर उन्हे तो वो मे किंग्सले हाल की कुमारी म्यूरियल लिस्टर का निमन्त्रण कही अच्छा लगा। इस बस्ती मे श्रमजीवियो के लिए एक क्लब है जो उनके लिए एक सामाजिक और बौद्धिक विकास का केन्द्र है और यहाँ उनका सम्मेलन हुआ करता है। कुछ रहने के लिए स्थान भी यहाँ है, जहाँ कोई भी रहने और खाने-पीने पर एक पौण्ड प्रति सप्ताह से भी कम खर्च पर सीधेसादे ढग से रह सकता है। जब गाधीजी गोलमेज परिषद् मे हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व कर रहे थे तब उन्होने इसी घर मे एक छोटा कमरा लिया था। मैंने वह कमरा देखा है। उस जगह के व्यवस्थापक गाधीजी से अपना सम्बन्ध स्थापित होजाने पर गर्व करते है और बडी खुशी जाहिर करते हुए दर्शको को वह कमरा दिखाते है, जो अब गाधीजी के ही नाम पर पुकारा जाता है।

गाधीजी जहाँ भी रहे वही प्रेम और स्नेह पैदा करने की शक्ति का उन्हे विलक्षण वरदान है। जब उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दुस्तानियो के अधिकारो के लिए लडाई लडी थी, तब उन्होने अपने आस-पास भक्त पुरुष और स्त्री एकत्र कर लिये थे, जिनमे कुछ यूरोपियन भी थे। जब उन्होने अपने उस कार्यक्षेत्र को छोडकर हिन्दुस्तान के विशाल कार्यक्षेत्र मे पदार्पण किया तब और भी ज्यादा सख्या मे उत्साही सहयोगी कार्यकर्ता उनकी ओर आकर्षित हुए। और सन् १९३१ की अपनी अल्पकालिक इग्लैण्ड-यात्रा मे तो उनकी इस मित्र तथा प्रशसक-मण्डली मे और भी वृद्धि हो गई। हिन्दुस्तान लौट आने के बाद जब उन्हे जेल जाना पडा तो जेलर उनकी ओर खिचते हुए अनुभव करते थे और वह जब अस्पताल मे बीमार रहे तो उनकी नर्से उनकी खुशमिजाजी पर इतनी मुग्ध होगई कि जब वह अच्छे होने पर वार्ड छोडकर चले गये तो उन्हे दु ख हुआ। यह और भी ज्यादा उल्लेखनीय बात है, क्योकि उनमे यह आकर्षण केवल उनकी आत्मिक सुन्दरता से आया है, शारीरिक रूपरग और खूबसूरती से नही। गाधीजी के प्रेम का स्रोत है ईश्वर मे अटल श्रद्धा और धर्म की गहरी भावना। उनकी 'आत्म-कथा' मे ऐसे अनेक स्थल है जहाँ यह श्रद्धा प्रकट हुई है। उदाहरण के लिए, मानव-जाति के आगे आदर्श प्रस्तुत करते हुए वह कहते है—"पूर्णता की ओर बढने का

असीम प्रयत्न करना हमारा मानवोचित अधिकार है। उसका फल तो स्वत उसके साथ विद्यमान रहता है। शेष सब ईश्वर के हाथ मे है।" उसी पुस्तक मे वह कहते है—दक्षिण अफ्रीका की अपनी जीवन-धारा की प्रारम्भिक स्थिति मे "मेरे अन्तर मे वसनेवाली धार्मिक भावना मेरे लिए एक जीती-जागती शक्ति बन गई थी।" तबसे उनके जीवन का जिन्होने निरीक्षण किया है, वे जानते है कि यही भावना है जो उनके भविष्य जीवन मे भी काम करती चली आरही है और जिसके कारण वह देश-भक्ति की लगन की उस ऊँचाई पर पहुँच सके है और कायम है।

अपने ऐसे जीवन के ७० वर्ष पूरे करने पर, जो मातृभूमि और धर्म तथा मानवता की सेवा मे अर्पित रहा है, गाधीजी को अगणित श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित की जायँगी। इनमे अधिकाश तो उनके साथ कार्य करनेवालो या उन्हे भलीभाति जाननेवालो की ओर से होगी। मैंने तो केवल उनकी झाँकियाँ प्राप्त की है और उनकी नीति तथा कार्यप्रणाली से भी मै सर्वदा सहमत नही रहा हूँ, परन्तु जब मै उनके ऊँचे व्यक्तिगत चारित्र्य और हिन्दुस्तान के प्रति की गई आजीवन सेवाओ की सराहना करता हूँ तो उतनी ही सचाई से करता हूँ जितनी सचाई से कि वे लोग करते जो उनके अधिक निकट और घनिष्ट सम्पर्क मे है। हमे हिन्दुस्तान की जनता मे जो महान् जाग्रति दिखाई देती है उस सबका श्रेय किसी अन्य जीवित व्यक्ति से बढकर उन्हीके उद्योग और प्रभाव को है। आज की इस शकाशील और भौतिक दुनिया मे, जिसे वह 'आत्मबल' कहते है, उस आत्मा की ताकत को दिखाने मे ही उनका महत्त्व है। और इसी आधार पर तो उनके देशवासियो ने उन्हे 'महात्मा' का पद दिया है।

: ४१ :

गांधीजी का भारत पर ऋण

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, एम. ए

[सभापति, भारतीय राष्ट्रीय महासभा]

भारतीय राजनीति मे गाँधीजी की देन महान् है। जब वह दक्षिण अफ्रीका से १९१५ मे अन्तिम रूप मे स्वदेश लौट आये तब भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) को स्थापित हुए तीस वर्ष हो चुके थे। कांग्रेस ने एक हदतक राष्ट्रीय भावना जाग्रत और सगठित करदी थी, लेकिन यह जागरण मोटे रूप से केवल अग्रेज़ी पढे-लिखे मध्यमवर्गीय लोगो तक ही सीमित था। जनता मे उसने प्रवेश अभी नही पाया था। जनता तक उसे महात्मा गाधी ले गये और उसे जन-आन्दोलन का स्वरूप दे दिया। महात्मा गाधी का आन्दोलन जहाँ व्यापक था वहाँ वह गहरा भी था। उन्होने वे

कार्य-योजनायें हाथ मे ली, जो नितान्त राजनैतिक नही थी, वल्कि जनता के एक बडे हिस्से के जीवन में बहुत घुली-मिली थी। एक शताब्दी या इससे अधिक काल मे गोरो के लाभ के लिए जबरन् नील पैदा करने की अन्यायपूर्ण प्रणाली से कष्ट उठाते आ रहे निलहे खेतिहरो और मजदूरो की ओर मे चम्पारन में किये गये उनके सफल सत्याग्रह मे काँग्रेस की हलचल एकदम जन-आन्दोलन की सीमा तक जा पहुँची। अन्याय समझे जानेवाले लगानवन्दी के हुक्म की दुवारा जाँच करने के लिए किये गये खेडा के उनके उतने ही सफल सत्याग्रह ने भी उस ज़िले की जनता पर वैसा ही असर डाला। अव काग्रेस की राजनीति, देश की ऊँची-ऊँची पब्लिक सर्विसो में अधिक हिस्सा या गवर्नरो की शासन-समितियो मे ज्यादा जगहे दिये जाने की मांगो तक ही सीमित नही रह गई। अव वह थकीमादी जनता की तकलीफो मे अभिन्न होकर ही नही रही, वल्कि उनको दूर कराने मे भी सफल हो सकी। इन सब प्रारम्भिक (१९१७ और १९१८ के) आन्दोलनो मे लेकर अवतक अनेक आन्दोलन ऐसे चले है और उन सब में ध्येय यही रहा है कि किसी एक श्रेणी या समूह को ही न पहुँचकर व्यापकरूप मे समस्त जनता को उसका फ़ायदा पहुँचे। कष्ट-निवारण के लिए सिर्फ ब्रिटिश हितो अथवा ब्रिटिश सल्तनत के ही खिलाफ लडाई नहीं छेडी गई, वल्कि उसने बिना हिचकिचाहट के हिन्दुस्तानी हितो और गलत धारणाओ को भी उतनी ही ताकत से धक्का पहुँचाया है। इस प्रकार उनकी जाग्रत आँखो से हिन्दुस्तान के कारखानो मे काम करनेवाले मजदूरो की असन्तोषप्रद हालत छिपी नही रह सकी और सवसे पहले जो काम उन्होने उठाये, उनमें से एक अपने लिए अच्छी स्थिति प्राप्त करने के वास्ते लडने मे अहमदावाद के मजदूरो को मदद करना भी था। दलित जातियो की दु खभरी किस्मत ने अनिवार्य रूप मे हिन्दुओ की अस्पृश्यता जैसी दूपित और दुष्टतापूर्ण प्रथा को निष्ठुरतापूर्वक मिटा डालने के आन्दोलन को जन्म दिया और महात्मा गाधी ने अपने प्राणो तक की वाजी लगा-लगाकर उसका सचालन किया। काग्रेस-सगठन का विस्तार भी इतना हुआ कि इस विशाल देश के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक वह व्याप्त होगया और आज लाखो स्त्री-पुरुप उसके सदस्य है। लेकिन सख्या-मात्र जितना वता सकती है उससे कही अधिक व्यापक काँग्रेस का प्रभाव हुआ है। उस प्रभाव की गहराई की परीक्षा इसीसे हो चुकी है कि जनता उसके आमत्रण पर त्याग और कष्ट-सहन की भीषण आँच मे से निकल सकी है।

परन्तु महात्मा गाधी की सवसे वडी देन यह नही है कि उन्होने हिन्दुस्तान की जनता मे राजनैतिक चेतना उत्पन्न कर दी और उसे एक अभूतपूर्व पैमाने पर सगठित किया। मेरी समझ मे तो, हिन्दुस्तान की राजनीति को और सभवत ससार की पीडित मानवजाति को, उन्होने जो सवसे वडी चीज दी है वह है बुराइयो मे लडने का वह वेजोड तरीक़ा—जिसे उन्होने प्रचलित और कार्यान्वित किया। उन्होने हमें सिखाया

है कि विना हथियार के शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से सफलता के साथ किस प्रकार लडा जा सकता है। उन्होने हमे और ससार को युद्ध का नैतिक स्थान ग्रहण कर सकनेवाली वस्तु दी है। उन्होने राजनीति को, जो कि धोखाधडी और असत्य से भरी हुई थी, जो गिरी-से-गिरी हालत मे नीच षडयत्रो की स्थिति मे पहुँच गई थी और ऊँची-से-ऊँची स्थिति मे कूटनीतिपूर्ण दुमानी गोल-गोल भाषा और गुप्त चालो से ऊँची न उठ सकती थी, ऊपर उठाकर एक ऐसे ऊँचे आदर्श पर पहुँचा दिया है जिसमे कि कितने ऊँचे उद्देश्य के लिए किसी स्थिति मे भी, दोषपूर्ण और अपवित्र साधनो का उपयोग नही किया जा सकता। उन्होने राजनीति मे भी सचाई को गौरव के उच्च मच पर आसीन किया है, फिर चाहे उसका तात्कालिक परिणाम कितना ही हानिप्रद क्यो न लगता हो? हमारी कमजोरियो और बुराइयो को भी स्पष्टरूप से जानबूझकर तथाकथित शत्रुओ के सामने खोलकर रख देने की उनकी आदत ने पक्षियो और विपक्षियो दोनो को हैरान कर दिया है। लेकिन उनके मत मे हमारी शक्ति अपनी कमज़ोरियो को छिपाने मे नही, वल्कि उन्हे समझकर उनसे लडने मे निहित है। यह वात अनुभव से सिद्ध होचुकी है कि जहाँ अहिसा की थोडी-सी अवहेलना या अपूर्णता भले ही अस्थायी लाभ लासके, वहाँ भी अहिसा का कठोर पालन सवसे सीधा रास्ता ही नही है, वरन् सवसे अधिक चतुराई की नीति भी है। उनकी शिक्षाओ के भीतर नैतिक और आध्यात्मिक स्फूर्ति थी, जिसने लोगो की कल्पना को प्रभावित किया। लोगो ने देखा ओर समझ लिया कि जव चारो ओर घना अन्धकार है, ऐसी स्थिति में हमारी गरीवी और गुलामी मे से छुटकारे का रास्ता दिखलानेवाले वही है। जव हम अपनी निपट वेवसी महसूस कर रहे थे तव उन्होने सत्य और अहिसा के द्वारा अपनी शक्ति को पहचानने की हमे प्रेरणा की। मनुष्य आखिर अस्त्र और शस्त्र के साथ नही जन्मा। न उसके चीते के-से पजे ही है और न जगली भैसे के-से सीग। वह तो आत्मा और भावना लेकर उत्पन्न हुआ है। फिर वह अपनी रक्षा और उन्नति के लिए इन वाहरी वस्तुओ पर क्यो अवलम्वित रहे? महात्मा गाधी ने हमे सिखाया है कि अगर हम मौत और विनाश पर भरोसा रक्खेगे तो वे हमारी वाट देखते रहेगे। उन्होने हमे सिखाया है कि अगर हम अपनी अन्तरात्मा को जाग्रत करले तो जीवन और स्वतन्त्रता हमारे होकर रहेगे। दुनिया मे कोई ताकत ऐसी नही है कि एक वार उस अन्तरात्मा के जाग पडने पर, एक वार इन वाह्य वस्तुओ और परिस्थितियो का अवलम्वन छोड देने पर और एक वार आत्मविश्वास और आत्म-निर्भरता प्राप्त कर लेने पर वह हमे गुलामी मे रख सके। हिन्दुस्तान शनै शनै किन्तु उतनी ही दृढता और निश्चय के साथ उस आत्मिक वल को प्राप्त कर रहा है और उस आत्मिक वल के साथ अदम्य भी वनता जारहा है। परमात्मा करे कि वह सत्य और अहिसा के इस सकडे किन्तु सीधे मार्ग से विचलित न हो, जो उसने महात्मा गाधी के नेतृत्व मे चुन

लिया है। यही है महात्माजी का भारतीय राजनीति पर सबसे बडा ऋण, और यही होगी दुनिया की मुक्ति में हिन्दुस्तान की एक अमर देन।

: ४२ :

ईश्वर का दीवाना

रेजिनॉल्ड रेनाल्ड्स

[लन्दन]

ईश्वर ने अपने दीवानो को अजीब वेशो में दुनिया को जाँचने के लिए भेज दिया और कह दिया कि "जाओ, तुम ऐसे ज्ञान का प्रचार करो जो समय के पूर्व हो। सब दु ख आँख खोलकर सहो और परिवर्तन का मार्ग साफ करो।"[१]

ये डवल्यू जी होल की 'दी फूल्स ऑव गॉड' (ईश्वर के दीवाने) शीर्षक कविता के प्रारम्भ के शब्द है। इस कविता को मैंने १९२९ ई० में हिन्दुस्तान जाने के कुछ महीनो पहले 'विश्वभारती' त्रैमासिक पत्रिका में देखा था। यह कविता बहुत प्रसिद्ध तो नहीं है, पर मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि मेरी पढी किसी कविता ने मेरे मन पर इतना गहरा और स्थायी प्रभाव डाला हो जितना उक्त कविता ने। इसका कारण उसके पद्यो में वास्तविक खूबी का होना नही था, बल्कि यह था कि वे भविष्यवाणी के रूप में सिद्ध हुए।

कविता मे यह वर्णन किया गया है कि ईश्वर अपने प्यारे दीवानो को आदेश देता है "बहरे हो जाओ, किसीका लिहाज मत करो। और दुनिया की बुद्धिमानी के रास्ते मे सदा उलटे होकर बचो।"

वे चलते है "और आराम में पले हुए लोगो को परिश्रम और भूख-प्यास का उपहार देते है। आज उन्हे सब गालियाँ देते है, कल धन्यवाद देते है।"[२]

१ His fools in vesture strange
God sent to range
The world and said "Declare
Untimely wisdom, bear
Harsh witness and prepare
The paths of change"

२ And proffering toil and thirst
To men in softness nursed,
To day by all are cursed,
To-morrow blessed.

अपनी साधना के दर्मियान वे त्याग देते है "मनुष्यो की स्वीकृति और प्रशसा के सुविधा-पूर्ण मार्ग को।"[१]

लेकिन 'श्रद्धा के दीवाने', वे दावा करते है "उस प्रकाश के देखने का, जो मनुष्यो के भाग्यो को चमका देता है, उन्हे बादशाह बना देता है और उनमे धार्मिक कार्य करने की शक्ति दे देता है।"[२]

उस कविता को पढने के बाद कुछ ही महीनो के अन्दर—मै बडे आदर के साथ कहूँगा—दुनिया के सबसे बडे दीवाने महात्मा गाधी से मिला। शीघ्र ही मैने यह पता लगा लिया कि मुझे प्रभावित और प्रेरित करनेवाली उन पक्तियो का आकर्षक वर्णन इस पुरुष पर अक्षरश घटित होता था।

चाहे विरोध मे किसीने कुछ भी दलीले दी हो, मेरा तो खयाल ऐसा नही है कि गाधीजी कोई चालाक आदमी है। दस साल पहले से, जबसे मेरा उनसे पहलेपहल परिचय हुआ, मैने सदा अपनेआपको उनके शब्दो और कार्यो की अक्सर बेहद आलोचना करनेवाला महसूस किया है। मै उन अन्धश्रद्धालुओ मे से नही हूँ, जिनके मत मे महात्माजी कभी भूल ही नही कर सकते। न तो मै उन्हे एक 'मसीहा' समझता हूँ और न 'अवतार' ही मानता हूँ। अगर वह महान् होने का दावा करे और उसके लिए अपनी राजनैतिक बुद्धिमत्ता पर निर्भर रहे तो मेरी समझ मे उनका यह दावा कच्चा होगा। उनकी जाँच तो दूसरी ही कसौटी द्वारा करनी होगी।

अगर गाधीजी की पूरी-पूरी और सच्ची महत्ता को समझाने चले तो हिन्दू-धर्म के इतिहास का उसकी प्रारम्भिक अवस्था से अध्ययन करना होगा और उन सब अनगिनती सुधार-आन्दोलनो पर जोर देना होगा जिनका प्रत्येक धर्म के विकास मे एक स्थान होता है। कारण यह है कि प्रत्येक सगठित धर्म जर्जर होकर नष्ट होता है और अपने नाश की ओर जाते हुए वह जीवन के नये बीज जिनमे चैतन्य निवास करता है, निरन्तर फेकता रहता है, पुराना चोला नष्ट हो जाता है और निर्जीव शाखाये मुरझा जाती है।

मैने एक बार एक शक्तिशाली अमरीकन ईसाई को गाधीजी के किसी शिष्य के साथ प्रश्नोत्तर करते सुना। उसने पूछा कि महात्माजी पर सबसे गहरा प्रभाव किस पुस्तक का पडा है? पेसिल और नोटबुक तैयार थी और हम सब जानते थे कि वह किस उत्तर की आशा कर रहा था। परन्तु उसे उत्तर मिला 'गीता का'। न्यू टेस्टामेण्ट

१ The comfortable way
Of men's consent and praise

२ To see the light that rings
Men's brows and makes them kings
With power to do the things
Of righteousness

और टॉल्स्टॉय तथा रस्किन की रचनाओ ने भी काम किया है। पर मूलत गाधीजी एक हिन्दू सुधारक हैं।

पर फिर भी गाधीजी हिन्दूमात्र ही नही हे। उनके तो असली पूर्वरूप 'कबीर' थे। कबीर ने पहले एक सन्त के नाते हिन्दुओ और मुसलमानो मे आदर प्राप्त किया। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के अग्रदूत थे। स्वय मुस्लिम होकर वह हिन्दू सन्त रामानन्द के शिष्य थे। कबीर की एक साखी का आशय नीचे दिया जाता है, जिससे इस ऐतिहासिक परम्परा का सुन्दर दिग्दर्शन हो सकता हैं

> "अपनी चालाकी छोड। केवल शब्दो से तेरा—उसका सयोग नही हो सकता। शास्त्रो के प्रमाण से भी अपने को धोखे मे न डाल। प्रेम तो इससे भिन्न है। जिसने इसे सचमुच खोजने का यत्न किया है उसने वास्तव मे पा लिया है।"

इन पक्तियो मे एक धार्मिक नेता के नाते गाधीजी के उपदेशो का सार निहित है, और इस क्षण तो मै उन्हे एक धार्मिक नेता के ही रूप मे लेकर विचार करना चाहता हूँ।

जब एक बार एक हिन्दुस्तानी विद्वान् ने "क्या गीता कट्टरता का समर्थन करती है ?" शीर्षक लेख (बाद मे 'दि आर्यन पाथ' के मार्च १९३३ के अक मे प्रकाशित) लिखा और उसे गाधीजी के पास उनके देखने के लिए भेजा तो महात्माजी ने यरवडा सेन्ट्रल जेल से ११ जनवरी १९३३ को जो उत्तर उन्हे लिखा, वह इस प्रकार है

"अब मैंने गीता पर आपके दोनो लेख पढ लिये हैं। वे मुझे रोचक लगे हे। मेरी धारणा है कि आप भी उसी निर्णय पर पहुँचे है जिसपर मै, परन्तु प्रकारान्तर से। आपका मार्ग विद्वत्ता का है। मेरा ऐसा नही है।"

यह कहने की आवश्यकता नही कि उस विद्वान और उस ईश्वर के दीवाने दोनो का निर्णय यही था कि गीता कट्टरता का समर्थन नही करती। परन्तु गाधीजी अपने दृष्टिकोण पर 'बुद्धि चातुरी' के सहारे नही पहुँचे। कबीर ने ५०० वर्ष बाद आनेवाले गाधीजी के विषय मे पहले से ही कह दिया था

> "सत्यान्वेषक का यह युद्ध कठोर है और लम्बा है, क्योकि सत्यान्वेषक का प्रण तो योद्धा के या सती के प्रण से भी कठिन होता है। योद्धा तो कुछ पहर ही युद्ध करता है और सती का प्रण भी जलते ही समाप्त होजाता है। किन्तु सत्यान्वेषी का युद्ध तो दिन-रात चलता है, और जबतक जीता है समाप्त नही होता।"

और भी, कबीर ने जीवन और मृत्यु पर जो नीचे लिखे आशय की साखी कही है उसमे गाधीजी की आध्यात्मिक विरासत ही व्यक्त होती है

> "अगर जीते-जी तुम्हारे बन्धन नही छूटे तो मृत्यु होने पर मुक्ति की

क्या आशा हो सकती है ? यह झूठा सपना है कि जीव शरीर छोड देने से उससे जा मिलेगा। यदि अब ईश्वर को प्राप्त कर लिया जायगा तो तब भी प्राप्त हो जायगा। यदि यह न हो सके तो हम नरक मे जायँगे।"

ईसाई मत के कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदायो की परम्पराओ की समता अधिकतर धर्मो मे खोजकर निकाली जा सकती है। हरेक प्रथा-प्रणाली मे अपने विशिष्ट अवगुण होते है और ऊँचे-ऊँचे गुण भी। प्रोटेस्टैण्टवाद का पूर्ण विकास उसके उत्कृष्टतम प्यूरिटनो मे मिलेगा। हमारे युग मे हम प्यूरिटन मे सिवाय उसके असहनीय निपेधो के और कुछ देखना ही नही चाहते। प्रारम्भ मे प्यूरिटन मत को किन-किन विरोधो का सामना करना पडा, यह आज हम आसानी से भूल जा सकते है। अपने असली स्वरूप मे प्यूरिटन केवल एक कठोर हकीम है जो अपने अजीर्ण के रोगी को खाने-पीने मे पथ्य-अपथ्य और सयम का आदेश देता है। हो सकता है प्यूरिटन का यह लक्ष्य बुद्धिपूर्वक न रहा हो, पर यह तो उसका इतिहास-सिद्ध कर्म था।

जहाँ कही भी समाज-सुधार आन्दोलन या क्रातियाँ होती है, वहाँ कट्टरतावाद का आग्रह पाया जा सकता है। यह तो उन पुरुषो और स्त्रियो के अनुशासन का एक अग-मात्र है जिन्हे अपनी शक्ति एक वस्तु पर केन्द्रित करने के लिए वहुतकुछ परित्याग करना पडे। इसलिए आधुनिक भारत के नेता कट्टरवादी (प्यूरिटन) हो और उन सब का प्रमुख एक निर्मम तपस्वी है, यह कोई आकस्मिक घटना ही नही है। जवतक हम उन जजीरो और वन्धनो को न तोड फेके जो हिन्दुस्तानियो को अशिक्षित, अकर्मण्य, जाति-पाँति के कट्टर भक्त और अन्ध-विश्वासी बनाये हुए है तवतक साम्राज्यवाद के खिलाफ होनेवाला उनका विद्रोह आगे नही वढ सकता। गाधीजी राजनैतिक आजादी के आन्दोलन के सचालन मे समर्थ इसीलिए हो सके कि उन्होने पुजारियो की सत्ता का सामना लिया, कट्टरता के हिमायतियो द्वारा मान्य वुराइयाँ--अस्पृश्यता, महिलाओ की हीन स्थिति वाल-विवाह, सार्वजनिक स्वास्थ्य की अवहेलना, धार्मिक असहिष्णुता, शादी-विवाह की फिजूलखर्ची तथा अफीमखोरी, थोडे मे, उनसव सामाजिक दुराचरणो—का उग्र विरोध किया, जिनसे देश मे राजनैतिक जडता आ गई थी।

एक वार पुन विदित होगा कि हिन्दुस्तान मे एक लम्बी परम्परा चली आ रही है जिसके वीच-वीच मे अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनायें घटती रहती है, जिससे हिन्दुओ की कट्टरता की अनुदार धारा के विरोध मे होनेवाली गाधीजी की प्रवृत्तियो का महत्व हमारी समझ मे आ सकता है।

गाधीजी के वहुत पहले हिन्दुस्तान मे 'ईश्वर के दीवाने' थे, वगाल के 'वाउलो' मे मुसलमान और हिन्दू, खासकर नीची जाति के, शामिल थे। कवीर साहव का आध्यात्मिक रग उनमें देख पडता है। उन्हे लिखित ग्रन्थो की महत्ता या मन्दिरो की पवित्रता की परवाह नही थी। उनका एक गीत यही वात कहता है

मन्दिर-मस्जिद से है तेरा
मार्ग छिपा मेरे भगवान !
मार्ग रोकते गुरु-पुजारी—
सुनता हूँ तेरा आह्वान ।[१]

उनकी अपरिग्रह में, आत्मसम्मान मे, और आत्मसाक्षात्कार मे श्रद्धा होती थी। उनका ईश्वर 'अन्तस्थ गुरु' या 'अन्तर्वासी' होता था।

एक बाउल ने ही कहा था—मानो मुझे और उन लोगो को चेतावनी दी थी जो अपने थोडे-से ज्ञान से उस अपरिमेय का मूल्याकन करने चलते हैं—

स्वर्णकार उपवन में आया !
और कसौटी पर कस उसने
कमल-फूल का मूल्य बताया ! ![२]

अगर सुनार की कसौटी पर रक्खा जाय तो कमल का कोई मूल्य नही है। हमारे परिचित साधन भी प्राय इसी प्रकार भ्रामक सिद्ध हो सकते हैं, जब मानवी बुद्धिमत्ता ईश्वर के दीवानो के विषय मे निर्णय करने चलती है।

: ४३ :

पश्चिम के एक मनुष्य की श्रद्धाञ्जलि

रोम्यां रोलां

[विला ओल्गा, स्वीजरलैण्ड]

गाधीजी केवल हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय इतिहास के ही नायक नही है कि जिसकी पुण्यस्मृति कथा के रूप मे युगयुगातर तक प्रतिष्ठित रहेगी। उन्होने केवल क्रियात्मक जीवन का प्राण बनकर हिन्दुस्तानियो मे उनकी एकता, उनकी शक्ति और उनकी स्वतन्त्रता की कामना की गौरवपूर्ण चेतना ही नहीं भरदी, बल्कि समस्त पाश्चात्य जनता के हित के लिए उसके ईसामसीह के सन्देश को भी पुनर्जीवन दिया, जो अबतक उपेक्षित या प्रवञ्चित रहा। उन्होंने अपना नाम मानव-जाति के साधु-सन्तो में अकित कर दिया है, उनकी मूर्ति का उज्ज्वल आलोक भूमण्डल के कोने-कोने मे प्रविष्ट हो गया है।

१ Thy path, O Lord, is hidden by mosque and temple
Thy call I hear, but priest and *guru* bar the way

२ A goldsmith, methinks, has come to the garden
He would appraise the lotus, forsooth,
By rubbing it on his touchstone.

यूरोप की दृष्टि मे उनका उदय उस समय हुआ जब ऐसा उदाहरण लगभग एक आश्चर्य लगता था। यूरोप चार वर्षो के उस भीषण युद्ध से निकल ही पाया था, जिसके फलस्वरूप सर्वनाश, भग्नावशेष और पारस्परिक कटुता के चिन्ह अभी विद्यमान थे और, और भी अधिक नृशस नये-नये युद्धो के बीज बो रहे थे। साथ-ही-साथ क्रातियाँ हो रही थी और समाजगत पारस्परिक घृणा की शृखला राष्ट्रो के हृदयो को नोच-नोचकर खा रही थी। यूरोप एक ऐसी दुर्भर रात्रि के नीचे दबा कराह रहा था, जिसके गर्भ मे थी निराशा और नि सहाय अवस्था। और प्रकाश की एक भी रेखा दृष्टिगत नही हो रही थी। ऐसे मुहूर्त्त मे इस दुर्बल, नग्न और नन्हे-से गाधी का अवतरण हुआ, जिसने सर्वागीण हिंसा की भर्त्सना की, न्याय और प्रेम ही जिसके हथियार थे, और जिसके नम्र किन्तु अविचल सौजन्य ने अपनी प्रारम्भिक सफलताये अभी प्राप्त की ही थी। ऐसे गाधी का उद्भव पश्चिम की परम्परागत, चिर प्रतिष्ठित और सुनिर्धारित विचारधारा तथा राजनीति की छाती पर एक अद्भुत प्रहार के रूप मे जान पडा। साथ-ही-साथ वह आशा की एक किरण के रूप मे भी लगा, जो निराशा के अन्धकार मे फूट पडी थी। जनता को उस पर विश्वास होता ही नही था। और इसलिए ऐसे महानतम् अद्भुत शक्ति की वास्तविकता का विश्वास करने मे कुछ समय लगा...। मुझसे अधिक अच्छी तरह इस बात को और कौन जानता? क्योकि मै ही पश्चिम के उन व्यक्तियो मे से था जिन्होने पहलेपहल महात्माजी के सदेश को जाना और उसे फैलाया। परन्तु ज्यो-ज्यो भारत के इस आध्यात्मिक गुरु के कार्य के अस्तित्व और निरन्तर स्थिर प्रगति का विश्वास लोगो को होता गया, त्यो-त्यो पश्चिम से प्रशसा और श्रद्धा की बाढ उनकी ओर आने लगी। कुछ लोगो के मत मे उनका उदय ईसा का पुनरागमन था। दूसरे कुछ लोगो ने जो स्वतन्त्र विचारो के थे, जो पश्चिमी सभ्यता की अव्यवस्थित गति से घबरा रहे थे, क्योकि उनकी पश्चिमी सभ्यता का आधार अब कोई नैतिक सिद्धान्त नही रहा था और जिसकी आविष्कार और खोज-सम्बन्धी अद्भुत प्रतिभा अपने ही सर्वनाश की दिशा मे जा रही थी, यह देखा कि गाधीजी सभ्यता के पाखण्ड और अपराधो की निन्दा कर रहे है, और मानव-जाति को प्रकृति की ओर, सरलता की ओर, स्वाभाविक स्वस्थ जीवन की ओर लौट जाने का प्रचार कर रहे है, तो उन्होने समझा कि वह रूसो और टॉल्स्टॉय के ही दूसरे अवतार है। सरकारो ने उनको उपेक्षा और तिरस्कार की निगाहो से देखने का ढोग किया। किन्तु सर्वसाधारण ने अनुभव किया कि गाधी उनका घनिष्टतम मित्र और बन्धु है। मैने यहाँ स्वीज़रलैण्ड मे देखा कि उन्होने गाँवो और पहाड़ मे बसे नम्र किसानो मे कैसे पवित्र प्रेम की प्रेरणा की है।

लेकिन यद्यपि ईसा के गिरि-प्रवचन की भाँति उनके न्याय और प्रेम के सन्देश ने असख्य लोगो के हृदयो को स्पर्श किया है, तो भी स्वय युद्ध और विनाश की ओर

जाती हुई दुनिया की गति बदलने के लिए वह जिस प्रकार नेंज़रत के मसीह के सन्देश पर निर्भर नही थे, ठीक उसी प्रकार इस बात पर भी निर्भर नही रहे है। राजनीति मे गाधीजी के अहिसा-सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने के लिए आज यूरोप मे जैसा विद्यमान है, उसमे कही भिन्न नैतिक वातावरण होना चाहिए। उसके लिए अपेक्षा होगी क सर्वागीण विपुल आत्म-बलिदान की। परन्तु आज भयकर रूप से बढते हुए तानाशाही राष्ट्रो के नये तरीको के आगे, जिन्होने दुनिया मे आधिपत्य जमा रक्खा है और जिन्होने लाखो मानवो के शोणित के रूप मे अपने निर्दय चिन्ह छोडे है, इसमे सफलता की आशा नही है। जबतक जनता चिरकाल तक परीक्षाओ मे से न निकल ले, तबतक ऐसे बलिदानो की ज्योति के अपना विजयी प्रभाव डालने की न तो सम्भावना ही है, न आशा। और जनता मे तबतक स्वय को शक्तिशाली बनाने की बहादुरी नही आसकती, जबतक उनको पोषण देने और उदात्तता की ओर ले जाने के लिए गाधी की जैसी किसी निष्ठा की प्राप्ति न हो। पश्चिम के अधिकाश लोगो—क्या जनता और क्या उनके नेताओ—मे इस ईश्वर-निष्ठा का अभाव है तथा नये नये पन्थ, चाहे वे राष्ट्रवादी हो चाहे क्रान्तिवादी, सब हिसा के जन्मदाता है। यूरोप-वासियो के लिए सबसे अधिक आवश्यक कार्य है अपनी स्वाधीनताओ, स्वतन्त्रताओ और अपने प्राणो तक की रक्षा करना जो आज फासिस्ट और जात्यभिमानी राष्ट्रो के सर्वग्रासी साम्राज्यवाद से आतकित है। उनके इस राजनैतिक उत्तरदायित्व को छोड देने का अनिवार्य परिणाम होगा, मानवता की गुलामी—सभवत युगयुगान्तर तक। ऐसी परिस्थितियो मे हम गाधीजी के सिद्धान्त को, चाहे उसे हम कितने ही आदर और श्रद्धा की निगाह से देखे, (यूरोप मे) व्यवहृत किये जाने का आग्रह नही कर सकते।

ऐसा जान पडता है कि गाधीजी का सिद्धान्त दुनिया मे वह काम कर दिखाने के लिए आया है, जो उन महान् मध्ययुगीय ईसाई सघो ने किया था, जिनमे नैतिक सभ्यता, शाति और प्रेम की भावना तथा आत्मिक धीरता और निश्चलता की पवित्रतम निधि उसी तरह सुरक्षित थी जैसे किसी उमडते हुए सागर मे कोई टापू। कितना गौरवपूर्ण और पवित्र कार्य! गाधी की यह 'स्पिरिट' उनके पूर्ववर्ती सन्त ब्रूनो, सन्त बर्नार्ड, सन्त फ्रासिस जैसे ईसाई-मठो के महान् सस्थापको की भाँति सकटापन्न और परिवर्तनशील इस युग के प्रबल प्रवाह मे भी, जिनमे मे मानव-जाति गुज़र रही है, शाति-तोष, मानव-प्रेम और ऐक्य को अजर-अमर रक्खे!

और हम, बुद्धिमान, विज्ञानवेत्ता, विद्वान् कलाकार हम जो अपनी नगण्य शक्तियो की सीमा के अन्दर अपने मन मे वह "मानव-समाज का नगर, जिसमे 'ईश्वरीय शान्ति' का राज है", निर्माण करने का प्रयत्न करते है, हम जो (गिरजे की भाषा मे) 'तीसरी कोटि के' है और जो मानवता पर आधारित विश्वबन्धुत्व को मानते है, अपने इस गुरु और बन्धु गाधी को, जो भावी मानवता के आदर्श को हृदय में

प्रतिष्ठित किये हुए उसे आचरण मे प्रत्यक्ष करके दिखा रहा है, अपने प्रेम और आदर का हार्दिक अर्घ्य अर्पण करते है।

: ४४ :

एक अंग्रेज़ महिला की श्रद्धा

मिस मॉड रॉयडन, एम. ए, डी. डी.

[सेनीनोक्स, कैण्ट, इग्लैण्ड]

ईसाइयो का यह महसूस करना, जैसा कि हममे से बहुत-से करते है, कि आज की दुनिया मे सबसे अच्छा ईसाई अगर कोई है तो वह एक हिन्दू है, एक अजीब बात है। मै जितनी ही ज्यादा गाधीजी के कार्यो पर नजर डालती और उनके उपदेशो को पढती हूँ उतनी ही अधिक मुझे इस कथन मे सचाई लगती है। मै यह जानती हूँ कि अगर मै इतना और कहूँ कि मुझे तो नॅजरत के मसीह पूर्णता मे अद्वितीय लगते है, तो वे वुरा न मानेगे। मेरे कहने का इतना ही अर्थ है और यह मुझे कहना पडता है कि मसीह के शिष्यो मे आज कोई भी उनके इतना निकट नही पहुँच सका है, जितने महात्मा गाधी।

प्रति सप्ताह जो हरिजन' के अक मेरे पास आते रहते है वे मानो गरम और प्यासे देश मे पवित्र पानी की घूटो के समान है। शक्तिशाली राष्ट्रो की राजनीति ने अपनी झूठी अपीलो और थोथे दर्शन से आज यूरोप मे शान्ति के लिए प्रयत्न करनेवालो को भी पथ-भ्रष्ट कर दिया है। वहुतो का ऐसा विश्वास है कि न्याय की जवरन प्रतिष्ठा करना सभव है और इससे शान्ति स्थापित हो सकेगी। वे वरसो पुराने उस व्यगचित्र को भूल गये मालूम होते है कि जिसमे पोलेण्ड का विच्छेद हो जाने के उपरान्त एक महिला का शरीर जकडकर और मुँह वन्द करके ज़मीन पर लिटाया हुआ और सिर से चोटी तक एक हथियारवन्द पुरुष को उसका पहरा लगाते हुए दिखाया गया था और कहा गया था कि "वारसा मे शान्ति स्थापित हो गई।" वे भूल गये जान पडते है कि महायुद्ध के पश्चात् रूस पर जो हमले हुए उनसे वोलशेविक सरकार और भी ज्यादा मज़वूती से अपना आसन जमाती गई, और जर्मनी पर प्रहार किये जाने का परिणाम हिटलर का सिहासन पर वैठना हुआ है एव 'युद्ध का अन्त करने के उद्देश्य से किये जानेवाले युद्ध' के (जिसे हमने सफलतापूर्वक लडा ह) वीस वरस वाद भी आज अपने आपको हम और भी अधिक युद्ध से आतकित पाते है।

'हरिजन' मे गाधीजी के शब्दो को पढना इस निरर्थक शोरगुल और गोलमाल की दुनिया से उठकर अधिक पवित्र और अधिक शुद्ध वातावरण मे जाना है—अधिक

शुद्ध इसलिए कि वह हमे युद्ध की भूल से ऊपर देखने का सामर्थ्य देता ह और अधिक पवित्र इसलिए कि वह सत्य की परमनिष्ठा से प्रेरित होता है।

अग्रेज लोगो ने कभी-कभी गाधीजी को गूढबुद्धि होने का दोषी ठहराया है। 'दोषी' इसलिए कहती हूँ कि यद्यपि गूढबुद्धि होना स्वत कोई आवश्यक रूप से बुरी वस्तु नही है, परन्तु यहाँ उसका उपयोग तिरस्कार के रूप मे—सत्यनिष्ठ न होने के अपराध के रूप मे—किया गया है। मैं तो इतना ही कह सकती हूँ कि पहले तो मै महात्माजी से किये गये प्रश्नो और उनके द्वारा दिये गये उनके उत्तरो को 'हरिजन' मे कुछ चिता और आशका से पढा करती थी, परन्तु अब तो पढते हुए मुझे आनन्द के साथ-साथ यह विश्वास रहता है कि वह किसी भी कठिनाई से बचने की या उसे टालने की कोशिश कतई नही करेगे। चाहे वे प्रश्न डॉ० जे आर मॉट के हो, चाहे वे कागवा के हो और चाहे वे पेरी सेरीसोल के हो, सबका उत्तर वह नितान्त सच्चाई के साथ देगे।

इस मुल्क के राजनैतिक और धार्मिक जगत् के अनेक वर्षो के अनुभव के बाद ऐसी ईमानदारी (सत्यनिष्ठा) का पाया जाना ईश्वरीय झलक ही है।

गोलमेज़ परिषद के वक्त जब गाधीजी इग्लैण्ड मे थे तो वह 'अपरिग्रह' पर भाषण देने गिल्डहाउस मे आये थे। हॉल खचाखच भरा था और सैकडो लोग बाहर खडे थे। हम बडे ध्यान से यह सुन रहे थे कि एक ऐसे व्यक्ति को, जो अपरिग्रह के बारे मे बाते-ही-बाते नही करता था, बल्कि जिसे उसका यथार्थ अनुभव भी था, कहना क्या है ? अत मे बहुत से सवाल किये गये। कभी-कभी महात्मा को उत्तर देने से पहले रुकना पडता था। बाद मे मुझे मालूम हुआ कि वह सिर्फ इसलिए रुकते थे कि वह मानवी भाषा मे अधिक-से-अधिक जितना सही और पूर्णतया सच्चा जवाब हो सके, दे। उनका यह कथन मुझे याद है कि "परिग्रह का त्याग पहले-पहल शरीर से वस्त्र उतार देना जैसा नही, बल्कि हड्डी से मास ही अलग करने जैसा लगता है।" आगे उन्होने कहा था—"अगर आप मुझसे कहे कि 'लेकिन भाई गाधी, तुम तो एक सूती कपडे का टुकडा पहने हुए हो। फिर कैसे कह सकते हो कि तुम्हारे पास कुछ भी नही है ?' तो मेरा उत्तर यह होगा कि 'जबतक मेरा शरीर है, मेरे खयाल से मुझे उस पर कुछ-न-कुछ लपेटना ही पडेगा। मगर' अपनी मोहिनी मुस्कराहट के साथ उन्होने आगे कहा—'यहा कोई चाहे तो इसे भी मुझ से ले सकता है, मै पुलिस को बुलाने नही जाऊँगा।'"

'माँ-बाप' ब्रिटिश सरकार ने महात्माजी के साथ पुलिस के सिपाहियो की एक टुकडी कर दी थी। वे सब-के-सब उस वक्त गिल्डहाउस मे खडे-खडे उनकी बाते सुन रहे थे। और दूसरो का तो कहना ही क्या, वे भी इसपर खिलखिला कर हँसना नही रोक सके।

जिन-जिन बातो से बहुत-से अग्रेजो को आह्लाद हुआ, उनमे एक बात यह भी थी कि उन्हे यह पता लगा कि उस महान् आत्मा मे भी उन सब बातो पर विनोद करने और हँसने की प्रवृत्ति है, जिन पर हम सब की रहती है। मुझे अपनी कार मे थोडी दूर उन्हे ले जाने का सौभाग्य मिला था। मार्ग मे मुझसे उन्होने मुझे सम्मानार्थ मिली हुई उपाधि के विषय मे प्रश्न किया। यह तुम्हारे आगे 'डी० डी०' क्या लगता है ? मैने कहा कि ग्लासगो यूनिवर्सिटी ने मुझे सम्मानार्थ 'डॉक्टर ऑव डिविनिटी' (ब्रह्मविद्या की आचार्या) की उपाधि दी है। "अरे", वह बोले, "तब तो तुम 'ब्रह्म' के सम्बन्ध मे सबकुछ जानती हो !"

थोडी देर तक मोटर मे बिठला कर ले जाने की शुरुआत कैसे हुई, यह मुझे अच्छी तरह याद है। गाधीजी ने वचन दिया था कि वह मेरी मोटर मे अपनी दूसरी मुलाकात की जगह जायँगे। लेकिन जब हम गिल्डहाउस के बाहर आये तो देखा कि लोगो की भीड उमडती आ रही है और मै अपनी गाडी फौरन् नही खोज सकी। लन्दन की हर एक गाडी बगल मे होकर धीरे-धीरे निकलती मालूम होती थी, इस आशा मे कि उसके ड्राइवर को उन्हे ले जाने का सौभाग्य मिल जाय। मौसम ठडा और नम था और महात्माजी के शरीर पर काफी कपडे नही थे। दुखपूर्वक मैने निर्णय किया कि मुझे उन्हे नही रोकना चाहिए और मै बोली, "अगली गाडी मे बैठ जाइये, मेरी गाडी की प्रतीक्षा न करे।" पर उन्होने उत्तर दिया—"तुम्हारी गाडी के लिए ठहरा रहूँगा।" मैने अनुभव किया कि जैसे मुझे राजमुकुट मिल गया है ! एकदम ईसा के एक अनुयायी के शब्द मुझे सूझे कि "पास कुछ न होकर भी सबकुछ" उनका है। गाधीजी के पास मोटरगाडी कहाँ थी ? लेकिन बीसो गाडियाँ उन्हे घेरे खडी थी, इस उम्मीद मे कि वह किसी एक को चुन ले।

आज के ससार से महात्माजी का सबसे अधिक आग्रह अहिंसात्मक अविरोध पर है। यह ज्ञान है जो उन्होने, और उन्होने ही, जीवन के सत्तर बरसो के अनुभव के उपरान्त पाया है और उनका इसमे विश्वासमात्र ही नही है, बल्कि वह दिन-प्रति-दिन दृढ से दृढतर होता जा रहा है कि वह हिन्दुस्तान भर ही की नही, समस्त ससार की रक्षा कर सकता है। जब इस विषय पर उनसे प्रश्न किये जाते है तो मै यूरोप के घृणा और हिंसा के वातावरण से घबराकर उत्कट उत्कण्ठा के साथ उनके विचार पढती हूँ।

इन सबसे बढकर, एक महिला के नाते मै उस महात्मा से अधिक-से-अधिक आशा रखती हूँ।

हरिजन' के हाल के किसी अक मे वही महत्वपूर्ण प्रश्न, जो प्राय यहाँ के स्त्री-पुरुषो से पूछा जाता है, गाधीजी से भी पूछा गया था कि अगर किसी महिला के सतीत्व पर हमला हो तो उसे क्या करना चाहिए ? अब महात्मा का उत्तर क्या होगा ? क्या वह प्रश्न को उडा जायँगे ? या कहेगे कि मै महिला थोडे ही हूँ जो

उनको इस प्रश्न का उत्तर दूं ? तो फिर क्या कहेगे ? क्या जवाब देगे ?

उन्होने उत्तर दिया कि महिला को इसका विरोध करना चाहिए, चाहे फिर उस विरोध मे उसे मरना भी पडे, किन्तु किसी भी प्रकार से हिंसा का आश्रय नही लेना चाहिए। स्त्री-जाति के नाम पर मै उन्हे प्रणाम करती हूँ। अपनी इज्ज़त और लज्जा की दृष्टि मे महिला की स्थिति पुरुष मे नितान्त भिन्न है, क्योकि उसकी इच्छा के विपरीत उसकी गिरावट की जासकती है, यह भयकर धारणा जो आज दुनियाभर में, आमतौर पर, फैलाई जाती है, उनके इस उत्तर से नष्ट हो जाती है। वास्तव मे यह सच नही है—अर्थात् किसी भी व्यक्ति, स्त्री या पुरुष, का दूसरे के द्वारा की गई किसी भी चीज़ से पतन नही हो सकता। हम स्वय ही अपना पतन स्वत कर सकते है। अवश्य ही ऐसी वाते भी है जो "मृत्यु से भी बुरी" है और पतन या अपमान उनमे से एक है। किन्तु इसका अस्तित्व हमारे अपने कार्य या इच्छा को छोडकर किसी भी दूसरे के कार्य या इच्छा मे नही है। गाधी के सिवाय क्या किसी ने यह उत्तर देने का साहस किया है ? उसके लिए वह हम सब महिलाओ के आदर के पात्र है।

क्या दुनिया को वह समझा सकेगे ? इस बात की कल्पना करते भय लगता है कि आज पश्चिम में जो पशुबल या सैन्यसग्रह मे इतनी श्रद्धा बढती जा रही है, वह कदाचित् महात्माजी के अपने देशवासियो पर पडे असर को दबा दे और उन्हे यह यकीन दिला सके कि पशुबल ही पशुबल का मुकाबिला कर सकता है। यह तो न केवल हिन्दुस्तान ही, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य और तमाम दुनिया के लिए एक दुखदायी घटना होगी। अकेले यूरोप मे ही नही, पश्चिम के दोनो अमेरिका महाद्वीपो मे ही नहीं, बल्कि पूर्व मे भी जापान मे, कनफ्यूशियस के शातिवादी चीन तक में, हिंसा में विश्वास जड पकडता जा रहा है। क्या हिन्दुस्तान इस अहिंसा-सिद्धात को सुरक्षित रक्खेगा ? सघर्षशील ससार मे क्या एक हिन्दुस्तान ही सत्य पर डटा रहेगा और हमे प्रकाश दिखाता रहेगा ? अगर हाँ, तो ससार सुरक्षित है। अगर नही, तो ?

ओ, भारत, हमें निराश न करना।

: ४५ :

सच्चे नेतृत्व के परिणाम

वाइकाउण्ट सेम्युअल, जी सी. बी., जी. बी ई, डी सी एल

[लन्दन]

समय-समय पर गाधीजी ऐसे कार्य कर देते है और ऐसी बाते कह देते हैं जिनसे मेरा जी खीझ उठता है। वे बाते मुझे अयुक्तियुक्त और दुराग्रहपूर्ण मालूम

होती है। मैं प्राय अपनेआपको उनका समर्थक नही वरन् विरोधी समझने लगता हूँ। फिर भी, यह सब होते हुए भी, मुझे विश्वास है कि गाधीजी एक ऐसे पुरुष है जो नितान्त सचाई और सर्वागीण आत्मबलिदान की लगन के साथ, कभी इस मार्ग से, तो कभी उस मार्ग से, श्रेष्ठ ध्येय की ओर प्रगतिशील है।

दुनिया को चाहिए कि अपने महापुरुषो को पहचाने। ससार अपने महान सेवको के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करे। यद्यपि यह व्यग ही मे कहा जाता है कि "मृत पर जब फूल चढते है तो जीवित को काँटे ही मिलते है।" पर हमे कभी जीवित पर भी, यदि वह इसके योग्य है तो फूल चढाने चाहिए।

अपने लम्बे जीवन मे गाधीजी ने हिन्दुस्तान की, और हिन्दुस्तान के द्वारा समस्त मानव-जाति की, असख्य सेवाये की है। उनमे से तीन मुख्य है।

उनको ऐसा जन-समाज मिला, जिसकी अपनी विशेषता थी "पूर्वीय दब्बूपन।" शत्रु से हारना, शासित होना पिछडे हुए, अशिक्षित, अन्धविश्वासी और दरिद्र बने रहना, यही हो गया था हिन्दुस्तान के असख्य लोगो के भाग्य का—अतीत के इतिहास से अनुशासित और वर्तमान की अनिवार्य परिस्थितियो से बाध्य—एकमात्र निपटारा। इस सबको बदल डालने के लिए गाधी उस आन्दोलन का नेता बनकर आगे आया, जो उस समय साधारण और डॉवाडोल हालत मे था। अपने गुणो के बल से उसे शीघ्र ही प्रधानता मिल गई। उसके पास थी वह आत्मिक तेजस्विता और उसके साथ व्यवहार-क्षम कठोर निर्वारण शक्ति, जो जब कभी सयोगवश प्रकट होती है तब जनता को आन्दोलित कर देती है और जिन्हे विजयघोष से प्रतिध्वनित सफलताये वरण करती है।

गाधी ने हिन्दुस्तान को अपनी कमर सीधी करना सिखाया, अपनी आखे ऊपर उठाना सिखाया और सिखाया अविचल दृष्टि से परिस्थितियो का सामना करना। कहा गया है—"जीवन को समझने के लिए भूतकाल की ओर और उसे सफल बनाने के लिए भविष्य की ओर देखना चाहिए।" गाधी ने अपने देशवासियो को उसमे आत्मविस्मृत होने के लिए नही, वरन् उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिए, अपने भूतकाल का अध्ययन करना सिखाया। गाधी ने उन्हे अपने वर्तमान को अपने ज़बर्दस्त हाथो से पकडने की प्रेरणा दी, जिससे वे जाग्रत रहकर अपने भविष्य का निर्माण कर सके। गाधी ने उन्हे "भविष्य की ओर देखना" सिखाया और इस गौरवपूर्ण जीवन की प्राप्ति की दिशा मे किये जानेवाले भगीरथ प्रयत्न मे उन्होने इस बात को प्रधानता दी कि हिन्दुस्तान की महिलाओ को पुरुषो का हाथ बँटाना चाहिए।

अग्रेज जाति आत्मसम्मान-प्रिय होती। इसी कारण हम दूसरो के आत्मसम्मान की भी इज्ज़त करते है। मुझे यह कहते हिचकिचाहट नही होती कि—पिछले वर्षो के तमाम वादविवाद और तमाम कशमकश के होते हुए—अग्रेज़ लोगो मे आज हिन्दुस्तानी लोगो के लिए इतना अधिक सच्चा आदर है जितना उन दोनो के पारस्परिक सबन्धो

की शताब्दियो में कभी नही हुआ।

हिन्दुस्तान मे मनुष्य-जाति का छठा भाग बसा हुआ है। किसी भी एक व्यक्ति से कही बढकर गाधी ने मानवजाति के इस बडे हिस्से को अपने जीवन का दर्जा ऊँचा उठाने और आत्मा का उत्थान करने मे योग दिया है। हिन्दुस्तान इसके लिए उनका कृतज्ञ क्यो न हो ? और ब्रिटेन को कृतज्ञ क्यो न होना चाहिए ? और समस्त ससार को भी कृतज्ञ क्यो नही होना चाहिए, जो प्रकारान्तर से तथा अतत इस लाभ का उपभोग करता है ?

यद्यपि इस आन्दोलन मे कुछ भीषण अपराध और अत्याचार के काले धब्बे अवश्य है, परन्तु वे गाधी की प्रेरणा से कब हुए ? वे तो उनके द्वारा किये गये हार्दिक आग्रहो के स्पष्ट उल्लघन में ही घटित हुए थे।

दूसरा महान् कार्य जिसने उनका नाम रोशन कर दिया यह है कि उन्होने स्वतन्त्रता-साध्य और अहिंसा-साधन का सफल और अभूतपूर्व सामञ्जस्य कर दिखाया। रोष-प्रकाश, अनुनय-विनय, आवश्यकता पडे तो आज्ञाभग किन्तु बल-प्रयोग नही, विरोधी की हत्या नही, बलात्कार नही, बलवा नही—यही उनका सदेश था और है।

हिन्दुस्तान में ऐसी नीति जनता के चारित्र्य के अनुकूल ही है। वह अधिक आत्म-बलिदान की अपेक्षा रखती है जिसके लिए वह सर्वदा सन्नद्ध है। साथ ही इसका उनकी विवेक-बुद्धि से अच्छा मेल बैठ जाता है। यह एक ऐसा आचरण है जो प्रमुख रूप मे, उस प्राय दुरुपयुक्त शब्द के अच्छे-से-अच्छे अर्थ में, धार्मिक है। इसका परिणाम भी शुभ हुआ है। विशाल जन-समुदाय के बलिष्ठ प्रयत्न और अहिंसा दोनो ने मिलकर अदूरदर्शी किन्तु स्वाभाविक रूप से होनेवाले विरोध पर किसी भी प्रतिगामी नीति से कही अधिक शीघ्रता और पूर्णता से विजय पाली है।

गाधीजी का तीसरा महान् कार्य यह हुआ है कि उन्होने शक्ति और लगन के साथ दलित वर्गो का प्रश्न हाथ मे लिया और उसे भारतीय राजनीति मे आगे लाकर सफलता के पथ पर बिठला दिया है।

जो हिन्दुस्तान के सच्चे हितैषी है उन्हे यह साफ-साफ कहना चाहिए कि दलित जातियों के प्रति उनका यह व्यवहार भारत के सामाजिक और धार्मिक इतिहास पर एक काला धब्बा है। वह धर्म कैसा है, जो इतने बडे जन-समूह को बिना किसी अपने खुद के अपराध के तिरस्कृत करता है ? जो पहले उन्हे गिराता है और फिर उन्हे पद-दलित करता है, केवल इसी कारण कि वे पतित है ? सच्चा धर्म तो वह है जो मानवीय आत्मा को दमन करने का नही, बल्कि उद्धार करके उसे ऊँचा उठाने का आदेश देता हो।

गाधीजी ने अपनी सूक्ष्म और तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि से यह सब देख लिया है और इसका उनपर मार्मिक आघात हुआ है। निरन्तर विरोध होते हुए भी उन्होने उन करोड़ो

पीडित मानवो को ऊँचा उठाने का और इस कलक से देश को छुडाकर उसे सभ्यता के ऊँचे आसन की ओर ले जाने का अविराम और अथक प्रयत्न किया है। और अब वह देख सकते है कि वह आन्दोलन धीर गति से जड पकडता जारहा है, और अनुभव कर सकते है कि उसकी अतिम सफलता अवश्यभावी है।

× × ×

सत्तर वर्षो के अपने जीवन का सिहावलोकन करते हुए क्या कोई दूसरा जीवित पुरुष इतने महान् कार्यो को देख सकेगा ? (उन्होने एक विशाल राष्ट्र की आत्मा का उत्थान करने और गौरव को वढाने मे नेतृत्व किया, उन्होने आज की तथा कल की दुनिया को यह दिखाने मे नेतृत्व किया कि सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र मे केवल मानव आत्मा की शक्ति-मात्र से ही, पाशविक शक्ति का आश्रय लिये विना वडे-वडे शुभ परिणाम निकाले जा सकते है, और उन्होने करोडो अन्याय-पीडितो का सदियो से चली आरही अपनी पतितावस्था से उद्धार करने मे नेतृत्व किया)

सिहावलोकन के इस क्षण मे गाधीजी अपने इस निरीक्षण से पूर्ण सतुष्ट हो सकते है। दूसरे लोग भी उनको अपनी-अपनी श्रद्धाजलियाँ अर्पण करे। उन्हे अक्सर तीखे-तीखे काँटे चुभाये गये है। आइए, अव हम उन्हे कृतज्ञता के फूल अर्पण करे।

: ४६ :

गोलमेज़ परिषद् के संस्मरण

लार्ड सैंकी, एम. ए., डी. सी. एल.

[लंदन]

इस लेख मे मै गाधीजी के जीवन की विवेचना या उनके सामाजिक और राजनैतिक विचारो की आलोचना नही करना चाहता। उनके चरित्र की शक्ति इस वात से काफी सिद्ध है कि उनके अनुयायी उनकी अमर्यादित प्रशंसा करते है और उनके विरोधी तीव्र निदा। प्रस्तुत लेख व्यक्तिगत है और एक ऐसे प्रशसक के द्वारा लिखा गया है, जो उनके सव विचारो से पूर्णत सहमत नही है।

मै गाधीजी से पहली वार १३ सितम्वर १९३१ को मिला। हम गोलमेज परिपद् की सघ-योजना कमेटी मे कुछ महीनो तक रोज घटो एक-दूसरे के वरावर वैठते रहे। उसके वाद वह भारत लौट गये और फिर मुझे उनसे मिलने का मौका नही मिला। अत्यन्त कठिन विवाद के समय और अनेक चिन्तायुक्त क्षणो मे एक आदमी के नज़दीक वठने के वाद या तो उसे आपको पसन्द करना होगा या नापसन्द, और मै आशा करता हूँ कि मेरी गणना गाधीजी के मित्रो मे की जा सकती है।

वह सघ-योजना कमेटी की बैठको मे उपस्थित होने के लिए इग्लैण्ड आये थे, और मेरा परिचय उनसे लन्दन के डोरचेस्टर होटल मे एक मुलाकात के समय हुआ। यह अफवाह फैल चुकी थी कि वह आनेवाले है, इसलिए बाहर वडी भीड जमा थी। उनका कद छोटा था, वह सफेद कपडे पहने थे, किन्तु वह इस तरह चलते थे मानो उन्हे अपने गौरव और ख्याति का भान हो। उनका बाह्य रूप चित्ताकर्षक था, किन्तु मुझपर सबसे ज्यादा असर डाला उनकी वडी-वडी और चमकीली आँखो ने, जिनसे आप कभी-कभी उनके भीतरी विचारो और विश्वासो का पता लगा सकते है।

मै सघ-योजना कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसलिए कहा गया कि उनके साथ कमरे मे अलग एक तरफ एकान्त मे स्थिति-चर्चा करलें। वहाँ उन्होने मेरे सामने विस्तार के साथ अपने विचार रक्खे। उन्होने भारत को नीचा दर्जा मिलने की शिकायत की, किन्तु उनकी मुख्य चिन्ता का विषय सरकार का वह विशाल खर्चीलापन प्रतीत होता था जिसके कारण, उन्होने कहा, गरीबो पर भारी कर लद गये है। सारी वातचीत के दौरान मे गरीबो के लिए उनकी चिन्ता ही उनका प्रधान विषय था। वह भारत के देहातो में रहनेवालो के भाग्य के बारे में विशेष रूप से चिन्तित थे और इस बात से सहमत थे कि अति उद्योगीकरण एक बुराई है। उन्होने मुझे सत्याग्रह का अपना मर्म समझाया और जब भारत की रक्षा का सवाल उठा तो उन्होने हिन्दुओ के अहिसा-सिद्धात पर खास तौर पर जोर दिया।

ऐसी लम्बी मुलाकात के अन्त मे उनके बारे मे बहुत निश्चित विचार न बना लेना असभव था। शुरू मे, अखीर मे और हर घडी उनकी धार्मिक भाव-प्रवणता स्पष्ट थी।

मुझे अनुभव हुआ कि टॉल्स्टॉय के लेखो का उनपर असर पडा है। उनके खयाल से सामाजिक बुराइयो का इलाज था सादे जीवन को लौट जाना। दूसरे वह महान् हिन्दू देशभक्त प्रतीत हुए। उनके हृदय में अपने देश का प्रेम प्रज्ज्वलित था और थी उसकी प्रतिष्ठा और ख्याति को बढाने की कामना एव गरीबो और पीडितो को सहायता पहुँचाने की लगन। अन्तिम बात यह है कि वह निर्विवाद रूप से एक महान् राजनैतिक नेता थे, क्योकि यह स्पष्ट था कि न केवल अन्तिम ध्येय के बारे मे, बल्कि उसको सिद्ध करनेवाले साधनो के बारे मे भी उनका विश्वास सच्चा और दृढ था।

कमेटी की पहली बैठक लन्दन के सेट जेम्स पेलेस मे १४ सितम्बर को हुई। वह गाधीजी का मौन-दिवस था। अत वह एक शब्द भी नही बोले। मगलवार १५ ता० को उन्होने अपना पहला भाषण दिया और उस समय लिया हुआ डायरी का यह नोट शायद मनोरजक प्रतीत होगा—"गाधी बहुत धीमे और विचारपूर्वक बोले, एक मिनिट मे ५७ शब्द बिना किसी नोट के वह करीब एक घटे तक बोलते रहे। शुरू करने से पूर्व उन्होने अपने दोनो हाथ जोडे और ऐसा मालूम पडा कि जैसे वह प्रार्थना कर रहे है। वह

मेरी बगल में बैठे थे। पैरो मे चप्पल, घुटनो के ऊपर तक की धोती, और एक बडा सफेद शाल ओढे हुए थे।" उन्होने भारत को आजादी और सेना तथा अर्थ पर भारतीयो को नियत्रण देने की माग की। उस परिषद् के शारीरिक और मानसिक बोझ को गाधीजी ने कैसे सहन किया, इसका मुझे सदा आश्चर्य रहा है। वह बिला-नागा सारे दिन शुरू से अखीर तक वहा बैठे रहते थे। उस समय जो नोट लिया गया था, उससे पता चलता है कि कभी-कभी नित्य अस्सी हज़ार शब्द वहाँ बोले जाते थे।

किन्तु गाधीजी का असली काम तब शुरू हुआ जब परिषद् स्थगित होगई। रात को बहुत देरतक और सवेरे बडे तडके वह घण्टो विभिन्न हितो के प्रतिनिधियो के साथ बातचीते और मुलाकाते करते और उन्हे अपने विचारो का बनाने का शक्तिभर प्रयत्न करते। प्रधान मत्रियो और अधिनायको के पास तो अपने लोगो पर अपने विचार थोपने के साधन और अवसर होते है, किन्तु गाधीजी के अतिरिक्त कभी कोई ऐसा आदमी हुआ हो, जिसने लाखो आदमियो को अपने जीवन और प्रयत्नो के उदाहरण से अपने पक्ष मे कर लिया हो, इसमे मुझे सन्देह है।

यह मेरा सौभाग्य था कि परिषद् के दौरान मे मुझे भारतवर्ष के अनेक विशिष्ट पुरुषो, बूढो और जवानो तथा सभी सम्प्रदायो और श्रेणियो के लोगो से मिलने का अवसर मिला। वे सब गाधीजी से सहमत रहे हो या न रहे हो, पर उनके असाधारण व्यक्तित्व से सभी प्रभावित थे।

समय-समय पर वह अन्तर की आवाज़ से प्रेरित होते प्रतीत होते थे। ससार के इतिहास के विभिन्न समयो मे अन्य महान् पुरुषो को भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। उदाहरण के लिए सुकरात और सत पॉल के नाम लिये जा सकते है। कौन जाने ऐसे व्यक्ति पागलो के स्वप्न देखते है अथवा अलौकिक बुद्धिमानी के अधिकारी होते है, किन्तु कम-से-कम वह उन लोगो पर, जो उनके सम्पर्क मे आते है, आदेशात्मक प्रभाव रखते प्रतीत होते है। गाधीजी राजनैतिक योगी है, कभी असम्भव किन्तु हमेशा धार्मिक, और इस बात के लिए सदा उत्सुक कि भारतवर्ष और गरीबो के लिए उनसे क्या किया जा सकता है।

उनके राजनैतिक जीवन के बारे मे कुछ कहना मेरा काम नही है। राजनीतिज्ञो के साथ कभी-कभी कठोरता का व्यवहार किया जाता है। अपने 'सीसेम एण्ड लिलीज़' ('Sesame and Lilies') नामक ग्रथ मे एक प्रसिद्ध स्थल पर जॉन रस्किन कहते है— "हम यदि किसी मत्री से दस मिनिट के लिए बात करे तो हमे ऐसे शब्दो मे उत्तर मिलेगा जो भ्रामक होने के कारण मौन से भी बदतर होगे।" यदि रस्किन स्वय राजनैतिक नेता हुए होते तो उन्होने इससे कुछ अच्छा व्यवहार किया होता, इसमे शक है। और जब पश्चिमी राजनीतिज्ञ गाधीजी के राजनैतिक जीवन की कुछ कटु आलोचना करते है तो उन्हे यह अनुभव करना चाहिए कि जो लोग कॉच के मकान मे रहते है

उनका दूसरो पर पत्थर फेंकना कहाँतक ठीक हो सकता है ?

इसमे सन्देह नही कि गाधीजी के आदर्श उच्च है, किन्तु कभी-कभी मैं आश्चर्य करता हूँ कि यदि उनको न केवल अपने लोगो मे, वल्कि भारतवर्ष की विशाल जन-सख्या पर जिसमे अनेक धर्म और जातियाँ है, सत्ता प्राप्त होती और उनकी ज़िम्मेदारी उनके सिर पर होती तो वह क्या करते ? ऐसी परिस्थिति में राजनीतिज्ञ को उपायो और साधनो का विचार करना पडता है। किन्तु उपाय और साधन दैवी पुरुपो के लिए नही होते और अन्त मे आमतौर पर राजनीतिज्ञो पर दैवी पुरुप विजयी हो जाते हैं।

यदि मेरा विचार पूछा जाय तो जव गाधीजी का जीवन पूर्ण हो जायगा तो यह आमतौर पर माना जायगा कि अपने प्रयत्नो के फलस्वरूप वह दुनिया को उससे अच्छी अवस्था मे छोड गये, जो कि उनके आगमन के समय थी।

: ४७ :

हिन्दुत्व का महान अवतार

डी. एस शर्मा, एम ए

[पचियप्पा कालेज, मदरास]

एक अमेरिकन यात्री ने एक वार कहा कि वह हिन्दुस्तान मे तीन चीजे देखने आया है—हिमालय, ताजमहल और महात्मा गाधी। हम इस देश मे महात्मा गाधी के इतने निकट है कि उनके व्यक्तित्व को वास्तविक रूप मे नही देख सकते और न यही समझ सकते है कि जिन्हे वह अपने 'सत्य के प्रयोग' कहते है, उनका मानव-इतिहास मे क्या महत्त्व है। उन्होने खुद कहा है कि उनका सन्देश सार्वभौम है, भले ही वह भारत में और भारतीय राजनीति के क्षेत्र मे दिया गया है। किन्तु जिस मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य मानव-जाति को उच्च नैतिक और आध्यात्मिक सतह पर ले जाना हो, उसके लिए राजनीति तो गौण या आनुषगिक प्रवृत्ति है।

हमने इस युग मे आकाश-विजय को देखा है। हम उन साहसी स्त्री-पुरुष की नित्य ही वाते सुनते है, जो भयकर खतरो का ज़रा भी खयाल किये विना थल और जल पर हज़ारो मील उडकर एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को जाते है। जैसाकि हम सव जानते है, वायुयान के आविष्कार ने और युद्ध तथा शाति के कामो के लिए राष्ट्रो द्वारा उसको तेजी के साथ अपनालेने ने इतिहास का नया पृष्ठ खोल दिया है। किन्तु महात्मा गाधी का आविष्कार मनुष्य-जाति के लिए वायुयान से भी अधिक महत्वपूर्ण है और उसके भाग्य पर शताब्दियो तक असाधारण प्रभाव डालेगा। उनका

सत्याग्रह आध्यात्मिक आकाश-विद्या के अलावा और कुछ नही है। जब हम उसे ठीक रूप मे समझ लेगे और उसपर सही-सही आचरण करेगे तो वह न केवल व्यक्तियो को, बल्कि राष्ट्रो को मनुष्यो मे वास करनेवाले सिंह और बन्दर के स्वभाव से उठकर उस रहस्यमयी आध्यात्मिक पूर्णता की ओर ले जायगा, जिसे हम ईश्वर कहते है। कुछ लोग उनके अहिंसा के सिद्धान्त पर, जिसे वह आत्म-शक्ति कहते है, हँस सकते है और पूछ सकते है कि जब उसे मशीनगन या विध्वसक बम का सामना करना पडेगा तो उसका क्या होगा ? स्पष्ट है कि उन्होने ईसाइयत की गाथा को नही समझा है। वह हमको पार्लमेण्ट के उस सदस्य की याद दिलाते है—वह शायद नरम दल का प्रतिनिधि था—जिसने नव-आविष्कृत रेलवे एजिन के बारे मे बहस करते हुए कहा था कि यदि प्रस्तावित पटरी पर किसी क्रुद्ध गाय ने उस पर हमला किया तो क्या होगा ? किन्तु सौ वर्ष बाद, अथवा सम्भवत हजार वर्ष बाद, क्योकि मनुष्य आध्यात्मिक जगत मे अभी निरा शिशु है, जब यूरोप के आज के तमाम सैनिक अधिनायक अपने-जैसे विचार वालो के साथ अपनी कब्रो मे मिट्टी हो चुकेगे, और वह बर्बर शस्त्रास्त्रो का ढेर भी जिसे वे बढाये जा रहे है, नष्ट हो चुका होगा, तब इस कृशकाय हिन्दू द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक शस्त्र जगद्व्यापी बन जायगा और दुनिया के राष्ट्र उसे आशीर्वाद देगे कि उसने उन्हे श्रेष्ठतर मार्ग बताया—ऐसा मार्ग जो मानव-प्राणियो के लिए वस्तुत उपयुक्त है। उस समय उसको सब लोग परमात्मा का सच्चा दूत मानेगे, जिसका सन्देश बुद्ध, ईसा अथवा मुहम्मद की भाति एक देश या जाति के लिए सीमित नही है।

हिन्दू-धर्म दुनिया का सबसे पुराना धर्म है। उसके पीछे चालीस शताब्दियो का अटूट इतिहास है। उसके दर्शन और उपनिषद् अभी बन्द नही हुए है। वह सदा नवीन सिद्धान्तो की घोषणा, नये नियमो के प्रचार और नये ऋषियो और अवतारो के आगमन की कल्पना करता है। एक शब्द मे वह सत्य की उत्तरोत्तर सिद्धि है, और वह पुनर्जीवन के युग मे से होकर गुजर रहा है और उसके इतिहास मे एक स्मरणीय अध्याय जोडा जा रहा है। क्योकि महात्मा गाधी, जो हिन्दू आध्यात्मिकता के सच्चे अवतार है और प्राचीन ऋषियो की शृखला की प्रत्यक्ष कडी है, हिन्दू-धर्म के शाश्वत-सत्यो की पुनर्व्याख्या कर रहे है और उनको मौजूदा दुनिया की परिस्थितियो पर आश्चर्यजनक मौलिक रूप मे घटित कर रहे है। उनका सत्याग्रह का सन्देश, जैसाकि वह स्वय कहते है, हिन्दूधर्म के 'अहिंसा' सिद्धान्त का केवल विस्तार है और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ पर लागू किया गया है। भारतवर्ष के अलावा आवश्यक धार्मिक पृष्ठ-भूमि रखनेवाला कोई देश नही है, जहाँकि इस महान् सिद्धान्त को जिसका उद्देश्य मानव मे देवत्व जगाना है, विस्तृत और परिपूर्ण बनाया जा सके। उनका स्वराज्य, जो अहिंसा द्वारा प्राप्त किया जायगा और जिसमे सब धर्मो के साथ समान व्यवहार किया जायगा और सब समाजो को समान अधिकार और सुविधायें

प्राप्त होगी, 'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' इस हिन्दू-सिद्धान्त की राजनैतिक व्याख्या-मात्र है। उन्होने अस्पृश्यता-निवारण और आधुनिक जाति-पाँति की असमानताओ को दूर करने के लिए जो महान आन्दोलन शुरू किया है, उसका उद्देश्य वर्णाश्रमधर्म-भावना की मौलिक पवित्रता को पुन स्थापित करना है, जो उनके विचार मे पृथ्वी का सबसे बडा साम्यवाद है। उन्होने भारत के देहातो मे चर्खे और कर्घे के पुनरुद्धार की हार्दिक अपील की है और इस देश मे सम्पूर्ण मद्य-निषेध के लिए जो दलीले दी है वे हमको भारतीय सभ्यता के उस स्वरूप की याद दिलाती है, जिसे हमको हर हालत मे कायम रखना है। और सबसे अधिक, वह जिस प्रकार सब राजनैतिक और सामाजिक समस्याओ को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते है, जीवन के हर क्षेत्र में सत्य और अहिंसा पर जोर देते है और दैनिक जीवन की हर प्रवृत्ति में मनुष्यमात्र की आध्यात्मिक एकता को स्वीकार करते है, ये सब हिन्दू-धर्म के उत्कृष्ट पहलू है। इसके अतिरिक्त उन्होने साधु-सदृश आचरणो, उपवास, तप और त्यागमय जीवन के द्वारा आधुनिक जगत मे जहाँ हमारी इद्रियो को पथ-भ्रष्ट करने के अनेक साधन उपलब्ध है, हिन्दू-धर्म के ब्रह्मचर्य, तपस्या और वैराग्य के प्राचीन आदर्शो को प्रस्थापित किया है। इस प्रकार महात्मा गाधी, वचन और कर्म दोनो के द्वारा, हिन्दुत्व के उस भविष्य की ओर इगित कर रहे है जो उसके भूतकाल के समान ही उज्ज्वल होगा। निस्सन्देह हिन्दू-धर्म के इतिहास मे महात्मा गाधी महान् रचनाशील महापुरुषो में से एक है और उनके भाषण और लेख हिन्दुओ के पवित्र धर्म-ग्रन्थो के अग बनकर रहेगे।

: ४८ :

महात्मा : छोटा पर महान्

क्लेयर शेरीडन

[लन्दन]

कोई भी व्यक्ति जो उस छोटे-से महान् महात्मा से नहीं मिला है, उसके लिए उनके असली व्यक्तित्व को समझना प्राय असम्भव है।

इग्लैण्ड में समाचारपत्र जानबूझ कर उनके विषय में गलत बाते लिखते है। यदि उनके साथ न्याय किया जाय तो उनका प्रकाशन कुछ उतना ही हो, जितना कि अधिनायको (डिक्टेटरो)का होता है। मैंने बहुधा खयाल किया है कि यदि अमुक दिन और अमुक घण्टे समुद्र पार से दिये जानेवाले आक्रामक और शेखीभरे भाषण सुनने के बजाय दुनिया महात्मा गाधी की आवाज़ और उनके कुछ विशुद्ध सत्यो को सुन सके तो कितना आश्चर्य, कितना आनन्द उसे होता! वह वाणी कितनी प्रकाशदायक और कितनी

शिक्षाप्रद होती—स्पष्ट स्पष्टीकरण, आदर्श सयत विचार, घृणा-द्वेष का नाम नही और न हिंसा की धमकी।

मुझे स्मरण है कि जब लार्ड लण्डनडेरी ने मुझसे पूछा था कि "क्या गाधी हमसे बहुत द्वेष करता है ?" तो मुझे कितना आश्चर्य हुआ था।

गाधीजी व्यक्तिश या सामूहिक रूप मे घृणा या द्वेष भी कर सकते है, यह कल्पना ही प्रकट करती है कि हमने उनकी प्रकृति को समझने मे गहरी भूल की है।

मुझे गोलमेज परिषद् के दिनो उन्हे बहुत नजदीक से देखने का सुअवसर मिला है। मेरी मित्र सरोजनी नायडू के द्वारा महात्माजी से इस बात की स्वीकृति लीगई कि मै उनकी प्रस्तर मूर्ति बना सकती हूँ।

यह काम आसान न था। वह मेरी इच्छानुसार बैठने को तैयार न थे। इसका कारण या तो उनकी विनम्रता हो, या कार्याधिक्य हो अथवा उनको कला मे दिलचस्पी ही न हो। सम्भवत तीनो ही कारण हो।

मुझे याद है कि लेनिन ने भी ऐसी ही शर्ते लगाई थी, जबकि मुझे सन् १९२० मे क्रेमलिन मे उनके काम करने के कमरे मे प्रविष्ट होने की आज्ञा मिली थी। इन दोनो मे एक विचित्र समानता है। दोनो ही तीव्र आदर्शवादी है, हालाकि हिंसा के महत्व के सम्बन्ध मे वे अलग-अलग मत रखते है।

जब पहली मर्तबा महात्मा के दर्शन हुए तो उन्होने ठीक वही कहा जो लेनिन ने कहा था—"मै रुक कर नही बैठ सकता। आप मुझे अपना काम करते रहने दे और फिर जितना सम्भव हो उतना अपना काम कर ले।"

गाधीजी फर्श पर बैठकर कातने लगे। लेनिन अपने दफ्तर मे कुर्सी पर बैठकर पढते रहे थे।

दोनो अवसरो पर मुझे मौन अवज्ञा का भान हुआ, किन्तु दोनो ही उदाहरणो मे, अत पारस्परिक घनिष्ट मित्रता मे परिणत होगया। एक दिन गाधीजी ने लेनिन की ही भाँति प्राय उन्ही शब्दो और उसी व्यगयुक्त मुस्कराहट के साथ कहा—

"हाँ, तो तुम मि० विन्स्टन चर्चिल की भतीजी हो!"

यह वही पुराना विनोद था—विन्स्टन की एक सम्बन्धी उसके कट्टर शत्रु से मित्रता (हा ?) कर रही है। और गाधीजी ने बात आगे चलाई—

"तुम्हे मालूम है न, वह मुझसे मिलना नही चाहते ? किन्तु तुम उनसे मेरी ओर से कहना—कहोगी न ?—कि मै तुमसे मिलकर कितना प्रसन्न हुआ हूँ!"

लेनिन ने करीब-करीब इसी तरह कहा था—"तुम अपने चचा से कहना " आदि।

जब मैने उन दोनो के सिर पूरे बना लिये तो मैने दोनो से यही प्रश्न किया— "आपका इस मूर्ति के बारे में क्या खयाल है ?" और दोनो ने एक-सा उत्तर दिया—

"मैं नहीं जानता। मैं अपने ही चेहरे के बारे में क्या कह सकता हूँ, और मैं तो कला के विषय में कुछ जानता भी नहीं। किन्तु तुमने काम अच्छा किया है।"

मैं कभी-कभी निर्णय नहीं कर सकती कि इन दोनों व्यक्तियों में से दुनिया पर कौन अधिक असर छोड़ जायगा।

जहाँ रूस का सम्बन्ध है, प्रतीत होता है कि लेनिन का सिवाय इसके, वहाँ कोई चिन्ह नहीं छूटा है, कि उसका शरीर काच के सन्दूक में सुरक्षित रक्खा है। किन्तु अभी निर्णय करना बहुत जल्दी होगा। ईसाइयत को पैरों पर खड़े होने में दो सौ वर्ष लगे थे।

गांधीजी अभी क्रियाशील हैं। उनके काम का फल निकलना शुरू हुआ है। मेरी मान्यता है कि दोनों व्यक्तियों ने संसार को एक अजर-अमर सन्देश दिया है। यह ऐसा सन्देश है जो तिरस्कृतों और पददलितों को साहस प्रदान करता है। यह वह सन्देश है जिसने झुके हुओं को सिर ऊँचा करने का सामर्थ्य दिया है और इस दुनिया में उन्हें अपने स्थान का ज्ञान कराया है।

गांधीजी के सन्देश में आध्यात्मिकता की मात्रा है जो उसे दैवी सतह पर पहुँचा देता है।

जो लोग लेनिन के उद्देश्य के लिए मरे, वे वीर मालूम होते हैं, किन्तु जो गांधी के नाम पर मरेंगे वे बहादुर और शहीद दोनों ही प्रतीत होंगे।

मुझे अमेरिकन मूर्तिकार जो डेविडसन के साथ अपने विचारों को मिलाने का अवसर मिला था। उन्होंने भी गांधीजी की प्रस्तर मूर्ति बनाई थी। वह इस युग के अनेक प्रमुख व्यक्तियों की मूर्तियाँ बना चुके हैं, और हम एकमत थे कि इन लोगों से मिलने पर निराश होकर लौटना पड़ता है। औरों में से तो, यदि उन्हें सन्तरियों की सुपरिचित सजधज और छीने हुए राजमहलों की भूमिका की दृष्टि से न देखा जाय, तो शायद ही कोई अपना असर छोड़ता है। किन्तु गांधी इन सबसे ऊपर उठे हुए हैं। वह छोटा-सा नंगी टाँगों वाला व्यक्ति, देह पर अपनी खद्दर लपेटे, अपनी महान् सादगी में गहरा असर डालता है। वह प्रभाव ऐसा है और इतनी आदर की भावना पैदा कर देता है कि मैंने अन्तिम विदा होते समय श्रद्धापूर्वक उनका हाथ चूम लिया। उस समय उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वह मुझसे (ईसा के अर्थों में) प्रेम करने लगे हैं और यह कि वह अपने मित्रों को कभी नहीं भूलते।

उनकी उस अवस्था की नन्हीं-सी मूर्ति, जबकि वह पालथी लगाकर कातने बैठे थे, मेरी मेज पर रक्खी हुई एक आदरणीय वस्तु है। वस्तुतः वह कातने में तल्लीन होकर नीचे की ओर दृष्टि जमाये हैं। मुझे प्रतीत होता है मानो ध्यान-मग्न बुद्ध हों। उनकी शांत मुद्रा में से मुझे विश्वजननीन भावनाओं का स्रोत फूटता हुआ अनुभव होता है।

लन्दन-निवास के उन दिनों में उन्हें एक छोटी-सी दुनिया ही घेरे रहती थी, जो

कि यो छोटी होनेपर भी विविधता की दृष्टि से वडी दुनिया जैसी ही वडी थी ।

प्रतिदिन प्रात काल दस से बारह वजेतक उनसे कोई भी मिल सकता था, जो उनकी सलाह लेना या उनके प्रति अपना आदर-भाव ही प्रकट करना चाहता हो। वह हरेक का वन्धुभाव और सहिष्णुता के साथ स्वागत करते, पर अपने कातने के कार्य मे वाधा न पडने देते । केवल एक वार एक आगन्तुक का अभिवादन करने के लिए वह उठकर खडे हुए । मै नही मानता कि वह किसी राजघराने के व्यक्ति के लिए भी उठते, किंतु चर्च ऑव् इग्लैण्ड के पादरी के लिए उठे । वह एक किताव लेकर आये थे । उन्होने गाधीजी से अनुरोध किया कि "यह इसमे लिख दीजिए, कि हमको अच्छे ईसाई वनने के लिए क्या करना चाहिए ।"

मुझपर इस वात का वडा असर पडा कि जो लोग वहुत देरतक ठहरे रहते अथवा जिनके प्रश्न फिजूल या ऊटपटॉग प्रतीत होते, उनको गाधीजी किस दृढता पर मृदुल ढग से विदा कर देते थे ।

एक सज्जन आये जो यह दावा करते थे कि वह उन्हे दक्षिण अफ्रीका से जानते है और उन्होने गाधीजी को अपनी याद दिलाने की निष्फल कोशिश की—

"गाधीजी, क्या आपको हमारी दक्षिण अफ्रीका की वाते याद नही है ?"

"मुझे याद है दक्षिण अफ्रीका' ।"

"क्या आपको डरवन के होटल का वगीचा याद नही है ?"

"मुझे याद है कि मुझे होटल मे इस शर्त पर दाखिल किया गया था कि मै वगीचे मे न जाऊँ—होटलवाले एक हिन्दू को उसी दशा मे टिका सकते थे जवकि वह अपने कमरे मे पडा रहे—किन्तु इस सवमे कोई सार नही । मि० 'अ' मुझे आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई । किन्तु यदि आपको जल्दी हो तो मै आपको रोके रखना पसन्द न करूँगा । "

मुझे मि० 'अ' की वेवसी पर रज हुआ । किन्तु मै नही मानती कि गाधीजी ने वात काटने के लिए प्रसगावधान से काम लिया । शायद उनको 'दक्षिण अफ्रीका की कुछ वाते' सचमुच याद थी।

दूसरे आगन्तुक (ये एकके वाद एक आते रहते थे और गाँधीजी का शिष्य-मत्री उनकी सूचना देता रहता था) थे एक सुवेशभूषित नमूने के अग्रेज, जिनका महात्मा गाधी ने वडे मित्रभाव से स्वागत किया । किन्तु वातचीत मौसम की हालत और इग्लैण्ड की हरियाली के आगे न वढी । यह आगन्तुक एक डाक्टर थे, जिसने मोमवत्ती के प्रकाश मे अतडियो (के फोडे अपेडिसाइटिस) का ऑपरेशन करके गाधीजी की जान वचाई थी ।

डाक्टर के वाद एक फ्रासीसी वकील महिला आई । महात्माजी ने प्रश्न किया—"क्या फ्रास मे अव भी युद्ध की भावना विद्यमान है ?" महिला विरोध प्रकट करती

हुई बोली—"मोशिये गाधी, हमने युद्ध शुरू नही किया था। हमने तो केवल आत्मरक्षा की थी।" इस पर 'मोशिये गाधी' सहिष्णुतापूर्वक हँस दिये।

इसके बाद एक वामपक्षी साप्ताहिक के सम्पादक आये। जो प्रश्न मेरे भी मन मे थ, वे सब चर्चा के लिए पेश हुए। सम्पादक के पास बहुत निश्चित दलीले थी। गाधीजी के पास भी हर दलील का उत्तर था। उनके उत्तर अकाट्य और सन्तोष-कारक थे।

सम्पादक महाशय की भेट पूरी होने के पश्चात् पॉल रॉबसन की धर्मपत्नी गाधीजी के पैरो के पास फर्श पर आकर धम-से बैठ गई और अमरीका की हब्शी समस्या के बारे मे उनकी राय पूछने लगी। स्पष्टत यह ऐसी समस्या थी, जिसपर विचार करने का गाधीजी को मौका न मिला था। किन्तु श्रीमती रॉबसन ने अक सामने रक्खे और पूछा—"क्या आप समझते है कि किसी दिन हब्शियो का प्राधान्य होजायगा ?"

गाधीजी का ऐसा खयाल 'नही' था। वह आगे बढी।

"क्या आप समझते है कि हम हज़म कर लिये जायँगे ?"

"शायद "

"और तब ? "

"ठीक, तो उस समय वह 'हब्शी' समस्या ही न रहेगी।"

अचानक एक नौजवान जर्मन महिला बिना सूचना दिये ही आ धमकी। वह महात्माजी से इतनी भलीभाति परिचित प्रतीत होती थी कि उन्होने शिष्टाचार के पालन की आवश्यकता न समझी। गाधीजी कातते हुए रुक गये और अपना सूखा किन्तु कोमल हाथ आगे बढा दिया। उन्होने अपने दोनो हाथो मे उसे थाम लिया और इस तरह पकडे रही मानो वह किसी पवित्र अवशेष को थामे हो।

गाधीजी ने पूछा—"क्या तुम जर्मनी जा रही हो ?"

उसने अपना सिर झुकाया, उसके ओठ काँपे, किन्तु उत्तर नही दे सकी। उसकी आँखो मे आँसू छलछला आये।

"नमस्कार "

उसने एक कदम पीछे हटाया। उसके हाथ अब भी आगे बढे हुए थे, और आँखें गाधीजी पर जमी हुई एक प्रकार से आनन्द-मग्न थी। उसने एक सिसकी ली और गायब होगई।

आगाखाँ के पास से पगडी बाधे हुए एक दूत आया—"बहुत ज़रूरी, हिज़ हाईनेस उमीद करते है कि आप पचायत की बात मजूर कर लेगे ।"

इसके बाद एक हिन्दू विद्यार्थी अपनी अमरीकन धर्मपत्नी को मिलाने के लिए लाया। गाधीजी ने एक निगाह से पत्नी की ओर देखा और युवक से पूछा—

"क्या तुम अपनी धर्मपत्नी को भारत लेजाने का विचार रखते हो ?"

उसके स्वीकारात्मक उत्तर मे मुझे कुछ घवराहट-सी प्रतीत हुई। दुलहन निष्कपट, उल्लास और उमग से भरी थी। "महात्माजी, आप अमरीका कब आ रहे है ?" उसने पूछा।

"अभी नही, "

"वहाँ तो आपके लिए सब कोई पागल है।"

महात्माजी ने आख टिमकारते हुए कहा—"मेरे जानकार मित्रो का तो कहना है कि मुझे वहाँ चिडियाघर मे रख देगे।" (विरोध और हसी)

इसके बाद महात्माजी के जीवनी-लेखक सी एफ एण्ड्रूज सप्ताहान्त का कार्यक्रम स्थिर करने के लिए आये।

"हाँ, हाँ।" गाधीजी ने कहा। वह टूटे हुए धागे को जोडने मे तल्लीन थे।

"और बापू, आज शाम को पन्द्रह अग्रेज पादरी स्वागत करेगे, यह न भूलिएगा। लन्दन के लाट पादरी सात बजे जरूरी काम से आपसे मिलने आनेवाले है।"

गाधीजी ने तीव्र दृष्टि से ऊपर देखा—"सात बजे की प्रार्थना का क्या होगा ?"

श्री एण्डरूज ने कहा कि आगे पीछे कर लेगे। गाधीजी ने फैसला किया—"मोटर मे, रास्ते मे ही कर लेगे।"

कोई भी समझ सकता है कि पश्चिम की अशान्ति मे पूर्वी सन्यासी का जीवन विताना कितना कठिन होगा। सोमवार के मौन-दिवस पर सतत आक्रमण होता रहता था और अत्यन्त दृढ प्रयत्न के द्वारा उसकी रक्षा करनी पडती थी। भोजन भी सदा चिन्ता का विषय बना रहता था।

सायकाल की सात बजे की प्रार्थना मे सम्मिलित होने की अनुमति मिलने पर जब मैंने अपना आभार प्रदर्शित किया, तो महात्माजी ने कहा—"वह तो सबके लिए खुली है। किन्तु यदि सुबह तीन बजे की प्रार्थना मे उपस्थित रहना चाहो तो मैं अपने मित्रो को कहूँ कि किंग्सले हॉल मे रात के लिए बन्दोवस्त करदे—पर अपना कम्बल साथ लेती आना, क्योकि वह हम गरीबो की बस्ती है।"

'किंग्सले हॉल' कारखाने के मजदूरो मे सेवा-कार्य करनेवाली सस्था है। उसके लिए कुमारी लिस्टर ने अपना जीवन और सपदा उत्सर्ग कर दी है। कुमारी लिस्टर और उनके कार्य के प्रति अपनी पसन्दगी प्रकट करने के लिए ही महात्माजी ने अपनी इग्लैण्ड की राजकीय यात्रा के समय किंग्सले हॉल का आतिथ्य स्वीकार किया था।

मैं कुहरेभरी कडकडाती रात मे वहाँ पहुँची। मुझे एक कमरे में लेजाया गया। वह एक छोटा-सा सफेद सादा तिकोना कमरा था। उसमे छत पर खुली बारादरी मे से होकर जाना पडता था। शुक्लवसना मूर्ति थी मीराबाई। दीवार के सहारे झुकी खडी वह एक प्राचीन सत जैसी दीखती थी। उन्होने मुझे ठीक तीन बजे से कुछ

पहले जगा देने का वादा किया।

मै उस रात्रि को कभी न भूलूँगी—अजीव रहस्यमयी सुन्दरता थी उसकी। अर्द्धनिद्रा मे और वालोवाला कोट पहने मै मीरावाई के पीछे-पीछे महात्माजी की कोठरी मे गई। वह छोटी, घवल और ठण्डी थी। वह फर्श पर एक पतली चटाई पर वैठे हुए थे। खद्दर ओढे हुए वह वहुत दुवले-पतले दिखाई देते थे।

हमारे साथ महात्माजी के हिन्दू मन्त्री भी आ सम्मिलित हुए। दीपक वुझा दिया गया और खुले हुए दरवाजे मे से धुँवला, शीतल, नीला, कुहरा आरहा था। दो हिन्दू और एक अग्रेज़ सन्त ने प्रार्थना के मन्त्रो का उच्चार किया। मुझे लगा कि मैं स्वप्न देख रही हूँ।

पाँच वजे से कुछ पहले मीरावाई ने मुझे फिर जगाया। यह महात्माजी के घूमने जाने का समय था और उसके साथ वात करने का सवमे उत्तम अवमर समझा जाता था।

यह विलकुल स्पष्ट था कि और किमी प्रदेश मे तो यह जीवन सुन्दर लग सकता है या कम कडे कार्यक्रम के अनुकूल तो वह हो सकता है। पर महात्माजी अपनी लन्दन की राजनैतिक और दूसरी तमाम कार्य-प्रवृत्तियो के साथ-साथ अपने धार्मिक सन्यस्त जीवन को किस भाँति निभा सके, मेरी कल्पना से तो इसका उत्तर उनका आध्यात्मिक अनुशासन ही है। किन्तु मै, जिसने रत्तीभर अनुशासन का अभ्यास नहा किया था, शीत, कुहरे और अनिद्रा के मारे मानसिक शारीरिक और आध्यात्मिक तीनो तरह से विलकुल शिथिल होगई थी। मै महात्माजी के प्रात कालीन भ्रमण मे उनका पीछा करके उसका लाभ न उठा सकी। मैने पीछा करना शब्द का जानवूझकर उपयोग किया है, क्योकि खद्दर अपने चारो ओर लपेटकर महात्माजी इतनी तेजी के साथ चलते है कि वह कुहरे मे कही गायव न होजायँ इस डर से हमे करीव-करीव दौडना पडता था। हमारे पीछे, हमने सुना कि, हाँफते-हाँफते दो गुप्तचर चले आ रहे थे, जिनको कि महात्माजी की रक्षा करने या उनपर पहरा रखने के लिए नियुक्त किया गया था।

गाधीजी को अपना मार्ग ज्ञात था। वह नहर के किनारे-किनारे होकर जाता था। वह आँख वन्द करके उसपर से गुजर सकते थे। यद्यपि नहर दिखाई न पडती थी, किन्तु पानी की आवाज़ सुनाई पडती थी, जो एक पनचक्की में जाकर गिरता था। इस रास्ते पर दो आदमी एकसाथ मुश्किल से चल पाते थे। मीरावाई ने मुझे आगे वढाकर कहा—"वढो, अव तुम्हारे लिए मौका है।" मुझे कुछ-कुछ याद पडता है कि हमने धर्म के वारे मे वात की थी और उन्होने वताया कि जो मत्य और ईमानदारी से प्रेम करते है, द्वेप और कटुता को छोड चुके है, वे सव दुनियाभर मे एक दूसरे से मिलते-जुलते ही है किन्तु वस्तुत यह आवश्यक नही है कि गाधीजी किसीके साथ

शब्दो द्वारा बात करे ही करे। उनके वातावरण मे रहनेमात्र से मनुष्य अपने-आपको उच्चतर सतह पर पहुँचा हुआ अनुभव करता है। उनके पास मौन रहकर चिन्तन करने से काफी लाभ उठाया जा सकता है।

सात साल बाद, जबकि भावुकता शान्त हो चुकी है और स्मृति एक स्वप्न रह गई है, मै यह बिलकुल सही-सही कह सकती हूँ कि गाधीजी से परिचय होने के कारण मुझमे कुछ परिवर्तन होगया है। जीवन मे किसी कदर पहले से रस आगया है कुछ वह वस्तु, उसकी आभा, मिली है जिसे दूसरे अधिक उपयुक्त शब्द के अभाव मे हम 'प्रेरणा' कहते है।

: ४६ :

गांधीजी की राजनीति-पद्धति

जनरल जे. सी स्मट्स, एम. ए., एल एल. डी., डी. सी. एल

[प्रधान मन्त्री, दक्षिण अफ्रीका]

यह उपयुक्त ही है कि मै, जो एक पीढी पहले गाँधीजी का विरोधी था, आज तीन बीसी और दस वर्ष की आयु की शास्त्रोक्त सीमा पर पहुँचने पर उस भुक्तभोगी वूढे योद्धा को प्रणाम कर रहा हूँ। सामुद्रिक शास्त्री उस सीमा से आगे कृपा कम करते है, पर परमात्मा करे उनकी आयु लम्बी हो और आनेवाले उनके वर्ष ससार के लिए सफल सेवामय और उनके लिए मानसिक शान्ति से परिपूर्ण हो। मै इस पुस्तक के अन्य लेखको के साथ उनकी महान् सार्वजनिक सेवाओ को स्वीकार करने और उनके उच्च व्यक्तिगत गुणो की प्रशसा करने मे हृदय से शामिल होता हूँ। उनके जैसे मनुष्य हम सबको साधारण स्थिति और निरर्थकता की भावना से ऊँचा उठाते है और हमे प्रेरणा देते है कि सत्कार्य करने मे हमे कभी शिथिल न होना चाहिए।

दक्षिण अफ्रीका यूनियन के प्रारम्भिक दिनो मे हमारी जो लडाई हुई, उसका गाँधीजी ने स्वय वर्णन किया है और वह सर्वविदित है। ऐसे व्यक्ति का विरोधी होना मेरे भाग्य मे लिखा था, जिसके प्रति उस समय भी मेरे दिल मे अत्यधिक आदर भाव था। दक्षिण अफ्रीका के लघु मच पर जो सघर्ष हुआ, वह गाँधीजी के चरित्र की उन विशेषताओ को प्रकाश मे लाया, जो भारतवर्ष की बडे पैमाने पर लडी गई लडाइयो मे और भी प्रमुख रूप मे प्रकट होचुकी है, और उनसे यह प्रकट होता है कि जिन उद्देश्यो के लिए वह लडते है, उनके लिए यद्यपि वह सर्वस्व उत्सर्ग करने को तैयार रहते है, किन्तु परिस्थिति की मानव भूमिका नही भुलाते, अपने मस्तिष्क का सतुलन कभी नहीं खोते, न द्वेष के वशीभूत ही होते है और अत्यन्त कठिन प्रसगो में भी

अपना मृदु-मधुर विनोद कायम रखते है। उस समय भी और उसके बाद भी उनका व्यवहार और उनकी भावना आज की निष्ठुर और नग्न पाशविकता से बिलकुल भिन्न थी।

मुझे खुले दिल मे यह स्वीकार करना चाहिए कि उस समय की उनकी प्रवृत्तियाँ मेरे लिए अत्यन्त परेशान करनेवाली थी। दक्षिण अफ्रीका के अन्य नेताओ के साथ उस समय में पुराने उपनिवेशो को एक सयुक्त राष्ट्र में समाविष्ट करने, नवीन राष्ट्रीय तत्र का शासन जमाने और बोअर-युद्ध के बाद जो-कुछ शेष बचा था, उसमें से नये नये राष्ट्र का निर्माण करने मे व्यस्त था। वह पहाड के समान भारी कार्य था और उसके लिए मुझे अपना हर क्षण लगाना पड रहा था। यकायक इस गहरी कार्यव्यस्तता के बीच गाधीजी ने एक अत्यन्त आफतभरा प्रश्न खडा कर दिया।

हमारी अलमारी मे एक ककाल पडा था। वह था दक्षिण अफ्रीका का भारतीय प्रश्न। ट्रान्सवाल ने भारतीयो के आगमन को मर्यादित करने का प्रयत्न किया था। नेटाल मे भारतीयो पर एक टैक्स लगता था, जिसका उद्देश्य था कि गन्ने के खेतो पर काम करनेवाले भारतीय अपने काम करने की मियाद पूरी होने के बाद अपने देश को लौट जावे। गाधीजी ने इस प्रश्न को हाथ मे लिया और ऐसा करते हुए नई पद्धति का उदय किया। इस पद्धति को उन्होने आगे चलकर अपने भारतीय आन्दोलनो मे ससार-प्रसिद्ध बना दिया है। उनका उपाय यह था कि जानबूझकर कानून को तोडा जाय और अपने अनुयायियो को आपत्तिजनक कानून के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध करने के लिए सामूहिक रूप से सगठित किया जाय। दोनो प्रान्तो मे घोर और चिन्ताजनक अशान्ति पैदा हो गई, गैरकानूनी आचरण के लिए भारतीयो को बडी तादाद में कैद करना पडा और गाधीजी को जेल मे थोडे काल के लिए वह आराम और शान्ति मिल गई, जिसकी निस्सन्देह उन्हे इच्छा थी। उनकी दृष्टि मे सब बाते योजनानुसार हुई। मेरे लिए, जिसे कानून और अमन की रक्षा करनी थी, परिस्थिति कठिनाईपूर्ण थी। मेरे सिर पर ऐसे कानून पर अमल करवाने का बोझा था, जिसकी पीठ पर दृढ लोकमत न था और जिसमे अन्त में जब कि उस कानून को रद कर देना पडा निराशा मिली। उनके लिए विजयी मोर्चा था। व्यक्तिगत लिहाज की भी कमी न थी, क्योकि गाधीजी के तरीके में ऐसी कोई बात नही है जिसमे एक विशेष व्यक्तिगत स्पर्श या लिहाज न हो। जेल मे उन्होने मेरे लिए चप्पलो का एक बहुत ही उपयोगी जोडा तैयार किया और छूटने पर मुझे भेट किया। उसके पश्चात् मैंने कितनी ही गर्मियो मे उन चप्पलो को पहना है। हालाकि आज भी मै यह अनुभव कर सकता हूँ कि ऐसे महापुरुष के बनाये जूतो को पहनने के भी मै योग्य नही हूँ। जो भी हो, यह थी वह भावना, जिसमें हमने दक्षिण अफ्रीका मे अपनी लडाई लडी थी। उसमें घृणा, द्वेष या व्यक्तिगत दुर्भावना को कोई स्थान न था, मानवता की भावना हमेशा विद्यमान थी। और जब लडाई खत्म हुई तो

एसा वातावरण था कि जिसमे अच्छी सधि सम्भव थी। गाधीजी और मेरे वीच एक समझौता हुआ, जिसे पार्लमेण्ट ने मजूर किया और जिसके कारण दोनो कौमो मे वर्षो शान्ति वनी रही। वह भारत का भगीरथ कार्य हाथ मे लेने और अपनी भावना और व्यक्तित्व को, जिसका आधुनिक भारतीय इतिहास मे दूसरा कोई उदाहरण नही है, उस देश के जन-साधारण पर अकित करने के लिए दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए रवाना होगये। और इस सारे अर्से मे वह अधिकाश मे उन्ही उपायो को काम मे ला रहे है, जिनको कि उन्होने भारतीय प्रश्न पर हमारे साथ हुए सघर्षो मे सीखा था। वस्तुत दक्षिण अफ्रीका उनके लिए एक वडा भारी शिक्षणस्थल सिद्ध हुआ, जैसाकि उन अन्य प्रमुख व्यक्तियो के लिए, जोकि समय-समय पर इस विचित्र आकर्षक और उत्तेजक महाद्वीप मे हमारे जीवन के भागीदार हुए है।

मैने 'अधिकाश मे' कहा है, सम्पूर्णत नही। निष्क्रिय प्रतिरोध के पुराने तरीके के अलावा, जिसका नाम अव 'असहयोग' रख दिया गया है, उन्होने भारतवर्ष मे एक नवीन विशिष्ट युक्ति ईजाद की है, जो वडी परेशानी मे डालनेवाली किन्तु प्रभावशाली है। सुधार की यह युक्ति अनशन द्वारा प्रतिपक्षी को सहमत करने का प्रयत्न करती है। सोभाग्यवश दक्षिण अफ्रीका मे, जहाँ लोग अनावश्यक प्राण-हानि को भय की दृष्टि से देखते है, हमको इस युक्ति का सामना नही करना पडा। भारतवर्ष मे उसने आश्चर्यजनक कार्य सम्पादित किये है और गाधीजी को ऐसी सफलताये प्रदान की है जो सम्भवत अन्य उपायो द्वारा असभव थी।

इस अपूर्व युक्ति पर—खासकर राजनैतिक युद्ध मे तो यह नई ही है—निकट से विचार करना दिलचस्प होगा। मै कल्पना नही कर सकता कि ग्रेटब्रिटेन मे विरोधी दल का नेता अधिकारारूढ सरकार को उसकी नीति की त्रुटि अनुभव कराने के लिए आमरण अनशन करेगा। हम यहाँ विचित्र प्रदेश मे जनतन्त्र की पद्धति और पश्चिमी सभ्यता से भी दूर रहते है। मेरे विचार से युद्ध के इस रूप पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। मै यहाँ इसपर केवल विहगावलोकन ही कर सकता हूँ।

भारतीय आचार-विचार के लिए यह विल्कुल नया नही है। भारत मे यह स्वीकृत पद्धति मालूम होती है कि लेनदार अनिच्छुक देनदार पर दवाव डालने के लिए देनदार पर नही, वल्कि स्वय अपनेपर कष्टो को निमन्त्रित करे। देनदार को, जो कर्ज अदा न करना चाहता हो, हवालात मे रखवाना पश्चिमी तरीका है या रहा है। किन्तु भारत मे ऐसी वात नही होती। वहाँ लेनदार खुद जेलखाने चला जायगा या देनदार के दर्वाजे पर अनशन करके वैठ जायगा, ताकि देनदार का हृदय पिघल जाय और उसकी या उसके मित्र की थैली का मुँह खुल जाय। गाधीजी ने इस भारतीय पद्धति को अपना लिया है और केवल उसका प्रयोग और परिणाम वदल दिया है। वह सरकार के या किसी पक्ष या वर्ग के दरवाजे पर अनशन करके, आवश्यक हो तो आमरण

अनशन करके, बैठ जावेगे ताकि वह उसको समझा सके अथवा दूसरे शब्दो मे, ठीक रास्ते पर आने के लिए उसपर दवाव डाल सके। वह देनदार की भाति सफल होते है, दलील देकर या समझाकर नही, वल्कि अन्तस्तल मे छिपे हुए भय, लज्जा, पश्चात्ताप, सहानुभूति और मानवता की भावनाओ को जगाकर—उन भावनाओ को भी जो मानस मे गहरी छिपी रहती है और जो दलील अथवा समझाहट से सामूहिक रूप मे कही अधिक प्रभावशाली होती है। देनदार अर्थात् विपक्षी सरकार या जाति नैतिक दृष्टि से खोखली होजाती है और अन्त मे इस भावनापूर्ण सामूहिक असर के आगे झुक जाती है।

कुछ दृष्टियो से यह युक्ति आधुनिक युग के विशाल परिमाण पर किये गये प्रचार के तरीको से ज्यादा भिन्न नही है। वह लोकमत पर दलील के द्वारा नही, वल्कि भावनाओ के वल पर जिनमे से कई वुद्धि-सगत नही भी होती, विजय प्राप्त करने में वैसी ही कारगर होती है। कोई भी यह भलीभाति कह सकता है कि यह युक्ति भयावह है और इसका दुरुपयोग हो सकता है। यह ठीक उसी तरह की है जिस तरह कि पश्चिमी दुनिया मे लोकमत को भ्रष्ट और विषाक्त करने के लिए प्रचार को साधन वनाया जा रहा है। उद्देश्य चाहे योग्य हो अथवा घृणित, तरीका खतरनाक है, कारण कि वह तर्क और वैयक्तिक उत्तरदायित्व को जड से काटता है और व्यक्ति की आन्तरिक पुण्य-प्रतिष्ठा पर जोकि समस्त मानव-स्वभाव का अन्तिम गढ है, प्रहार करता है।

किन्तु गाधीजी की अनशन की कला एक वहुत महत्वपूर्ण रूप मे पश्चिमी प्रचार से भिन्न है। इस कला का दर्शन करनेवाला (यदि मै इस शब्द का प्रयोग कर सकूँ तो) अपने कष्ट-सहन के विचार और दृश्य से समाज के अन्त करण को जाग्रत करने की कोशिश करता है। इस युक्ति का आधार कष्ट-सहन का सिद्धान्त है। नि स्वार्थ कष्ट-सहन दूसरो की भावनाओ को शुद्ध वनाता है। उसका वैसा ही शुद्ध करनेवाला ऊँचा उठानेवाला असर पडता है जैसाकि अरस्तूनी परिभाषा के अनुसार अति गम्भीर घटना का पडता है।

यहाँ हम केवल यूनानी गम्भीर या दु खान्त घटना की भावना को ही नही, वल्कि अत्यन्त गहरे धार्मिक स्रोत को भी छूते है। विशेषकर ईसाई-धर्म मे तो कष्ट-सहन का ही उद्देश्य सर्वोपरि या मुख्य है। क्रॉस समस्त मानव इतिहास मे एक अत्यन्त महत्व पूर्ण गम्भीर घटना का प्रतीक है। इशियाह का तपस्वी सेवक और क्रास पर वलिदान होनेवाला शहीद अपने वन्धुओ के प्रति जव अपनी आत्मा को उत्सर्ग करता है तो भावनाये इस कदर जाग्रत हो जाती है कि उनकी तीव्रगति सारी दलीलो अथवा वुद्धिसगत युक्तियो को पीछे छोड जाती है। कष्ट-सहन की दलील ससार मे सवसे अधिक प्रभाव-शाली है और रहेगी। प्रारम्भिक रोमन साम्राज्य में धर्मो के व्यूह मे ईसाई धर्म कष्ट-

सहन और वलिदान द्वारा ही विजयी हुआ था, न कि उसके समर्थको की दलीलो से। और न ही उस उन्नत युग के आधुनिक दर्शनशास्त्रो ने उसकी प्रगति को रोका। इसी प्रकार आज यूरोप मे निर्दय और नग्न अमानुषता अपने से भिन्न जाति, धर्म या विश्वास रखनेवालो पर वडे पैमाने पर जो सितम वरसा रही है, हो सकता है कि वह उन महान् प्रणालियो का ही विध्वस करदे, जिनका कि हमने इतने गर्व के साथ पोपण किया है।

इसी कष्ट-सहन के शक्तिशाली सिद्धान्त पर गाधीजी ने सुधार की अपनी नवीन युक्ति का आधार रक्खा है। जो उद्देश्य उनके हृदय को प्रिय है उसके प्रति दूसरो की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करने लिए वह स्वय कष्ट-सहन करते है। जहाँ दलील और अपील के सामान्य राजनैतिक अस्त्र विफल होजाते है, वहाँ वह इस नई युक्ति का आश्रय लेते है, जोकि भारत और पूर्व की परम्परा पर आधारित है। जैसाकि मै कह चुका हूँ इस पद्धति पर राजनैतिक विचारको को ध्यान देना चाहिए। राजनैतिक उपायो मे गाधीजी की यह विशिष्ट देन है।

एक विचार और कहकर मै इसे पूरा कर दूँगा। वहुत-से लोग और कुछ वे भी जो सच्चे दिल से उनके प्रशसक है, उनके कुछ विचारो से और उनकी कुछ कार्य-पद्धतियो से असहमत होगे। उनके काम करने का ढग उनका अपना मौलिक है और महापुरुपो की भाति सामान्य मापदण्ड से मेल नही रखता। किन्तु हम उनसे चाहे कितनी वार असहमत हो, हमको सदा उनकी सच्चाई, उनकी नि स्वार्थता और सर्वोपरि उनकी मूलभूत और सार्वभौम मानवता का भान रहता ही है। वह हमेशा महा-मानव की भाति का कार्य करते है। सभी वर्गो और कौमो के लिए और विशेपकर कुचले हुओ के लिए उनके हृदय मे गहरी सहानुभूति रहती है, उनके दृष्टिकोण मे वर्गीयता तनिक भी नही है, वल्कि वह उस सार्वभौम और शाश्वत मानवी भाव से अलकृत है जोकि आत्मा की महानता का परीक्षा चिन्ह है।

यह एक विचित्र वात है कि यूरोपीय अशान्ति और ह्रास के दिनो मे एशिया किस प्रकार धीरे-धीरे आगे आ रहा है। वर्तमान विश्व के सार्वजनिक रगमच पर विद्यमान सवसे वडे महापुरुपो मे दो एशियावादी है—गाधी और चागकाई शेक। दोनो ही विराट जनसमूह को उच्च मार्ग पर ऐसे लक्ष्य की ओर लेजा रहे है जो मूलत उच्च ईसाई आदर्श से मिलता है और जिसे पश्चिम ने प्राप्त तो किया है, किन्तु जिसपर अव वह हार्दिकतापूर्वक आचरण नही कर रहा है।

: ५० :

कवि का निर्णय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[शान्तिनिकेतन, बोल्पुर, बगाल]

समय-समय पर राजनीति के क्षेत्र में ऐसे इतिहास-निर्माता जन्म लेते है जिनकी मानसिक ऊँचाई मानवता की सामान्य सतह से ऊपर होती है। उनके हाथ मे एक अस्त्र होता है, जिसकी वशीकरण और प्रभावात्मक शक्ति लगभग शारीरिक होती है और होती है प्राय निर्मम। वह मानव-स्वभाव की दुर्बलताओ—लोभ, भय और अहकार से लाभ उठाता है। जब महात्मा गाधी ने पदार्पण किया और भारत की स्वतन्त्रता का पथ उन्मुक्त किया तब उनके हाथ मे सत्ता का कोई प्रकट साधन न था, दबाव डालनेवाली जबर्दस्त सत्ता न थी। उनके व्यक्तित्व से जो प्रभाव उत्पन्न हुआ, वह सगीत और सौन्दर्य की भाति अवर्णनीय है। उसने दूसरो पर इसलिए सबसे ज्यादा प्रभाव डाला कि उसने स्वत आत्म-समर्पण की भावना को प्रकट किया। यही कारण है कि हमारे देशवासियो ने विरोधी तत्त्वो को ठिकाने रखने में गाधीजी की स्वाभाविक चतुराई की ओर क्वचित् ही ध्यान दिया है। उन्होने तो उस सत्य पर आग्रह रक्खा है जो उनके चरित्र मे सहज स्पष्टता के साथ चमकता है। यही कारण है कि यद्यपि उनकी प्रवृत्तियो का क्षेत्र व्यावहारिक राजनीति है पर लोगो ने उनके जीवन की तुलना उन महापुरुषो से की है जिनकी आध्यात्मिक प्रेरणा मानवता के समस्त विविधरूपो का अपने में समन्वय करती हुई उनसे भी परे पहुँच जाती है और सासारिकता को उस प्रकाश की ओर उन्मुखकर देती है, जिसका उद्गम ज्ञान के शाश्वत स्रोत मे है।

: ५१ :

गांधी : चरित्र अध्ययन

एडवर्ड टॉमसन

[ऑक्सफोर्ड]

प्रारम्भ मे ही मै अपनी एक कठिनाई प्रकट कर दूं। मै गाधीजी से अच्छी तरह परिचित नही हूँ और उनके हाल के कार्यकलाप और भारत से आनेवाले समाचारो ने

मेरे हृदय मे वेचैनी उत्पन्न करदी है। सौभाग्यवश उनके अवतक के कार्यो ने ही वहुत कुछ इतिहास का निर्माण कर दिया है और अपनी 'आत्मकथा' मे उन्होने स्वय ही अद्भुत स्पष्टवादिता के साथ अपने चरित्र और उद्देश्य की गवेषणा करने का मसाला प्रस्तुत कर दिया है।

वह गुजराती हे, अर्थात् ऐसी जाति मे उत्पन्न हुए है जो युद्धप्रिय नही रही है और जो, विशेपतया मराठो द्वारा वहुधा पददलित की गई और लूटी गई है। पश्चिम मे उनकी जाति का वहुत ही कम ज़िक्र किया जाता है क्योकि पश्चिमवाले इसके महत्त्व को समझते ही नही, परन्तु भारत मे इन वातो को वहुत कम भुलाया जाता है। उन्होने अपने आपको इस व्यग का शिकार वना लिया है (यह उनके नैतिक साहस का एक अग है कि वह इस वात को जानते है, लेकिन जानते हुए भी उससे विचलित नही होते) कि वह अहिसा को जो इतना महत्त्व देते है वह उनके एक शान्तिप्रिय जाति मे जन्म लेने का लक्षण है। मेरा विचार है कि मराठे कभी इस वात को नही भूलते कि वे मराठे है और गाधी गुजराती है, गाँधी के प्रति इन लोगो की भावनाये उतरती-चढती और डावाडोल-सी रहती आई है। राजपूतो के वारे मे भी यही वात कही जा सकती है, क्योकि वह भी एक युद्धप्रिय जाति है। मध्यभारत के एक राजा ने मुझसे कहा था—"एक राजपूत की हैसियत से मै अहिसा के सिद्धान्त को तो विचार मे ही नही ला सकता। मारना और युद्धप्रिय होना तो राजपूत का 'धर्म' है।" इतने पर भी अहिसा गाधी के उपदेशो का तत्त्व है और हालाकि उन्हे इसे कितने ही नये अनुयाइयो पर उनकी अनिच्छा रहते हुए भी लादना पडा है, परन्तु यही उनकी अनूठी विजयो का साधन हुआ है। मै आगे चलकर फिर इसका वर्णन करूँगा और वतलाऊँगा कि यह वात सही है।

कोई भी व्यक्ति अपने वश और सस्कारो के प्रभावो से पूर्णरूपेण नही वच सकता और कभी-कभी यह वात उस मनुष्य के प्रतिकूल भी पडती है कि उसका जन्म ऐसे राष्ट्र मे हुआ हो जिसमे राजनैतिकता और सैनिकता की भावना न हो, और फिर उस राष्ट्र की भी एक छोटी और महत्वहीन रियासत मे। यह आदर्श भारतवर्ष मे सदा से चला आया है कि जव प्रजा पर अत्याचार हो तव राजा स्वय उसकी शिकायतो को सुने। लेकिन जवतक कि ससार की सरकारो मे और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रणालियो मे आमूल परिवर्त्तन न हो तवतक यह आदर्श व्यावहारिक रूप मे एक लुप्त युग की वस्तु है। यह तो पैरिक्लीज के एथेन्स मे सम्भव होसकता था, जहाँ हरेक प्रमुख व्यक्ति को लोग शक्ल से पहचानते थे और स्वतन्त्र जनसमुदाय वहुत कम था या गाधी के वचपन के पोरवन्दर (गुजरात की छोटी रियासत) मे। गाधीजी की राजनीति उन प्रश्नो का हल करने के लिए अपर्याप्त है, जो घरेलू या देहाती अर्थनीति से परे के है—जैसे एकसत्तात्मक शक्तियो से भरे ससार में भारत की

रक्षा का प्रश्न। वह तो सिर्फ छोटी और आदिम इकाइयो का ही विचार करते है और ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक ससार की जटिलता को नही देखते (देखते है तो कुछ ऐसा मानकर कि उस सबसे बचते और डरते रहना चाहिए—काश कि यह सम्भव होता !) वह सदा व्यक्ति का ही चिन्तन करते है। और यद्यपि, यदि आप चरमसीमा पर ही पहुँचना चाहे, यह उस प्रतिकूल प्रवृत्ति से कही अच्छा है जो मनुष्यो को एक समुदाय के रूप मे या ऐसे पेडो के रूप मे जिनसे कर (टैक्स) झाडे जा सकते हो, या तोपो के भोजन के रूप मे, या 'जनशक्ति के भडार' के रूप मे (जिसमे से कुछ हजार या कुछ लाख "आर्थिक कारणो" के लिए गोली से उडा दिये जावे या मार डाले जावे) देखती है, तो भी, अगर भारत की भलाई करना हो तो, इस खड-खड पृथक् प्रक्रिया के स्थान पर बडे पैमानेवाली योजनाओ और कार्यो को अपनाना होगा।

परमात्मा की भारत पर बडी कृपा है कि उसने गाधी के बाद नेहरू को भी जन्म दिया। इस युवक से यह आशा की जा सकती है कि वह अपने पूर्वगामी के कार्य मे जो कुछ महान और प्रभावशाली है, उसे कायम भी रक्खे और साथ-ही-साथ उस कार्य को उस दुनिया मे भी ले जाने का साहस करे जिस पर उस वयोवृद्ध का विश्वास नही है।

कुछ-तो इसी सकुचित दृष्टिकोण के कारण गोलमेज परिषद मे गाधीजी थोड असफल जान पडे और अपने विरोधियो की सतह तक कभी न पहुँच सके, जो मनुष्यो को दलो और समुदायो के रूप मे देखते थे। आज की इस दुनिया मे भी उन्हे कठिनाई पेश आरही है जहाँ कि एक के बाद एक गुट्ट बनाकर राष्ट्र दूसरे देशो पर टूट पडने के लिए तुल बैठे है। उनका अहिसा का अस्त्र जो उनके हाथ मे इतना तीक्ष्ण और बलशाली था, कुद हो चुका है। मेरे घर मे एक बातचीत के दौरान मे यह उपमा दी गई थी कि वह एक कैंची की तरह है जिसमे दो फल आवश्यक है, एक विरोधी का तो एक उनका। भारत मे यह इस कारण सफल हुआ कि वह ऐसी सरकार के विरुद्ध प्रयुक्त हुआ जिसने—चाहे अपूर्णरूप से ही सही—इस बात को स्वीकार कर लिया कि विद्रोह और दमन के खेल मे भी कुछ नियम होते है। उनके (गाधीजी के) शत्रु के हृदय मे मनुष्यता और उदारता का कुछ अश था। इसलिए जब राष्ट्रीय सेवको की कतार-की-कतारे पुलिस की लाठियो की मार खाने को निर्भयतापूर्वक खडी हो गई तो सरकार अन्त मे निरुपाय हो गई और अग्रेज दर्शक तो लज्जा के मारे दब गये तथा अमेरिका के सवाददाता अपनी घृणा और क्रोध के तार अपने देश को देने के लिए दौडे। यह ऐसी परिस्थिति थी कि यदि आपमे अन्त तक सहनशीलता की शक्ति हो तो अवश्य अन्त मे आप बचे भी रह सकते थे और आपका काम भी सिद्ध हो जा सकता था।

वह सब परिस्थिति निकल गई और यह विश्वास करना कठिन है कि वास्तव मे हमने ऐसा होते देखा था। गाधीजी ने कहा है कि अगर अबीसीनिया-निवासी शुद्ध

अहिंसा का पालन करते तो उनकी विजय होती और (जब एकाधिकार युग के पूर्व जब उन दानव-स्वभाव व्यक्तियो का किसीको स्वप्न मे भी विचार न था जो आज हमारी आँखो के सामने घूम रहे है) उनको कैंचीवाली उपमा बतलाई गई तो उन्होने उसे न माना। परन्तु निस्सन्देह पुराने धनुषो की तरह उनका अहिंसा का अस्त्र भी आज एक इतिहास की वस्तु बन गया है। यदि उनका मुकाबिला किसी फासिस्ट या नात्सी शक्ति से पडा होता, या हिन्दुस्तान पर ऐसी सेनाओ ने आक्रमण किया होता, जो वायुयानो के द्वारा निर्दयतापूर्वक नगर-के-नगर विध्वस कर देती है और युद्ध के बदियो को गोली से उडवा देती है, तो क्या हमको इसकी (अहिंसा की) मर्यादाओ का पता नही लग जाता ? क्या यह आश्चर्य की बात है कि राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) मे भी इसके सम्बन्ध मे तीव्र मतभेद है तथा नवयुवकगण इसे प्राचीन काल के रेकलो और तलवारो की भाति अजायबघर की वस्तु समझते है ?

परन्तु इस सबका अर्थ तो इतना ही है कि गाधीजी एक लगातार दृढ शान्तिवादी है, जो कि मै नही हूँ। मै जानता हूँ कि आज से सौ वर्ष बाद भी लोग इनके व्यक्तित्व पर चकराते रहेगे, हालाकि पुस्तक प्रकाशक "मो० क० गाधी की पहेली", "गाधीजी का रहस्य" "साम्राज्य से युद्ध करनेवाला मनुष्य", इत्यादि, पुस्तको को पढने की सिफारिश करते रहेगे और समालोचकगण घोषणा करते रहेगे कि आखिर अमुक चरित्र लेखक ने इनके जीवन का "रहस्योद्घाटन" कर दिया है।

दस वर्ष पूर्व, जबकि वह अपनी ख्याति के उच्च शिखर पर थे, तब उनके दर्शनीय व्यक्तित्व के लिहाज से लोगो का ध्यान उनकी ओर बहुत अधिक आकर्षित हुआ था। इससे उनके कार्यो पर से तो लोगो की दृष्टि हट गई, परन्तु उनकी प्रीतिभाजनता और उनका सहज स्वभाव सामने आने मे बहुत सहायता मिली। इसमे कोई सन्देह नही कि इन सब बातो मे उन्होने खूब मज़ा उठाया, परन्तु वह कभी भी स्वय अपनी गाथाओ से प्रभावित नही हुए। एक बार जॉन विल्क्स ने तृतीय जार्ज से कहा था, "मै स्वय कभी भी विल्कसाइट (विल्क्स का अनुयायी) नही रहा।" गाधी भी कभी गाधी-आइट (गाधी के अनुयायी) नही हुए। वह तो अपने भोले अनुयायियो के प्रति एक शान्त और कुछ उपेक्षापूर्ण रुख बनाये रहते है, और वह जानते है कि उनके बहुत से भक्तो ने उनके उद्देश्य को सहायता नही पहुँचाई है। चुलबुलापन उनमे एक आकृष्ट करनेवाला गुण है, और विनोद-प्रियता की भावना के कारण वह सदा प्रसन्न रहते है। यदि आप स्वाभिमान बनाये रक्खे तो वह आपसे अच्छी तरह बाते करते रहेगे और अगर आप मज़ाक करते रहे तो बुरा भी नही मानते। वह कभी बडप्पन नही जताते (हालाकि उनमे बडप्पन बहुत है)। वह आपका मज़ाक उडावेगे और यदि आप बदले मे उनका भी मज़ाक उडावे, तो उसमे वह रस लेगे।

काल्पनिक और साहित्यिक व्यक्तियो को वह ज़रा शुष्क और सन्देह की दृष्टि से

देखते है। कोई सम्मति अगर उनको नापसन्द हो तो वह मुस्कराते हुए इन शब्दो के साथ उसे निपटा देंगे, "अच्छा, लेकिन आप जानते है आप कवि है।" उनके कहने के ढग से यह स्पष्ट झलकता है कि वह कहना तो यह चाहते है, "अच्छा आप जानते है, आप खब्ती है।" परन्तु शिष्टाचार उनको स्पष्ट कहने से रोकता है। उनके और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बीच जो सम्बन्ध है उसे देखने मे बडा आनन्द आता है। इन दोनो व्यक्तियो की पारस्परिक श्रद्धा गम्भीर और अविचल है, यद्यपि ये दोनों एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न प्रकृति के है। भारत इसको वर्षो से देखता आरहा है और यह दृश्य इस देश की सम्पन्न सार्वजनिक शिक्षा का बडा भारी अग है। इसने इस गौरव की भावना को प्रोत्साहित किया है कि भारत मे दो इतने महान् व्यक्ति है, यद्यपि ये दोनो एक-दूसरे से इतने भिन्न है और दोनो इस बात को इतनी अच्छी तरह जानते है कि राष्ट्र-निर्माण का जो कार्य दोनो को हृदय से प्रिय है उसके लिए हरएक कितना आवश्यक है।

"वह खिझा भी सकते है।" हममें से जिसका भी कभी उनसे साबका पडा है उसने कभी-न-कभी यह बात कही है, और कही भी है तो बडे प्रेम के साथ। वह तार भेजेंगे जिससे हज़ारो मील दूर किसी मित्र या साथी को कदाचित् किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए आना पडे, और चर्चा करते-करते वह एकदम सिलसिला तोडकर जो कुछ समय बचा हो उसीमे बातचीत समाप्त कर देंगे, क्योंकि उनके रोगियो को दस्त के लिए पिचकारी देने का ठीक समय आ पहुँचा है। जो बात मैं कहना चाहता हूँ उसका यह एक मामूली उदाहरण है, क्योकि उद्देश्य हमेशा यही होना चाहिए कि बात को बढाकर नही, बल्कि घटाकर कहा जावे। उस वाद-विवाद के समय जिसका ज़िक्र मैं पहले कर चुका हूँ, मैंने एक बार उनको देखा जब कि बैलियोल के मास्टर, गिल्बर्ट मरे, सर माइकेल सैलडर, सी पी लियन, इत्यादि के दल ने, लगातार तीन घण्टे तक उनसे प्रश्नोत्तर और जिरह की। यह एक अच्छी-खासी थका देनेवाली परीक्षा थी, परन्तु एक क्षण के लिए भी वह न तो झल्लाये और न निरुत्तर हुए। मेरे हृदय मे यह दृढ विश्वास उत्पन्न हुआ कि सुकरात के समय से आजतक आत्म-सयम और शान्त-चित्तता मे ससार में उसके बराबर दूसरा व्यक्ति देखने में नही आया। और एक-दो बार जब मैंने अपने-आपको उन लोगो की स्थिति में रखकर देखा जिनको इस अजित गम्भीरता और धीरता का सामना करना पड रहा था, तो मैंने विचार किया कि मै समझ गया कि एथेन्स निवासियो ने उस "मिथ्या हेतुवादी शहीद" को ज़हर क्यो पिलाया था। सुकरात की तरह इनके पास भी कोई 'प्रेत' है। और जब अन्दर का प्रेत बोल चुकता है तो वह न तो तर्क से विचलित होते है और न भय से। लिडसे ने जिस हताशवाणी से प्रैसबिटीरियन पादरियो के सम्मुख की गई क्रॉमवैल की इस अपील को दुहराया था, "ईसा मसीह की दुहाई देकर मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस बात को समझे कि सम्भव है कि आप गलती पर हो।" ये शब्द अब तक मेरे

कानो मे गूँज रहे हैं। लिडसे ने आगे चलकर कहा था, "गाधीजी, इसे सम्भव मानिये कि आप गलती कर रहे हो !" परन्तु गाधीजी ने इसे सम्भव नही माना, क्योकि मुकरात की तरह उनके पास भी एक 'प्रेत' है और जव वह 'प्रेत' वोल चुकता है, तो भले ही मृत्यु महात्माजी के चेहरे मे अपने पजे घुसेड दे या सारा-का-सारा विश्वविद्यालय अपना तर्क सामने लाकर रखदे, तो भी गाँधी विचलित नही हो सकता।

अग्रेजी मुहाविरे पर उनका अद्वितीय अधिकार कुछ-कुछ इस कारण है कि उनको अपने मस्तिष्क पर पूरा काबू है। विदेशियो के लिए हमारी भाषा मे सवसे कठिन वस्तु सम्बन्धवोधक अव्ययो का प्रयोग है। मुझे आजतक ऐसा कोई भारतवासी नही मिला जिसने गाधी के वरावर इनपर पूरा-पूरा अधिकार कर लिया हो। यह वात मुझे गोलमेज परिषद् के समय मालूम हुई जव उन्होने दो-तीन वार मुझसे अपने किसी वक्तव्य का मसविदा तैयार करने लिए कहा। यदि आप पेशेवर लेखक है तो आप सम्वन्धवोधक अव्ययो के विषय मे सावधान रहने का प्रयत्न करे। और मै स्वीकार करता हूँ कि इन मसाविदो के वनाने मे मैने वहुत परिश्रम किया। गाँधीजी मेरे कार्य को देखते जाते थे और कभी-कभी इन अव्ययो का केवल एक सूक्ष्म परिवर्तन कर देते थे—(यदि आपका अग्रेज़ी का ज्ञान खूव गहरा न हो तो) आप शायद यह विचार करे कि वह परिवर्तन वहुत साधारण था परन्तु वह अपना काम कर दिखाता था। कदाचित् उससे कही कोई गुंजाइश निकल आती थी, (क्योकि राजनीतिज्ञो को शायद गुजाइश रखना पसन्द होता है)। कुछ भी हो, उस परिवर्तन से मेरा अर्थ वदलकर गाधीजी का अर्थ वन जाता था। और जव हमारी निगाहे मिलती थी तथा हम एक-दूसरे को देखकर मुस्कराते थे तो यह ज़ाहिर होता था कि हम दोनो इस वात को जान गये है।

हाँ, वह वकील हैं, और वकील लोग खूव खिझा सकते है। जैसाकि—जव उसमे इग्लैण्ड के वकीलो ने इग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व किया, राष्ट्र-सघ को, (लीग-ऑव-नेशन्स) पता लगा। जव किसी देश मे क्राति होती है और वहाँका अधिकार अन्त मे जनता के हाथ मे आता है, तो सवसे पहला सुधार सदा यह होता कि वकीलो को यमघाट पहुँचा दिया जाता है। वहुधा यह ही ऐसा एक सुधार है जिसके लिए अगामी सन्तति को कभी पछताना नही पडता।

और भारत मे ब्रिटिश सरकार करती क्या जव उसका पाला एक ऐसे वकील के साथ पडा, जिसने उससे लडते-लडते धीरे-धीरे अग्रेज़ी शब्दो के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अर्थो का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिसे न केवल अपने लिए कोई भय या चिन्ता थी, वल्कि जो वाद-विवाद की धारा के विलकुल अकल्पित स्वरूप धारण कर लेने पर भी पराजित किया जा सकता था ? और इससे भी वुरी वात यह थी कि इस व्यक्ति की हास्यरस की भावना इस प्रकार की थी कि वह स्वय ही आपके सामने इच्छापूर्वक अपनी क्षुद्रता

स्वीकार कर लेता था और आपको यह मौका नही देता था कि आप उसीके अस्त्र से उसपर वार कर सके । और सबसे बुरी बात यह थी कि वह तो एक दूसरा एन्टीयस ही था जिसकी शक्ति पृथ्वी माता को छूते ही अजेय हो जाती थी। गाधी को सदा सहारा प्राप्त था पूर्व के अमित धैर्य और वैराग्य और प्रतिरोध के परीक्षित उपायो का।

वास्तव मे उन दिनो भारत का निस्तार अहिंसा अर्थात् "अहिसात्मक अप्रतिरोध" के कठोर पालन मे ही था, और जब गाधी ने दूसरो से पहले इसे अनुभव किया तो यह आन्तरिक प्रेरणा का ही प्रकाश था। "इस लक्षण से तेरी जीत होगी।" बेशक! जब आपको ऐसा प्रतिद्वन्द्वी मिल गया जो इस तरह के आक्रमण के लिए तैयार न था, जो इससे भौचक हो गया हो, जो अस्पष्ट रूप से यह महसूस करे कि वह ऐसे शत्रु पर आघात नही कर सकता जो बदले मे आघात करने से इन्कार करे, तो वास्तव मे आपने एक अस्त्र पा लिया और दुर्बल और निरस्त्र भारत के पास दूसरा कोई अस्त्र था भी नही। अगर आपके पास केवल तीर-कमान है तो इनको लेकर मशीन-गनो का मुकाबिला करना मूर्खता है। आप केवल शत्रु को "आत्म-रक्षा के निमित्त" मशीन-गने प्रयोग करने का मौका दे सकते है, जब कि वह उनको दूसरे निमित्त से प्रयोग करने मे लज्जा अनुभव करे। आज 'अहिसा' चाहे जितनी अक्रिय हो गई हो, अपने समय मे इसने अपना काम कर दिखाया।

और लाचारी तथा निराशा के कारण उत्पन्न हुई इस आन्तरिक प्रेरणा के साथ एक दूसरी प्रेरणा और आई। भारत की आत्मा ने चुपके से कहा, "धरना दो!" मेरे विचार से शायद सबसे पहले रशब्रुक विलियम्स ने यह पता लगाया था कि गाधीजी की इस राजनैतिक चाल का सम्बन्ध 'धरना देने' की पुरानी प्रथा से है। यह प्रथा, जो जॉन कम्पनी के समय मे एक आफ्त हो गई थी, ऐसी थी कि कर्ज़ देनेवाला किसी नादिहन्द कर्जदार के द्वार पर, सताया हुआ व्यक्ति किसी अत्याचारी या शत्रु के द्वार पर, अनशन करके बैठ जाता था, जबतक मृत्यु या इच्छापूर्ति उसे छुटकारा न दिला देवे। यदि मृत्यु हो जाती तो सदा के लिए उसका भूत एक निर्दयी छाया की तरह बैठा रहता, जो अब अपील और पश्चात्ताप दोनो के दायरे से बाहर थी। यह थी गाधीजी की क्रिया, जो ठेठ देसी और शानदार क्रिया थी। वह लगभग चालीस वर्षो से, रह-रहकर, ब्रिटिश साम्राज्य की देहली पर धरना देने आये है। दो-एक बार तो उनका भूत हमारे सिर पर आता-आता रह गया है। 'अहिसात्मक असहयोग।' जब आयर्लैण्ड के नवयुवक झाडियो के पीछे से बम और रिवाल्वर चलाते थे और रेलगाडिया उलट देते थे, तब भारत के नवयुवक बडे चाव से इन बातो को देखते थे। परन्तु इससे भी अधिक दुख भरी दिलचस्पी के साथ सारे भारत ने तब देखा जब कार्क के लार्डमेयर मैक्स्विनी ने भूख-हडताल करके जान देदी। १९२९ मे राजनैतिक हत्या के अभियुक्त एक भारतीय विद्यार्थी ने भी ऐसा ही किया था और पजाब से उसके घर कलकत्ता तक उसका शव

जिस समारोह के साथ ले जाया गया वह भुलाया नही जायगा। विदेशी सरकार के साथ, भारतीय हथियारो से, आमरण युद्ध किया जा रहा था। ये हथियार पश्चिम मे भी पहुँच चुके थे और वहाँ सफल भी हुए थे। पहले नॉन कन्फार्मिस्ट—निष्क्रिय प्रतिरोधी फिर स्त्री मताधिकार के पक्षपाती (जो भूख-हडताल की सोचकर एक कदम और भी आगे वढ गये थे परन्तु शायद वे पूर्णतया "अहिसात्मक" नही थे) और इनके वाद आयलण्ड के रूप मे देखने मे आये। यह थी आमरण "अहिसा!"

गाधीजी के विषय मे एक महान् भारतीय ने एकबार मुझसे कहा था, "वह नीतिवान् है परन्तु आध्यात्मिक नही है।" दूसरे भारतीय ने कहा—"वह पकड मे नही आते, परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि वह सबसे ऊँचे दर्जे के सत्य का पालन कर सकते है।" और मेरे देश मे यह हुआ। गोलमेज़ परिषद् के दिनो जो कुछ लोग उनसे मिले, उन्हे निराशा हुई। उन्होने आश्चर्य के साथ कहा—"यह तो सन्त नही है!" मै भी उनको सन्त नही समझता और स्पष्ट वात तो यह है कि मुझे इसकी चिन्ता भी नही कि वह सन्त है या नही। मै समझता हूँ कि वह इससे भी कठोर कोई वस्तु है, और ऐसी वस्तु है जिसकी सन्तो से अधिक इस निराशा के युग को, जिसमे हम रह चुके है, आवश्यकता है। "वह सबसे ऊँचे दर्जे के सत्य का पालन करने मे समर्थ है।" वह वास्तव मे समर्थ है, वह उदात्त चरित्रता की असाधारण ऊँचाई तक उठ सकते है। दक्षिण अफ्रीका का वह असहनीय अन्याय के विरुद्ध किया हुआ सारा हिन्दुस्तानियो का सघर्ष, जिसके वह केन्द्र (और सव कुछ थे) एक ऐसी महान् घटना है कि मै उसकी क्या प्रशसा करूँ? और केवल उनका साहस ही अपार न था, वल्कि उनकी उदारता भी अपार थी। भारतवासियो की विशाल हृदयता मुझे जीवन के प्रत्येक पल मे आश्चर्य से भर देती है। उन्होने व्यक्तिगत और जातिगत दोनो पहलुओ से यह वतला दिया है कि वह क्रोध से ऊपर उठ सकते है, जैसाकि मै, एक अँग्रेज़, महसूस करता हूँ कि यदि उनकी जगह पर मै होता तो कभी न कर सकता। गाधीजी चाहते तो वह हरेक गोरे को जीवन-भर घृणा की दृष्टि से देखते, परन्तु उन्होने ऐसा नही किया। वास्तव मे, जैसाकि वहुत दिन हुए एडमण्ड कैन्डलर ने देखा था, वह अँग्रेजो से काफी प्रेम करते है। इसके वाद नेटाल मे जूलुओ का कथित विद्रोह हुआ, जिसका प्रारम्भ वारह जूलुओ की फासी से हुआ और जिसमे गोलियो से उडा देने का और चावुको की मार का हृदयविदारक दौर-दौरा रहा। गाधीजी ने यह दिखलाने के लिए कि वह ब्रिटिश-विरोधी न थे और घोर सकट के समय वह तथा उनके साथी अपने हिस्से का कर्तव्य पूरा करने के लिए प्रस्तुत थे, आहतो के उपचार के लिए अपनी सेवाये अर्पित कर दी। सुसस्कृत मूर्खता (मै इसको इसी नाम से पुकारूँगा) के फलस्वरूप उनको उन जूलुओ के उपचार का कार्य सौपा गया जिनके शरीर फौजी कानून के मातहत दी गई कोडो की मार मे क्षत-विक्षत हो गये थे। यह अच्छी शिक्षा थी, यदि इसका अर्थ यह हो कि भारतवासी

पहले से ही इस बात पर कडे हो जावे कि जब सरकारे डर जाती है तो वे क्या कर सकती है। वह वास्तव मे इस विषय मे कडे हो गये, परन्तु और बातो मे नही। गाँधीजी ने अपना यह विश्वास कायम रक्खा कि यदि अग्रेज को समझाया जावे और उसकी निष्पक्ष भावना को जागृत किया जावे तो उसका हृदय पसीज सकता है। अप्रैल १९१९ मे जनरल डायर ने अमृतसर मे जलियावाला के उस नीचे बाग के मौत के पिंजरे मे, दो हज़ार आदमियो को गोली से उडा दिया। और घायलो को रातभर वही तडपने और कराहने के लिए छोड दिया। इसके बाद ब्रिटिश पार्लमेन्ट के दोनो हाउसो मे निन्दनीय वाद-विवाद ज़ोर-शोर से आया और एक नीचतापूर्ण आन्दोलन हुआ जिसने "डायर टेस्टीमोनियल फण्ड" के लिए २६,००० पौंड का चन्दा खडाकर दिया। काग्रेस ने पजाब के इन काडो पर अपनी रिपोर्ट तैयार करने के लिए गाधी और जयकर को नियुक्त किया। इनपर सिलसिलेवार और ब्यौरेवार साक्ष्य (जिस पर उस दु ख और ज़िल्लत के समय मे सहज ही विश्वास कर लिया गया) यह प्रमाणित करने के लिए लादी गई कि जनरल डायर ने जान-बूझकर भीड को उस नीचे बाग मे 'छल-से जमा' (lured) किया था कि उनकी हत्या करे। इस साक्ष्य के पीछे अनियत्रित क्रोध और पीडा की उकसाहट थी। गाधीजी ने इसका तिरस्कार किया। उन्होने अपने ही जाति-भाइयो के दबाव की अवहेलना की। उन्होने कहा—"मै इस पर विश्वास नही करता, और यह बात रिपोर्ट म नही लिखी जायगी।"[1] उनके आत्म-निग्रह की इससे बडी विजय दूसरीनही हुई और ऐसी परिस्थिति मे आत्म-निग्रह बडी-ऊँची नैतिक विजय होती है। यदि आपको गत महायुद्ध का अनुभव हो तो आप जानते है कि क्रोध और देशभक्ति से विचलित हो जाना और फिर भी न्याय का पक्ष लेना कितना कठिन है। गाधीजी ने इसमे सफलता प्राप्त की, और ऐसी अपमान जनक परिस्थिति मे प्राप्त की जिसका किसी अँग्रेज़ को आजतक अनुभव नही हुआ है, अर्थात् एक पददलित राष्ट्र मे उत्पन्न होना। यह है "सबसे ऊँचे दर्जे का सत्य"—यह 'करनी' का सत्य था, 'कथनी' का नही।

मेरा अन्तिम उदाहरण है, १९२२ मे उनका मुकदमा। यह घटना उनके और उनके विरोधियो दोनो के लिए गौरवपूर्ण थी—जिस उच्च श्रेणी की मानवी "सस्कृति" का इसमे दिग्दर्शन हुआ उसके कारण यह असाधारण और कदाचित अपूर्व थी और इसी बात ने इसे दोनो तरफ की ईमानदारी और निष्पक्षता का एक दैवी प्रकाश बना दिया था, हालाकि उस समय आग भडका देने का इतना मसाला था। इस मुकदमे ने भारत में रहनेवाली अँग्रेज जाति के (हृदय मे तो नही कहूँगा, बल्कि) रुख मे वास्तविक परिवर्त्तन का अकुर उत्पन्न कर दिया। गाधीजी उनको चाहे जितना खिजावे, उन्होने इनका आदर करना पहले ही सीख लिया था, और जब इस मुकदमे के अभिनय

१ यह बात मुझे एम. आर जयकर से मालूम हुई।

मे (आगे सजा की बात तक गये बिना उससे बढा-चढा नाटकीय विशेषण देना तो शायद ठीक न होगा) उन्होने देखी इस मनुष्य की विचित्र, व्यगपूर्ण, पूर्णतया गौरवमय और उच्चकोटि की अलौकिक तथा वीरतापूर्ण आत्मशक्ति। इससे अधिक हमने क्या-क्या देखा सो मै नही कह सकता। मै जो जॉनबुल का नमूना ही हूँ तो अपनी कह सकता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि उन्होने ब्रिटिश राज्य को, जो ऐसी वस्तु थी जिसको हममे से बहुत से चुनौती देने का साहस करने की इच्छा रखते थे, उतनी चुनौती नही दी जितनी कि सम्पूर्ण आधुनिक ससार को चुनौती दी जिसने मनुष्य-जीवन को मशीन-मय बनाकर उसकी गति-बुद्धि को रोक दिया है। उनका हमारे साथ झगडा उससे कही अधिक गहरी और व्यापक वस्तु थी जितनी हम उसे समझते थे।

१२ जनवरी को अपेन्डिसाइटिस के आपरेशन के कारण उनको जल्दी मुक्त कर दिया गया। जेल के गवर्नर ने उनको छुट्टी दे दी कि वह चाहे तो अपने वैद्य का इलाज करा सकते है या अपनी पसन्द का कोई सर्जन बुला सकते है। शिष्टाचार मे पीछे न रहने की इच्छा से गाधी ने अपने आपको गवर्नर के हाथो मे सौप दिया और कोई विशेष रियायत नही मागी। सर्जन ने एक बिजली की टार्च का प्रयोग किया जो ऑपरेशन के मध्य मे ही खत्म होगई, नर्स ऑपरेशन के अन्त तक एक हरीकेन लालटेन पकडे रही। यदि रोगी की मृत्यु होजाती तो हम जानते है कि भारत और ससार क्या कहता। मिस मेयो ने इस घटना का बडा उपहास से वर्णन किया है, परन्तु गाधीजी ने इसको 'पवित्र' अनुभव बतलाया है जो उनके जेलर के लिए 'और, मुझे विश्वास है, मेरे लिए' प्रशसा की बात थी। वास्तव मे यह प्रशसा की बात थी और इस ससार मे जहाँ इतनी अप्रिय वस्तुये हुआ करती है यह दूसरी ही तरह की वस्तु थी।

मुझे समय नही है कि मै चर्खे के सिद्धान्त के विषय मे कुछ कहूँ। मै अनुभव करने लगा हूँ कि यह विवेकपूर्ण और न्यायोचित था, यद्यपि इसे कभी-कभी निरर्थक चरम सीमा तक पहुँचा दिया गया। उदाहरणार्थ जब उन्होने रवीन्द्र बाबू से प्रतिदिन कातने के लिए कहा। उनमे निर्दोष आत्मपीडन की जो झलक है, उसके विषय मे भी मै कुछ नहीं कहूँगा। जिसके कारण वह अपने देशवासियो द्वारा अछूतो अथवा दुधारू गायो के प्रति किये गये अत्याचारो के पश्चात्तापस्वरूप जानबूझ कर गन्दे-से-गन्दा भगी का काम जो उन्हे अपने रोगियो के अस्पतालो मे मिला, करते है, और (फूका की निर्दय क्रिया के द्वारा गायो से जितना दूध वे दे सकती है उससे अधिक निकालने के विरोधस्वरूप) केवल बकरियो का दूध पीते है।

वह दूसरे लोगो को बडी खूबी के साथ जाँच सकते है। उनकी मानवता जिस गहरी-से-गहरी वस्तु से बनी हुई है उसका उदाहरण इतिहास मे नही है। उनके हृदय में प्रत्येक कौम के लिए और सबसे अधिक दीनो तथा दलितो के लिए दया और प्रेम

है । वह सच्चे अर्थो मे निष्काम हैं । सारा भारत जानता है कि उनकी दृष्टि मे सब पुरुष और स्त्रियाँ समान हैं । स्वय उनका पुत्र भी उनके लिए एक भगी के पुत्र मे अधिक नही है । उनको अपने लिए न कोई भय है न कोई चिन्ता । वह विनोदी, दयामय, हठी और वीर हैं । भारतवर्ष इतना विदीर्ण विभाजित—दरारो से पूर्ण, टुकडे टुकडे हुआ, चिप्पियाँ लगाया हुआ—था, जितना इस पृथ्वी पर और कोई राष्ट्र न था । बुद्ध के बाद पहली बार उसे ऐसी हलचल का ज्ञान हुआ जो उसके कोने-कोने मे फैल गई, ऐसे श्वास और स्वर का पता चला जिसका सब जगह अनुभव किया गया और सुना गया, यद्यपि उसके शब्द हरबार समझ मे नही आये । राष्ट्रीय आन्दोलन मे अधिक अच्छे वक्ता तथा अधिक विद्वान् लोग हुए हैं, परन्तु ऐसा व्यक्ति एक ही है जिसने भारत के नर-नारियो के हृदय में यह बात जमा दी है कि उसका तथा उनका रक्त-मास एक ही है । उन्होने अछूतो मे आशा का सचार किया है, डोम और पासी इस बात का स्वप्न देखने लगे है कि वे भी मनुष्यो की श्रेणी मे गिने जाते है । उन्होने ऐसी भावनाओ तथा आशाओ को क्रियमाण किया है जो किसी भी राजनैतिक दल-बन्दी से अधिक व्यापक है । उन्होने भविष्य के लिए भारतवासियो के मार्ग की दिशा ही निश्चयात्मक रूप से बदल दी है ।

उन्होंने इससे भी कुछ अधिक करके दिखलाया है । मैने राजनीतिज्ञ के रूप मे उनकी आलोचना की हैं । परन्तु जैसा कि मैने दूसरी जगह लिखा है, "वह उन गिने-चुने व्यक्तियो मे माने जावेगे जिन्होने एक युग पर 'आदर्श' की छाप लगा दी है । यह आदर्श 'अहिसा' है जिसने दूसरे देशो की सहानुभूति को बलपूर्वक आकर्षित कर लिया है ।" इसने "ब्रिटिश सरकार के 'दमन' पर भी एक पारस्परिकता की लचक की छाप दे दी है"—और यह बात, मालूम होता है, किसीके ध्यान मे नही आई है । भारतीय आन्दोलन के साथ रक्तपात और नृशसता हुई है । परन्तु फिर भी दोनो ओर के गर्म पक्षवालो की तमाम दलीलो पर विचार करते हुए भी इस आन्दोलन का व्यवहार इस मध्यवर्ती विश्वास को दृढ करता है कि इसके परिणामस्वरूप दोनो देशो मे एक विवेकपूर्ण तथा सभ्यतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने की सम्भावना है ।" यदि ऐसा हो, कि ससार मे आज जो अविवेक फैल रहा है वह दूर हो जावे, तो मेरा देश तथा भारतवर्ष दोनो इस पुरुष को अपने एक सबसे महान् और प्रभावशाली सेवक तथा पुत्र समझेगे । इन्होने भारत तथा इग्लैण्ड के पारस्परिक झगडे को एक पारिवारिक झगडा बना दिया है, जैसाकि वह सब प्रकार से है भी । कुटुम्बो मे बहुधा बडे बुरे व्यवहार होते रहते है, परन्तु ये झगडे बहुत कम ऐसे होते है जिनका निपटारा न हो सके ।

: ५२ :

सत्याग्रह का मार्ग

श्रीमती सोफिया वाडिया

[इडियन पी० आई एन बम्बई की सस्थापिका व सम्पादिका]

गाधीजी एक व्यावहारिक पर अगम्य सन्त पुरुप है, जिनके जीवन का दर्शन तथा जिनका राजनैतिक कार्यक्रम एक साथ सहस्रो के लिए प्रेरणारूप तथा करोडो के लिए पहेली है। जहाँ एक ओर उनके आत्मिक जीवन के दर्शन का सिद्धान्त कोई भी वुद्धिमान् मनुष्य समझ सकता है, तथा उसके नियमो का हरेक उत्साही तथा दृढ-निश्चयी व्यक्ति पालन कर सकता है, वहाँ उनका राजनैतिक कार्यक्रम तवतक पहेली वना रहेगा, जवतक कि उनको भारत के अत्यन्त अतीत काल मे से स्वभावत· विकसित होनेवाले और भारत के वर्तमान इतिहास का निर्माण करनेवाली शक्तियो के सच्चे अर्थो मे मूर्तरूप देनेवाले पुरुष के रूप मे न देखा जावे।

आजकल का भारत ईरान या मिस्र की तरह, प्राचीन भूमि मे उपजी हुई कोई नई सभ्यता नही है। वीसवी शताव्दी की भारतीय चेतना की जीवन-धारा वही धारा है जो करोडो वर्षो से निरन्तर धीर गति के साथ वहती चली आरही है और अव भी गतिशील है। यहाँतक कि भारत मे पुरातत्त्व की खुदाई के परिणाम भी एक नया अर्थ ले लेते है तथा एक नया महत्त्व रखते है, जैसाकि कदाचित् सिवाय चीन के और किसी जगह प्राप्त हुई वस्तुये नही रखती। उदाहरणार्थ मिस्र के स्तूप उस देश के लुप्त प्राचीन गौरव की याद दिलाते है, परन्तु मोहेन्जोदारो में हम कह सकते है कि यह वात नही है, क्योकि यह वात भग्नावशेप नही है वल्कि भारत की जीवित-सस्कृति का एक सचेतन केन्द्र है।

वास्तव मे जिस अर्थ मे हम अर्वाचीन ईरान या आधुनिक मिस्र की वात कहते है उस अर्थ मे अर्वाचीन भारत है ही नही, भारत तो उस अर्थ मे भी अर्वाचीन नही है जिस अर्थ मे जापान माना जाता है, अर्थात् पुरानी वही जाति विलकुल आधुनिकता मे ढल चुकी है। नये साचे मे ढला हुआ भारत केवल वडे-वडे शहरो मे ही पाया जाता है और वहाँ भी थोडे से ही अश में। अग्रेज़ी जानने वाले वहुत से भारतीयो मे "नवीन वनने" की प्रवत्ति है। दुर्भाग्यवश यह प्रवृत्ति जोर भी पकडती जारही है, यद्यपि गाधीजी के लेखो तथा कार्यो से इसकी गति रुक रही है। नई रोशनी का भारत तभी वजूद मे आवेगा जव गाधीजी के प्रभाव को लोग न मानेगे तथा उनके राजनैतिक

तरीके निकम्मे हो जावेगे। यह भारत के लिए तथा ससार के लिए उससे भी महान् आपद् की घटना होगी जो भारत के युद्ध के सिद्धान्तो को त्याग देने के कारण हुई थी। वह त्यागना बुरा और हानिकारक था, परन्तु उसने भारतीय सस्कृति का नाश नही किया, हाँ उसने इसकी वढती हुई लहर के वेग को रोक दिया तथा भारत का ससार की मेवा उतने वडे पैमाने पर करने का मौका छीन लिया, जितनी वह कर सकता था।

गाधीजी के जीवन के कार्यकलाप को भारतीय इतिहास के एक लिखे जारहे विकासशील अध्याय के रूप में देखना आवश्यक है। हमारे देश का इतिहास मुख्यत आध्यात्मिक व्यक्तियो द्वारा वनाया गया है। स्मरणीय कला तथा साहित्य-सयुत विशाल राजतन्त्र स्वभावत उस आध्यात्मिक सस्कृति के मूल से उत्पन्न हुए और वढे जिसको इन व्यक्तियो ने मूर्त्तिमान किया तथा सिखाया। उदाहरणार्थ, अशोक का साम्राज्य तथा अजन्ता की कला एक विशाल वृक्ष की एक ही शाखा के फल है, वह शाखा है गौतम वुद्ध। इस वृक्ष की अनगिनती शाखाये है, और उसका मेरुदण्ड है उन समस्त पूर्ववर्त्ती वुद्धो की अविभाजन सस्कृति, जिसमे वैदिक ऋषियो तथा कवियो की भी गणना है। उसकी जडे पौराणिक गाथाओ मे वर्णित शकद्वीप तथा श्वेतद्वीप की प्राचीनतर मिट्टी मे दवी हुई है। यह आवश्यक है कि गाधीजी को भारतीय इतिहास के वीसवी शताब्दी के उस चित्रपट पर एक जीवित केन्द्र-पुरुष के रूप मे देखा जावे जिसकी पृष्ठभूमि मे करोडो वर्षो की घटनाये स्थित है।

जिन शक्तिशाली आध्यात्मिक व्यक्तित्वो ने हमारे इतिहास मे मुख्य भाग लिया है वे सदा योग-युक्त पुरुष रहे है। उन्होने अपनी दुष्प्रवृत्त इन्द्रियो को अनुशासन मे लाकर अपनेमे योग साधा है। हाथो की, मस्तिष्क की तथा हृदय की क्रियाओ का जितना ही अधिक समरूप एकीकरण होगा, उतना ही महान् व्यक्तित्व होगा। उन्होने वाहरी ऐश्वर्य्य मे नही, वरन् आन्तरिक सम्पन्नता मे अपनी प्रिय मातृभूमि की सेवा की है। आवश्यकता पडने पर उन्होने राम की तरह राजसी वस्त्र भी धारण किये है। दूसरे युग मे राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने राजदण्ड के वदले युद्ध का भिक्षा-पात्र ले लिया। ये दोनो आत्मसाधक व्यक्ति थे। इनके अतिरिक्त और भी कवि, ऋषि, महर्षि हुए है, जो सव-के-सव वाह्य रूप में एक-दूसरे से भिन्न तथा विभिन्न परिस्थितियो मे काम करनेवाले रहे है परन्तु आन्तरिक ज्ञान मे सव एकसमान थे—इनके मानस आत्मा के प्रकाश से ज्योतिमान तथा हृदय तथागत की ज्योति से ओतप्रेत थे। इनके विषय में कहा जा सकता है कि वे इतने भारतीय इतिहास के वनानेवाले नही थे जितना कि ससार के इतिहास ने, अर्थात् भारतवर्ष कहलानेवाले तथा कर्मभूमि के नाम से विख्यात भूखण्ड की आत्मा की शक्ति ने, उनको वनाया। इन सवने भारत की वास्तविक प्रकृति, इसका आन्तरिक गुण, इसकी आध्यात्मिक नीति और व्यवस्था जो धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत है, सवकी रक्षा करके मनुष्य-जाति की सेवा की।

यह विचारधारा कदाचित् कल्पनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से युक्तिहीन प्रतीत हो। पाश्चात्य विद्वान् भारत के प्राचीन निवासियो मे ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव की शिकायत करते है। इसमे वे भूल करते है, क्योकि वे उसी तरह का ऐतिहासिक दृष्टिकोण तलाश करते है जिससे वे सबसे अधिक परिचित है। पाश्चात्य सस्कृति इतिहास को जैसा समझती है तथा उसका जो अर्थ लगाती है, उसका वर्णन स्वय गाधीजी ने इस प्रकार किया है —

> "इतिहास वास्तव मे प्रेम की शक्ति अथवा आत्मा की एकरस होनेवाली क्रिया मे प्रत्येक रुकावट का आलेख है । चूँकि आत्मिक बल एक सरल स्वाभाविक वस्तु है, अत उसका वर्णन इतिहास मे नही किया जाता।"

इस उलटे अर्थ मे हमारे प्राचीन आलेख बिलकुल अनैतिहासिक है, उनमे अधिकतर आत्मा के कर्मो का वर्णन है और नैतिक शक्तियो तथा आदर्शो पर सासारिक बातो की अपेक्षा अधिक जोर दिया गया है। इस अर्थ मे पुराण इतिहास है।

पाश्चात्य इतिहासकार की कठिनाई कुछ परिवर्तित ढग से आधुनिक राजनीतिज्ञो मे—चाहे फिर वे ब्रिटिश हो या पश्चिमी मनोवृत्ति के—दुबारा प्रकट हो रही है, जिनका कहना है कि गाधीजी मे राजनैतिक वृत्ति का अभाव है, क्योकि आधुनिक राजनीतिज्ञ के लिए राजनैतिक वृत्ति की अभिव्यक्ति केवल एक ही प्रकार से हो सकती है, दूसरे प्रकार से नही। अयोध्या मे दशरथ के परामर्शदाता वशिष्ठ की भाँति, राजाओ तथा सम्राटो के दरबार के महर्षि उच्चतम श्रेणी के राजनीतिज्ञ होते थे। परन्तु आज उनके उत्तराधिकारी इतने भी वोट एकत्र करने मे सफल नही होगे कि वे किसी पाश्चात्य देश की पार्लमेण्ट के सदस्य बन सके।

गाँधीजी की कथित असगतियाँ तथा अव्यावहार्यताये तभी समझ मे आ सकती है जब हम उनको एक 'आत्मा' के रूप मे देखे, और जब हम इस तथ्य को विचार मे लावे कि वह उन व्यक्तियो मे से है जो अपने मस्तिष्क तथा हृदय मे समझौता करने से इन्कार कर देते है, जो अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करने के लिए तैयार नही होते, जो सब घटनाओ को सासारिक दृष्टिकोण से नही देखते, बल्कि उनको अपने लिए आत्मज्ञान का तथा दूसरो के लिए आत्मिक सेवा का मार्ग समझते है। वह अपने तत्त्वज्ञान के अनुसार चलते है अपने सिद्धान्तो का पालन करते है, और इसीलिए वह उन सभीके लिए थोडी-बहुत अविगत पहेली बने रहते है जो समझौता करते रहते है तथा इस कारण भ्रान्ति और इन्द्रियो की तथा इन्द्रिय जगत् की नैतिक शिथिलता की अस्तव्यस्त अवस्था मे पडे रहते है।

यदि हम इन दो बातो को समझ जावे कि गाधीजी (१) न तो राजनीतिज्ञ है, न दार्शनिक, न धर्मशास्त्रवेत्ता, बल्कि आध्यात्मिक सुधारक है तथा, (२) वह भारत की आत्मा अथवा आर्य-धर्म के अवतार है और इस प्रकार भारत के वर्तमान-कालीन

इतिहास का अध्याय लिख रहे हैं, तो हम उनके बहुमुखी कार्यकलाप का ठीक रूप से दर्शन कर सकते हैं।

ससार मे गाधीजी भारत के राजनैतिक नेता के ही रूप मे सबसे अधिक प्रसिद्ध है। निस्सन्देह लोग उन्हे एक साधु तथा धार्मिक मनुष्य कहते हैं, परन्तु बहुधा उनका धर्म एक गौण महत्व की बात समझा जाता है, तथा अग्रेज लोग और स्वय उनके बहुत-से देशवासी भी उनके वक्तव्यो को समझाने मे भूल करते हैं, क्योकि वे उन वक्तव्यो को इस प्रकार सुनते है और प्रयोग करते है मानो वे किसी देशभक्त राजनीतिज्ञ के दिये हुए हो। वे गाधीजी के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को भूल जाते हैं कि "नैतिकता-रहित राजनीति ऐसी वस्तु है जिससे बचना चाहिए।" जब वह यह घोषित करते है कि मेरी देशभक्ति सदा मेरे धर्म की चेरी है" तो वह उस देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता को एक नई विशेषता देते हैं, जो आज ससार की गोलमाल और अशान्ति का मूल—कारण बनी हुई है। वह भारत के शत्रु को कोई हानि नही पहुँचावेगे, क्योकि किसीको हानि पहुँचाना अधर्म है।

अतः यह आवश्यक है कि हम गाँधीजी के आन्तरिक धर्म के सम्बन्ध मे जाँच-पडताल करे। वह अपनेआपको हिन्दू कहते हैं, परन्तु वह हिन्दू केवल इसी अर्थ मे हैं कि हिन्दू-धर्म मे वर्णित सार्वभौम उपदेश उनको सबसे अधिक तथा सबसे प्रभावशाली रूप मे अच्छे मालूम होते हैं। वह लिखते हैं —

"धर्म की सबसे उच्च परिभाषा के अन्तर्गत हिन्दू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म इत्यादि सब आजाते है, परन्तु वह इन सबसे श्रेष्ठ है। आप उसे सत्य के नाम से भी पहचान सकते हैं, समयोपयोगिता की दृष्टि से प्रामाणिकता मात्र नही बल्कि सदा-सर्वदा सजीव रहनेवाला सत्य जो प्रत्येक वस्तु मे व्याप्त है तथा जो सब प्रकार के विनाशो और परिवर्तनो के बाद भी जीवित रहता है।

"धर्म मुझे प्रिय है, और मेरी सबसे पहली शिकायत यह है कि भारत धर्महीन होता जा रहा है। यहाँ मैं हिन्दू या मुसलमान या पारसी धर्म का विचार नही कर रहा हूँ बल्कि उस धर्म का विचार कर रहा हूँ जो सब धर्मो के मूल मे है। हम परमात्मा से विमुख होते जा रहे है।"

गाधीजी परमात्मा की परिभाषा मे कहते हैं कि वह "एक अवर्णनीय सर्वव्यापी गूढ शक्ति है।" वह वर्णन करते है —

"मैं यह निश्चयपूर्वक अनुभव करता हूँ कि जहाँ मेरे चारो ओर की प्रत्येक वस्तु सदा परिवर्तनशील तथा सदा नाशवान है, वहाँ इस समस्त परिवर्तन के मूल मे एक सजीव शक्ति है, जो निर्विकार है, जो सबको धारण किये हुए है, जो सृष्टि की रचना करती है, प्रलय करती है तथा पुनः रचना करती है। यह ज्ञानदाता शक्ति चैतन्य ही परमात्मा है।"

यह परमात्मा त्रिगुणात्मक—सत्, चित्, आनन्द—है।

" 'सत्य' शब्द 'सत्' से निकलता है, जिसका अर्थ है 'होना'। वास्तव मे सत्य के अतिरिक्त और कोई वस्तु नही है, अर्थात् किसी वस्तु का अस्तित्व नही है। जहाँ 'सत्य' है वह 'चित्'—ज्ञान, विशुद्ध ज्ञान भी है। और जहाँ विशुद्ध ज्ञान है वहाँ सदा 'आनन्द' है।"

परमात्मा "घटघट मे है" तथा "प्रत्येक मनुष्य परमात्मा की प्रतिमूर्ति है।" अत हममे से प्रत्येक के भीतर सत्-चित्-आनन्द का अस्तित्व है—परन्तु उसका केवल कुछ ही अश आवरणरहित है, क्योकि वह अज्ञान तथा अविद्या के आवरण से ढका हुआ है। मनुष्यो को उचित है कि इस आन्तरिक देवता की शक्ति से जीवित रहने का प्रयत्न करे। जव गाधीजी शिकायत करते है कि भारतवासी परमात्मा से विमुख होते जा रहे है तो उनका तात्पर्य यह होता है कि वे लोग अपने भीतर की परमात्मा-शक्ति के द्वारा जीवित रहने का प्रयत्न नही कर रहे है। "मनुष्य पशु से ऊपर है" और "उसे एक दैवी कर्तव्य पूरा करना है"। "हम भूलोक को जानते है, परन्तु हम अपने अन्दर के स्वर्ग से अपरिचित है।"

मनुष्य का वह श्रेष्ठतर कर्तव्य क्या है ? सच्चे ज्ञान से सत्य की खोज और केवल इसीके द्वारा नित्य आनन्द प्राप्त करना। " सत्य को पूर्णतया जान लेना अपने आपको साक्षात् कर लेना तथा अपने अदृश्य को पहचान लेना ही 'पूर्ण' वन जाना है।"

परन्तु मनुष्य मे नीच पाशविक प्रवृत्ति है। अत जिस मिट्टी से मनुष्य की देह वनी है उसपर अपूर्णता की छाप लगी हुई है। सवसे प्रथम आवश्यक कर्म है अपने मे अन्तर्हित पूर्णता के अस्तित्व को तथा अपने चहुँओर छाई हुई अपूर्णता की कृति को पहचान लेना। हमारे अन्दर अपनी दो मुखी—दैवी तथा दानवी प्रकृति का जो सघर्ष चलता रहता है उसका गाँधीजी प्रभावशाली ढग से वर्णन करते है—

"मुझे अपनी अपूर्णताओ का दु खपूर्वक ज्ञान है तथा इसीमे मेरा समस्त वल है, क्योकि मनुष्य के लिए स्वय अपनी मर्यादाओ को जान लेना एक दुर्लभ वस्तु है।"

चूकि हम निश्चयरूप से स्वय अपनी मर्यादाओ को नही जानते, अत हमको भी अपने घर का 'देवता' दिखलाई नही पडता। हमारी दुर्वलतायें उनसे लडने तथा उनको परास्त करने का प्रश्न उठाती है और यह प्रश्न स्वभावत ही हमको आत्मा तथा अन्तरात्मा की शक्ति तक ले जाता है। इन दुर्वलताओ को जीत लेने से ही "जीवन मृत्यु के ऊपर शाश्वत विजय प्राप्त कर लेता है।"

अपनी अपूर्णता पर विजय प्राप्त करने की रीति जिससे हमारी अन्तर्हित पूर्णता प्रकट होजावे, गाधीजी के इस उपदेश मे दी हुई है—" अपने अन्दर की सुप्त अहिंसा को सचेतन करो और वढाओ।" इसका भावार्थ ध्यान देने योग्य है—जो सुप्त है उसे प्रयत्न के द्वारा जाग्रत करने की आवश्यकता है। यह प्रयत्न किस प्रकार किया जाये ?

"यदि मनुष्य को कोई दिव्य कर्तव्य पूरा करना है, ऐसा कर्तव्य जो उसके योग्य हो, तो वह अहिंसा है। हिंसा के मध्य में खड़ा हुआ भी वह अपने हृदय की ठेठ आन्तरिक गहराई में जाकर बस सकता है और अपने चारो ओर के ससार को यह घोषित कर सकता है कि इस हिंसामय जगत मे उसका कर्तव्य अहिंसा है और जिस अश तक वह उसे पालन कर सकता है, उसी अग तक वह मनुष्य-जाति का भूषण है। अत मनुष्य की प्रकृति हिंसा की नही, बल्कि अहिंसा की है, क्योकि वह अनुभव के द्वारा कह सकता है कि मेरा आन्तरिक विश्वास है कि मै देह नही, बल्कि आत्मन् हूँ और मुझे देह का उपयोग इसी उद्देश्य से करना चाहिए कि आत्मज्ञान प्राप्त हो।"

परन्तु इस निश्चय पर दृढ रहना चाहिए। जब मनुष्य अपने अन्तर में खोजता है तो उसे पुण्य और पाप दोनो मिलते है। जरथुस्त धर्म मे वर्णित वोहू-मनो तथा अकेम-मनो दोनो मानस उसमें कार्य करते रहते है। मनुष्य का अपना अत करण इसके लिए पर्याप्त नही है हालाकि वह भी उसके आन्तरिक चैतन्य का ही रूप है। गाधीजी ठीक ही कहते है—"अन्त करण सबके लिए एक-सी वस्तु नही है।" तो मनुष्य के अन्त करण की सहायता करनेवाली कौनसी ज्योति होनी चाहिए? एक निर्भ्रान्त धर्मगुरु? कोई श्रुति? गाधीजी के लेखो के मूलमत्र जैसा वचन देखिए—

"मै इस बात का दावा नही करता कि मेरी मार्ग-प्रदर्शिता तथा आन्तरिक प्रेरणा निर्भ्रान्त है। जहाँतक मेरा अनुभव है, किसी भी मनुष्य का यह दावा करना कि वह निर्भ्रान्त है, मानने के योग्य नही है, क्योकि आन्तरिक प्रेरणा भी उसीको हो सकती है जो द्वन्द्वो मे मुक्त होने का दावा करे और किसी भी अवसर पर यह निश्चय करना कठिन है कि द्वन्द्व मुक्त होने का दावा ठीक है या नही। अत निर्भ्रान्ति का दावा सदा एक भयकर दावा रहेगा। परन्तु यह बात नही है कि इससे हमारे लिए कोई मार्ग ही न रहा हो। ससार के ऋषि-महर्षियो के अनुभवो का सचित कोष हमको प्राप्त है तथा भविष्य मे सदा प्राप्त होता रहेगा। इसके सिवा मूल सत्य अनेक नही है, केवल एक ही मूल सत्य है, और वह स्वय सत्य ही है। जिसका दूसरा रूप अहिंसा है। परिमित ज्ञानवाली मनुष्य-जाति सत्य और प्रेम का पार पूर्णरूप से कभी नही पा-सकेगी, क्योकि ये स्वय अपरम्पार है। परन्तु हमे अपने मार्गप्रदर्शन के लिए उसका काफी ज्ञान है। हमें अपने मार्ग प्रदर्शन के लिए उसका काफी ज्ञान है। हम अपने कार्यो मे भूल करेगे और कभी-कभी भयकर भूल करेगे। परन्तु मनुष्य एक स्वशासित प्राणी है और स्वशासन मे आवश्यक रूप से भूल करने का अधिकार भी उतना ही शामिल है जितना, जितनी बार वे भूले हो उतनी ही बार उनको सुधारने का।"

क्या गाधीजी ने भूले की है? भूले सबसे होती है। परन्तु भयकर भूलो के किये जाने मे मुख्य कारण क्या है? सब मनुष्य भूल करते है, परन्तु इन भूलो को पहचानने की शक्ति कितनो मे है? और इसके अतिरिक्त कितनो में इतनी साहसपूर्ण मन शक्ति

है कि जो भूलो को स्वीकार करले। गाधीजी के स्वात्म-योग-युक्त होने का एक लक्षण यह है कि उनका स्वभाव है कि वह निष्कपट रूप से अपनी भूलो को स्वीकार कर लेते है। दूसरा लक्षण यह है कि वह अपने अनुयायियो के दोषो को अथवा अपने कुटुम्बियो के अपराधो को अथवा अपने राजनैतिक दल की कमजोरियो को निर्भयता-पूर्वक जाहिर कर देते हैं। वह अपने सहधर्मियो के धार्मिक दोषो को प्रकट करने से नही डरते। जो स्वय अपने ही शरीर की शैतानी शक्तियो के विषय म लिखकर अपना ही असलीरूप जनता के सामने रखने मे सकोच नही करता, जैसाकि उसने 'मेरे सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा' मे किया तो, वह एक शक्तिशाली साम्राज्यशाही सरकार को 'शैतानी' कहने मे क्यो डरे ?

पूर्वोक्त मूलमत्र मे हमको उनके स्वशासन के अदर्श की झाकी मिलती है। जो मनुष्य स्वय अपने ऊपर शासन कर सकता है, वह सबसे उच्च श्रेणी का सुधारक है। यह आदर्श गाधीजी की फिलासफी का आधार है। आर्थिक सुधार, राजनैतिक सुधार, सामाजिक सुधार, धार्मिक सुधार, ये सब व्यक्तिगत सुधार के व्यापकरूप है। उदाहरणार्थ सबसे प्रत्यक्ष सुधार—अर्थात् आर्थिक सुधार—के विषय मे वह कहते है—

"भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ मैं यह लेता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, स्वय अपने सजग प्रयत्न से अपनी आर्थिक उन्नति करे।"

इस सजग प्रयत्न मे उस मनुष्य का अपने समाज का सपर्क भी सम्मलित है। इस आर्थिक समस्या का राष्ट्रीय पहलू बडे अच्छे ढग से समझाया गया है। वह फिर कहते है—

"वास्तविक समाजवाद हमको अपने पूर्वजो से विरासत मे मिला है जिनका उपदेश है—

सबै भूमि गोपाल की, या मे अटक कहा ?
जाके मन मे अटक है, सोई अटक रहा।

'गोपाल' शब्द का शाब्दिक अर्थ है ग्वाला। इसका अर्थ परमेश्वर भी है। आधुनिक भाषा मे इसका अर्थ है राज्य, अर्थात् जनता। आज भूमि जनता की नही है यह बात, खेद है कि, ठीक है। परन्तु भूल इस देश की नही है। भूल उनकी है जिन्होने इस उपदेश का पालन नही किया है।"

जिस समाज मे मनुष्य रहता है और उसपर अपना प्रभाव डालता है उसके तथा उस मनुष्य के बीच का सम्बन्ध कौटुम्बिक सम्बन्ध है। "यह विश्वास करने का कोई कारण नही है कि कुटुम्बो के लिए तो एक न्याय है तथा राष्ट्रो के लिए दूसरा" अत सार्वजनिक कर्म का एक अत्यन्त व्यावहारिक तथा महत्वपूर्ण नियम इस प्रकार बतलाया गया है—

"सार्वजनिक सत्याग्रह के प्रत्येक उदाहरण की परीक्षा उसी भाँति के एक

कौटुम्विक प्रश्न की कल्पना के द्वारा होनी चाहिए।"

अर्थात् सार्वजनिक मामलो को निपटाते समय प्रत्येक व्यक्ति को समस्त मानव-समाज को अपने कुटुम्व के रूप मे देखना चाहिए। तव एक आदर्श सद्गृहस्थ जो परम दया-धर्म का पालन करना चाहता है, चोरो, वदमाशो, हरामखोरो इत्यादि के साथ कैसा वर्ताव करे ? श्रेष्ठ आर्य जातियाँ डिक्टेटरो तथा घृणा करनेवालो का क्या करे ? उत्तर यह है। क्रान्ति करो परन्तु "उसमे हिंसा का अंश न हो।" क्या कोई मनुष्य या जाति आततायी को अपने ऊपर आ जाने दे ? इस उचित प्रश्न के उत्तर मे गाधीजी ने समस्त मनुष्य-जाति की सेवा की है और कर रहे है।

उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियाँ इतने प्रकार की हो सकती है कि उनकी गिनती नही की जा सकती। कौटुम्विक सम्वन्वो मे भी अहिंसा का पालन करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। सत्याग्रह के व्यवहारविज्ञान के अनुसार किसी विशेप परिस्थिति को किस प्रकार सभाला जावे ? जिन्होने थोडे समय के लिए भी इसका प्रयत्न किया है, वे इस वात की साक्षी दे सकते है कि यह कोई आसान वात नही है, परन्तु उस कौम का काम तो और भी अधिक पेचीदा है, जो अहिंसा अथवा सत्याग्रह के आधार पर जीने तथा पुष्ट होने का आयोजन करती है। दक्षिण अफ्रीका मे जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, और भारत मे वे जिस प्रकार उत्पन्न होती रही है, उनका मुकाविला करने मे गाधीजी वदी का प्रतिरोध नेकी से, घूँसे का मुकाविला शान्तिपूर्ण हृदय से, करने की तरकीव निकाल रहे है। केवल जाने हुए सार्वजनिक मामलो मे ही नही, वल्कि खानगी तथा व्यक्तिगत जीवन मे भी, प्रति सप्ताह, वास्तविक कार्य-व्यवहार मे, गाधीजी यह वतलाते रहे है कि सत्याग्रह के चक्र को किस प्रकार चलाया जावे। उनका प्रिय चर्खा इसी चक्र की एक स्थूल अभिव्यक्ति है।

हमारे इस आधुनिक युग की सस्कृति की सहानुभूति अहिंसा अथवा सत्याग्रह के साथ नही है, न हो सकती है। परन्तु आधुनिक सभ्यता की असफलता तो स्पष्ट दिखलाई दे रही है और विचारवान् सुधारक इस वात को स्वीकार करते है कि यदि इस सभ्यता को डूवने से वचाना है तो इसके काम करने के कितने ही प्राचीन मार्गो को, जीवन के कितने ही ढगो तथा तरीको को, छोड देना पडेगा।

ऐसे लोग क्या करे ?

सत्याग्रह-शास्त्र के सिद्धातो का अध्ययन प्रारम्भ करदे और जव मस्तिष्क मे इसका स्पष्ट चित्र वन जावे तव अपनेको अनुशासन मे लावे। वुराई की तीन शक्तियाँ है—ससार मे ही नही, वल्कि मूलत व्यक्ति मे। इसलिए 'काम,' 'क्रोध' 'लोभ' ये ससार मे फूलते-फलते है। ससार राष्ट्रो मे वँटा है और राष्ट्रो द्वारा इन्हे पोषण मिलता है। प्रत्येक जाति मे ये वर्ग-युद्ध तथा तवाही उत्पन्न कर देते है, परन्तु इनकी असली जड व्यक्ति मे होती है। जव किसी मनुष्य के अन्दर ही ये

शक्तियाँ क्रियाशील होकर उसकी शान्ति को नष्ट करदे, उसके मस्तिष्क मे गडवड उत्पन्न करदे, उसके हृदय को समस्त मानव-मण्डल के विरुद्ध नही तो उसके अधिकाश व्यक्तियो के विरुद्ध कठोर बना दे, तो वह मनुष्य ससार मे शान्तिपूर्वक नही रह सकता।

वह प्रधान गुण, जो प्रत्येक सच्चे सत्याग्रहियो के आचरण का सिद्धान्त है, साहस है। इस साहस का उपयोग केवल अपनी ही नीच प्रवृत्ति का मुकाविला करने मे नही, वल्कि उन लुभावनी वस्तुओ के विरुद्ध भी करना चाहिए जो ऐसे ससार मे उत्पन्न होती है, जहाँ 'काम' को गलती से प्रेम मान लिया जाता है, तथा लोभ जीवन की प्रतियोगिता का एक आवश्यक वल बनकर फूलता-फलता है, जहाँ वे ही सफल प्रतियोगी जीवित रहने के योग्य होते है जो अपने प्रतिद्वन्दियो के विरुद्ध क्रोध के वल का प्रयोग करते है—उसका वेष चाहे जितनी खूवी के साथ वदल दिया गया हो। हमको पग-पग पर आत्मा के उस साहस की आवश्यकता होती है जो हमारे तथा हमारी विश्वात्मा से अभिन्न अन्तरात्मा के एकीकरण से उत्पन्न होती है।

सत्याग्रही का मार्ग कायर का मार्ग नही है। इस वात पर गाधीजी ने इतना ज़ोर दिया है तथा इसने कितने ही यूरोपियनो को असमजस मे डाल दिया है, अत इस सम्वन्ध मे गाधीजी के ही शब्दो को उद्धृत करना श्रेयस्कर है—

"मै यह पसन्द करूँगा कि भारतवर्ष अपने गौरव की रक्षा के लिए शस्त्रो का सहारा ले, वजाय इसके कि वह कायरता के साथ स्वय अपने ही गौरव को असहाय की भाँति मिट्टी मे मिलता देखे।

"यदि हम कष्ट-सहिष्णुता के वल से अर्थात् अहिसा से, अपनी, अपनी स्त्रीजाति की तथा अपने देवालयो की रक्षा नही कर सकते तो, यदि हम मनुष्य है तो, हममे कम-से-कम लडकर इनकी रक्षा करने की योग्यता होनी चाहिए।"

कुछ दिन हुए, कुछ चीनी अतिथियो के प्रश्नो के उत्तर मे गाधीजी ने वतलाया था कि वतौर एक राष्ट्र के अव चीन के लिए समय नही रहा कि अहिसा का सगठन करे और जापान चीन मे जो खरावी फैला रहा है, उसका मुकाविला करे। शान्ति की सेना एक दिन मे तैयार नही की जा सकती है और उसके सिपाही जितनी शीघ्रता से वन्दूक चलाने के भद्दे कौशल को सीख सकते है उतनी शीघ्रता से वुराई का मुका-करने की उदात्त कला को नही सीख सकते। चीन मे केवल व्यक्ति अहिसा का पालन कर सकते है और यदि स्वर्गीय साम्राज्य[1] के लोग पर्याप्त सख्या मे सत्याग्रह के सच्चे स्वर्गीय विज्ञान को सीखना तथा पालन करना सीख ले तो समय आनेपर—और समय कभी भी आ सकता है—वे चीन की आत्मा को वचा सकेगे। गाधीजी ने समझाया कि "किसी राष्ट्र की सस्कृति उसकी जनता के हृदयो तथा आत्मा मे निवास करती है . । जापान तलवार के ज़ोर से दवा न पीनेवालो के गले में ज़वरदस्ती दवा नही डाल सकता।"

१ चीनवाले अपने देश को स्वर्गीय साम्राज्य कहते है—सपादक

उन्होने अपने अतिथियो से कहा कि आप अपने देशवासियो से कहे—"जापान के लोग हमारी आत्मा को भ्रष्ट नही कर सकते। यदि चीन की आत्मा को हानि पहुँची तो वह जापान के द्वारा नहीं पहुँचेगी।" यह सत्य सब राष्ट्रो पर लागू होता है, परन्तु ऐसे भी राष्ट्र है, जैसे इग्लैण्ड, जो जल्दी से शान्ति की फौज खडी करके अपने घर का वन्दोवस्त कर सकते है, और इस प्रकार दूसरे लोगो को वचाने में सहायक हो सकते है। यदि इग्लैण्ड का शस्त्र-निर्माण का कार्यक्रम दूसरे लोगो को नकल करने के लिए प्रेरित कर सकता है, तो सत्याग्रह के पालन में उसका सगठित प्रयत्न दूसरो को भी ऐसा ही करने की स्फूर्ति क्यो नही दे सकता? उसे उचित है कि वह "सीधे-सादे तथा दिव्य जीवन से उत्पन्न होनेवाले शान्ति के मार्ग" पर चलने का सगठित आयोजन करे।

: ५३ :

हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए गांधीजी का अनशन

रेवरेण्ड फॉस वेस्टकॉट, एम ए, एल-एल डी

[भारत के लाट पादरी और लॉर्ड विशप, कलकत्ता]

मुझसे श्री मोहनदास करमचन्द गाधी के जीवन और उनके कार्य के किसी पहलू की महत्ता पर सक्षेप में कुछ लिखने को कहा गया है। मै समझता हूँ उसके उत्तर में मै सितम्बर १९२४ में उन्हे जिन कारणो से इक्कीस दिन का उपवास करना पडा और उसके जो परिणाम हुए, उनका वर्णन करने से वढकर और कोई कार्य नही कर सकता।

उस वर्ष के ग्रीष्मकाल में हिन्दू-मुस्लिम तनाव भयावह स्थिति तक पहुँच गया था। इसका आशिक कारण था वह शुद्धि आन्दोलन, जो स्वामी श्रद्धानन्द ने दिल्ली के आस-पास के नव-मुस्लिमो में आरम्भ किया था। महात्मा गाधी के लिए, जैसाकि उन्होने कहा है, गत तीस वर्षो से हिन्दू-मुस्लिम एकता चिता का एक प्रमुख विषय रहा है, इसलिए यह साम्प्रदायिक सघर्ष उन्हे अत्यन्त क्लेश का कारण था। ज्यो-ज्यो एक के वाद दूसरा दगा होता जाता था, उसका क्लेश वढता जाता था। यहाँतक कि अन्त में १७ दिसम्बर को उन्हे यह प्रेरणा हुई कि उन्हे इक्कीस दिन का उपवास करना चाहिए। इस पर लिखते हुए उन्होने कहा था—"मेरा प्रायश्चित्त अनिच्छापूर्वक किये गये अपराधो की क्षमा के लिए की गई एक दु खित हृदय की प्रार्थना है।" इस तरह उन्होने, जिन अपराधो के लिए हिन्दू दोषी थे, उनसे अपने को सम्बन्धित किया और उनकी जिम्मेदारी अपने पर ली। उन्होंने कहा—"एक-दूसरे के धर्म की निन्दा करना,

अन्धाधुन्ध अथवा गैर-ज़िम्मेदाराना वक्तव्य देना, असत्य कहना, निर्दोष व्यक्तियो के सिर फोडना और मन्दिरो अथवा मस्जिदो का अपवित्र किया जाना, ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करना है।" जब उन्होने अपने मित्रो पर अपना अनशन करने का विचार प्रकट किया तो उनका उपवास छुडाने की हर तरह कोशिश की गई, लेकिन चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो, वे अपने निश्चय के पथ से विचलित न होने का राम का उदाहरण देकर अपनी बात पर अडे रहे। १८ सितम्बर को उनका उपवास शुरू हुआ और उसी दिन हकीम अजमलखा स्वामी श्रद्धानन्द और मौ० मोम्मदअली ने सब प्रकार के राजनैतिक विचारो के प्रमुख हिन्दुओ और मुसलमानो और दूसरी जातियो, यूरोपियन और हिन्दुस्तानी दोनो के नाम एक पत्र लिखा, जिसमे उन्हे बहुत जल्दी-दिल्ली मे होनेवाली शाति-परिषद् मे भाग लेने के लिए निमत्रित किया था। करीब तीन सौ व्यक्तियो ने जिनमे दोनो जातियो के अधिकाश नेता शामिल थे, निमन्त्रण स्वीकार किया, क्योकि भारत के सब वर्गो के लोगो मे गाधीजी के प्रति अगाध और स्नेहपूर्ण आदर-भाव था, राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप मे गाधीजी का जो अमूल्य मूल्य था और उपवास मे उनके जीवन के खतरे मे पडने की आशका थी ही, अत उसके कारण को दूर करने मे जो भी प्रयत्न सम्भव हो करने के लिए सब इकट्ठे हुए। गाधीजी ने खुद अपने मित्रो से कहा था, "मैने यह उपवास मरने के लिए नही, बल्कि देश और ईश्वर की सेवा मे उच्चतर और पवित्रतर जीवन व्यतीत करने के लिए किया है। इसलिए अगर मै ऐसे सकटकाल के निकट पहुँचा (जिसकी कि एक मनुष्य की नाई बोलते हुए मै किसी प्रकार की कोई सम्भावना नही देखता) जबकि मृत्यु और भोजन दो मे से किसी एक को चुनना होगा, तब निश्चय ही मै उपवास भग कर दूंगा।" अन्त मे २६ सितम्बर को सगम थियेटर मे शान्ति-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ। विस्तृत जन-समूह मच के सामने खुली जमीन पर बैठा था, मच पर यीशु के सूली लटकते हुए दृश्य का परिचायक एक धुधला-सा पर्दा लटका हुआ था, और मच के एक ओर गादी पर गाधीजी का मढा हुआ एक बडा चित्र रक्खा था। स्वागताध्यक्ष मौ० मोहम्मदअली ने उपस्थित सज्जनो का स्वागत किया और सक्षेप मे परिषद् का उद्देश्य बतलाया। इसका क्षेत्र सीमित था और वह था साम्प्रदायिक झगडो के धार्मिक कारणो पर विचार करना। यह तो ज्ञात ही था कि इन झगडो के राजनैतिक और आर्थिक कारण भी है, पर उनपर बाद को विचार किया जाने को था। प० मोतीलाल नेहरू सर्वसम्मति से परिषद् के सभापति चुने गये। कुछ प्रारम्भिक भाषणो के बाद इस परिषद् का पहला काम था करीब अस्सी सदस्यो की एक 'विषय निर्वाचिनी समिति' नियुक्त करना जो एक छोटी समिति के द्वारा बनाये गये मसविदो को प्रस्तावो के रूप मे तैयार करने की मुख्य ज़िम्मेदारी ले ले।

परिषद् की कार्रवाई शुरू होने के पहले गाधीजी ने क सन्देश भेज कर इस

वात पर जोर दिया था कि "जिस चीज़ की ज़रूरत है वह है हृदय की एकता। प्रत्येक व्यक्ति ने सत्य को जैसा देखा-समझा हो उसे वही कहना चाहिए। यहातक कि अगर इसमें दूसरो के उपासना-स्थानो को अपवित्र करना भी शामिल हो तो उन्हे वह भी वैसा ही कहना चाहिए। मै उनकी इस ईमानदारी की कद्र करूँगा, हालाकि इससे मै यह जान लूँगा कि उस हालत में अपने इस अभागे देश के लिए शान्ति नही है।"

सभापति की ओर से रक्खा गया वह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ जिसमे गाधीजी के धर्म मे "मन. पूत समाचरेत्" के सिद्धान्त को स्वीकार और उपासना-स्थानो के अपवित्र किये जाने, सच्चे दिल से और ईमानदारी के साथ अपना धर्म-परिवर्तन करने के कारण किसी भी व्यक्ति के सताये जाने और ज़बर्दस्ती धर्मान्तरित किये जाने की निन्दा की गई थी।

परिषद् के आरम्भ होने मे पहले चारो तरफ से इस वात की तरफ हमारा ध्यान दिलाया जारहा था कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता प्रस्ताव पास कर लेने से नही, वल्कि एक मात्र हृदय-परिवर्त्तन से ही होसकती है। और शुरू के दिनो के वाद-विवाद पर दृष्टि डालने से, मुझे मालूम हुआ कि, धीरे-धीरे वही हृदय-परिवर्त्तन हो रहा है। पर जिस समय हमने विषय-निर्वाचिनी समिति मे छोटी कमेटी द्वारा तैयार किये गये प्रस्तावो पर विचार करना शुरू किया, भावो की कटुता और तीव्रता एकदम स्पष्ट दिखाई देने लगी जिसके साथ-ही-साथ गहरे सन्देह की भावना लगी हुई थी। सद्भावना प्रदर्शित करनेवालो को अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता था और उदारतापूर्वक वढाये गये हाथ को वदले मे अधिक लाभ उठाने की चाल समझा जाता था। लेकिन पाँचवे दिन स्पिरिट में एक निश्चित परिवर्तन दिखाई दिया और जव मौलाना अवुलकलाम आज़ाद के अपना भाषण समाप्त कर चुकने के वाद, जिसकी कि उत्कृष्ट वाग्मिता और भावो की उदारता के कारण मुक्तकण्ठ से प्रशसा हुई, एक प्रश्नकर्ता ने उनसे पूछा कि वदले मे उन्हे क्या-क्या रिआयते मिलने की आशा है, तो सभा में चारो तरफ से उसके प्रति तिरस्कारपूर्ण आवाजे उठने लगी। यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि वदले की पुरानी भावना का स्थान सहिष्णुता की भावना लेती जा रही है और धार्मिक विश्वास और रीति-रिवाजो के मतभेद उचित सम्मान के योग्य समझे जाने लगे है। वहस के शुरू में वक्ता मुख्यत अपने अधिकारो पर ज़ोर देते थे, लेकिन अव उनमें अपनी ज़िम्मेदारियो और अपने आवश्यक कर्तव्यो की भावना दिखाई देने लगी।

उपवास के ग्यारहवे दिन गाधीजी की हालत कुछ चिन्ताजनक हो गई और वैठक के वीच ही मुझे श्री सी एफ एण्डरूज़ का ज़रूरी पैगाम मिला कि मै फौरन आजाऊँ। मैंने रास्ते मे डॉ० अब्दुल रहमान को अपने साथ ले लेना मुनासिव समझा और उन्होने उस शाम को और जाँच करने को कहा। इस वीच परिषद् काफी देर तक रुकी रही। तवतक गाधीजी ने श्री एण्डरूज़ को और मुझे उनकी शाम की प्रार्थना के समय हम

ईसाइयो का प्रसिद्ध अँग्रेज़ी भजन, जो इधर अर्से से उनका प्रिय भजन था, गाने को कहा। वह है —

लिये चलो ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !
रात अंधेरी, गेह दूर है, मुझे सहारा दिये चलो !!
थामो ये मेरे डगमग पग,
दूर दृश्य चाहे न लखें दृग—
मुझे अल है देव, एक डग !
कभी न मैंने निस्सहाय हो मागा—'मुझको लिये चलो !'
निज पथ आप खोजता-लखता ! पर तुम अब तो लिये चलो !
लिये चलो, ज्योतिर्मय मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !
प्यारा था मुझको जगमग दिन
हेय मुझे थे ये भय अनगिन
अहंकार से गया सभी छिन
मेरे पिछले जीवन को प्रिय, मन में रखकर अब न छलो !
लिये चलो, ज्योतिर्मय, मुझको सघन तिमिर से लिये चलो !
जबतक है तेरा बल सिर पर,
हूँगा मैं गतिशील निरन्तर,
बीहड़-दलदल, शैल-प्रलय पर,
तबतक, जबतक रात अंधेरी रम्य उषा में आ बदलो,
चिरप्रिय खोये देवदूत वे, मुसकाते फिर मुझे मिलो !
लिये चलो, ज्योतिर्मय मुझको सघन तिमिर से लिये चलो ![१]

१ मूल अंग्रेज़ी भजन इस प्रकार है :—

Lead, Kindly light, amid the encircling gloom
Lead Thou me on
The night is dark and I am far from home,
Lead Thou me on
Keep Thou my feet I do not ask to see
The distant scene, one step enough for me
I was not ever thus, nor preyad that Thou
Shouldst lead me on,
I loved to choose and see my path, but now
Lead Thou me on
I loved the garish day, and spite of fears,
Pride ruled my will remember not past years

कमरे का मन्द प्रकाश, पलग पर सहारे से अधलेटी वह दुर्बल-मूर्ति !—एक विलक्षण मर्मस्पर्शी दृष्य था।

डाक्टर की रिपोर्ट मिलने पर खैर निश्चिन्तता हुई। कष्टदायक लक्षण निश्चित रूप से कम हो गये थे, और भय का कोई कारण नही रह गया था।

परिषद् के परिणामो का चारो तरफ हार्दिक समर्थन के साथ स्वागत हुआ, यद्यपि यह आम धारणा थी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होने का काम समय लेगा। ८ अक्तूवर को मनाये गये 'एकता-दिवस' पर कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' मे जिन वहुतसे प्रसिद्ध लेखको के सन्देश प्रकाशित हुए थे, उनमे एक लेखक ने वडी अच्छी तरह इस वात को व्यक्त किया था। लिखा था—"जहाँ सुस्पष्ट और प्रवल राजनैतिक युक्तियाँ सर्वथा असफल हुई, वहाँ गाँधीजी के उपवास से उत्पन्न धार्मिक भावनाये सफल होगई। लेकिन लाखो आदमियो मे सहिष्णुता से काम लेने की आदत डालने का कही अधिक कठिन कार्य अभी वाकी पडा है।" वाद की राजनैतिक घटनाओ के कारण, जिन्होने राजनैतिक और आर्थिक तनातनी को और अधिक वढा दिया है, यह कार्य सरल नही होसका। अगर शान्ति का राज्य स्थापित करना है तो गाधीजी ने जिस, मानवमात्र के हृदय मे ईश्वर को प्रस्थापित करने के उद्देश्य से उपवास आरम्भ किया था, वह अवश्य पूरा किया जाना चाहिए, क्योकि एकमात्र इसी तरीके से मनुष्य की परस्पर विरोधी इच्छाओ को ईश्वर की एक सर्वोपरि इच्छा के नियत्रण मे लाया जा सकता है।

: ५४ :

महात्मा गांधी और कर्मण्य शान्तिवाद

रेवरेण्ड जैक सी. विसलो,

[पूना और लन्दन]

महात्मा गाधी के चरित्र और शिक्षा से खुद मुझको जो प्रेरणा मिली ह, उसके सम्वन्ध मे मै वहुत कुछ लिख सकता था। उनके साथ परिचय मेरे जीवन का एक परम सौभाग्य है। लेकिन इस सक्षिप्त लेख मे मै सिर्फ एक विषय पर जोर देना चाहता हूँ,

---

So long thy power hath blest me, sure it still
Will lead me on,
O'er moor and fen, o'er crag and torrent, till
The night is gone,
And with the morn, those angel faces smile,
Which I have loved long since and lost awhile

और वह यह कि उन्होने ससार को इस तरह का शान्तिवाद वतलाया है, जो सचमुच युद्ध का स्थान ले सकता है।

वह शान्तिवाद, जैसा कि पश्चिम मे अक्सर प्रकट हुआ है, सफलता-पूर्वक युद्ध प्रणाली का स्थान नही लेसकता। अवश्य ही युद्ध का निपेध करने मे और अपने इस विश्वास मे वह सही है कि युद्ध विजयी और विजित दोनो ही के लिए समानरूप से केवल और अधिक तवाही ही लाता है। उसका यह प्रतिपादन भी सही है कि अहिंसा का मार्ग उच्चतर मार्ग है। लेकिन पश्चिमी शान्तिवाद मे एक दोष यह है कि उसमे वुराई के मुकाविले मे सुदृढ और सफल आक्रमण करने की शक्ति नही है। वह वडी आसानी से निष्क्रियता मे डूव जाता है। जिन लोगो का खून अत्याचारो के खिलाफ गुस्से से उवल रहा है और जो हमलो को रोकने का कोई उपाय करने के लिए उतावले होरहे है, वे शान्तिवादी को ऐसी ज्यादती के सामने आत्म-तुष्ट और निकम्मा वना वैठा मानते है (और उनका ऐसा मानना सर्वथा अनुचित भी नही है)। उनकी दृष्टि मे शान्तिवादियो का तरीका ऐसे कामो का मुकाविला करने की आशा नही दिलाता जैसे इटली का अवीसीनिया पर आक्रमण अथवा जर्मनी मे यहूदियो के खिलाफ अमल मे लाये गये तरीके। यही कारण है कि अपने पीछे उच्च नैतिक वल होने का दावा करने पर भी वस्तुत पश्चिमी शान्तिवाद को सच्चे ईसाइयो तक का पूर्ण या व्यापक समर्थन प्राप्त नही है। शान्तिवादी आमतौर पर यह धारणा वना लेता है कि वहुसख्यक ईसाई उसके मार्ग का परित्याग इसलिए करते है कि वह जो नैतिक माँगे करता है, वे उनके लिए वहुत ऊँची है। जवकि वास्तव मे वहुत से उसका परित्याग इस कारण करते है, कि उनकी नज़रो मे वे माँगे वहुत नीची दिखाई देती है। कई ईसाइयो की दृष्टि मे शान्तिवादी नैतिक अपराधो के प्रति ऐसी उदासीनता रखने के अपराध के अपराधी है, जो कि सत्यनिष्ठता और प्रेम के उच्चतम आदर्श से गिरी हुई है। मगल-मय ईश्वर अमगल और अनीति के साथ कभी समझौता नही करता है और उन ईसाइयो की शान्तिवादियो से माँग है कि उनमे भी वुराई के प्रति ऐसे ही प्रवल विरोध के भाव की झलक मिलनी चाहिए।

इसी रूप मे महात्मा गाधी की आक्रामक शान्तिवादिता पश्चिम के साधारण शान्तिवाद से उच्चतर सिद्ध होती है। अवश्य ही गाधीजी के सत्याग्रह मे शान्तिवादी का चाहा हुआ अहिंसा का सारा तत्त्व मौजूद है, और वह तत्त्व सर्वोच्च और सर्वाधिक सक्रियरूप मे है। गाधीजी लिखते है "अग्रेज़ मे 'अहिंसा' शब्द का वास्तविक अनुवाद 'प्रेम या उदार हृदयता' है।" "अपने सक्रिय रूप मे अहिंसा का अर्थ है विशाल-से-विशाल प्रेम, वडी-से-वडी उदार हृदयता।" "मेरे लिए ईश्वर को जानने का एकमात्र उपाय है—अहिंसा, प्रेम।" विरोधी के प्रति केवल सव प्रकार की हिंसा से ही नहीं, वल्कि सव प्रकार की दुर्भावनाओ और कटु विचारो से भी दूर रहना तया प्रेम और

आत्मपीडन के द्वारा उसे जीतने की लगातार कोशिश करना सत्याग्रह का सार है। इतने पर भी सत्याग्रह अपने में निर्भय आक्रामक गुण भी रखता है। वह गुण है बुराई के विरोध में अपने पास के आत्म-बल का अधिक-से-अधिक प्रयोग, और वह शक्ति जब तक उस बुराई पर विजय प्राप्त नही कर लेती, चैन नहीं लेगी चाहे उसकी प्राप्ति के लिए जरूरत हो तो मौत भी मिले।

भारत पर अंग्रेजो के आधिपत्य को एक अभिशाप, और उसे अपने देश और खुद अँग्रेजो के लिए हानिकर मानकर गाधीजी ने अपने-आपको अपनी आत्म-शक्ति को पूरे जोर के साथ अँग्रेजी राज के अन्त करने के लिए लगा दिया। विदेशी के प्रति घृणा न रखते हुए, उसके प्रति एकमात्र प्रेम और सद्भावना रखते हुए भी अपने इसी विश्वास के कारण वे विदेशी जुए को उखाड फेकने के लिए डटकर खडे हो गये। उन्होने अपने देश-भाइयो को पश्चिमी आधिपत्य की नैतिक बुराइयो के मुकाबिले मे बिना विरोध किये निष्क्रिय होकर बैठ जाने की सलाह नही दी। वरन् इसके विपरीत उन्होने अपनेको इस 'गुलाम-मनोवृत्ति' को तोडने मे लगा दिया, जिसे वह नैतिक दृष्टि से बलात् विरोध से भी गिरा हुआ समझते थे, और अपने अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा उन्होने भारत को स्वतन्त्रता-प्राप्ति का एक ऐसा उपाय बतलाया जिसमे एक ही साथ बदी को ललकार थी और घृणा का लेश न था। इसमें विदेशी शासन पर हिंसात्मक युद्ध के जैसी निश्चित दृढता के साथ प्रचण्ड आक्रमण की आवश्यकता होती है और इतने पर भी वह चाहता है कि इसमें भाग लेनेवालो मे उच्चतम आत्मानुशासन, स्वय कष्टसहन और प्रेम का भाव हो।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सत्याग्रह का यह तरीका ईसा के तरीके के बहुत-कुछ समान है। महात्मा गाधी ने ईसा-मसीह को 'सत्याग्रहियो का राजा' माना है। यह सच है कि ईसा ने अपने को रोमन आधिपत्य मिटाने के काम में कभी नहीं लगाया। उन्हे विदेशी आधिपत्य की बुराइयो के मुकाबिले अपने ही लोगो और नेताओ के पाप एव अपराधो का अधिक खयाल रहा। लेकिन इन पापो के खिलाफ उन्होने कडे-से-कडा विरोध प्रदर्शित किया, जिसके परिणाम मे अन्त मे उन्हे अपनी जान तक देनी पडी। इतने पर भी इन पापो के भागियो के प्रति उन्होने जो प्रेम प्रदर्शित किया उसमे कभी भी हिचकिचाहट नही आई, बल्कि वह अधिक बढा ही, और अत मे तो उन्होने उनको और सब मनुष्यो के हृदय को जीतने और उनका उद्धार करने के लिए उनके हाथो प्रसन्नतापूर्वक चरम सीमा तक कष्ट-सहन कर कठोरतम दण्ड सहा। मेरा विश्वास है कि यूरोप को और दुनिया को आज उन बुराइयो के मुकाबिले मे, जिनसे मानव-समाज के लिए अकथनीय आपदाओ का खतरा है, निष्क्रिय नही, बल्कि आक्रामक शान्तिवाद की जरूरत है। वह है ईसा का यह सत्याग्रह, जिसे महात्मा गाधी ने उनसे 'पर्वत पर के उपदेश' और टॉल्स्टॉय से (साथ ही स्वय अपने हिन्दू धर्मशास्त्र से) सीखा है।

यूरोप की आज की हालतो मे इस सिद्धान्त का अमल मे लाया जा सकना आसान नही है। उदाहरण के लिए, जर्मन और आस्ट्रियावासी यहूदियो के ख़िलाफ जिन दमनकारी उपायो को काम मे लाया गया, उन्हे उन उपायो का अहिसात्मक मुकाबिला करने के लिए सगठित करना उनके नेताओ के लिए कुछ हलका या आसान काम नही होता। यह सर्वथा निश्चित था कि इसका मतलब होता उनमे से कुछ का बलिदान। लेकिन ससार मे इस प्रकार के बलिदान का जो नैतिक और आध्यात्मिक असर होता उसका परिणाम अपार महत्त्व का होता, जैसा कि अभी भी जेलो मे पडे हुए जर्मन पादरियो के मूल बलिदान का होरहा है। फिर भी, अगर सत्याग्रह के तात्कालिक प्रयोग का समझ मे या व्यवहार मे आसकना आसान न हो, तो भी स्वय उसका सिद्धान्त तो निश्चय ही सब सन्देहो से परे है, और मेरे विचार मे भावी सकट से अधिकाधिक सजग दुनिया के लिए वही अपनेमे एकमात्र कुञ्जी या चाबी रखता है, जो पागलखाने से मुक्त होकर विवेक और शान्ति के प्रकाश मे आने के द्वार को खोल सकती है।

बहुत दिनो से मेरे दिमाग मे यह विचार चक्कर काट रहा है कि क्या महात्मा गाधी के लिए, इस आयु मे जब कि वह अपनी सब प्रवृत्तियाँ छोडकर अपनी अन्तिम मुक्ति के लिए सन्यासी की-सी शान्ति की साधना के अधिकारी है, अपने समस्त जीवन के कार्य को सफल बनाने के लिए, अब भी, यहाँ पश्चिम् मे, यूरोप के सब राष्ट्रो के नेतृत्वहीन उन लाखो-करोडो लोगो का, जो बिना युद्ध और वैर के प्राप्त की गई न्याययुक्त और स्थायी सुलह और शान्ति चाहते है, नेतृत्व करके यह बताने का काम बाकी नही है कि हमे कौन-कौन-सा काम और क्या-क्या कष्ट सहन या बलिदान करना चाहिए जिससे कि उपर्युक्त शान्ति प्राप्त होसके ?

: ५५ :

गांधीजी का नेतृत्व

एच जी वुड, एम. ए डी डी

[वुडब्रुक, सेली ओक, बर्मिंघम]

फूल-मालाये गूँथना एक भारतीय कला है और एक कोरा अग्रेज़ अगर किसी महान् नेता की प्रशसा मे श्रद्धा की एक अञ्जलि समर्पित करने का प्रयत्न करे तो उसमे उसके असफल होने की सम्भावना रहती है। अगर वह किसी खास अहतियात और सजीदगी के साथ लिखता है तो उसमे वास्तविक गुणग्राहकता का अभाव दिखाई देता है। अगर वह अपनेको अधाधुन्ध प्रशसा के लिए खुला छोड देता है तो उसमे

वास्तविक सचाई का अभाव प्रतीत होगा। फिर भी, मेरी भेट कितनी ही तुच्छ और नगण्य क्यो न हो, गाधीजी के इकहत्तरवे जन्म-दिवस पर पहुँचने पर, मै उन्हे बधाई देने के निमन्त्रण को अस्वीकार नही कर सकता। इससे कम-से-कम उनके भारतीय जनता को दिये गये नेतृत्व का मुझपर जो असर पडा, उसके सम्बन्ध मे मुझे कुछ कहने का मौका मिल जाता है।

इतिहास मे मनुष्य की महत्ता आमतौर पर उसके चरित्र और गुण की अपेक्षा उसके प्रभाव के विस्तार और पायेदारी से नापी जाती है। यह एक माप है जिसे इतिहासकार भुला नही सकता और जिससे कि साधारण वुद्धि का समाधान होजाता है। इस तरह के माप से नापे जाने पर—हिटलर, स्टेलिन, मुसोलिनी आदि डिक्टेटर आज दुनिया के महापुरुष है। खासकर हिटलर कोलोसस[1] की तरह हमारी छोटी-सी दुनिया पर सवारी गाँठे हुए है। आदमियो के मन और जीवन पर उसका ऐसा दवदवा है कि अगर भीषणता का खयाल न करे तो वह हास्यप्रद ही लग सकता है। इस वात से इन्कार नही किया जा सकता कि उस व्यक्ति मे अवश्य महानता के कुछ तत्त्व है, जिसके कार्यो का इतने सारे लोगो के भाग्यो पर असर पडता है। फिर भी ईसाई के लिए इस तरह की महानता न तो परमसाध्य है, न प्रशसनीय। ईसा के समय मे दुनिया भर मे सिकन्दर महान् समझा जाता था। कुशल सेनानी और शाही शासक के रूप मे उसके उल्का के समान चमकीले एव द्रुत जीवन ने मनुष्य की कल्पनाओ को प्रभावित और उनकी महत्त्वकाक्षाओ को प्रज्वलित कर दिया था। जूलियस सीज़र जव तैंतीस वर्ष की अवस्था मे स्पेन मे सरकारी खजानची था, इस खयाल से शोक-भिभूत होगया कि यद्यपि मै उस उम्र तक पहुँच गया हूँ जिसमे कि सिकन्दर मर गया था, फिर भी मैने कोई महान् कार्य नही किया। ईसा के समय के राष्ट्रो मे जिनकी गिनती महान् राष्ट्रो मे की जाती थी, वे वे राष्ट्र थे जिन्होने विस्तृत भूभागो को हडप लिया था और वहुसख्यक लोगो पर शासन करते थे। किन्तु ईसा ने हमारे सामने दूसरे ही आदर्श रक्खे—जो वडा या उच्च होना चाहता हो वह सेवक वने। मनुष्यो के हृदय मे से अभी प्राचीन मूर्ति-पूजा का उन्मूलन नही हुआ, लेकिन जिस तरह सिकन्दर ने यूनान और रोम की, दुनिया की, कल्पनाशक्ति को मोह लिया था, उस तरह नेपोलियन उन्नीसवी सदी के यूरोप पर अपना जादू नही चला सका। ईसा ने विजेता की शान को धूमिल किया और सेवक के दर्जे को ऊँचा चढा दिया। ईसा के सव अनुयाइयो की दृष्टि मे महानता प्रभुताधारियो मे नही, वल्कि उन लोगो मे है जो अपनेको दीन और दलितो की सेवा मे लगा देते है। कोढियो के वीच रहनेवाले पादरी डेमीन और अफ्रीका मे सेवा के लिए अपना जीवन खपा देनेवाले डेविड लिविंग्स्टन जैसे व्यक्ति वास्तविक महानता की प्रतिमूर्ति समझे जाते है। अपने समकालीन व्यक्तियो मे

१ रोड्स द्वीपस्थ एपोलोदेव की विशाल मूर्ति।

लेबराडोर के श्री-डबल्यू० टी० ग्रीनफेल मे, जापान के टी० कागावा मे और पश्चिमी अफ्रीका के प्राचीन जगलो मे बसे अलबर्ट स्विट्जर मे सच्ची और स्थायी महानता दिखाई देगी।

गाधीजी की यह विशेपता है कि दोनो ही सूचियो मे उनका स्थान है। जो लोग राजनैतिक दृष्टि से महान् है, उनकी सूची में भी और जो आध्यात्मिक दृष्टि से महान् है, उनकी मूची मे भी, उनका एक-सा स्थान है। प्राय दोनो तरह की महानताये एक साथ किसी व्यक्ति मे नही आती और वास्तव मे एक दूसरे के साथ शायद आसानी से मेल भी नही खाती। गाधीजी ने सार्वजनिक विषयो पर और भारत और ब्रिटेन के सम्वन्धो पर ऐसा प्रभाव डाला है, कि जिसके कारण वर्तमान युग के राजनैतिक इतिहास मे उनका एक अनुपम स्थान बन गया है, यह बात भारतीय जनता के लिए बडे श्रेय की है। उराने एक सच्चे नेता को पहचाना और उसका अनुगमन किया ह। गाधीजी के नेतृत्व ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को वर्तमान युग के भयावह राष्ट्रवाद की सतह से ऊँचा उठा दिया है। यह राजनैतिक अनीतिवाद की, जो पश्चिमी सभ्यता को खा जाने को तुली है, अत्यावश्यक और प्रेरणाप्रद प्रतिक्रिया का एक अग है।

हिटलर और मुसोलिनी 'निरकुश राष्ट्रवादी' अहभाव तथा नग्न और निर्लज्ज पाशविक राजनैतिक सत्ता के पोषक है। जिसे वे स्वजाति के हित मे समझते है, उसकी प्राप्ति के प्रयत्न मे उन्हे किसी वात की हिचकिचाहट नही होती और उसके लिए वे किसी तरह के नैतिक नियमो का वन्धन स्वीकार नही करते। प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन का झुकाव इस चरमसीमा तक पहुँच जाने की ओर होता है और अधिकाश राष्ट्रो के के स्वतन्त्रता-प्राप्ति के आन्दोलनो पर सगठित भीषण अत्याचारो और राजनैतिक हत्या के अपराधो की छाप लगी हुई है। आयर्लेंड की स्वतन्त्रता के उद्देश मे आयरिश वन्दूकधारियो की हलचलो से वडी क्षति पहुँची, और आतकवादी, प्रत्येक कार्य को, जिसे वे सहायता पहुँचाना चाहते है, नीचे गिरा देते है। इतने पर भी जिस समय राष्ट्रीय भावनाये उभार पर होती है, यह याद रखना आसान नही रहता कि कुछ बाते ऐसी है जिन्हे कि एक व्यक्ति को अपने देश के हित मे नही करनी चाहिए और जब नेता ही भूल जाते है तब सैनिको और अनुचरो से कठोर नियमो के पालन की आशा नही की जा सकती। भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन भी अत्याचारो और ज्यादतियो से रहित नही रहा है, लेकिन कम-से-कम उसके पास एक ऐसा नेता है, जिसने अपनी आवाज़ इन चीज़ो के खिलाफ उठाई है। इस समय जर्मन और इटालियन जनता का नेतृत्व ऐसे लोगो के हाथ मे है, जिनका कोई भी तटस्थ दर्शक आदर नहीं कर सकता, और न जिनके शब्दो पर कोई व्यक्ति भरोसा ही कर सकता है। भारत की राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व अब भी एक ऐसे व्यक्ति के हाथो मे है, जिसके उद्देश्यो की

कदर की जाती है और जिसकी सचाई पर वे लोग भी सन्देह नही करते, जिनके लिए कभी-कभी उनके विचारो की दिशा को समझ सकना कठिन हो जाता है, या जो उनके वास्तविक निर्णयो को गलत समझते है। परिणाम यह हुआ कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन ने उन लोगो तक से बहुत हद तक सम्मान प्राप्त किया है, जो उसे नापसन्द करते है और उसका विरोध करते है।

अहिंसात्मक असहयोग की विधि अहिंसा के सिद्धान्त के आधार पर है, जो कि भारत की धार्मिक और नैतिक परम्पराओ मे बहुत अधिक व्यापक है। इस प्रकार इस उपाय को अमल मे लाने की गाधीजी की कोशिशो से भारत की भावना की विशेषता प्रतिबिम्बित हुई है। भारतीय विचार और जीवन मे अहिंसा के जिस पूर्ण या निरपेक्ष रूप की कल्पना की गई है, पश्चिम ने उसे ज्यो-का-त्यों कभी भी स्वीकार नही किया है। इसकी सम्भावना नही है कि उसे कभी निरपेक्ष रूप मे माना जायगा, क्योकि वह आमतौर पर व्यक्तित्व के मूल्य की अपेक्षा सामान्य जीवन के मूल्य को ऊँचा चढाती प्रतीत होती है। लेकिन राजनीति मे अहिंसा के प्रयोग के सिद्धान्त ने पश्चिम के बहुत-से लोगो मे एक नई अन्तर्दृष्टि और भारत के हृदय के बारे मे एक नई उच्च धारणा पैदा की है।

लेकिन गाधीजी के अहिंसात्मक असहयोग मे किये गये इन प्रयोगो मे एक महान् भारतीय परम्परा की महत्ता के प्रकाश मे आने के सिवा कुछ और भी चीज मौजूद है। उन्होने अन्याय के विरोध और न्याय की प्राप्ति के लिए नया ही तरीका बतलाया है। वास्तव मे हमे अहिसा के बारे मे अतिरजित दावा नही करना चाहिए। कल्पना यह है कि जो लोग इस उपाय को ग्रहण करते है वे स्वय कष्ट झेलना और दूसरे को कष्ट पहुँचाने से बचाना स्वीकार करते है। व्यवहार मे दूसरी शर्त को पूरा करना बडा कठिन है। अहिसात्मक असहयोग का सबसे अधिक प्रकट रूप है आर्थिक बहिष्कार, और इसमे हमेशा किसी-न-किसी हदतक दूसरे को कष्ट पहुँचाना शामिल रहता है। और न इसी आधार पर हम अहिसा को तरजीह दे सकते है कि उनके हिसा की बनिस्वत ज्यादा कारगर होने की सभावना है। ऐसी दुनिया मे, जहाँ कि कुछ आदमियो ने परपीडन को धर्म और पाशविकता को एक प्रथा बना लिया है, अहिसात्मक असहयोग का, कम-से-कम तात्कालिक परिणाम तो प्रत्यक्षत निरर्थक बलिदान होगा। लेकिन सब कुछ कहे जाने के बाद, अहिसात्मक असहयोग के तरीके युद्ध की सामूहिक विषमताओ और बुराइयो की अपेक्षा अपरिमितरूप से स्वच्छतर और उच्चतर है। और हमारी दुनिया को गाधीजी की यही चुनौती है,—'क्या बुराइयो का मुकाबिला करने और अन्यायो को ठीक करने के लिए पाशविक शक्ति के प्रयोग और युद्ध के वर्तमान भयकर शस्त्रो के सिवा और कोई मार्ग नही है? और अगर कोई है तो क्या वे लोग जो मानवता की रक्षा के लिए चिंतत है उसकी तलाश करने और उसपर चलने के लिए बाध्य नही है? सबके ऊपर

क्या उन लोगो को जो ईसा के आत्म-बलिदान मे विश्वास रखते है, अपनेको उससे बँधा हुआ नही समझना चाहिए ? गाधीजी का नेतृत्व युद्ध के भय और उसके लिए होनेवाली तैयारियो से परेशान दुनिया के लिए एक चुनौती और आशा की एक किरण के समान सामने आता है।

अगर गाधीजी डिक्टेटरो जैसे राष्ट्रीय नेताओ की अपेक्षा अधिक ऊँची सतह पर माने जाते है, सो इसका एकमात्र कारण यह है कि उन्होने राजनैतिक आन्दोलन के क्षेत्र में नैतिक सिद्धान्तो को अपनाया है, वल्कि उनकी दरिद्र और पीडितो के उन सेवको मे गिनती किया जाना भी है, जो ईसा के माप से नापे जाने पर महान् ठहरते है। कुछ भी हो, गाधीजी की स्वराज्य की माँग भारत की पतनकारी दरिद्रता के साथ जबर्दस्त मुकाबिले की आशा से प्रेरित रही है। उनकी ब्रिटिशराज्य की मुख्य आलोचना इस आधार पर नही है कि वह ब्रिटिश या विदेशी राज्य है, जितनी इस आधार पर कि उसने गरीबो की अवहेलना की है। जिन वातो की उन्हे निश्चित चिन्ता रहती है, वह है दरिद्रो की, मनुष्यता को ऊँचा उठाना, गाँव के सघ-जीवन का पुनरुद्धार और बहिष्कृतो की समाज के अग के रूप मे पुन प्रतिष्ठा। इन सबमे गाधीजी, कगावा और स्वीट्जर के समकक्ष है, और वह खुद इस बात को स्वीकार करेगे कि कम-से-कम कुछ हद तक उनकी प्रेरणा का स्रोत वही है, जोकि इनका है। यहाँ उनका जीवन और कार्य स्पष्टत ईसा की, जोकि अपराधियो और पापियो का मित्र कहा जाता है, भावना से मिलता हुआ है। शोषित और पीडित वर्ग के प्रति उनकी आत्मोत्सर्गमयी सेवा-निष्ठा मे प्रकट होनेवाली उनकी इस वास्तविक महत्ता पर ही उनकी चिरस्थायी कीर्ति कायम रहेगी।

अहिंसा (प्राणो को आघात न पहुँचाना) और सत्याग्रह (आत्मिक बल पर निर्भर रहना) उच्च सिद्धान्त है और राजनैतिक व्यवहार के एक नये रूप मे उन्होने कुछ शानदार कोशिशो की प्रेरणा की है। लेकिन दोनो मे से कोई भी सिद्धान्त तवतक अपनी वास्तविक अभिव्यक्ति और पूर्ण चरितार्थता को नही पहुँचता जबतक कि वह पाप के प्रति क्षमाशीलता मे लीन नहीं होजाता। अपने दोषो को स्वीकार करने की तत्परता और अपने प्रति किये गये अपराधो को क्षमा करने की सदिच्छा के वास्तविक आधार पर ही राजनीति, स्थिर राष्ट्रीय जीवन और विशुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की नीव खडी की जानी चाहिए। गाधीजी का सत्याग्रह क्षमादान की इस व्यवस्था के बिलकुल निकट आता है। लेकिन फिर भी वह उसमे पूर्णरूपेण मूर्तिमान नही है। किसी सुनिश्चित योजना की अपेक्षा दैवयोग के कारण प्राय दो शताब्दियो से भारत और ग्रेट-ब्रिटेन का भाग्य आश्चर्यजनक रूप से एक-दूसरे के साथ गुथा हुआ है। ब्रिटिश कारनामो मे ऐसी बहुत बाते है, जिन्हे क्षमा कर देने की जरूरत है। साम्राज्यवादिता के कारण भारतीय और ब्रिटिश जनता के सम्बन्ध विषाक्त हो गये है और कदाचित् पूर्ण सम्बन्ध-

विच्छेद ही उस विष को दूर कर सकता है। और स्पष्ट ही वह समय आगया है जब कि भारत को अपनी पसन्द के नेताओ की अधीनता मे अपने भाग्य का निर्णय कर लेना चाहिए। अवश्य ही अगर हमें जुदा होना हो, तो क्या हम क्षमा और सहिष्णुता की भावना के साथ जुदा नही हो सकते ? और अगर हम भारतीय और ब्रिटिश दोनो ही सच्चाई के साथ और व्यवहारत अपराधो की क्षमा के सिद्धान्त में विश्वास रखते हो, तो क्या हमें जुदा होने की कोई आवश्यकता भी है ? राष्ट्रीय अहभाव से पीडित और थकित दुनिया को कितना प्रोत्साहन मिले, अगर ब्रिटिश साम्राज्यवाद और अहिंसात्मक असहयोग दोनो ही लुप्त होसके और भारत और ब्रिटेन के बीच, पूर्व और पश्चिम के बीच, हार्दिक साझेदारी उनका स्थान ले सके। गाधीजी की इकहत्तरवी जन्मतिथि मनाने अथवा अपने देशवासियो और मानव-समाज के प्रति की गई उनकी सेवा के लिए ईश्वर का गुण मानने के लिए मेरी कल्पना में मार्ग इससे बढकर और कोई मार्ग नही हो सकता कि उक्त दोनो ही देशो की जनता के हृदयो मे क्षमादान की वह भावना उत्पन्न होने की कल्पना करूँ, जो सम्भव है सच्ची सुलह और सुस्थायी मैत्री के रूप मे फलीभूत हो।

: ५६ :

गांधीजी—सैंतालीस वर्ष बाद

सर फ्रांसिस यगहसबैण्ड, के. सी. एस. आई.

[लन्दन]

महात्मा गाँधी अब ससारभर मे प्रसिद्ध होचुके है। उनकी यह प्रसिद्धि इसलिए नही है कि उन्होने भय और आशकाओ का ऐसा वातावरण पैदा किया जो राष्ट्रो को शस्त्रास्त्रो की होड मे सबसे आगे रहने के भीषण सघर्ष की ओर धकेलता है, बल्कि इसलिए हुई है कि उन्होने स्वय अपने देशवासियो मे साहस उत्पन्न कर उन्हे नैतिकता के पथ पर अग्रसर किया। लेकिन पहलेपहल जब मुझे उनका परिचय हुआ, वह एक सर्वथा मामूली शिष्ट और अग्रेजी शिक्षा-प्राप्त नवयुवक थे। यूरोप आनेवाले हज़ारो दूसरे भारतीयो और उनमे एक रत्ती भी अन्तर नही मालूम होता था। उनकी आयु तीस वर्ष के भीतर थी, और दूसरे लोगो की तरह अग्रेजी पोशाक पहने हुए थे। उनमें कोई खास बात दिखाई नही देती थी।

पर उस समय भी वह अपनेमे वह साहस, अपने उद्देश्य पर कठोरता से डटे रहने की दृढता और सबसे अधिक पीडितो के प्रति वह अद्भुत अनुकम्पा दिखाने लग गये थे, जो हमारे दक्षिण अफ्रीका मे डरबन में पहली बार मिलने के बाद से इन सैंतालीस वर्षो मे और अधिक वृद्धिगत और घनीभूत ही हुई है। भारतीयो के नेटाल

के प्रवास का प्रश्न उस समय का गर्म सवाल था। नेटाल अपनेको एक समृद्ध उपनिवेश बना रहा था। वह भारतीयो की एक थोडी-सी सख्या को आने देने के लिए तैयार था, अपरिमित सख्या को नही। दक्षिण अफ्रीकावासियो ने उसे बसाया था और वे उसपर प्रधानत अपना ही प्रभुत्व रखना चाहते थे। इसलिए जब भारत-वासियो ने इस तेजी से आना शुरू किया कि जल्दी ही वहाँ उनकी सख्या अत्यधिक बढ जाती, तो नेटालवासियो ने उनपर रोक लगाने का निश्चय किया। यह मामला ठीकठाक हो सकता था। लेकिन भारतीयो को उस दुर्व्यवहार से, जो उनके साथ, किया, गया गहरा असन्तोष हुआ। अमीर और गरीब, शिक्षित और अशिक्षित, सबको एकसमान 'कुली' की श्रेणी मे रक्खा गया। गाधीजी एक 'कुली' थे, मालदार व्यापारी 'कुली' थे। जिस तरह चीन मे सब यूरोपियन 'विदेशी शैतान' कहे जाते थे, यहाँ सब भारतीय 'कुली' थे।

यद्यपि गाधीजी उस समय नवयुवक ही थे, फिर भी भारतीयो के अधिकारो की हिमायत करने मे वह भारतीय जनता के नेता बन गये थे। वह डरबन की एक अच्छी सुसज्जित अग्रेजी कोठी मे रहते थे, और एक भोज के समय, जब कि उन्होने मुझे 'टाइम्स' के सवाददाता के रूप मे निमन्त्रित किया था, मैने उन्हे "एक खास तौर पर बुद्धिमान और सुशिक्षित व्यक्ति" पाया। लेकिन बाद मे उन्होने जो कुछ किया, उसके लिए महज बुद्धिमत्ता और शिक्षा के अलावा और भी बहुत कुछ चाहिए था। दक्षिण अफ्रीका मे फैला हुआ जाति-विद्वेष उस समय भीषण रूप धारण किये हुए था। बोअर और अँग्रेजो के बीच, दक्षिण अफ्रीकवासियो और नीग्रो जातियो के बीच, और अँग्रेज और भारतीयो के बीच विरोध फैला हुआ था। एक नौजवान भारतीय वकील का उसके साथ मुकाबिले के लिए खडा होना एक ऐसे साहस और चरित्रबल का परिचायक था, जो कितनी ही बौद्धिक शिक्षा के मुकाबिले मे कही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ।

अपने लाभकारी पेशे का बलिदान करने और भारतीय हितो की हिमायत म जेल जाने और बदनामी सहने की अपनी तैयारी के कारण वह अपने भारतीय बन्धुओ की प्रशसा के और अन्त मे उनकी श्रद्धा के भाजन बन गये।

लेकिन उनका सबसे बडा काम तो उनके अपने ही देश मे होने को था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होने भारतीयो के लिए जो कुछ भी किया, उससे यह ज़ाहिर हो गया था कि वह एक नेता और अगुआ है। जब वह दक्षिण अफ्रीका छोडकर हिन्दुस्तान मे लौटे, तो वहाँ उन्होने अपने काम के लिए और भी अधिक विस्तृत क्षेत्र पाया। उनका देश एक विदेशी जाति द्वारा शासित था। वह चाहते थे कि हिन्दुस्तान मे हिन्दुस्तानी ही शासन करे। हिन्दुस्तानी स्वय हिन्दू और मुसलमान दो बडी जातियो मे बटे हुए थे। वह उनको एक ही भारतीय सूत्र मे बाँध देना चाहते थे। उनकी अपनी हिन्दू ज़ाति में ही अस्पृश्य जातियो की दुर्दशा, स्त्री-समाज की स्थिति, गावो की

दरिद्रता आदि अनेक प्रकार की वडी सामाजिक बुराइयाँ थी। वह इन सवको सुधारना चाहते थे, पर सुधारना चाहते थे अन्दर से।

उन्होने स्वय सरकार को चुनौती देने का साहस किया और उसके कानून तोडने के अपराध मे जेल भुगती, मरणासन्न स्थिति पर पहुँच जाने तक उपवास किया। सारे देश का दौरा किया। उन्होने जन-साधारण का-सा जीवन व्यतीत किया और अछूतो के वीच मे और विलकुल उनके-से वनकर रहे। आत्मवलिदानपूर्ण उनके जीवन ने अवतक अपने देशवासियो पर विजयी प्रभाव छोडा है। उनके व्यक्तित्व, उनकी देशभक्ति, उनकी भावना का असर सव जगह देखने मे आता है। भारतीय एक महात्मा के रूप मे उनकी पूजा करते है। वल-प्रयोग की अपेक्षा नैतिक प्रवोधन का उनका सिद्धान्त विजयी सिद्ध हो रहा है। उन्होने अपने देश को आदरास्पद वना दिया है।

हम अग्रेज सदा यह आशा रक्खेगे कि भारत साम्राज्य के अन्दर वना रहे। लेकिन कम-से-कम मै यह आशा करता हूँ कि यह उसकी अपनी इच्छा से ही हो। उसने अपने लिए जो सम्मान प्राप्त कर लिया है, उसी सम्मान के साथ उससे व्यवहार किया जाय।

: ५७ :

देशभक्ति और लोकभावना

सर एल्फ्रेड ज़िमेर्न, एम. ए

[अध्यापक, अन्तर्राष्ट्रीय सम्वन्ध, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी]

भारत पर यूरोप के राजनैतिक विचारो का वहुत असर पडा है। फिर भी अफ्रीका के सम्भावित अपवाद के सिवा, यूरोप—१९३९ का यूरोप—राजनैतिक दृष्टि से क्या वाकी पाचो महाद्वीपो मे सवसे पिछडा हुआ नही है? राजनीति खुशहाली की दोनो कसौटियो, दोनो स्पष्ट राजनैतिक गुणो—न्याय और स्वातन्त्र्य—का क्या आज अधिकाश यूरोप मे पददलन नही हो रहा है? यूरोप के अधिकाश, वडे और छोटे दोनो, राज्य उन्हे जिस तिरस्कार की दृष्टि से देखते है, क्या वह, अशत पर जरूर वडे अश मे, यूरोप के राजनैतिक विचारको के सिद्धान्तो और शिक्षा का प्रतिविम्व ही नही है? क्या यह सव यह सूचित नही करता कि भारत को उन राजनैतिक विचारो पर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए जोकि यूरोपीय प्रायद्वीप से वहने वाली पश्चिमी हवा के साथ वहकर इस देश मे आते है?

एक या दो वर्ष पहले प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट ने कहा था—"नव्वे फीसदी मानव-समाज शान्ति चाहता है।" सम्भवत यह सख्या असलियत मे कम है। तव, प्रश्न उठता है कि ससार मे यह अशाति क्यो है? शातिप्रिय नव्वे फीसदी लोग, जिनका

कि उपद्रवकारी लोगो की तरह उनकी उपद्रवकारी योजनाओ से कोई निकट या हार्दिक सहयोग होने की सम्भावना नही है, उपद्रवकारी दस फीसदी लोगो पर अपनी इच्छा क्यो नही लागू करते ?

उत्तर है, **'गलत विचार-सरणी ।'** अवश्य ही नव्वे फीसदी मे वहुत-सी बुराइयाँ है । उनमे से कुछ आलसी हैं, दूसरे कायर है और अधिकाश स्वार्थी है । लेकिन, अगर इन सबके पीछे एक तरह का 'बौद्धिक' गोलमाल न होता तो इन बुराइयो का, जिनमे कि कुछ तो खुद अपनेआप मिट जाती, इतना अनर्थकारी परिणाम न होता जितना कि हम देख रहे हैं । यह बौद्धिक गोलमाल ही है, जो तथाकथित शाति-प्रेमियो मे एकता स्थापित करने के प्रयत्नो को निकम्मा कर देता है । यही मुट्ठीभर उपद्रवकारियो को नेतृत्व पर बलपूर्वक अधिकार करने और उसे अपने कब्जे मे रखने का मौका देता है और नव्वे फीसदी के लिए ऐसी दीन-हीन स्थिति मे बने रहने का कारण बनता है ।

अगर हम वर्तमान राजनैतिक समस्या को घटाकर एक अकेले शहर—मान लीजिए लन्दन या दिल्ली—की परिधि मे सीमित कर दे, तो हम यह आसानी से देख सकेंगे कि इस तरह के आदमी के साथ, जोकि यूरोप को एक मुसीबत मे फँसाये हुए है, व्यवहार करने का सही तरीका क्या है। सब नागरिक ऐसे व्यक्ति को अव्वल नम्बर का सार्वजनिक शत्रु मानेगे और उनमे वहुतेरे हट्टे-कट्टे लोग अपनेआपको सार्वजनिक शान्ति के लिए जिम्मेदार अधिकारियो को अपनी स्वय सेवाये देने को तैयार होजायेंगे । उपद्रवप्रिय दस फीसदी लोगो के बुरे इरादो को समाज के बचे हुए लोगो की सार्वजनिक भावना विफल कर देगी ।

वही पद्धति यूरोपीय महाद्वीप के विस्तृत क्षेत्र पर कारगर क्यो नही होती ? क्यो हम छोटे राज्यो को भयत्रस्त स्थिति मे रहते और कुछ को बेरहमी के साथ मानचित्र पर से मिट जाते हुए देखते है ?

उत्तर है, क्योकि आज की दुनिया मे और खासकर यूरोप मे पर्याप्त **लोकभावना** नही है ।

लेकिन क्या यूरोप-निवासी, प्राय बिना किसी अपवाद के, अत्यन्त देशभक्त नहीं है ? क्या वे एकसाथ अपने-अपने देश के लिए मर-मिटने को तैयार नही हैं ? क्या एक पीढी पहले उन्होने बहुत भारी सख्या मे ऐसा नही किया था ?

अवश्य किया था' लेकिन लोक-भावना और देशभक्ति-भावना एक ही तरह की वस्तु नही है । लन्दन या दिल्ली में होनेवाली डकैती को वहाँ की जनता अपनी सार्वजनिक भावना से रोक देती है । क्या ऐसी सार्वजनिक भावना सारी दुनिया मे या यूरोप मे मौजूद है ? इसे ही अगर दूसरे शब्दो मे रक्खा जाय तो, क्या वास्तव में कोई विश्व-समाज या यूरोपीय समाज है ?

एकबारगी इस रूप में प्रश्न किया जाने पर यह स्पष्ट है कि उसका उत्तर

नकारात्मक होगा। डाकू अपनी डकैतियाँ इसीलिए जारी रख पाते है कि हर गृहस्थ एक-एक कर देश-भावी तो है,—अपने निज के घर, परिवार और सम्पत्ति की रक्षा के लिए मर-मिटने के लिए तैयार है,—लेकिन नगर मे सामूहिक रूप मे लोक-भावना का अभाव है। इस प्रकार लुटेरे आराम के साथ तवतक एक घर से दूसरे घर पर धावा बोलते रहते है जवतक लूट के माल से उनका जी नही भर जाता। तब उन्हे भी यह मालूम होने लग सकता है कि उनकी तात्कालिक योजनाओ की सफलता के बावजूद, उनकी व्यापक योजना में कुछ-न-कुछ गलती है, क्योकि बीसवी सदी की दुनिया मे शासक लोग लूट के माल पर अपना गुजारा नही कर सकते। समाज-विरोधी उपायो से वे अनिश्चित समय तक शासन नही कर सकते। विश्वास, साख और परस्पर-निर्भरता के तत्त्वो की वे अवहेलना नही कर सकते।

लेकिन हमे डाकुओ की गलत राजनैतिक विचार-सरणी के सम्बन्ध मे परेशान होने की जरूरत नही है। घटनाचक्र के निष्ठुर प्रवाह से वह जल्दी ही काफी स्पष्ट होजायगी। हमे तो उन्ही लोगो की राजनैतिक विचारसरणी से मतलब है जो उनके शिकार होते है।

'अलग-अलग गृहस्थ आपस मे मिलकर नागरिको की तरह विचार और कार्य क्यो नही कर सकते, इसके दो कारण है। एक प्रथा से उत्पन्न हुआ है और दूसरा सजग विचार से। वेलजियमवासी यह सोचने के आदी नही है कि वे ऐसे ही शहर मे रह रहे है जैसे कि हालैण्डवासी। हालैण्ड और वेलजियम दो स्वतन्त्र देश है। प्रत्येक हालैण्डवासी हालैण्ड का और वेलजियमवासी वेलजियम का होकर सोचने का आदी है।

इस मामले मे प्रथा बहुत अधिक अरसे से नही चली आ रही है, क्योकि वेल-जियम का राज्य मुश्किल से एक सदी पुराना है। लेकिन स्वत यह बात कि उन्नीसवी सदी मे, यानी ठीक उस समय जवकि औद्योगिक क्रान्ति परस्पर-निर्भरता की एक विश्व-व्यापी प्रथा स्थापित करती हुई जान पडती थी, उस राज्य की स्थापना हुई। इस बात का प्रमाण है छोटी-छोटी इकाइयो से चिपटे रहने यानी अपने-अपने घरो मे रहने की इच्छा की प्रवलता।

मैने 'इच्छा' शब्द का प्रयोग किया है। इसके बजाय मैं 'सहज-प्रवृत्ति' शब्द का प्रयोग कर सकता था। अवश्य ही मनुष्य-स्वभाव मे—मानव-समुदाय मे कुछ अपवादो को छोडकर सबके स्वभाव मे—एक वृत्ति गहराई से जड पकडे हुए होती है, जो एक तरह के लोगो को छोटे-छोटे समाजो के रूप मे एकत्र करती और पराये या, जैसाकि हम कहते है, 'विदेशी' के विरुद्ध रुकावट खडी करती है। वडी दुनिया मे लोक-भावना की उत्पत्ति मे यही वडी मानसिक अडचन है। सन्तति-क्रम से खून मे ही चलते आने के कारण वह अडचन आनुवंशिक भी है। अगर इकाई काफी छोटी हो तो मनोविकास और जीव-विकास की दृष्टि से देश-भावी होना आसान है।

देश-भावना सुगम है। लोक-भावना कठिन है। विश्व-बन्धुत्व एक दुष्कर भावना है।

यह तो हुआ प्रथा की कठिनाई के सम्बन्ध मे। अब दूसरी को ले। अधिक व्यापक सार्वजनिक भावना के मार्ग की दूसरी रुकावट शुद्ध बौद्धिक है।

इस क्षेत्र की कठिनाई का सार यह है कि वर्तमान यूरोप के राजनैतिक सिद्धात--वे सिद्धात जिनमे कि यूरोप के राजनीतिज्ञ और नागरिक पले हैं--पुराने पड गये हैं। वे इस युग की स्थिति के अनुकूल नही है। कोई भी राजनैतिक सिद्धान्त पूर्ण या पवित्र नही कहा जा सकता। राजनैतिक सिद्धान्त की सब रचनाओ का आधार इसके सिवाय और कुछ नही है कि उसके दो महान् आधारभूत तत्त्व, न्याय और स्वाधीनता, किस स्थिति मे किस प्रकार प्रयुक्त होते हैं। वर्तमान यूरोप का यह दुर्भाग्य है कि उसकी जनता के मस्तिष्क और हृदय पर आज जिन धारणाओ का साम्राज्य है वे वास्तविक स्थिति के अनुपयुक्त है। वे उस जमाने के बने हुए है जब प्रत्येक व्यक्तिगत राजनैतिक इकाई अपने ही मे मस्त और निश्चय ही, एक काफी हद तक, आर्थिक दृष्टि से स्वय तुष्ट रहने मे समर्थ हो सकती थी। "Sovereignty" (एकच्छत्र सत्ता) शब्द, जो आज भी यूरोपीय राजनीतिज्ञो और पार्लमेण्टेरियनो को प्रिय है, सोलहवी सदी की उपज है। अवश्य ही उस समय वह नूतन और क्रान्तिकारी था। वह उस जमाने की परिस्थिति के उपयुक्त था। आज की परिस्थिति के वह उपयुक्त नही है।

यूरोप के देश-प्रेम--यानी राष्ट्र की ममता--की मिश्रित भावना मे यह दूसरा तत्त्व इतना पुराना नही है। अपने वर्तमान यूरोपीय रूप मे वह अठारहवी सदी के अन्तिम चरण से पुराना नही है। फ्रास की राज्यक्रान्ति से कुछ वर्ष पहले ही राजनैतिक विचारको ने राज्य और राष्ट्र को अभिन्न बनाना शुरू किया। फ्रास की क्रान्ति ने फिर उस अभेद को पकडा, जकडा और उसे यूरोपभर के 'प्रगति' वादी दल का प्रचलित और कट्टर सिद्धान्त बना दिया। Nation State (राष्ट्र शासन) के सिद्धान्तवादियो ने इस बात की कुछ परवा नही की कि एक ऐसे महाद्वीप की परिस्थिति के लिए, जहाँ कि राष्ट्र अविभाज्य रूप से एक-दूसरे मे मिले-जुले रहते हैं ओर जहाँ कुछ सबसे अधिक प्रबल राष्ट्रो की आबादी कुछ लाख से अधिक नही है, उक्त सिद्धान्त सर्वथा अनुपयुक्त है। इसीसे यूरोप का कोई टुकडा लीजिए, महल और झोपडे का अजब जमघट आपको मिलेगा। महलो को हम 'बडे राज्य' कहते हैं झोपडो को 'छोटे राज्य', पर दोनो मे ही रहनेवालो को अपनी हिफाज़त की चिन्ता है। सबको समान सुरक्षा चाहिए। एक-सी पुलिस चाहिए, आग-बचाव के एक-से साधन--आने-जाने को एक सडक, एक मार्ग।

जबतक वे अपनेमे नागरिकता का भाव पैदा न कर लेंगे तबतक ये चीज़े न पा सकेंगे। कुछ जगह जो यातनाये सहनी पड रही हैं और सर्वत्र जो व्यग्रता फैली हुई है, उसके कारण उनमें यह चेतनता पैदा होती जा रही है।

वीसवी सदी की दुनिया मे जीवन के आधार के लिए नागरिकता का भाव जाग्रत रहना अनिवार्य है।

क्या उत्तरीय अमरीका और भारत जैसे महादेश इसे प्रत्यक्ष करने मे यूरोप की अपेक्षा आगे बढे हुए नही है ?

अगर ऐसा है तो वह इसलिए है कि वे या तो उत्तर अमरीका की तरह अधिक आधुनिक स्थिति मे बढे है या फिर भारत की भाति उन्होने ऐसे व्यक्तियो की शिक्षा से लाभ उठाया है, जिनके विचार स्वभावत ही नगर, प्रान्त अथवा राजधानियो की सकुचित परिधि मे सीमित न रहकर विशालतर और उच्चतर जगत् मे विचरते है। अगर महात्मा गाधी हमारे युग के महापुरुषो मे एक हो गये है तो इसका कारण यह है कि वह भारत और भारत से बाहर के लाखो के लिए दो जबर्दस्त विचारो के, जो अक्सर एक-दूसरे से अलग या एक-दूसरे के विरोधी समझे जाते है, सयुक्त रूप मे सजीव प्रतीक है। वे दो विचार है एक तो सार्वजनिक कर्तव्य की भावना, जो 'अखिल भारतीय' शब्द से प्रकट होती है, दूसरी मानव-बन्धुत्व की भावना, जो अधिकारविहीन और समाज की सेवा के लिए किये गये उनके कार्यो से व्यक्त होती है। और यह उदाहरण है कि किस प्रकार एक कृशकाय मानव प्राणी की निर्भीक एव अजेय आत्मा स्वातन्त्र्य और न्याय के नित्य-प्रति काम आनेवाले परिचित शब्दो मे नया अर्थ डाल सकती है।

: ५८ :

गांधीजी के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश

आरनल्ड ज्वीग

[हैफा, माउण्ट कारमेल, फिलस्तीन]

जब हम महासमर से निवृत्त हुए तो दुनिया मे आकाक्षाओ की सीमा नही थी। रक्तपात के पागलपन का उससे होनेवाले मदोन्माद का और पशुबल उन्मत्तता का अन्त होने को था। ऐसा जान पडता था कि भावना को सार्वजनिक कार्यो मे व्यवहृत होने का इससे बढकर सुयोग कभी नही मिला था। ससार अधिक न्यायशील, अधिक सहिष्णु, अधिक अच्छा और अधिक दयालु होने को था। मध्ययूरोप के उच्च कोटि के सभ्य देशो—विशेषतया जर्मनी, चेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया और पोलैण्ड मे तो उन बेहद मुसीबतो का नतीजा कम-से-कम यही होना था। मगर इतने विपुल रक्त का अर्घ्य देने पर भी समाज का मूल कायापलट नही किया जा सका—जैसा कि रूस के बारे मे कहा जा सकता है—तो कम-से-कम हमे बल-प्रयोग के युग का अन्त कर देना था और सद्भावना के युग का सूत्रपात।

तव गाधी-जैसे नक्षत्र का उदय हुआ। उन्होने दिखला दिया कि अहिंसा का सिद्धान्त सम्भव कोटि का है। ऐसा जान पडता था कि मानो वह अपने सिद्धान्तो के अनुकूल, किन्तु वस्तुत उस नीव पर ही जो ईसाईमत के पुरातन सिद्धान्तो से टाल्स्टाय और प्रिंस क्रोपाटकिन ज़ार के रूस मे रख चुके थे, मानव-समाज का नवनिर्माण करने आये है। जर्मनी मे भी इस विश्वास मे निष्ठा रखनेवाले लोग विद्यमान थे। कुर्ट आइजनर, गुस्टाफ लाण्डॉयर, कार्ल फॉन ओस्सिट्ज्की, एरिक मूहसाम और थ्योडोर लेस्सिग जैसे व्यक्ति कुछ और नही चाहते थे। जव गाधीजी हिन्दुस्तान मे सफल हो गये तो वह जर्मनी मे असफल हो सकते थे ?

अव हम इस प्रयास का परिणाम तो जानते ही है। यह सव-के-सव वल-प्रयोग के विरोधी—जिनके नाम आदरपूर्वक ऊपर लिये गये है—नृशसतापूर्वक मार डाले जाकर एक ही कब्र मे दवे पडे है। हाँ, ओस्सिट्ज्की के मामले मे तो हत्याकारी की गोली की जगह क्षय ने लेली थी। परन्तु ये सव हत्याकारी—उदाहरण के लिए राटे-नाउ के हत्याकारी या माट्टेओट्टि की हत्या को उत्तेजन देनेवाले—आदर और शान का उपयोग करते है। जहाँ एक समय असमय मे ही आध्यात्मिकता का राज्य होगया था वहाँ अव सिहासन पर पशुवल का सम्मान होरहा है, उसकी पूजा हो रही है और उसे चिरञ्जीवी वनाया जा रहा है। प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओ के झूठे आशय वताये गये। जीवन-सघर्ष के नाम से चलनेवाले सिद्धान्त की इकतरफी व्याख्या हुई और दुहाई दी गई कि उससे छँटाव होगा और ऐसे ही मनुष्य उन्नत होगा। और इस प्रचार का समर्थन लेकर स्तूप की भाति चगेज़खा के नये-नये सस्करण उठ रहे है। आये साल नये के नाम पर उन वाद-प्रवादो से पढाई की कितावो मे ज़हर भरा जाता है जो मैसोपोटामिया के हम्मूरव्वी के नीति-सग्रह के वक्त ही झूठे और जीर्ण पड चुके थे।

हमे यहाँ यह दिखाने के लिए आधुनिक 'जीव-विज्ञान का आश्रय लेने की आवश्यकता नही कि पशु-वल के पुजारी के सिद्धान्त मिथ्या है और प्रकृति के वारे में उनके लगाये हुए अर्थ भी त्रुटिपूर्ण है। आज हम गाधी को इसीपर वधाई देगे कि वह हिन्दुस्तान मे जन्मे और रह रहे है और अग्रेज़ो से उनका व्यवहार पडा है, मध्य-यूरोपियनो से नही, क्योकि उन पशुओ से जो आज वहाँ राज्य कर रहे है उनकी मानवता के प्रति कुछ भी आदर की आशा नही की जा सकती, मगर हम यहाँ उनकी ओर दु ख और अनुपेक्षणीय कृतज्ञता से देखते है। वीस वर्प पहले उस तेज-विम्व को जो उनके चारो ओर था, हमने नवयुग का उपाकाल समझा था। आज हम असमजस मे है कि कही वह उस युग का सध्यालोक तो नही था, जो विश्वयुद्ध के साथ ही वीत गया और जिसके पीछे ऐसी नृशस वर्वरता का युग आया जिसकी हमने कल्पना तक नही की थी। उन स्थानो तक मे, जहाँ यहूदी पैगम्वर और ईसाई-मत के दिव्य सस्थापक रहते थे और विचरण करते थे, आज 'त्रास' का राज्य है, वहाँ शस्त्रहीन निर्वलो का रक्तपात

मचा हुआ है और पाशविकता राजनैतिक अस्त्र समझी जा रही है। शायद भूमध्य-सागर के देशो के भाग्य में शातिपूर्ण जनता की हत्या का ज़माना ही लिखा है, जिसे आज स्पेन और चीन में शक्तिशाली राष्ट्र भुगत रहे है। जिस निरे उल्लास से उन्मत्त होकर इटली के हवाई जहाज़ो ने अबीसीनिया में बम-वर्षा की, उसने शायद हमारी उस समूची सभ्यता को ग्रस लिया है जिसे हमारी गौरवशील अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दियो ने बडे-बडे प्रयत्नो से मिरजा और यूरोप में विजयोत्कर्ष तक पहुँचाया था। यह हम नही जानते। परन्तु हम, जिनकी शक्ति शब्द है और जिनकी जिन्दगी बिना पशुबल का आश्रय लिये बीत रही है, अपने उच्च स्वर से समुद्रपार के वासी उस महात्मा का अभिनदन करते है तथा उन्होंने जो हमे हमारी भूले बतलाई है और अपने व्यक्तित्व एव जीवन के द्वारा हमारे युग को पूर्णता की दिशा में बढाया है उसके लिए उनका गुण मानते है।

गलतियाँ! कौन जानता है? जैसे कि बीसवी सदी के यूरोप में सामर्थ्य था कि वह उन पवित्र सिद्धान्तो की नकल कर सकता और ब्रिटिश साम्राज्य की भूमि भारत देश को, जिसने गौतम बुद्ध और उनका काल देखा है, ऐसे व्यक्ति प्रदान कर सकता, क्योकि विश्व-इतिहास को देखते हुए तानाशाहो, उनके अनुचरो और उनके तलुए चाटनेवाले गुलामो की फौजो के सदेश पालन करने की बनिस्बत सभ्यता की भूले कर जाना कही अच्छा है।

परन्तु गाधीजी को अपने ७१वे वर्ष में वल प्राप्त है उस सब शक्ति का जो मानवार्जित शक्तियो में श्रेष्ठतम और उत्कृष्टतम है। जीवनारभ में जिसे प्रारभ किया उसीकी परिपूर्णता में वह अथक भाव से लगे है। हम उनके अनुगामी है, इसका उन्हे निश्चय है।

: ५६ :

सत्य की हिन्दू धारणा

जे. एच. म्यूरहेड, एफ. बी. ए., एल-एल. डी
[भूतपूर्व अध्यापक, दर्शन-शास्त्र, बर्मिघम यूनिवर्सिटी]

इस अभिनन्दन-ग्रन्थ में कुछ पक्तियाँ भी लिखकर योग देने का अवसर पाना मेरे लिए बडे गौरव की बात है। यह उस पुरुष का अभिनन्दन है जिसने सामयिक इतिहास को अपने विलक्षण प्रकार से ऐसी प्रभा दी है जैसी कि कोई और नहीं दे सका। उसने रोम्याँ रोलाँ के शब्दो मे 'तीस करोड से ऊपर अपने देशबन्धुओ मे एक जाग्रति पैदा कर दी है, ब्रिटिश-साम्राज्य को हिला दिया है और मानव-राजनीति मे उस

जबर्दस्त आन्दोलन का सूत्रपात किया है कि इधर दो हजार वर्षो से विश्व ने जिसके तुल्य और कुछ नही देखा।' ऐसे समय मे जब एक ओर दूसरे देशो मे नेता लोग या तो मानवीय न्याय जैसी चीज की या विश्वराज्य की नैतिक सत्ता को ललकार रहे थे या फिर समाज के एक वर्ग को मटियामेट करके दूसरे वर्ग के प्रति न्याय करने का प्रयत्न कर रहे थे, तब दूसरी ओर गाधीजी मानव-मात्र की एकता और स्वर्गीय राज्य (रामराज्य) के नाम पर भारत को दूसरे राष्ट्र की अधीनता से तथा भारत की किसी भी जाति को दूसरी जाति की गुलामी से मुक्त करने के लिए धर्मयुद्ध करने मे व्यस्त थे। और इसके अलावा सब धर्मो के परमध्येय 'सत्य' तथा परिपूर्णता प्राप्त करने के उसके आमत्रणो की मानवात्मा मे जो प्रतिध्वनि होती है उसके सम्बन्ध मे 'दर्शनशास्त्र ने जो कुछ सर्वश्रेष्ठ कहा है, उसको, उन्होने 'कालातीत' भारतदेश ही मे नही, ससार भर मे युगयुगान्तर तक उल्लेखनीय रूप से जीवन मे प्रत्यक्ष कर दिखाया है।'

मै भला इन पक्तियो मे ऐसा क्या कह सकता हूँ जो इसी ग्रन्थ मे अन्यत्र अधिक सुन्दरता से न कह दिया गया होगा ? पर हिन्दू-शास्त्र की सारभूत शिक्षा मे, और विशेषतया गाधीजी की उसकी व्याख्या मे, एक शब्द है, जो भ्रमात्मक या अस्पष्ट होने के कारण उन लोगो के गाधीजी की व्याख्या को एकदम स्वीकार कर लेने के मार्ग मे रुकावट बन सकता है, जो पश्चिम की वैज्ञानिक और व्यावहारिक भावना से प्रेरित हुए है और उसी पर सक्षिप्त विवेचन के रूप मे कुछ कहने मे इस अवसर का उपयोग मै करना चाहूँगा।

चरम-सत्य के शोध तथा अध्ययन मे प्रोत्साहन देने के उद्देश से सुब्रह्मण्य अय्यर द्वारा स्थापित ब्रिटिश इस्टिट्यूट ऑव फिलासफी की एक सभा मे हाल मे सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने एक व्याख्यान दिया था। उस व्याख्यान के अवसर पर मुझको वह बात सूझी थी। वक्ता का परिचय कराते हुए सभापति ने 'कुछ लोगो की इस कठिनाई की तरफ ध्यान दिलाया था जो सस्थापक के 'सत्य' के साथ सामान्य दर्शन-शास्त्र के 'सत्य' (घटना के साथ मत का ऐक्य) का मेल बैठाने मे हुआ करती है। इसके विरोध मे ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्वोक्त 'सत्य' शब्द किसी कदर अस्पष्ट-भाव मे इस्तेमाल किया गया है। उसमे बिलकुल भिन्न धारणा सामाजिक नीति-न्याय और सदाचार का ही समावेश नही होता था, बल्कि यह भी उसमे सभव बनता था कि सर्वथा समाधानकारक और अन्तिम सत्य का व्यक्तरूप कोई हो सकता और पाया जा सकता है। इसके जवाब में वक्ता को यह दिखाने मे दिक्कत नही हुई कि सत्य की धारणा की दार्शनिक परिभाषा और मर्यादा के पक्ष मे जो कुछ भी कहा जाय, पर खुद पश्चिमी साहित्य उस शब्द के दूसरे व्यापक उपयोग को स्वीकार करता है। सन्त पुरुषो की वाणियो और आर्षग्रन्थो मे वैसे प्रयोग बार-बार दोहराये हुए मिलते है। उदाहरण के लिए यह

वचन लीजिए, "सत्य को जानो और सत्य तुम्हे मुक्ति देगा।"[1] वक्ता के हिन्दू-धारणा के प्रभावपूर्ण स्पष्टीकरण से सुननेवाले लोग प्रभावित हुए, यह तो साफ ही था। फिर भी लगता था कि कुछ हैं जो महसूस करते हैं कि एक शब्द के इन दोनो अर्थो मे अन्तर और सम्बन्ध होने के स्रोत पर कुछ और भी कहे जाने की आवश्यकता है। मैंने अपने मन मे सोचा कि 'कही ऐसा तो नहीं है कि अपनी ज्ञान या चेतना और सत्ता (Knowing and Being) के जिस भेद की पहचान हमे ग्रीक दर्शन से विरासत ही मे प्राप्त होगई है, भारतीय दर्शन अपनी सूक्ष्म विचार-गहनता के बावजूद उस पहचान को भूल ही गया हो। चेतना यानी वास्तविकता का हमारे ज्ञान पर प्रतिविम्बित हुआ रूप। और सत्ता यानी वास्तविकता का वह स्वरूप जो ईश्वर-ज्ञान मे प्रतिभासित है। मुझे यह विश्वास नही हुआ कि ऐसा मूल-भेद भारत के उद्भट विचारको की पहचान मे छूट गया होगा, पर सोचा कि सम्भव है प्रचलित सूत्र-वाक्यो मे इस अतर की ओर उनका ध्यान न गया हो।

मसलन गाधीजी के ये वाक्य लीजिए "सत्य वह है जो है, और पाप वह है जो नहीं है।" "हिन्दू-धर्म सत्य का धर्म है और सत्य है परमेश्वर।" "सत्य के सिवा कोई और ईश्वर नही है।"

जो हो, मुझे उस समय प्रतीत हुआ कि ऐसे सब वाक्यो मे 'सत्य' के स्थान पर 'वास्तव' रखा जाय और देखा जाय कि कहाँतक इससे स्थिति स्पष्ट हो सकती है।

इस परिवर्तन पर पहली बात तो यह कि सम्भावना को अवकाश मिलता है कि सत्य को कुछ सँकरा करके यह परिभाषा दे सके कि वह आदमी के मस्तिष्क के दर्पण पर पडी वास्तविकता की छवि और झलक है। धार्मिक भाषा मे उसी बात को कहे तो सत्य "ईश्वर का शब्द" होता है। (केपलर की वानी है "ओ ईश्वर, मैं तेरे पीछे तेरे ही विचार विचारता हूँ।") पर दूसरी बात उस परिवर्तन मे यह होती है कि विचारणा के अतिरिक्त अन्य दूसरे प्रकार के अनुभवो मे भी हम वास्तविक की दूसरी अभिव्यक्तियो को पासके। जो हम सोचते हैं उसके साथ, और अतिरिक्त, जो हम करते हैं उसमे भी, 'वास्तव' प्रतिविम्बित क्यो न हो? क्यो न सद्विचार के साथ सत्कर्म भी उसी की व्याख्या हो? इच्छापूर्वक किये गये हमारे कर्म मे सार्थकता का बोध इसमे ज्यादा और हमे कब होता है जबकि हमे लगता हो कि दुनिया जो हमसे माँगती थी, वही हमने किया है? एक बार फिर धार्मिक भाषा मे उसी को कहे तो 'ईश्वर की इच्छा से अभिन्न होजाने से बढकर मानवेच्छा की और सार्थकता क्या है?' हम जानते तो हैं कि उचित काम अपनेआप मे काफी नहीं है, बल्कि उसके किये जाने की प्रेरणा भी उचित भावना मे से आनी जरूरी है। इसी तरह क्या यह नहीं हो-सकता कि औरो को प्रेम करने मे अपनी और पराई दोनो की वास्तविकता परम

१ Ye shall know the Truth and the Truth shall make you free

अनायास और स्पष्टतय भाव से हमे उपलब्ध होआती है ? इससे पर के प्रति आत्म-भाव से प्रेम ही सत्य-ज्ञान ठहरता है। बन्धु-भाव को विस्तृत कीजिए, यहाँतक कि जीव-मात्र उसमे आजाये, जैसे कि गाधीजी ने किया है। "अपने पडोसी को तू अपनी तरह प्रेम कर।" "ठीक, पर पडोसी कौन ?" तो गाधीजी उत्तर देते है "जीव-पात्र तेरा पडोसी है।" इस भाव को अपनाने और विस्तारने से वस्तु-मात्र के अन्तरग (यानी ईश्वर या प्रकृति) को ही क्या हम नही पा लेगे ? मो प्रेम के द्वारा अधिक किसी को कैसे जाना या पाया जा सकता है ? और "कीट-पतगो और पशु-पक्षियो से लेकर मानवो तक जीवमात्र का जो जितना श्रेष्ठ प्रेमी है उतना ही वह उत्कृष्ट उपासक है।"

पर ऊपर के शब्द-परिवर्त्तन के पक्ष मे जो कहा जा सके, वह कहने पर भी, प्रश्न शेष रह सकता है कि 'सत्य' और 'वास्तव' को पर्यायवाची शब्दो के तौर पर इस्तेमाल करने की आदत जो दार्शनिको तक मे फैली हुई है, ज्ञान के स्वरूप-निर्णय के दृष्टिकोण से देखने से उसका समर्थन नही होता है। प्लेटो ने ज्ञान मे श्रेणियाँ रक्खी है। सामान्य जीवन मे जो इन्द्रियगोचर या इच्छा-कल्पना द्वारा प्राप्त होता है वह ज्ञान एक। और उनका हेतु और कारण-सम्बन्धी वैज्ञानिक ज्ञान दूसरा। इन सिरो के बीच फिर तारतम्य है ही। पहले के उदाहरण मे हम अपने सूर्योदय के ज्ञान को ले सकते है। अपनी धुरी पर सूर्य के चारो ओर धरती के घूमने के ज्ञान को दूसरे प्रकार का ज्ञान कहना होगा। इन दोनो ही मे ज्ञान और ज्ञेय-वस्तु मे पार्थक्य, अन्तर, रहता है। लेकिन प्लेटो की धारणा थी कि एक और भी ऊँची सतह है, जहाँ ये दोनो मिल जाते है फिर भी जो इनसे ऊँची रहती है। वहाँ ज्ञान मे प्रत्यक्ष अनुभूति भी है और मानसिक अनुमान और चेष्टा को भी स्थान है। दोनो ज्ञान रहकर दोनो की अपूर्णता का ज्ञान भी वहाँ रहता है। हम मानले कि केपलर को यही विश्व-रूप-दर्शन हुआ था, जबकि उसने नभोमण्डल को मानव की भाति न देखकर वैसे देखा जैसे कि स्वय ईश्वर-ज्ञान मे वह भासमान हो। याकि कवि जब ऐसा वर्णन करता है कि मानो तमाम वस्तु उसमे है और वह उनमे, तब उसकी अनुभूति उसतक उठती है। पश्चिम मे पाठको को इस सिद्धान्त मे बडी अडचन हुई और उसपर वे खीझे भी है। पर पूर्वी पाठको को तो यह ऐसा लगता है जैसे कि यह उन्ही का सपना उन्हे कह रहा हो कि वह सिद्धात ऐसा प्रत्यक्ष है जो साक्षी दार्शनिक या कवि के ही नही, सन्त के भी नित्य जीवन की वस्तु है। मै तो मानता हूँ कि पूरब के लोगो का यह स्वप्न सच्चा है और सिहद्वार[1] से उनको प्राप्त हुआ है।

१ मूल में शब्द है 'हार्न-गेट'। ग्रीक कवियों के अनुसार झूठे सपने तो आदमियो के पास स्वर्ग से हाथीदात के एक सुन्दर द्वार में से भेजे जाते थे। लेकिन सच्चे सपने एक सींग (Horn) में होकर पहुँचते थे। उस 'हार्न-गेट' को अनुवाद में सिह-द्वार कहा है।—सम्पादक

सम्पादक को प्राप्त पत्रों के अंश

: १ :

माननीय वाइकाउण्ट हैलीफेक्स, एम. ए., डी सी एल

[फॉरेन ऑफिस, लन्दन]

काश कि आप गाधीजी के अभिनन्दन मे जो ग्रन्थ तैयार कर रहे है, उसके लिए आपके निमत्रण को स्वीकार कर मै एक लेख लिख सकता। जो आज के भारत को जानते है, या उसके वारे मे अधिक जानना चाहते है, वे सभी उस पुस्तक को उत्सुकतापूर्वक पढेगे। लेकिन काम का वोझ मुझ पर इतना है कि भय है कि लेख भेजना मेरे लिए सम्भव न होगा।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप और शक्ति एक प्रकार मे वहुत हदतक और अपूर्व रूप मे गाधीजी के व्यक्तित्व में मूर्तिमती हुई है। आदर्श के प्रति उनकी निष्ठा, और जो कर्त्तव्य माना है, उसके लिए अपने ऊपर हर प्रकार का वलिदान स्वीकार करने की उनकी उद्यतता के कारण देशवासियो के हृदयो मे उनका अद्वितीय स्थान वन गया है।

मुझे वे दिन सदा याद रहेगे जवकि सुलह के रास्ते की तलाश में हम लोगो ने वहुत नजदीक और साथ होकर काम किया था। उनके और मेरे अपने विचार मे किसी समय, कुछ, और जो भी, अन्तर रहा हो, उस गभीर आत्मिक शक्ति को पहचाने वगैर मै कभी नही रह सका, जिसकी प्रेरणा से अपने विश्वास और निष्ठानुकूल कार्यो के लिए वडे-से-वडे उत्सर्ग की ओर वह वढते रहे है।

: २ :

अप्टन सिक्लेयर

[पसाडेना, केलीफोर्निया]

गाधीजी के व्यक्तित्व और कार्यो के प्रति अत्यन्त प्रशसा प्रकट करने में आप और अन्य वन्धुओ का साथ देते सचमुच मुझे वडी खुशी होती है। उनके सव विचारो मे तो मै सहमत नही हो पाता हूँ। दुनिया के दो विपरीत दिशाओ में रहकर हममें वैसी सहमति की आशा भी मुश्किल मे की जा सकती है, लेकिन उनकी उच्च भावना और हार्दिक मानवी करुणा ने सारी दुनिया के मानव-हितैपियो का उन्हें स्नेहभाजन वना दिया है।

: ३ :

आर्थर एच० कॉम्पटन

पी-एच डी., एल-एल डी.

[प्रोफेसर ऑव फिजिक्स, शिकागो यूनिवर्सिटी]

आपको अवसर मिले तो मेरी इच्छा है कि आप गांधीजी को मेरे परम आदर के भाव पहुँचा दें। उनका जीवन दुनिया के लिए देन है। उस ज़माने में जबकि यह परम अनिवार्य है कि हम मनुष्य-जाति की ज़रूरी समस्याओं को शान्ति के उपाय से सुलझाने का रास्ता पायें, गांधीजी ने भारतवासियों को आत्म-साक्षात्कार में मदद पहुँचाई है। ये अधिक शान्तिपूर्ण उपाय किस प्रकार कारगर हो सकते हैं, यह दिखाने में वह अग्रणी रहे हैं।

लेखकों के संक्षिप्त परिचय

१ **सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्**—आप भारतीय दर्शन-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान है और सन् १९३६ से आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी मे भारतीय दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर है। आप प्रथम भारतीय है जिन्हे यह सम्मान प्राप्त हुआ है। आप आन्ध्र-यूनिवर्सिटी के वाइस-चासलर रह चुके है और आजकल कलकत्ता विश्व-विद्यालय मे दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर और काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के वाइस चासलर है। प्रस्तुत पुस्तक का आपने ही सम्पादन किया है।

२. **होरेस जी अलेक्जेण्डर**—आप इग्लैण्ड के क्वेकर सम्प्रदाय के सदस्य और वहाँ के गाधी-विचारवादियो मे प्रमुख व्यक्ति है।

३ **दीनबन्धु एण्ड्रूज**—महात्मा गाधी के आप परम मित्र थे। भारत की सेवा मे आपने अपना जीवन लगा दिया था। शान्ति-निकेतन के आप उपाध्यक्ष रहे। महात्मा गाधी पर लिखी आपकी पुस्तक 'महात्मा गाधी—हिज ओन स्टोरी' बहुत प्रसिद्ध और उपयोगी है। प्रवासी भारतीयो की समस्या सुलझाने में आपने बहुत ज्यादा काम किया था। ४ अप्रेल (१९४०) को कलकत्ते मे आपकी मृत्यु हो गयी।

४. **जार्ज एस. अरेण्डेल**—आप थियोसफीकल सोसायटी के अध्यक्ष है, बनारस के सेण्ट्रल हिन्दू कालेज के प्रिसिपल, होल्कर सरकार के शिक्षाधिकारी और सेवा-समिति बॉय स्काउट एसोसियेशन के डिप्टी चीफ स्काउट रह चुके है। मद्रास से प्रकाशित 'न्यू इण्डिया' के सम्पादक भी रहे है।

५. **वी. एस. अजारिया**—आप तिन्नेवली की भारतीय मिशनरी सोसायटी के सस्थापको मे से एक है और दोर्णाकल मिशन के अध्यक्ष है।

६. **अरनेस्ट बारकर**—आप केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे राजनीति-विज्ञान के अध्यापक है। लदन के किंग्स कालेज के प्रिसिपल रह चुके है।

७. **लारेंस बिनयान**—आप लन्दन की रायल सोसायटी ऑव लिटरेचर के फेलो और एकेडेमिक कमेटी के सदस्य है।

८. **श्रीमती पर्ल एस बक**—आप अमरीका की सुप्रसिद्ध लेखिका है। आपकी रचनाओ को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई है। साहित्य के लिए आपको नोबल पुरस्कार मिल चुका है।

९ **लायोनल कर्टिस**—आप आक्सफोर्ड के आल सोल्स कालिज मे है। ट्रासवाल की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य तथा औपनिवेशिक आफिस मे आयरलैण्ड के मामलो मे सरकार के सलाहकार रहे है।

१०. **डॉ० भगवान्दास**—आप दर्शन-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित है। प्राचीन धार्मिक ग्रथो का आपका अध्ययन गहन है। आपका जीवन अत्यन्त सात्विक, सरल और सीधा-सादा है। आप भारत के इने-गिने विद्वानो मे से एक है।

११. **अलबर्ट आइन्स्टाइन**—ससार के प्रसिद्ध वैज्ञानिको मे आपकी गणना है। भौतिक शास्त्र के लिए आपको सन् १९२१ मे नोवल पुरस्कार मिल चुका है। आपके सापेक्षवाद के मूल सिद्धान्त ने विज्ञान मे हलचल मचा दी है। यहूदी होने के कारण आप जर्मनी से निर्वासित कर दिये गये है।

१२. **रिचर्ड बी. ग्रेग**—आप अमेरिका के प्रसिद्ध वकील और अर्थशास्त्री है। सन् १९२५-२६ मे सत्याग्रह-आश्रम मे रह चुके है। चर्खा और खादी के विषय मे वहाँ आपने शास्त्रीय अध्ययन किया और खादी के अर्थ-शास्त्र पर आपने एक पुस्तक लिखी है। अमेरिका मे महात्माजी के विचारो के—विशेषकर सत्याग्रह और अहिंसा के—आप समर्थक है तथा गाधी-विचारवादियो के नेता और पथ-प्रदर्शक है। आपकी नयी पुस्तक 'दि पावर ऑव नॉन वायलेस' का अनुवाद शीघ्र ही मण्डल से प्रकाशित हो रहा है।

१३. **जेराल्ड हेयर्ड**—आप अमेरिका-निवासी है। आपके 'आश्चर्यजनक विश्व' और 'साइंस इन दी मेकिंग' पर हुए ब्राडकास्ट वहुत प्रसिद्ध है।

१४. **कार्ल हीथ**—आप क्वेकर सम्प्रदाय के है और विलायत के गाधी-विचार-वादियो मे अग्रणी है। इग्लैण्ड के शासनकर्त्ताओ और राजनीतिज्ञो पर आपका वहुत प्रभाव है।

१५. **विलियम अर्नेस्ट हॉकिंग**—आप हारवर्ड यूनिवर्सिटी मे दर्शन-शास्त्र के अध्यापक है।

१६. **पादरी जान हेस होम्स**—आप न्यूयार्क के कम्यूनिटी चर्च के मिनिस्टर है। 'यूनिटी' पत्र का आप सपादन करते है। अमेरिका मे गाधीजी के सिद्धान्तो की ओर लोगो का ध्यान खीचने मे आप अग्रणी है।

१७ **आर. एफ अल्फ्रेड हार्नले**—आप विटवाटरस्रेण्ड (दक्षिणी अफ्रीका) यूनिवर्सिटी मे दर्शन-शास्त्र के अध्यापक और दक्षिणी अफ्रीका के रेस रिलेशन इन्स्टीट्यूट के प्रधान है।

१८. **ऑनरेवल जॉन एच. हाफमेयर**—आप विटवाटरस्रेण्ड यूनिवर्सिटी (दक्षिण अफ्रीका) के चासलर है।

१९ **लारेंस हाउसमैन**—आप प्रसिद्ध लेखक, कलाकार और गणित के विद्वान है।

२०. **जान एस होयलण्ड**—आप वर्मिघम की वुडब्रुक वस्ती मे लेक्चरर है। नागपुर के हिसलाप कालेज मे इतिहास और अग्रेजी के अध्यापक रह चुके है। भारत में सार्वजनिक सेवा के कारण आपको 'कैसरे हिन्द' स्वर्णपदक मिला था।

२१ सर मिरजा एम इस्माइल—आप मैसूर राज्य के दीवान हैं। लन्दन मे हुई तीनो भारतीय गोलमेज परिषदो मे भारत के विभिन्न राज्यो के प्रतिनिधि बनकर सम्मिलित हुए थे।

२२. सी ई एम. जोड—आप यूनिवर्सिटी ऑव लदन के वर्कवैक कालेज में दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान के मुख्याध्यापक हैं। अग्रेजी मे दर्शन-शास्त्र तथा सामाजिक तत्त्वज्ञान के अनेक अगो पर प्रामाणिक पुस्तके लिखी हैं।

२३. रूफस एम जोन्स—आप हेवरफोर्ड कालेज मे दर्शन-शास्त्र के अध्यापक हैं। 'दी अमेरिकन फ्रेड' और 'प्रेजेण्ट डे पेपर्स' के सम्पादक रहे हैं।

२४ स्टीफेन हॉवहाउस—आप इग्लैण्ड के प्रभावशाली ईसाई शान्तिवादी है।

२५. ए वेरीडेल कीथ—आप एडिनवरा यूनिवर्सिटी मे सस्कृत और दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं। १९०७ में हुई कोलोनियल नेवीगेशन कान्फ्रेस मे आपने सम्राट् की सरकार का प्रतिनिधित्व किया था। ब्रिटिश साम्राज्य तथा उसके उपनिवेशो के विधान के आप सर्वमान्य प्रामाणिक विशेषज्ञ हैं।

२६. काउण्ट हरमन काइजरलिंग—आप डार्मश्टाट (जर्मनी) के 'स्कूल ऑव विज्डम' के सस्थापक है। जर्मनी के प्रधान विचारको मे से हैं और सास्कृतिक क्षेत्र मे एक नवीन विचारधारा के निर्माता हैं।

२७ जार्ज लेन्सवरी—आप लन्दन की पार्लमेण्ट के सम्मान्य सदस्य हैं। कुछ समय पूर्व तक आप लेवरपार्टी के प्रधान और पार्लमेण्ट मे विरोधी दल के नेता रह चुके हैं। वहाँ के सार्वजनिक जीवन मे आपका वहुत प्रभाव है।

२८. प्रोफेसर जॉन मैकमरे—आप लन्दन के यूनिवर्सिटी कालेज में दर्शन-शास्त्र के अध्यापक हैं। जोहान्सवर्ग (दक्षिण अफ्रीका) की विटवाटरस्रैण्ड यूनिवर्सिटी मे दर्शन-शास्त्र के अध्यापक रह चुके हैं।

२९. डान साल्वेडोर डी मेड्रियागा—आप लन्दन-निवासी हैं। १९२१–३६ तक आप राष्ट्रसघ मे स्पेन के स्थायी डेलीगेट रहे हैं। १९३१ मे स्पेन के राजदूत वनकर अमेरिका और १९३२–३४ मे फ्रास गये। स्पेन के आधुनिक लेखको मे आपका ऊँचा स्थान है।

३०. कुमारी इथिल मेनिन—आप प्रसिद्ध उपन्यासकार और जर्नलिस्ट हैं। 'पैलीकन' की सहायक सम्पादिका रह चुकी हैं।

३१. मेरिया मौण्टीसरी—आप एक नवीन शिक्षा-पद्धति की आविष्कर्त्री हैं, जो मौण्टीसरी-पद्धति कहलाती हैं। आप प्रथम महिला हैं, जिन्हे रोम की यूनिवर्सिटी ने 'डाक्टर ऑव मैडिसन' की उपाधि से सम्मानित किया है। वच्चो के मनोविज्ञान का आपने अच्छा अध्ययन किया है। आप मौण्टीसरी ट्रेनिंग कालेज की और १९०७ में वार्सीलोना मे स्थापित मौण्टीसरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट की डाइरेक्टर हैं।

३२. **आर्थर मूर**—आप सुप्रसिद्ध अग्रेजी पत्र 'स्टेट्समैन' के प्रधान सपादक है।

३३. **गिलबर्ट मरे**—आप ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी मे अध्यापक है। कुछ काल तक आप ग्लासगो यूनिवर्सिटी मे ग्रीक साहित्य के अध्यापक रहे है। यूरोप के प्राचीन साहित्य के प्रधान विद्वान माने जाते है।

३४. **योन नागूची**—आप जापान के प्रसिद्ध राजकवि है। टोकियो यूनिवर्सिटी मे अग्रेज़ी के प्रोफेसर है। जापानी काव्य-साहित्य पर आपने कई पुस्तके अग्रेज़ी मे लिखी है।

३५. **डा० पट्टाभि सीतारामैया**—देश के प्रमुख काग्रेसी नेताओ मे से आप एक है। प्रभावशाली लेखक और वक्ता है। काग्रेस महासमिति के सदस्य रह चुके है।

३६. **कुमारी मॉड डी. पेट्री**—आप सुप्रसिद्ध लेखिका और कैथलिक मॉडर्निस्ट है।

३७ **हेनरी एस एल. पोलक**—आप इग्लैण्ड के प्रसिद्ध वकील है। दक्षिण अफ्रीका मे महात्माजी के साथी रह चुके है और सत्याग्रह आन्दोलन मे जेल भी जा चुके है। महात्माजी की आत्मकथा मे आपका जिक्र आया है।

३८. **लिवलिन पाविस**—आप स्वीजरलैण्ड मे रहते है। कुछ वर्षों तक न्यूयार्क शहर मे जर्नलिस्ट रहे है।

३९. **एम क्युओ तै-शी**—आप लन्दन मे चीन के प्रतिनिधि है।

४०. **सर अब्दुल कादिर**—आप भारत-मत्री के सलाहकार है। पजाब लेजिस्लेटिव कौसिल के प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष थे। राष्ट्र-सघ की सातवी असेम्बली मे भारत के प्रतिनिधि बनकर गये। पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य रह चुके है।

४१ **डॉ० राजेन्द्रप्रसाद**—आप देश के प्रमुख राष्ट्रीय नेताओ मे से एक है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति रह चुके है। गाधी विचार-धारा के पूर्णरूपेण समर्थक है। आपका व्यक्तित्व अत्यन्त सरल है।

४२. **रेजिनाल्ड रेनाल्ड्स**—आप अग्रेज़ युवक और विचारक है। विलायत के समाजवादी लेखको मे आपका विशिष्ट स्थान है। सन् १९३० मे सत्याग्रह का आन्दोलन प्रारम्भ होते समय आप भारत मे ही थे और वाइसराय के नाम महात्माजी का प्रसिद्ध पत्र लेकर दिल्ली आये थे।

४३. **रोम्यॉं रोलॉं**—आप सुप्रसिद्ध फ्रेंच लेखक है। सन् १९१५ मे साहित्य पर आपको नोबल पुरस्कार मिला। आपने फ्रेंच साहित्य को एक नवीन दिशा दी है।

४४. **मिस मॉड रायडन**—आप स्वर्गीय मर थामस रॉयडन की सुपुत्री है। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी एक्स्टेन्शन डेलीगेसी मे अग्रेजी-साहित्य की अध्यापिका रह चुकी है।

४५ **वाइकाउण्ट सेम्युअल**—आप माउण्ट कार्मेल तथा टोक्सटैथ (लिवरपूल) के सर्व प्रथम वाइकाउण्ट बनाये गये। लकास्टर की डची के चासलर रह चुके है। फिलासफी के ब्रिटिश इन्स्टीट्यूशन के अध्यक्ष है। ब्रिटिश लिबरल पार्टी के प्रसिद्ध नेताओ मे से एक है।

४६. **लार्ड सैंकी**—आप भारतीय गोलमेज परिपद् की सघ-योजना कमेटी के, जिसमे कि गाधीजी सन् १९३१ मे शामिल हुए थे, अध्यक्ष थे। आप महात्माजी के प्रशसको मे से है।

४७ **डी. एस शर्मा**—मद्रास के पचियप्पा कालेज मे आप अग्रेजी के अध्यापक है। गाधीजी के ऊपर आपने अग्रेज़ी मे एक काव्य लिखा और 'गाधी सूत्रम्' नामक एक दूसरे ग्रन्थ का भी निर्माण किया है।

४८. **श्रीमती क्लेयर शैरीडन**—आप स्वर्गीय मोर्टन फ्रेवन की सुपुत्री है। आप प्रसिद्ध शिल्पकार और लेखिका है।

४९ **जे सी. स्मट्स**—दक्षिण अफ्रीका के आप प्रधान मन्त्री है। प्रारम्भ मे आप गाधीजी के विरोधी थे। अब आप उनके प्रशसको मे से है। आपके बारे मे महात्माजी की 'आत्मकथा' मे काफी जिक्र आया है।

५० **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**—आप प्रथम भारतीय है जिन्हे अपनी रचना 'गीताजलि' पर नोबल पुरस्कार मिला है। 'विश्वभारती' (शान्ति-निकेतन) के सस्थापक है। भारतीय सस्कृति के एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि माने जाते है।

५१. **एडवर्ड टॉमसन**—आक्सफोर्ड के ओरियण्टल कालेज के आप 'फैलो' है। शान्ति-निकेतन मे रहे है और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आपने जीवनी लिखी है। आपकी पुस्तक 'अदर साइड ऑव दी मैडल' बहुत प्रसिद्ध है।

५२ **श्रीमती सोफ़िया वाडिया**—आप बम्बई से 'आर्यन पाथ' नामक मासिक पत्र निकालती है। 'इडियन पी० ई० एन०' की सम्पादिका है। शान्तिवाद की प्रबल समर्थक है।

५३. **पादरी फॉस वैस्टकॉट**—आप भारत के लाट पादरी और कलकत्ता के लॉर्ड बिशप है।

५४ **जैक सी विसलो**—आप ईसाई मिशनरी है और पूना के क्राइस्ट सेवा-सघ मे है।

५५ **एच० जी० वुड**—बर्मिघम की वुडब्रुक बस्ती के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर है। केम्ब्रिज यूनियन सोसायटी के अध्यक्ष और केम्ब्रिज के जीसस कालेज मे इतिहास के अध्यापक रह चुके है।

५६ **सर फ्रासिस यग हसबैण्ड**—आप इन्दौर और काश्मीर राज्यो के रेज़ीडैण्ट और रायल भौगोलिक सोसायटी के अध्यक्ष रहे है। मध्य एशिया के दुर्गम मार्गो की खोज मे आपने अग्रणी का काम किया है। भारतीय तत्त्वज्ञान मे आप बहुत दिलचस्पी रखते है। विश्व-धर्म-सभा के अध्यक्ष है।

५७. **सर एल्फ्रेड जिमेर्न**—आप ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्यापक है। ऑक्सफोर्ड के न्यू कालेज में प्राचीन इतिहास के अध्यापक रहे है। राष्ट्र-सघ के विधान के विशेषज्ञ माने जाते है।

५८. आरनल्ड ज्वीग—आप प्रसिद्ध उपन्यासकार और नाटककार है।

५९. लार्ड हैलीफ़ैक्स—आप इगलैण्ड मे वैदेशिक सचिव है और इससे पहले युद्ध-सचिव भी रहे है। १९२६-३१ मे आप (इर्विन) भारत के वाइसराय, १९३२-३५ में बोर्ड ऑव एजूकेशन के अध्यक्ष रहे है। सन् १९३१ मे गाधीजी का आपसे ही समझौता हुआ था, जो गाधी-इर्विन पैक्ट कहलाता है।

६०. अप्टन सिक्लेयर—आप सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक है। समाजवादी विचारो को फैलाने मे आपने बहुत परिश्रम किया है। आपको साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार भी मिल चुका है।

६१. ए० एच० काम्पटन—आप शिकागो यूनिवर्सिटी मे फिजिक्स के अध्यापक है। पजाब यूनिवर्सिटी के विशेप लेक्चरार और शिकागो यूनिवर्सिटी बस्ती के अध्यक्ष रहे है। फिजिक्स मे आपको नोबल पुरस्कार मिला है।

६२. जे० एच० मूरहैड—आप बर्मिघम यूनिवर्सिटी मे दर्शनशास्त्र के अध्यापक थे। ग्लास्गो यूनिवर्सिटी मे लेटिन के अध्यापक रहे थे।

सस्ता साहित्य मण्डल

'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

[नोट—× चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य है]

१—दिव्य जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिल वेद ।।।)
४—व्यसन और व्यभिचार ।।।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ× ।।।)
६—भारत के स्त्री-रत्न ३)
७—अनोखा× १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान ।।।)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र× ।।।≡)
१२—गोरो का प्रभुत्व× ।।।=)
१३—चीन की आवाज़× ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी वारडोली× २)
१६—अनीति की राह पर ।।=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।।)
२२—अँधेरे में उजाला ।।)
२३—स्वामीजी का बलिदान× ।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी× ।)
२५—स्त्री और पुरुष ।।)
२६—घरो की सफाई ।=)
२७—क्या करे ? १)
२८—हाथ की कताई-बुनाई× ।।-)
२९—आत्मोपदेश× ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन× ।।।-)
३१—देखो नवजीवन माला
३२—गगा गोविंदसिंह× ।।=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिंदी मराठी कोष× २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ।।)
३७—महान् मातृत्व की ओर ।।।=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरगित हृदय ।।)
४०—नरमेध १।।)
४१—दुखी दुनिया ।=)
४२—जिन्दा लाश× ।।)
४३—आत्मकथा (गाधीजी) १) १।।)
४४—जब अग्रेज आये× १।=)
४५—जीवन-विकास १।)
४६—किसानो का बिगुल× =)
४७—फाँसी ! ।=)
४८—अनासक्ति योग =) ≡) ।)
४९—स्वर्ण-विहान× ।=)

५०—मराठो का उत्थान-पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १)
५२—स्वगत× ।=)
५३—युगधर्म× १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥)
५५—विदेशी कपड़े का मुकाविला× ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी× ॥=)
५८—इंग्लैण्ड मे महात्माजी ॥)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥)
६२—हमारा कलक ॥=)
६३—वुद्‌वुद ॥)
६४—सघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गाधी-विचार-दोहन ॥)
६६—एशिया की क्रान्ति× १॥)
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता-२ १॥)
६८—स्वतत्रता की ओर १॥)
६९—आगे वढो ! ॥)
७०—वुद्ध-वाणी ॥=)
७१—काग्रेस का इतिहास २॥)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) २॥)
७४—विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८)
७५—पुत्रियाँ कैसी हो ? ॥)
७६—नया शासन विधान—१ ॥)
७७—(१) गाँवो की कहानी ॥)
७८—(२-९) महाभारत के पात्र [illegible]
७९—सुधार और सगठन १)
८०—(३) सतवाणी [illegible]
८१—विनाश या इलाज [illegible]
८२—(४) अग्रेज़ी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ॥)
८३—(५) लोक-जीवन ॥)
८४—गीता-मथन १॥)
८५—(६) राजनीति प्रवेशिका ॥)
८६—(७) अधिकार और कर्तव्य ॥)
८७—गाधीवाद समाजवाद ॥)
८८—स्वदेशी और ग्रामोद्योग ॥)
८९—(८) सुगम चिकित्सा ॥)
९०—प्रेम मे भगवान् ॥)
९१—महात्मा गाधी ।=)
९२—ब्रह्मचर्य ॥)
९३—हमारे गाँव और किसान ॥)
९४—अभिनन्दन-ग्रथ २)
९५—हिन्दुस्तान की समस्याये १)
९६—जीवन-सदेश ॥)
९७—समन्वय २)
९८—समाजवाद पूँजीवाद ॥)
९९—मेरी मुक्ति की कहानी ॥)
१००—खादी-मीमासा १॥)
१०१—वापू ॥) १) २)
१०२—विनोवा के विचार ॥)
१०३—लडखडाती दुनिया ॥)
१०४—सेवाधर्म सेवामार्ग १)